महानगर प्रकाशन

महारथी

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।।

कर्तव्य-कर्म करने पर ही अधिकार है, फलों पर कभी नहीं। अत: कर्म फल का हेतु भी मत बनो और अकर्मण्यता में भी आसक्ति न हो।

-श्रीमद्भगवद्गीता (2.47)

मेरे संस्कार, मेरा जीवन

मेरे पिता के संस्कार और सादगी का असर मेरे बाल्य जीवन पर पड़ा। विद्यार्थी जीवन में प्रजामंडल आंदोलन से रुचि पैदा हुई और भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय योगदान दिया। हरिजन उद्धार, रचनात्मक कार्य, खादी-ग्रामोद्योग में दिलचस्पी होने के कारण कई हरिजन संस्थाओं और खादी-ग्रामोद्योग संस्थाओं से संबंध रहा।

मंत्री के रूप में मैंने ईमानदारी, समर्पण और सत्यनिष्ठा की उच्चतम भावना के साथ अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया है। मैं उस दौरान हमेशा सचेत रहता था कि जाने-अनजाने में कुछ भी ऐसा न कर जाऊं, जो इस देश के लोगों को एक बुरे विकल्प के रूप में दिखाई दे।

जब मुझे गुजरात का राज्यपाल नियुक्त किया गया तो मीडिया के मित्रों ने मुझसे पूछा, 'मुख्यमंत्री के साथ आपका कैसा संबंध रहेगा?' मैंने कहा, 'जैसा एक राज्यपाल और एक मुख्यमंत्री का होता है।' जो कुछ मैंने कहा था, उसका अक्षरश: पालन किया। इसीलिए मेरे और मोदीजी के बीच मनभेद तो दूर की बात, कोई मतभेद भी नहीं हुआ।

मेरा अपना जो भी थोड़ा-बहुत है.. संपत्ति, मकान, खेत; वे खरीदकर लिए हुए हैं और अपने परिश्रम से लिए गए हैं। भ्रष्टाचारियों की फेहरिस्त में लगकर गरीब और अकाल पीड़ित होने के नाम पर आवंटित नहीं करवाए।

अगर मैंने राजस्थान की सत्ता में रुचि दिखाई होती और प्रस्तावों को स्वीकार किया होता तो भी क्या अंतर पड़ना था! भूतपूर्व मुख्यमंत्रियों की सूची में एक नाम मेरा भी जुड़ जाता। इसके अलावा और क्या होता!

पचमढ़ी शिविर के सूत्रधार

'वरिष्ठ नेता नवलकिशोर शर्मा शिविर के प्रभारी थे। नेताओं ने पांच समूहों में विभिन्न मुद्दों पर चर्चा की और अपनी सिफारिशें नवलकिशोर शर्मा को सौंपी। शर्मा की सलाह पर सोनिया गांधी ने मुझे सिफारिशों को एकत्र करके उद्घोषणा का रूप देने के लिए और मीडिया से बात करने के लिए अधिकृत किया।'

- प्रणब मुखर्जी, पूर्व राष्ट्रपति

(प्रणब मुखर्जी: द कॉलिशन इयर्स, पृष्ठ 41-42)

भारत के महान सपूत

'मुझे इस बात का गर्व है कि मैं पं. नवलकिशोर शर्मा का सहयोगी रहा। उन्होंने पार्टी के साधारण कार्यकर्ता की बात सुनने की कोशिश की और आम आदमी की समस्याओं को कांग्रेस की नीतियों में महत्व दिलवाया। पंडितजी भारत और राजस्थान के एक महान सपूत थे।'

- डॉ. मनमोहन सिंह, पूर्व प्रधानमंत्री

(दौसा, 14 मार्च, 2015)

स्वतंत्रता संग्राम का स्मरण

'नवलकिशोर शर्मा के नेतृत्व में राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ा इतिहास संकलन का जो काम किया गया, इतना महत्वपूर्ण काम किसी राज्य में नहीं हुआ।'

-आर. वेंकटरमन, पूर्व राष्ट्रपति

(सीताराम झालानी: पं. नवलकिशोर के संस्मरण)

ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह

'यह महत्वपूर्ण है कि नवलकिशोर शर्मा ने बोफोर्स मामले में सीएजी पर किए जा रहे आक्रमण की निंदा करते हुए चेतावनी दी कि देश की महत्वपूर्ण संस्थाओं को कमजोर किया जा रहा है, यह देश के लिए नुकसानदेह होगा। उन्होंने कहा कि सीएजी की रिपोर्ट से देश में परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई है।'

-चंद्रशेखर, पूर्व प्रधानमंत्री

(यंग इंडियन, 19 सितम्बर, 1989)

महारथी

गोपाल शर्मा

महानगर प्रकाशन

महानगर प्रकाशन

कॉपीराइट © गोपाल शर्मा, 2022

सर्वाधिकार सुरक्षित: लेखक

ISBN: 978-93-5607-770-6

इस पुस्तक में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं और किसी भी रूप में प्रकाशक की नीति को प्रकट नहीं करते।

टाइपसेट : महानगर मल्टीमीडिया प्रा.लि., जी–848, फेज–3, रीको सीतापुरा, जयपुर–22

मुद्रक : जयपुर प्रिंटर्स, जयपुर

प्रथम संस्करण : 15 अगस्त, 2022

महानगर प्रकाशन द्वारा प्रकाशित

महानगर टाइम्स भवन, 2–सहकार मार्ग, जयपुर–15
फोन: 0141–2741076, 2741077

यह पुस्तक इस शर्त पर विक्रय की जा रही है कि प्रकाशक की लिखित पूर्वानुमति के बिना इसे व्यावसायिक अथवा अन्य किसी भी रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता। इसे पुन: प्रकाशित कर बेचा या किराए पर नहीं दिया जा सकता तथा जिल्दबंद या खुले किसी भी अन्य रूप में पाठकों के मध्य इसका परिचालन नहीं किया जा सकता। ये सभी शर्तें पुस्तक के खरीदार पर भी लागू होंगी। इस संदर्भ में सभी प्रकाशनाधिकार सुरक्षित हैं। इस पुस्तक का आंशिक रूप में पुन: प्रकाशन या पुन: प्रकाशनार्थ अपने रिकॉर्ड में सुरक्षित रखने, इसे पुन: प्रस्तुत करने की प्रति अपनाने, इसका अनुदित रूप तैयार करने अथवा इलेक्ट्रॉनिक, मैकेनिकल, फोटोकॉपी और रिकॉर्डिंग आदि किसी भी पद्धति से इसका उपयोग करने हेतु समस्त प्रकाशनाधिकार रखने वाले अधिकारी तथा पुस्तक के प्रकाशक की पूर्वानुमति लेना अनिवार्य है।

सादर समर्पण

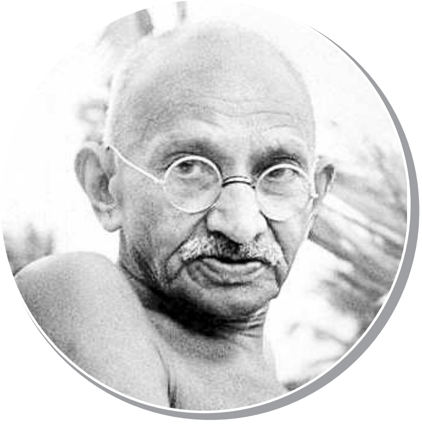

पूज्य महात्मा गांधी

जिन्होंने दुखी, कातर, पीड़ित और निरीह प्राणियों की सेवा को अपने जीवन का ध्येय बना लिया। राजनीति के शीर्ष पर रहते हुए कभी अभिमान नहीं किया।

लंगोटी धारी संत के रूप में प्रतिष्ठित हुए और करोड़ों भारतीयों के प्रेरणा स्रोत बन गए।

भारतीय संस्कृति, सभ्यता, संवेदना और समानता के स्वर को संबल दिया।

स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव पर्व पर हमारे महापुरुषों के प्रतीक स्वरूप महान आत्मा को सादर समर्पित !!

'जयपुरवासी मुझसे लगातार पूछ रहे हैं कि सत्याग्रह पर कब तक रोक लगी रहेगी। सत्याग्रह रुकने का अर्थ यह नहीं है कि आंदोलन समाप्त हो गया है। वह किसी न किसी रूप में स्वतंत्रता के उस मूल तत्व को बचाने के लिए चल ही रहा है, जिसके लिए यह संघर्ष प्रारंभ हुआ था। जयपुर के निवासी यह जान लें कि जब तक उनके अंदर चाह है, तब तक उनके पास शक्ति भी है। इस शक्ति को नियंत्रण में रखने का जितना प्रयास होगा, यह उतनी ही बढ़ती जाएगी। हर शक्ति तुरंत इस्तेमाल कर लेने के लिए नहीं होती है। कई बार शक्ति का संचय करने से वह और अधिक प्रभावशाली होती जाती है।'

हरिजन, 15 जुलाई, 1939

▲ 30 मार्च, 1949 को राजस्थान संघ का उद्‌घाटन समारोह.. उपप्रधानमंत्री सरदार पटेल, राजप्रमुख मानसिंह द्वितीय और आगंतुकगण

▲ पं. नवलकिशोर शर्मा (5 जुलाई, 1925 – 8 अक्टूबर, 2012)

▶ दौसा में नवलकिशोर शर्मा का पुश्तैनी घर

फोटो : डी.के.सैनी

▲ स्मृति शेष : दौसा स्थित घर में नवलकिशोर शर्मा के जन्म के समय की चारपाई

अनुक्रम

कर्तव्य के पथ पर XI
आभार XVII
विवादास्पद विषयों पर टिप्पणी XVIII

भाग एक: धधक उठी चिंगारी

1. नवलकिशोर की पृष्ठभूमि 3
2. विप्लवी बचपन 11
3. विरासत में वैमनस्यता 35

भाग दो: राजशाही को लोकतांत्रिक चुनौती

4. राजनीति में राजपरिवार 67
5. दौसा से दिल्ली 75

भाग तीन: सीलन भरी सीढ़ियां

6. राष्ट्रीय चुनौतियों के बीच 107
7. दांवपेंच में दिखाया दम 125
8. प्रणब पर नवल लगाम 139
9. मुख्यमंत्री बनाम राष्ट्रीय राजनीति 149
10. क्वात्रोच्चि को पहली चुनौती 155
11. असंतुष्टों का नेतृत्व 181
12. कांग्रेस फोरम फॉर एक्शन 199

भाग चार: संकटमोचक और सूत्रधार

13.	1990 का दशक और राजस्थान	205
14.	नरसिंह के संकटमोचक	213
15.	पचमढ़ी शिविर के सूत्रधार	231
16.	मुख्यमंत्रित्व की मरीचिका	249
17.	स्वर्ण जयंती का स्वर्णिम अध्याय	263
18.	महारथी का शक्ति प्रदर्शन	279

भाग पांच: गांधी की भूमि पर गांधीवादी

19.	राज्यपाल का आदर्श कार्यकाल	305
20.	मेरा जीवन, मेरी प्रेरणा	355

भाग छह: महारथी का महामौन

21.	अनंत की ओर	371
22.	वे स्मृतियां	377
	परिशिष्ट	403

अपनी बात

कर्तव्य के पथ पर

राष्ट्र के लिए संपूर्ण समर्पित राजस्थान! दुनिया की ऐसी अद्‌भुत धरा, जहां कण-कण से त्याग-तपस्या और बलिदान का गौरवशाली इतिहास गूंज रहा है। राजस्थान ने कितने ही आक्रमण, युद्ध, जौहर और शाकों के दंश सहे, लेकिन आजादी-अस्मिता और स्वाभिमान से समझौता नहीं किया। यहां की जनता सैकड़ों वर्षों से स्वतंत्रता के सूर्योदय की आकांक्षा लिए कर्तव्य पथ पर सदैव डटी रही। कभी परकीयों के सामने सिर नहीं झुकाने वाले महाराणा प्रताप से लेकर महात्मा गांधी और महारानी पद्मिनी से लेकर रानी लक्ष्मीबाई तक यहां के प्रेरणास्रोत बने रहे। स्वतंत्रता के बाद सरदार पटेल के आह्वान पर राजस्थान के एकीकरण के साथ भारत की एकता और अखंडता का शंखनाद हुआ। जनता की विजय हुई.. राजशाही का स्थान लोकतंत्र ने लिया। स्वतंत्रता के संग्राम और लोकतंत्र के उदय के स्वर्णिम दौर में राजस्थान ने ऐसे विशिष्ट व्यक्तित्वों को जन्म दिया, जिन्होंने सिद्धांत और स्वाभिमान की रक्षा के लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया।

ऐसे महारथी थे पं. नवलकिशोर शर्मा।

नवलकिशोर का सफरनामा समकालीन इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों से शुरू होता है, जिसमें 1857 में नए सिरे से शुरू हुई राष्ट्रभक्ति की ललक, जन जागृति का ज्वार, स्वतंत्रता के सूर्योदय की आभा, राजस्थान के एकीकरण की दृढ़ता और लोकतंत्र की खुशबू समाहित है। संस्कार और अभाव के वातावरण में एक पितृविहीन बालक शिक्षा-स्वतंत्रता और समाजसेवा के सपने देखता किशोर होता है। क्रांतिकारी स्वभाव का एक तरुण, जो बम बनाना चाहता है ताकि अंग्रेजों को भगाया जा सके; वह प्रजामंडल के उन विद्रोही नेताओं के साथ 1942 के आंदोलन में सक्रिय होता है, जो किसी तरह के राष्ट्रघाती समझौते के लिए तैयार नहीं हैं। वह एल.एल.बी. (मेरिट) करने के बाद गरीबों और पीड़ितों की पैरवी तथा जनसेवा का रास्ता चुनता है; ऐसे नेताओं के साथ खड़ा होता है, जो सत्ता से दूर सत्य के आग्रही हैं।

देशभक्ति से ओतप्रोत छात्र जीवन में नवलकिशोर ने कांग्रेस-प्रजामंडल के नेतृत्वकर्ता, जयपुर राज और पूंजीपतियों के नापाक गठजोड़ की वह दुरभिसंधि देखी, जिसने दौसा को अपने में समेटे जयपुर राज में 1942 का महात्मा गांधी प्रेरित 'अंग्रेजो भारत छोड़ो आंदोलन' नहीं होने दिया। कमोबेश इसका असर पूरे राजपूताना पर पड़ा। हर युद्ध में हरावल की भूमिका निभाने वाला वीर प्रदेश अगस्त क्रांति में कसमसाता रहा। महात्मा गांधी भी इससे कुपित हुए; लेकिन वह राजनीतिक दौर मुगल-जयपुर राज समझौते का परिष्कृत रूप था, जिसमें मुख्य षडयंत्रकारी की भूमिका में जयपुर राज के प्रधानमंत्री मिर्जा इस्माइल थे। नवलकिशोर उन

कार्यकर्ताओं में शामिल थे, जिनसे जुड़े नेताओं ने कथित षडयंत्रकारी 'जेंटलमेंस एग्रीमेंट' का विरोध करके स्वातंत्र्य चेतना जगाए रखी। लेकिन जयपुर में बना यह नापाक गठजोड़ राजस्थान के एकीकरण के बाद सत्ता और धन की बंदरबांट में पृष्ठभूमि बना। इसका परिणाम मुख्यमंत्री पद, पूंजीपतियों को सीधे लाभ और जयपुर राजघराने के पास जीवनपर्यंत राजप्रमुख पद, अधिकतम संपत्ति तथा सोना मिलने के रूप में सामने आया। राजस्थान के एकीकरण और कांग्रेस के प्रभावी होने के साथ ही वैमनस्यता के विषबीज का अंकुरण हुआ, जहां जयनारायण व्यास-माणिक्यलाल वर्मा जैसे आजादी के दीवानों पर आजाद भारत में कांग्रेस की सरकार ने ही मुकदमे लाद दिए या जांच बैठा दी। राजस्थान का भाग्य ऐसे नेताओं से जुड़ता चला गया, जिनके कारण ब्रिटिश हुकूमत और राजशाही से निकलने के बाद सत्ता बल, धन बल के साथ जातिवादी बल की नई यंत्रणाएं महसूस की जाने लगीं।

सत्ता में जनप्रतिनिधित्व की मांग से शुरू हुई सत्ता हस्तांतरण की प्रक्रिया के बाद नेतृत्व प्राप्त करने की रस्साकशी में स्वतंत्रता के नाम पर लोकतंत्र का गला घुटता चला गया। माणिक्यलाल वर्मा, गोकुलभाई भट्ट और मास्टर आदित्येंद्र ने विभिन्न अवसरों पर कांग्रेस आलाकमान के चाहने पर भी मुख्यमंत्री बनने से इनकार कर दिया। जयपुर प्रजामंडल के अध्यक्ष चिरंजीवलाल मिश्र भारतीय जनसंघ के पहले प्रदेश अध्यक्ष बने। उस माहौल में किसी स्वाभिमानी नेता के लिए जगह सुरक्षित नहीं थी। आगे चलकर हीरालाल शास्त्री ने नई पार्टी की रचना की, जयनारायण व्यास कांग्रेस प्रत्याशियों के खिलाफ उतरे, माणिक्यलाल वर्मा दलीय राजनीति से ऊपर उठ गए, टीकाराम पालीवाल लंबा सफर तय करके जनता पार्टी के अध्यक्ष बने और गोकुलभाई भट्ट को आपातकाल में जेल के सींखचों में रहना पड़ा। नवलकिशोर के शैक्षिक और राजनीतिक गुरु रामकरण जोशी भी राजनीतिक विद्वेष से परेशान होने के बाद कांग्रेस छोड़कर जनता पार्टी तथा क्रांतिदल में चले गए। नवलकिशोर ने देखा कि बहुमत होने के बावजूद मोहनलाल सुखाड़िया-हरिदेव जोशी जैसे नेता मुख्यमंत्री पद से हटा दिए गए और कुछ समर्थनविहीन नेताओं को मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलाई गई। उस राजनीतिक कटुता भरे माहौल में कांग्रेस में बने रहकर शुचिता, स्वाभिमान, समर्पण और संवैधानिकता का जीवनपर्यंत अलख जगाना विकट चुनौती भरा कार्य था; नवलकिशोर इसमें पूरी तरह खरे उतरे।

नवलकिशोर के आराध्य महात्मा गांधी रहे। गांधी की अंत्येष्टि में शामिल होने के लिए नवलकिशोर बड़ी मुश्किल से आगरा से ट्रेन पकड़कर दिल्ली पहुंचे। उन्होंने जीवन भर खादी पहनी और उसका प्रचार किया। सच्चाई और सादगी सदैव साथ जुड़ी रही। सामाजिक अस्पृश्यता के विरोध में जाति बिरादरी से बाहर होने की भी परवाह नहीं की। हमेशा उन लोगों की चिंता करते दिखे, जो अभाव और पीड़ा के बावजूद समाज में कुछ करना चाहते हैं तथा लोगों की भलाई में लगे हुए हैं। सनातन संस्कृति और विराट समाज उन्हें अखंड ब्रह्मांड से जोड़ते थे तथा वे भारतीयता को माध्यम के रूप में देखते थे।

आठ दशकों से अधिक के सफरनामे में नवलकिशोर ने अनेक बार प्रतिमानों को स्थापित होते और टूटते देखा। उन्होंने इंदिरा गांधी के संघर्ष, उत्कर्ष और पराभव तथा फिर वापसी की

दास्तान अपनी आंखों से देखी। वे राजीव गांधी के उदय और अस्त के साक्षी रहे.. सम्मान प्राप्त किया और अपमान सहा। उन्होंने सोनिया गांधी की निकटता, नाराजगी और तटस्थता को नजदीक से भुगता। संगठनात्मक मामलों में इंदिरा, राजीव, नरसिंह राव और सोनिया सहित सभी तत्कालीन नेताओं ने नवलकिशोर पर जब भी पूरा भरोसा किया तो वे सदैव खरे उतरे। कांग्रेस के नरौरा-पचमढ़ी जैसे चिंतन शिविरों के जरिए कांग्रेस संगठन को सैद्धांतिक जामा पहनाने की कोशिश की। पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने भी उनकी इस संगठनात्मक भूमिका को अपनी आत्मकथा में स्वीकार किया। सोनिया गांधी ने पत्र लिखकर नवलकिशोर की प्रशंसा की। इसके बाद भी नेहरू-गांधी परिवार के नेतृत्व द्वारा किसी नेता को अस्पृश्य घोषित करने की लक्ष्मणरेखा नवलकिशोर ने कभी स्वीकार नहीं की।

राजस्थान की राजनीति में 1973 में उप मुख्यमंत्री, 1985 में मुख्यमंत्री और 1998 में कैबिनेट मंत्री के पद उनके पास से गुजरे, लेकिन पद पास आए तो वे दूर चले गए। 1998 में वे मुख्यमंत्री पद के नजदीक आने को हुए, लेकिन तब तक राजनीति पूरी तरह बदल चुकी थी। राजनेता के रूप में राज्यपाल, केंद्रीय मंत्री, कैबिनेट मंत्री का दर्जा, तीन बार कांग्रेस के राष्ट्रीय महासचिव, अनेक प्रदेशों के प्रभारी, प्रदेश अध्यक्ष, तीन लोकसभा क्षेत्रों से पांच बार सांसद, जयपुर के अजेय माने जाने वाले क्षेत्र से विधायक होना मायने रखते हैं; नवलकिशोर ने इन सभी पदों की गरिमा बढ़ाई।

इंदिरा गांधी के समय 1972 में स्वतंत्रता के 25 वर्ष पूरे होने पर संसद में आयोजित रजत जयंती समारोह में लोकतंत्र के प्रति प्रतिबद्धता व्यक्त करने का संकल्प लिया गया तो प्रधानमंत्री के निकट नवलकिशोर को स्थान मिला। राजीव गांधी की 1987 की प्रसिद्ध बोट क्लब रैली में राजीव की छत्रछाया बने नवलकिशोर ही खड़े थे। वे ऐसे प्रमुख राजनेता रहे, जो न केवल कांग्रेस की अंदरूनी राजनीति के बखूबी जानकार थे बल्कि मौका आने पर किसी को भी पलटी लगवाने की महारत रखते थे।

राजीव ने प्रधानमंत्री बनने पर अपने मंत्रिमंडल में सिर्फ एक नए नेता नवलकिशोर को शामिल किया था और उन्हें भी वित्त राज्यमंत्री बनाकर प्रणब मुखर्जी पर लगाम लगाने की कोशिश की। लेकिन नवलकिशोर के असली कद को तत्कालीन दस्तावेजों से जाना जा सकता है कि केंद्र में मंत्री रहने के दौरान उन्होंने गांधी परिवार के निकटस्थ माने जाने वाले ओतावियो क्वात्रोच्चि की गलत तरीके से मदद करने से इनकार कर दिया। उस समय राजीव गांधी प्रधानमंत्री थे और प्रधानमंत्री निवास में क्वात्रोच्चि का लगातार आना-जाना था। राजीव चाहते थे कि एक व्यावसायिक मामले में क्वात्रोच्चि की मदद की जाए। उन्होंने स्पष्ट आदेश के रूप में तो कुछ नहीं कहा, लेकिन क्वात्रोच्चि को नवलकिशोर से मिलने भेजा और नवलकिशोर को फोन करके क्वात्रोच्चि का सहयोग करने की मंशा भी प्रकट की। नवलकिशोर ने क्वात्रोच्चि का अनुचित सहयोग नहीं किया, जिसके कारण उनका मंत्रालय छिन गया। नवलकिशोर के जीवित रहने के दौरान इस संदर्भ में मैं सीधे उनसे पूछ बैठा। उन्होंने कुछ छिपाया नहीं, बल्कि इसे स्वीकार किया कि नियम कानूनों के तहत वे क्वात्रोच्चि

की मदद नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्होंने इनकार कर दिया। मैंने पूछा कि उन पर प्रधानमंत्री के कहे जाने का असर क्यों नहीं हुआ तो वे बोले, 'जिंदा मक्खी को कैसे निगला जा सकता था!' बोफोर्स विवाद के समय नियंत्रक महालेखा परीक्षक (सीएजी) की सरकार विरोधी रिपोर्ट पर कांग्रेस ने हंगामा खड़ा कर दिया तो कांग्रेस के वरिष्ठ नेता के रूप में नवलकिशोर ने संवैधानिक पदों की मर्यादा के पक्ष में खड़े होकर अभूतपूर्व साहस का परिचय दिया। प्रधानमंत्री पद तक पहुंचे चंद्रशेखर ने संपादकीय लिखकर नवलकिशोर की इस बात के लिए प्रशंसा की।

कितने ही मुख्यमंत्रियों के बनने-हटने में नवलकिशोर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बेखौफ और मुखर प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाले नवलकिशोर अपनी विशिष्ट क्षमता के कारण कांग्रेस के हस्तिनापुर यानी नेहरू-गांधी परिवार की विरासत से जुड़े हुए नेताओं के हरावल दस्ते में आखिर तक शामिल रहे। इसके बावजूद वे दावे के साथ बुलंदीपूर्वक कह सकते थे, 'मेरा अपना जो भी थोड़ा-बहुत है.. संपत्ति, मकान, खेत; वे खरीदकर लिए हुए हैं और अपने परिश्रम से लिए गए हैं। भ्रष्टाचारियों की फेहरिस्त में लगकर गरीब और अकाल पीड़ित होने के नाम पर आवंटित नहीं करवाए।' वे खांटी और धुरंधर किस्म के ऐसे कांग्रेसी नेताओं के प्रतीक बने रहे, जिन्होंने अपने क्षेत्रों में चालीस वर्षों तक किसी-न-किसी रूप में कांग्रेस को सत्ता में बनाए रखा और अपनी रणनीतिक चतुराई से प्रतिपक्ष का मुकाबला किया।

राजनीति में घोर असंतुष्ट होते हुए भी नवलकिशोर ने राजस्थान गठन की स्वर्ण जयंती के अवसर पर संयोजक बनकर गरिमापूर्वक दायित्व संभाला। उन्होंने अपने पूरे पांच वर्ष राजस्थान के स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास को संकलित करवाकर अविस्मरणीय बनवाने में लगा दिए। पूर्व राष्ट्रपति आर. वेंकटरमण ने उनके इस कार्य को किसी भी राज्य के लिए अद्भुत माना।

वे ऐसे दौर में गुजरात के राज्यपाल रहे, जब वहां के मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी भारतीय राजनीति के एक नए नक्षत्र के रूप में उदय हो रहे थे। जब नवलकिशोर राज्यपाल बने तो देश भर में सोचा गया कि वे मोदी सरकार को अपदस्थ करने के लिए भेजे जा रहे हैं। उस समय नवलकिशोर की अखाड़ची पहचान थी और किसी से नहीं दबने वाले नेता के रूप में जाने जाते थे। महात्मा गांधी और सरदार पटेल की धरती पर पहुंचकर नवलकिशोर ने गुजरात की आदर्श परंपराओं, विकास की दिशा में तेजी से प्राप्त किए जा रहे अवसरों और ऊर्जावान मुख्यमंत्री के भागीरथ प्रयासों को समझा। उस दौर में उन्होंने राज्यपाल पद की गरिमा का जिस तरह निर्वाह किया, उस कार्यकाल ने एक आदर्श राज्यपाल के सदाचरण का नया इतिहास रच दिया। उन्होंने गुजरात के स्वरों में अपने स्वर मिला दिए और खुद को गुजरात का संरक्षक मान लिया।

मेरी स्मृतियों में है कि किस तरह गुजरात के स्थानीय कांग्रेसी नेता नवलकिशोर से लगातार मिलते रहकर मोदी सरकार की खिलाफत करते और मांग करते रहते कि उन्हें राज्यपाल के रूप में मोदी सरकार के खिलाफ कार्रवाई करनी चाहिए। जैसा कि नवलकिशोर को लोग

जानते रहे हैं, वे बिना लाग-लपेट के साफ-साफ कह देते कि वे वहां राजनीति करने नहीं आए हैं; वे राज्यपाल हैं और उसी रूप में काम करेंगे। एक बार नवलकिशोर ने मुझे बताया कि इस विषय में उनकी गांधीनगर में सोनिया से भी बातचीत हुई और नवलकिशोर ने स्पष्ट पूछा बताया, 'मुझे यहां पर राज्यपाल बनाकर भेजा गया है; नियमानुसार काम करने के लिए या यहां की सरकार गिराने के लिए?' सोनिया के प्रत्युत्तर ने नवलकिशोर को काफी राहत दी। उस घटना के बाद नवलकिशोर ने गुजरात के कांग्रेस नेताओं को डांट-डपटकर राज्यपाल के रूप में अपनी भूमिका और कायदे से समझा दी।

नवलकिशोर को राजनीतिक वैमनस्यता के कारण अपना तैयार किया हुआ दौसा जबरन छोड़ना पड़ा.. जयपुर-दौसा में कांग्रेस की राजनीति से भी मुकाबला करना पड़ा। वे चुनावी राजनीति से विश्राम लेकर राज्यसभा में जाने की मानसिकता रखते थे, लेकिन वह अवसर नहीं मिला। वे गुजरात भेज दिए गए। वहां से लौटने के बाद आखिरी समय तक नवलकिशोर कांग्रेसी रहे, उन्हें उनकी 'इंदिराजी' का काल भी याद रहा; लेकिन नरेंद्र मोदी ने आखिर तक उन्हें सम्मान दिया और उन्होंने 'मोदीजी' को मन में बसाया।

बढ़ती उम्र, राजनीति की रपटीली राहों और स्वास्थ्य के कारण नवलकिशोर मौन होते चले गए; उनका मन शांत हो चुका था। यह मौन वाणी के आवेगों पर नियंत्रण और संकल्प शक्ति की अभिवृद्धि से जुड़ा था। यह एक महारथी की विराम वेला थी.. जैसे एक मौन महारथी आखिरी अध्याय लिख रहे थे। आखिर उन्हें भी जाना ही था, लेकिन जाते समय कितने ही दिलों को खाली और आंखों को भिगो गए।

महर्षि अरविंद कहते थे, 'केवल मैं ही अपने अतीत की बातों के विषय में, उन्हें ठीक रूप और अर्थ देते हुए कुछ बता सकता हूं। मेरी जीवनी लिखने का प्रयत्न असफल होकर रहेगा क्योंकि मेरे जीवन के विषय में कुछ भी कोई नहीं जानता; क्योंकि वह बाहरी तल पर नहीं रहा कि लोग उसे देख सकें।' नवलकिशोर पर यह बात काफी हद तक लागू होती है। चूंकि वे पूर्णत: एक राजनीतिक व्यक्ति रहे, इसलिए पत्र-पत्रिकाओं में उनका उल्लेख यदा-कदा होता रहा। विभिन्न समाचार पत्रों के अलावा इंडिया टुडे, फ्रंटलाइन जैसी पत्रिकाओं ने देश के तत्कालीन इतिवृत्त को सामने लाने में युगानुकूल भूमिका का निर्वाह किया। नवलकिशोर के बारे में लिखते समय इनका काफी सहारा मिला। नवलकिशोर की नेताओं-कार्यकर्ताओं को पत्र लिखने में भी काफी रुचि थी, लेकिन उनके लिए यह सहेजकर रखने जैसा विषय नहीं था। संयोग से उनके आखिरी दो दशकों में मेरा उनसे और राजस्थान की राजनीति से निरंतर सघन संपर्क बना रहा। यह काल नवलकिशोर के उत्थान से जुड़ा हुआ तो नहीं था, लेकिन इसी दौरान उनका संघर्षशील, लोकतांत्रिक और संवैधानिक स्वरूप मुखर होकर सामने आया।

नवलकिशोर की सक्रियता के दौरान उनसे आत्मकथा लिखने का आग्रह उनके निकट परिजनों ने किया था। नवलकिशोर का जवाब था, 'यह संभव नहीं है।' इसके उन्होंने दो कारण बताए। पहला, वे अन्य नेताओं की तरह कोई डायरी नहीं लिखते हैं, जिसके आधार पर

सिलसिलेवार ब्यौरे तैयार किए जा सकें। दूसरा कारण कहीं अधिक गंभीर था। उन्होंने कहा, 'मेरे सीने में गांधी परिवार और कांग्रेस के उतार-चढ़ाव से संबंधित कई राज दफन हैं, जिन्हें मैं बाहर नहीं ला सकता। ये ऐसे राज हैं, जिनके उजागर होने से कई लोगों की राजनीति खत्म हो सकती है। इन रहस्यों का प्रकटीकरण कांग्रेस के लिए खतरा साबित होगा। कांग्रेस ने ही मुझे सब कुछ दिया है। एक गरीब ब्राह्मण को इस पार्टी ने कहां से कहां लाकर बैठा दिया! मैं कांग्रेस के साथ दगा नहीं कर सकता। इसलिए मेरी जीवनी नहीं छप सकती।' उनके जीवन में कांग्रेस एक रंगमंच रही और उन्होंने अपने गांधीवादी पात्र को कुछ इस तरह जिया कि उसी में समा गए।

अपने से जुड़े दस्तावेजों, पत्रों, याददाश्त वगैरह का नवलकिशोर ने कोई रिकॉर्ड रखा ही नहीं। जो स्वाभाविक रूप से बचा रह गया, वह भी मुश्किल से संजोना परिवार के ही बस की बात थी। लेकिन कांग्रेस और राजस्थान का इतिहास उनके बिना पूरा भी नहीं होता। गुजरात के अनुभवों ने उनके आदर्शों को जीवंत कर दिया। इसलिए शायद वे जानते थे कि उनके बारे में लिखा जा सकता है। उन्हें यह भी आभास था कि मैं उनके बारे में लिख सकता हूं। दो दशकों के पत्रकारीय संबंधों के दौरान उन्होंने मेरा विश्वास भी किया। कभी अपनी तरफ से कुछ बताया नहीं और पूछने पर कुछ छिपाया नहीं। उनकी भावनाओं का सम्मान करते हुए पुस्तक में किसी के बारे में लिखे जाते समय आलोचनात्मक दृष्टि से बचने का पूरा प्रयास किया गया है। चूंकि इतिहास और तथ्यों का यथार्थ रखे बिना पाठकों के साथ न्याय नहीं किया जा सकता; उनका संदर्भ सहित उपयोग किया गया है।

अपनी सुदीर्घ यात्रा में नवलकिशोर ने खोने-पाने की परवाह नहीं करते हुए जो न्यायोचित समझा, वही किया। श्रीमद्भगवद्गीता का कर्मयोग उनकी प्रेरणा बना रहा।

– गोपाल शर्मा

आभार

इस पुस्तक को लिखने में प्रेरक की भूमिका वरिष्ठ पत्रकार सीताराम झालानी की है। वे वर्षों से चाहते रहे कि नवलकिशोर शर्मा की स्मृति में अभिनंदन ग्रंथ तैयार होना चाहिए। वह विषय आगे नहीं बढ़ा, लेकिन ऐसी ही एक बातचीत के दौरान अनायास मेरे मन का संकल्प बाहर आया और यह कार्य प्रारंभ हुआ। झालानी के पास नवलकिशोर के राज्यपाल रहने के दौरान भाषणों की कतरनों सहित विभिन्न विषयों की दो फाइलें थीं; प्रारंभिक रूप से उससे आधार तैयार हुआ। नवलकिशोर के बड़े पुत्र राजस्थान के शिक्षा मंत्री रहे बृजकिशोर शर्मा को इस विषय में पता चला तो वे भावुक हो उठे। उन्होंने घर पर रखे कागजात और फोटोग्राफ उपलब्ध करवाए तथा जानकारी देने के लिए लगातार तत्पर रहे। नवलकिशोर के भतीजे राजस्थान लोक सेवा आयोग के सदस्य रहे विनोदबिहारी शर्मा का 'बाबूजी' के प्रति सम्मान सर्वविदित है। वे नवलकिशोर के राजनीतिक जीवन के साक्षी भी रहे हैं। उन्होंने किसी भी विषय पर अटकी हुई राह को सुगम बनाने में सहयोग किया। राज्यपाल रहने के दौरान नवलकिशोर के विशेष कार्याधिकारी रहे बाबूलाल निर्झर ने पुरानी यादों के आधार पर स्मरणिका बनाई हुई थी; वह उनके भावनात्मक प्रेम के साथ गहरी जानकारियां लिए हुए थी। यशस्वी पत्रकार कुलदीप शर्मा से सहयोग का आग्रह किया तो उन्होंने कुछ ही दिनों में तथ्यों और उद्धरणों सहित एक पुस्तकाकार प्रारूप तैयार कर लिया, जिसमें नवलकिशोर से जुड़े कई सूक्ष्म ब्यौरे दर्ज थे। इसके बावजूद तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियों के बारे में शोधपरक जानकारी जुटाना काफी जटिल कार्य था। इसके लिए युवा प्रतिभाशाली विश्लेषक आशुतोष तिवारी कई महीनों तक मनोयोग और समर्पित भाव से जुटे रहे; राजस्थान के इतिहास और राजनीतिक गतिविधियों की अधिकृत सामग्री की गहराई में गए तथा नवलकिशोर की समकालीन राजनीति को व्याख्यायित किया। युवा पत्रकार करिश्मा वर्मा ने नवलकिशोर के परिजनों और सहयोगियों से मिलकर उनके व्यक्तिगत जीवन के बारे में गहराई से जाना। सहयोगी जोरावर सिंह की सक्रिय भूमिका महत्वपूर्ण रही। वरिष्ठ पत्रकार विनोद चतुर्वेदी, योगेश भावरा और उपेंद्र शर्मा समय-समय पर सहयोग के लिए तैयार रहे। पुस्तक प्रिंटिंग में निष्णात दीपक खोरानिया ने डिजाइनिंग और पृष्ठ संयोजन को आकार दिया। कंप्यूटर विभाग के प्रमुख रहे समर्पित व्यक्तित्व जितेंद्र शर्मा के प्रति श्रद्धावनत हूं, जो कोविड-19 में क्रूर काल का शिकार हो गए। उनकी कमी सदैव संतप्त करती रहेगी। कर्तव्यनिष्ठ और धर्मपरायण धर्मपत्नी संतोष शर्मा हमेशा कर्म के प्रति प्रेरित करती रहीं। मेरे आत्मज जिज्ञासु शर्मा और ऐश्वर्य शर्मा सदैव की भांति इस कार्य को आगे बढ़ाने में सहयोगी बने रहे। इन सबके प्रति कृतज्ञता शब्द छोटा होगा; इनका परिश्रम ही 'महारथी' का आधार है। इस दौरान मैंने सदैव महसूस किया कि 'पंडितजी' ने मुझे माध्यम के रूप में चुना है और मैं मूलत: एक पत्रकार का कर्तव्य पूरा कर रहा हूं।

विवादास्पद विषयों पर टिप्पणी

पं. नवलकिशोर शर्मा की अधिकृत डायरी या सिलसिलेवार लेखन नहीं होने से उनके राजनीतिक जीवन के पन्ने पलटना दुरूह रहा। उपलब्ध विरोधाभासी विवरणों के कारण कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों और घटनाओं के बारे में लिखा जाना चुनौती भरा था। इसलिए समकालीन टिप्पणीकारों और पत्रकारों के विवरणों को उद्धृत करते समय घटनाओं को महत्व दिया गया है और उनकी भी पूरी छानबीन करने की कोशिश की गई है। मूल साक्ष्यों में जो उल्लेख है, उसमें छेड़छाड़ नहीं की गई है। यहां तक कि नवलकिशोर की जन्मतिथि और धर्मपत्नी के नाम भी प्रचलन वाले ही ज्ञात हैं, लेकिन पाठकों तक यथासंभव जानकारी पहुंचाने के लिए उनके हस्तलिखित प्रमाण का उल्लेख आवश्यक लगा। नवलकिशोर ने जिन प्रमुख राजनेताओं के साथ काम किया, उनके समर्थन या विरोध के हिसाब से नहीं सोचा गया है; उन्होंने देश पर जिस तरह प्रभाव डाला, उसका सप्रमाण विवरण दिया गया है। कुछ भी लिखे जाने के लिए दस्तावेजी साक्ष्यों को महत्व दिया गया है। इनका उपयोग करते समय संबंधित व्यक्ति की विश्वसनीयता को भी ध्यान में रखा गया है, आलोचकों के आधार पर किसी विषय को पुष्ट करने की कोशिश नहीं की गई। पूर्व राष्ट्रपति आर. वेंकटरमन, प्रणब मुखर्जी, पूर्व प्रधानमंत्री चंद्रशेखर और मनमोहन सिंह तथा वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नवलकिशोर के बारे में प्रशंसात्मक विवरण और इंदिरा गांधी, राजीव गांधी, पी.वी. नरसिंह राव तथा सोनिया गांधी के दौर में उन्हें मिली राष्ट्रीय जिम्मदारियों को केंद्रबिंदु बनाया गया है। दौसा में स्वातंत्र्य चेतना, नवलकिशोर के जन्म के समय जन जागृति का माहौल, राजस्थान का एकीकरण, समकालीन राजनीति का प्रभाव जैसे विषयों ने मिलकर नवलकिशोर के सिद्धांतवादी, सत्याग्रही और स्वाभिमानी व्यक्तित्व को तैयार किया; उन विषयों के बारे में दिया जाना आवश्यक लगा। पाठकगण कृपा बनाए रखते हुए इसी संदर्भ में पुस्तक का अवलोकन करने का कष्ट करेंगे।

▲ धर्मपत्नी मनभरी देवी (मुन्नी देवी) के साथ नवलकिशोर शर्मा

▲ गुजरात के राजभवन में परिवार के साथ नवलकिशोर शर्मा; (पिछली पंक्ति में) कविता (पौत्री), रिंकू (पौत्री), संतोष (पुत्रवधू), बृजकिशोर (पुत्र), आशुतोष (पौत्र), पूनम (पौत्रवधू), इंदिरा (पुत्रवधू), अमितेश (पौत्री दामाद) (अग्रिम पंक्ति में) अभिषेक (पौत्र), अक्षय (प्रपौत्र), प्रिया (पौत्री), तृप्ति (पौत्री), निखिल (प्रपौत्र) और शिवकिशोर (पुत्र)

▲ नवलकिशोर शर्मा के साथ ज्येष्ठ पुत्र बृजकिशोर शर्मा

▲ 1968 के लोकसभा उपचुनाव में नामांकन प्रस्तुत करते हुए नवलकिशोर शर्मा

▶ 8 जनवरी 1982: जनसुनवाई और कार्रवाई साथ-साथ

▲ 1984 में जयपुर लोकसभा क्षेत्र के चुनाव में विजयी होने पर उत्साही समर्थकों के बीच उल्लासित नवलकिशोर शर्मा

▲ राजनीतिक मंत्रणा के क्षण: मनमोहन सिंह, नवलकिशोर शर्मा और शंकरराव चह्वाण

▲ गांधीनगर राजभवन में सोनिया गांधी के साथ नवलकिशोर शर्मा: पद की मर्यादा

▲ राज्यपाल पद की शपथ ग्रहण करते हुए; साथ में मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी और मुख्य न्यायाधीश भवानी सिंह

▲ पं. नवलकिशोर शर्मा सामुदायिक भवन का लोकार्पण : (बाएं से) सी.पी. जोशी, सचिन पायलट, अशोक गहलोत, मनमोहन सिंह, मोतीलाल वोरा, जर्नादन द्विवेदी और रामेश्वर डूडी

भाग: एक

धधक उठी चिंगारी

नवलकिशोर की पृष्ठभूमि

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के बलिदान के बाद तांत्या टोपे का दौसा आगमन हुआ। वे ग्वालियर से हाड़ौती होते हुए जयपुर की ओर बढ़े। वहां सहायता नहीं मिलने पर लालसोट होते हुए टोंक आ गए। ब्रिटिश हुकूमत उनका पीछा कर रही थी। टोंक में सेना ने टोपे का समर्थन किया। टोपे वहां से सलूंबर चले गए। सलूंबर के रावत ने उनकी सहायता की। ब्रिटिश सेना से लड़ते हुए टोपे ने स्थानीय जनता की मदद से झालरापाटन पर अधिकार किया। इसके बाद वे राजस्थान से चले गए। दिसम्बर, 1858 में वे फिर राजस्थान आए। बांसवाड़ा, सलूंबर में विजय प्राप्त करके वे दौसा और सीकर आए।

–सुरेंद्रनाथ सेन

महाभारतकालीन मत्स्य प्रदेश का अंग रहा है वर्तमान दौसा.. राजस्थान की राजधानी जयपुर से लगभग 60 किलोमीटर दूर। दौसा का नामकरण कब और किसने किया, इसके प्रामाणिक साक्ष्य नहीं मिलते। प्राचीन काल में इसे देववसा, देवांश और द्यौसा नामों से संबोधित किया जाता रहा है। यह प्रचलित धारणा है कि 'दौसा' शब्द 'द्यौ-सा' का अपभ्रंश है। 'द्यौ' का अर्थ है द्योतन करने वाली प्रादित्य की रश्मियां।[1] 'द्यौ' स्वर्ग को भी कहा गया है, इसलिए विद्वान मानते हैं कि संभवतया इस क्षेत्र का नाम द्यौ-सा (स्वर्ग जैसा) रखा गया हो, जो बोलचाल की भाषा में 'दौसा' हो गया।[2] अंतरिक्ष के लिए भी 'द्यौ' का प्रयोग हुआ है। इसलिए यह भी संभव है कि नगर की ऊंचाई इसे 'द्यौ-सा' कहे जाने में सहायक बनी हो। 19वीं सदी में मेवाड़ का इतिहास लिखने वाले महाकवि श्यामलदास ने भी इसे 'द्यौसा' ही लिखा है। इसके इतिहास के बारे में उल्लेख मिलता है, 'द्यौसा कस्बा पहाड़ के नीचे बसा हुआ है। पहाड़ पर स्थित किले में दस-पंद्रह जवान तैनात हैं। द्यौसा कस्बे में एक निशान, 200 नागा और 40 सवार हैं। एक थाना है, वहां भी कुछ जवान हैं। कस्बे से आधे मील पर रेलवे स्टेशन है।'[3]

ऐतिहासिकता, पुरातत्व और प्राकृतिक सौंदर्य के कारण दौसा के लोगों को अपनी विरासत पर गर्व है और वहां जन्म लेने पर अपने को औरों से विशेष या सौभाग्यशाली मानते हैं। सूप का आकार लिए किला, दो पहाड़ियों के बीच स्थित मेहंदीपुर बालाजी का मंदिर, एशिया महाद्वीप की सबसे पुरानी बावड़ी मानी जाने वाली आभानेरी की चांद बावड़ी दौसा क्षेत्र के मुख्य आकर्षणों में हैं। दौसा से दस किलोमीटर दूर स्थित भांडारेज महाभारतकालीन भद्रावती नगर बताया जाता है। भद्रेश्वर महादेव का प्राचीन मंदिर उसी काल का होने की मान्यता है। एक अन्य दर्शनीय स्थल आभानेरी प्राचीन नगर है, जो किसी समय निकुंभ क्षत्रियों की राजधानी था। दौसा क्षेत्र में पूर्व पाषाण काल से लेकर मध्य काल तक की महत्वपूर्ण

पुरातात्विक सामग्री खुदाई से प्राप्त हुई है। मानव सभ्यता के प्रारंभिक चरण ईसा से लगभग चार हजार वर्ष पहले इस क्षेत्र में पड़े। देवगिरि के नीचे का हिस्सा सागर कहलाता है। यह धारणा है कि पहले यहां जल भरा हुआ था और यहां के लोग पहाड़ी पर निवास करते थे; जब जल सूख गया तो लोग पहाड़ी से नीचे उतरकर मैदानी क्षेत्र में रहने लगे।[4]

1200 वर्ष पहले भी दौसा शक्तिशाली स्वरूप में आबाद था। ढूंढ़ाड़ क्षेत्र के महत्वपूर्ण स्थान के रूप में दौसा लंबे समय तक प्रतिहार शासकों के अधीन रहा। दसवीं शताब्दी में यहां बड़गूजर, मीणा और अन्य छोटे-बड़े राजवंशों की सत्ता स्थापित होने लगी। प्राचीन ऐतिहासिक उल्लेखों के अनुसार देवानीक के पुत्र ईशदेव ग्वालियर पर शासन करते थे। वे ग्वालियर का राज्य अपने भांजे को देकर अन्यत्र चले गए। उनके पुत्र सोढ़देव 22 सितम्बर, 976 को अपने पिता की जगह बरेली के नैशध में राजा हुए और यादव राजकन्या से विवाह किया, जिसके गर्भ से दुर्लभराज, दुल्लहराय या दुल्हेराय पैदा हुए। दुल्हेराय ने अपने पिता की आज्ञा से आक्रमण करके द्यौसा (अब दौसा) को जीत लिया। वहां बड़गूजर राजपूतों का शासन था, जो बड़ी संख्या में मारे गए। दुल्हेराय ने भांडारेज को भी जीता; इसी तरह मांची पर हमला किया। वहां बड़ी संख्या में मीणा निवास करते थे। इस हमले में दुल्हेराय घायल हुए। ख्यात के अनुसार अपनी कुलदेवी के वरदान से दुल्हेराय ने मीणाओं को पराजित करके मांची पर विजय प्राप्त की और वहां किला बनाकर उसका नाम रामगढ़ रखा। उन्होंने अपनी कुलदेवी जमुवाय माता का मंदिर बनवाया*।[5]

दुल्हेराय का दूसरा विवाह दौसा के निकट मोरांगढ़ के चौहान शासक राजा रालण सिंह अथवा सालार सिंह की पुत्री कुमकुदे** के साथ हुआ। कछवाहों की राजधानी आम्बेर (अब आमेर) और फिर जयपुर हो जाने के बाद भी दौसा अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का केंद्र रहा। राजा भारमल के शासनकाल में उनके भतीजे सूरजमल (सूजा) की हत्या दौसा में ही की गई थी, जिसका स्मारक दौसा में किले के मोरी दरवाजे के बाहर एक प्राचीन सूर्य मंदिर के पार्श्व में बना हुआ है। सूरजमल की प्रेतेश्वर भौमिया के नाम से दौसा और उसके आसपास के क्षेत्र में पूजा होती है। मुगल बादशाह अकबर जनवरी, 1562 में ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की जियारत करने अजमेर जाने के दौरान दौसा होकर निकला, जहां भारमल के भाई रूपसी बैरागी ने उससे भेंट की।[6]

17वीं शताब्दी तक आम्बेर रियासत में दौसा का विशिष्ट स्थान रहा। जब सवाई जय सिंह द्वितीय ने गद्दी संभाली तो उनकी रियासत में केवल तीन परगने आम्बेर, बसवा और दौसा थे। आगे चलकर उन्होंने अपनी रियासत को अभूतपूर्व विस्तार दिया।[7] जयपुर की स्थापना के बाद के काल में दौसा को निजामत का दर्जा मिला। जयपुर रियासत में कुल 11 निजामतें थीं और प्रत्येक निजामत को कई तहसीलों में बांटा गया था। दौसा निजामत में तीन तहसीलें

---

*दुल्हेराय के पुत्र कांकिल ने मीणाओं को युद्ध में पराजित करके अंबिकापुर (अब आमेर) की नींव डाली और अंबिकेश्वर महादेव का मंदिर बनवाया। वही कछवाहा कहे जाते हैं। (श्यामलदास: वीर विनोद, खंड 3, महाराणा मेवाड़ हिस्टोरिकल पब्लिकेशंस ट्रस्ट, उदयपुर, पृष्ठ 1269)

**कहीं-कहीं इस राजकुमारी का नाम सुजान कंवर भी मिलता है।

लालसोट, सिकराय और बस्वा थीं। बस्वा शेखावाटी का सबसे बड़ा ठिकाना भी था, जिसकी आमदनी कम-से-कम 70 हजार रुपए थी। इसका पांचवां हिस्सा जयपुर राज को खिराज के रूप में दिया जाता था।[8] महाराजा राम सिंह द्वितीय के शासनकाल (1835-1880) में दौसा में एक छोटी फारसी पाठशाला थी। उस काल के दस्तावेजों में रियासत की ओर से सहायता प्राप्त एक मकतब (मदरसा) और 23 पाठशालाओं में 419 विद्यार्थियों के पढ़ने का उल्लेख मिलता है।[9] 1889 में जयपुर राज के अंतर्गत 25 दवाखाने थे, एक दवाखाना दौसा में था।[10] दौसा के पास भांकरी में विशेष प्रकार का पत्थर पाया जाता था, जिसकी लंबाई 30 फुट के करीब होती थी। इसका इस्तेमाल छत के काम में होता था।[11]

संत दादूदयाल के शिष्य छोटे सुंदरदास* के कारण आध्यात्मिक क्षेत्र में दौसा की पहचान बनी। संवत 1660 में दादू के देहावसान के बाद वे अपने जन्मस्थान दौसा चले आए। फिर संवत 1663 में काशी गए और वेदांत, साहित्य तथा व्याकरण आदि विषयों का 18 वर्षों तक गंभीर अध्ययन किया। फतेहपुर (शेखावाटी) में उन्होंने 12 वर्ष योगाभ्यास में बिताए। हिंदी के अतिरिक्त उन्हें संस्कृत, पंजाबी, गुजराती और फारसी आदि भाषाओं की भी अच्छी जानकारी थी। उनका 'सुंदर विलास' ललित और रोचक ग्रंथ है। ब्रजभाषा में उन्होंने भक्तियोग, दर्शन, ज्ञान, नीति और उपदेश आदि विषयों का प्रतिपादन किया। दौसा से तीन किलोमीटर की दूरी पर प्राकृतिक छटा बिखेरता एक स्थान गेटोलाव के नाम से विख्यात है। यहां संत दादूदयाल ने छोटे सुंदरदास सहित संत लाखा और नरहरि को शिष्य बनाकर दीक्षा प्रदान की थी। इसी स्थान पर दादूदयाल का मंदिर और सुंदरदास का स्मारक बना हुआ है।[12]

जयपुर राजवंश की प्राचीनतम राजधानी के रूप में ऐतिहासिक विरासत संजोए दौसा किसी भी दौर में राजनीतिक गतिविधियों से निर्लिप्त नहीं रहा। ब्रिटिश शासन की जड़ें गहरी होने के साथ ये गतिविधियां क्रांतिकारी स्वरूप में ढलती गईं। 1857 की स्वतंत्रात्मक जाग्रति से दौसा और आसपास के क्षेत्रों में स्वातंत्र्य चेतना का निरंतर प्रवाह होता रहा। उस दौरान तांत्या टोपे का दौसा आगमन हुआ। वे ग्वालियर से हाड़ौती होते हुए जयपुर की ओर बढ़े। वहां सहायता नहीं मिलने पर लालसोट होते हुए टोंक आ गए। ब्रिटिश हुकूमत उनका पीछा कर रही थी। टोंक में सेना ने टोपे का समर्थन किया। टोपे वहां से सलूंबर चले गए। सलूंबर के रावत ने उनकी सहायता की। ब्रिटिश सेना से लड़ते हुए टोपे ने स्थानीय जनता की मदद से झालरापाटन पर अधिकार किया। इसके बाद वे राजस्थान से चले गए। दिसम्बर, 1858 में वे फिर राजस्थान आए। बांसवाड़ा, सलूंबर में विजय प्राप्त करके वे दौसा और सीकर आए।[13]

टोपे ने काफी समय तक ब्रिटिश हुकूमत को चकमा दिया। एक बार उन्हें चार ब्रिटिश सेनापतियों ने अलग-अलग दिशाओं से घेर लिया, फिर भी वे बच निकले। उनके लंबे समय से सहयोगी रहे नरवर के मान सिंह ने विश्वासघात किया। टोपे को सोते हुए बंदी बना लिया

*छोटे सुंदरदास (चैत्र शुक्ल 9, संवत 1653-कार्तिक शुक्ल 8, संवत 1746) की माता का नाम सती और पिता का नाम परमानंद था। 6 वर्ष की उम्र से वे संत दादूदयाल के शिष्य बनकर उन्हीं के साथ रहने लगे। दादू उनके अद्भुत रूप को देखकर उन्हें 'सुंदर' कहने लगे। चूंकि इसी नाम के उनके एक और गुरुभाई थे, इसलिए वे 'छोटे सुंदरदास' नाम से विख्यात हुए।

गया।[14] 7 अप्रेल, 1859 को दौसा के पास परोन जंगल में वे गिरफ्तार हुए।[15] 18 अप्रेल, 1859 को उन्हें फांसी दे दी गई*।[16]

ईस्ट इंडिया कंपनी की शुरुआती नीति रियासतों में परोक्ष शासन करने की रही थी। लेकिन 1857 के संघर्ष का उग्र स्वरूप देखने के बाद ब्रिटिश हुकूमत ने रियासतों पर नियंत्रण बढ़ाने की नीति पर काम शुरू किया, जिसके परिणामस्वरूप राजा-महाराजा ब्रिटेन की महारानी के कृपापात्र प्रतिनिधि के रूप में ढलते चले गए। उस दौर में रियासतों की अधीन जनता अपने अधिकारों और विकास के लिए तड़प उठी। 19वीं सदी के अंतिम दशकों में राजपूताना में तेजी से सामाजिक संगठनों का उदय होने लगा। स्वामी दयानंद सरस्वती के स्वदेशी आंदोलन का भी गहरा प्रभाव पड़ा। यही वह समय था, जब ब्रिटिश शासित अजमेर में राष्ट्रीयता प्रधान पत्रकारिता का उदय हुआ। वह व्यापक जनजागरण का दौर था। आगे चलकर प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत होने पर ब्रिटिश हुकूमत की निगाहें राजपूताना पर टिक गईं। राजाओं ने युद्ध के दौरान आर्थिक रूप से भी ब्रिटिश हुकूमत को अपना सहयोग दिया, लेकिन इसके लिए उन्होंने अपने राजकोष को खाली नहीं किया बल्कि जनता से धन की उगाही की। पहले से ही जागीरदारों के कर्ज में डूबी जनता में इस अतिरिक्त भार के कारण कुंठा और आक्रोश बढ़ने लगा।[17]

राजपूताना का जनमानस अंग्रेजों की छत्रछाया में पनप रहे आतंक, रियासती सामंतों के कुशासन और जागीरदारों के उत्पीड़न के दुष्चक्र से मुक्ति के लिए विकल था। रियासतों की जनता स्थानीय जागीरदारों, रियासती राजा-महाराजाओं और ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ तीन मोर्चों पर एक साथ विद्रोह करने के लिए तड़प रही थी और अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एकजुट होने लगी थी। विश्वयुद्ध के दौरान हुई घटनाएं भी जनजागरण का कारण बनीं। बड़ी संख्या में युवक सेना में भर्ती होकर देश से बाहर जाकर लौटे। लोगों में शिक्षा के प्रति चेतना जागी। प्रवासी धनाढ्यों की भी भूमिका रही। उनका राष्ट्रीय नेताओं से संपर्क हुआ और उन्होंने अपने क्षेत्रों में शिक्षा के प्रसार का भी प्रयास किया। उसी दौरान राजपूताना में क्रांतिकारी आंदोलन का भी गहरा प्रभाव पड़ा। यहां के प्रबुद्धों को दिल्ली ले जाकर विप्लव केंद्र को भी पंजीकृत करने की कोशिशें हुईं। प्रतापसिंह बारहठ राजपूताना में कार्य करते और दिल्ली में शचींद्रनाथ सान्याल आगे इस काम को संभालते।[18]

इन परिस्थितियों से दौसा और आसपास के क्षेत्र में राजनीतिक चेतना जाग्रत होने लगी। छात्रों के गांधी टोपी पहनकर स्कूल जाने, राष्ट्रीय नारे लगाने और निष्कासन का दंड झेलने की घटनाएं आम हो गईं।[19] 1922 में हिंदी को राजभाषा बनाने के लिए कल्याणसिंह खाचरियावास, श्यामलाल वर्मा आदि के नेतृत्व में जयपुर में जोरदार आंदोलन हुआ। अनाज की निकासी को लेकर भी जयपुर शहर में किसानों की हड़तालें हुईं, जिनके फलस्वरूप प्रशासन को प्रजा की मांगें मंजूर करनी पड़ीं।[20] तंवरावाटी क्षेत्र के भौमियों ने नए शुल्क लगाए जाने और अपने

*फांसी से पहले तांत्या टोपे पर नाम मात्र के लिए मुकदमा चला। शिवपुरी में जहां उन्हें रखा गया, वहां अब भी जेल है। जिस छोटी-सी बैरक में टोपे जैसे महान स्वतंत्रता सेनानी को रखा गया था, वहां अब हत्या और बलात्कार के अपराधी रखे जाते हैं।

जानवर सस्ती कीमत पर बेचने के लिए दबाव बनाए जाने का सशक्त प्रतिकार किया।[21] 1924–25 में सीकर के किसानों द्वारा चलाए गए विशाल आंदोलन की चर्चा ब्रिटिश संसद तक हुई।[22]

इसी दौरान अलवर में नृशंस हत्याकांड हुआ। ब्रिटिश शासन और अलवर महाराजा की ओर से लगाए गए दोहरे लगान को लेकर चल रहे आंदोलन के तहत रियासत के विभिन्न हिस्सों के किसान 14 मई, 1925 को बानसूर कस्बे के पास नीमूचाणा गांव में एकत्र हुए। 500 की संख्या में तैनात पुलिस और सेना बल ने गांव को चारों ओर से घेरकर बाहर निकलने के सभी रास्ते बंद कर दिए। महाराजा के खिलाफ संघर्ष की आगामी योजना बना रहे किसानों पर बिना चेतावनी दिए अंधाधुंध गोलीबारी शुरू कर दी गई। इसके साथ ही, सिपाहियों ने गांव को आग के हवाले कर दिया। थोड़ी ही देर में हर तरफ आग की लपटें थीं और मर रहे लोगों की हृदय विदारक चीत्कार गूंज रही थी। सरकारी जांच में इस घटनाक्रम की वीभत्सता को कम बताकर पेश किया गया, लेकिन राजस्थान सेवा संघ द्वारा करवाई गई जांच से खुलासा हुआ कि 42 मिनट तक चली नृशंस कार्रवाई में 95 लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया, 250 से अधिक लोग घायल हुए, 353 घर राख हो गए, 71 पशु जिंदा जल गए और 50 हजार से 1 लाख रुपए के बीच संपत्ति का नुकसान हुआ।[23] गांधी ने 'नवजीवन' में 'अलवर हत्याकांड' शीर्षक से इस घटना का उल्लेख किया।[24] उन्होंने स्पष्ट कहा, 'अब तक जो बातें प्रकाशित हुई हैं, यदि वे सच हैं तो उन्हें घोरतम डायरशाही ही समझना चाहिए।'[25]

संदर्भ सूची

1. दयानंद यजुर्वेदभाष्यभास्कर, खंड 1, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1973, पृष्ठ 81
2. महामहोपाध्याय कलानाथ शास्त्रीः साक्षात्कार, 27 अक्टूबर, 2021
3. श्यामलदासः वीर विनोद, खंड 3, महाराणा मेवाड़ हिस्टोरिकल पब्लिकेशंस ट्रस्ट, उदयपुर, 2007, पृष्ठ 1257
4. डॉ. मोहनलाल गुप्तः जयपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2020, पृष्ठ 212–213
5. श्यामलदासः वीर विनोद, खंड 3, महाराणा मेवाड़ हिस्टोरिकल पब्लिकेशंस ट्रस्ट, उदयपुर, 2007, पृष्ठ, पृष्ठ 1268–1269
6. डॉ. मोहनलाल गुप्त : जयपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2020, पृष्ठ 212–214
7. डी.के. टकनेतः जयपुर–जेम ऑफ इंडिया, आईआईएमई, जयपुर, 2016, पृष्ठ 53
8. श्यामलदासः वीर विनोद, खंड 3, महाराणा मेवाड़ हिस्टोरिकल पब्लिकेशंस ट्रस्ट, उदयपुर, 2007, पृष्ठ 1339–1340
9. वही, पृष्ठ 1335–1336
10. वही, पृष्ठ 1326
11. वही, पृष्ठ 1247–1248
12. डॉ. मोहनलाल गुप्तः जयपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2020, पृष्ठ 216
13. सुरेन्द्रनाथ सेनः अठारह सौ सत्तावन, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 446
14. फर्डिनेंड माउंटः टियर्स ऑफ द राजाज, साइमन एंड शुस्टर, लंदन, 2015, पृष्ठ 538
15. श्यामलदासः वीर विनोद, खंड 3, महाराणा मेवाड़ हिस्टोरिकल पब्लिकेशंस ट्रस्ट, उदयपुर, 2007, पृष्ठ 1258
16. फर्डिनेंड माउंटः टियर्स ऑफ द राजाज, साइमन एंड शुस्टर, लंदन, 2015, पृष्ठ 538
17. गोपाल शर्माः गांधी जयपुर सत्याग्रह, महानगर प्रकाशन, जयपुर, 2020, पृष्ठ 191–192
18. शचींद्रनाथ सान्यालः बंदी जीवन, आत्माराम एंड सन्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 132
19. टीकाराम पालीवाल स्मृति ग्रंथ, पालीवाल जनहितकारी ट्रस्ट, जयपुर, 2001, पृष्ठ 2
20. सुमनेश जोशीः राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, ग्रंथागार, जयपुर, पृष्ठ 548
21. डॉ. राम पांडेयः पीपल्स मूवमेंट इन राजस्थान, खंड 1, शोधक, जयपुर, 1982, पृष्ठ 60–61

22. के.एस. सक्सेनाः द पॉलिटिकल मूवमेंट्स एंड अवेकनिंग इन राजस्थान, एस. चंद एंड कंपनी, नई दिल्ली, 1971, पृष्ठ 124–125
23. राजेश कुमारः पीजेंट अनरेस्ट एंड रिप्रेशन–अ मसैकर इन नीमूचाणा अलवर इन मे 1925, प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, खंड 73, इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 796–797
24. पांचवें पुत्र को बापू के आशीर्वाद, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1953, पृष्ठ 515
25. यंग इंडिया, 2 जुलाई, 1925

विप्लवी बचपन

नवलकिशोर शर्मा उन लोगों में से नहीं थे, जिन्होंने गरीबी और गर्दिश की दास्तानें केवल उपन्यासों में ही पढ़ी हों अथवा फिल्मों में देखी हों। गर्दिश और गरीबी तो उन्होंने अपने घर के दरो-दीवार और उसके इर्द-गिर्द से लेकर गांव-गांव और गली-मोहल्लों में देखी और भोगी थी। जब वे तीसरी कक्षा के छात्र थे, तभी उनके पिता का साया सिर से उठ गया और चंद वर्षों बाद ही मातृ सुख से भी उन्हें वंचित होना पड़ा। वे जीवन में जो कुछ भी बने, वह उनके कठोर परिश्रम, मिलनसारिता, सीखने की भावना और कुछ कर गुजरने की उत्कट अभिलाषा का ही परिणाम था।

–सीताराम झालानी

वह रियासती जनता के लिए उद्वेलन और जागरण का शुरुआती दौर था। उस दौरान 5 जुलाई, 1925* को दौसा के एक सामान्य ब्राह्मण अध्यापक परिवार में नवलकिशोर शर्मा का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम मूलचंद शर्मा और माता का नाम सुंदरी देवी था। वे अपने माता-पिता की पांच संतानों में चौथे थे। दो बड़े भाई कन्हैयालाल और राधावल्लभ थे। एक बहन का नाम मोती था, जो नवलकिशोर से बड़ी थीं; दूसरी बहन बिरदी उनसे छोटी थीं। मूलचंद शर्मा दौसा के ही स्थाई निवासी रहे, हालांकि उनके पूर्वज करौली से आए थे। सुंदरी देवी ग्राम जौण मिश्रों की ढाणी की थीं। मूलचंद अपने पिता रामचंद्र के इकलौते पुत्र थे, जबकि सुंदरी देवी का परिवार काफी बड़ा था। वे सात भाइयों के बीच इकलौती बहन थीं और नवलकिशोर का ननिहाल भरा-पूरा परिवार था। नवलकिशोर के जन्म के समय दौसा एक बड़े गांव का रूप लिए था। ऐतिहासिक रूप से समृद्ध होने के बावजूद शिक्षा-स्वास्थ्य आदि की आधुनिक सुविधाएं उपलब्ध नहीं थीं। वहां मिडिल स्कूल तक की ही शिक्षा उपलब्ध थी। गांव में उस समय लोगों का रहन-सहन काफी साधारण था और जीवन यापन का मुख्य साधन खेती हुआ करता था। दौसा में उस समय कोई बड़ा व्यवसाय नहीं था, हालांकि अनाज मंडी तब भी हुआ करती थी।[1] दौसा की भूमि धन-धान्यपूर्ण थी**। लेकिन जागीरदारी प्रथा

*नवलकिशोर ने अपने जन्म की तारीख 13 जून, 1925 लिखी है, लेकिन आगे चलकर सभी रिकॉर्डों में और सार्वजनिक रूप से 5 जुलाई, 1925 को ही मान्यता मिली हुई है। (नवलकिशोर शर्मा: विधानसभा परिचय ग्रंथ के लिए प्रेषित विवरण, 16 जुलाई, 1968)

**10 सितम्बर, 1924 को दौसा में 424.9 मिमी वर्षा हुई, जो दशकों तक जयपुर जिले में 24 घंटे के भीतर सर्वाधिक वर्षा का रिकॉर्ड रहा। (सावित्री गुप्ता: राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, जयपुर, जिला गजट निदेशालय, राजस्थान सरकार, पृष्ठ 17)

के कारण इसका भी भरपूर लाभ किसानों को नहीं मिल पाता था। इस अभावपूर्ण पृष्ठभूमि में नवलकिशोर का लालन-पालन शुरू हुआ।

नवलकिशोर का बचपन जिस परिवेश में बीता, वह हर दृष्टि से समाज में हाशिए पर था। उनका परिवार पहाड़ी के नीचे बसे पुरु मोहल्ले के एक कच्चे मकान में रहता था। घर-परिवार का माहौल बेहद सादा था और खान-पान भी साधारण था। पिता पेशे से अध्यापक थे और गणित के विशेषज्ञ थे। उन्हें मुश्किल से पांच-सात रुपए महीना मेहनताना मिलता था।[2] नवलकिशोर के शब्दों में, 'मेरे पिता तत्कालीन समय के प्रमुख अध्यापक थे, जिनके संस्कार और सादगी का असर मेरे बाल्य जीवन पर पड़ा।'[3] घर के बाहर भी उन्होंने अपने गांव के लोगों को अभाव में ही जीते देखा। उस जमाने की गरीबी का यह आलम था कि लोगों के पास अगर जूतियां होती थीं तो वे कभी-कभार ही पहनते और अक्सर उन्हें हाथ में लेकर चला करते थे ताकि जूतियां घिस नहीं जाएं। अंगरखी को बारात जैसे विशेष अवसरों पर ही पहना जाता और घर आते ही उतार दिया जाता।[4]

परिवार में दाल-रोटी ही रोजमर्रा का भोजन था। रोटियां भी ज्वार, मक्का, जौ, बाजरा की होती थीं। गेहूं की रोटी और आलू की सब्जी तो 56 भोग की थाली जैसी थी, जो वर्ष में मुश्किल से तीन-चार बार ही बनती। इन परिस्थितियों ने नवलकिशोर के व्यक्तित्व में मितव्ययता को बढ़ावा दिया। जब वे बहुत छोटे थे तो खाना पसंद नहीं आने पर कभी फेंक भी देते, लेकिन जल्दी ही हालात को समझने लगे। कम उम्र से ही उन्होंने थोड़े में संतोष करना सीख लिया। अभाव के उन दिनों में आलू की सब्जी ही नवलकिशोर के लिए 'गीड़ फल'(स्थानीय भाषा में बहुत अनमोल) हुआ करती थी। वे इसे बहुत रुचि से खाते। उन्हें चूल्हे के अंदर गोबर के कंडे की भोभल (राख) में सिंके हुए आलू में मिर्ची-नमक मिलाकर बनाया जाने वाला भर्ता भी बहुत पसंद था। मां के हाथ की बनी बाजरे की खिचड़ी उन्हें काफी स्वादिष्ट लगती थी, जो बाजरे को अच्छी तरह कूटकर बनाई जाती और उसे घोंटकर खाने का अलग आनंद था। बचपन से नवलकिशोर की खेल में रुचि रही। उन्हें वॉलीबॉल खेलना पसंद था। उनका कद तो सामान्य था, लेकिन शरीर सुडौल और फुर्तीला। वे कबड्डी के चपल खिलाड़ी थे। उन्हें तैराकी का बहुत शौक था। घरवाले बच्चों को तालाब के नजदीक जाने से रोका करते थे, इसलिए नवलकिशोर बड़ों की नजर से छिपकर दौसा के मंगलनाथ मंदिर के पास पहाड़ी पर बने टांके में तैरने जाया करते थे।[5]

गरीबी और अभाव को नवलकिशोर ने अपने घर से लेकर गली-गली और गांव में देखा-भोगा। परिवार में शिक्षा का माहौल होने से उनकी बौद्धिक क्षमता का तेजी से विकास हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल में हुई। पढ़ाई में वे शुरू से मेधावी रहे और शिक्षकों तथा परिजनों को उनमें व्यापक संभावनाएं दिखीं। वे अपने से आगे की कक्षाओं की पढ़ाई भी साथ-साथ किया करते थे। जब वे तीसरी कक्षा में थे तो पिता का साया उठ गया और कुछ वर्षों बाद मां की ममता से वंचित हो गए। यहां से उनके जीवन का जटिल संघर्ष शुरू हुआ। उन वर्षों में ठिकानेदारों और जागीरदारों के अत्याचार बढ़ते गए। रियासतों में

किसानों द्वारा विभिन्न आंदोलन चलाए जा रहे थे और राष्ट्रीय स्तर पर महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश में स्वतंत्रता आंदोलन भी चल रहा था। इन सभी के कारण रियासतों की प्रजा में जागृति आई और लोगों ने संगठनात्मक रूप से आंदोलन को दिशा देना शुरू किया। साम्राज्यवाद के विरोध और स्वराज्य की आकांक्षा से ओतप्रोत वातावरण में नवलकिशोर किशोर होने लगे।

वे दिन ब्रिटिश राज के दमन की बर्बरतापूर्ण घटनाओं से भरे हुए थे। इसकी शुरुआत 1 सितम्बर, 1927 को हुई, जब जयपुर की गलियां देशभक्ति के नारों से गूंज उठीं। अनुचित करों, दमनकारी कानूनों और राजतंत्रीय व्यवस्था का दंश चुपचाप झेलती आ रही जनता का अचानक सड़कों पर निकल आना एक ऐसी अघोषित क्रांति का संकेत था, जो लोगों के मन में दबी हुई थी। इस प्रदर्शन की सूचना मिलते ही पुलिस वहां पहुंच गई और निहत्थे लोगों पर गोलियां चलानी शुरू कर दी। इस बर्बरतापूर्ण कार्रवाई में एक व्यक्ति की मौत हो गई और 37 लोग घायल हुए। गोलीबारी के कारण मची भगदड़ में पांच पुलिसवालों को भी गंभीर चोटें आईं। अगले दिन शाम साढ़े पांच बजे एक जनसभा आयोजित हुई, जिसमें पुलिस की भर्त्सना करते हुए कुल 13 प्रस्ताव पारित किए गए। इनमें घटना की निष्पक्ष जांच करवाने और बेहतर शासन व्यवस्था स्थापित करने की मांग की गई। इसके बाद पूरे शहर में संपूर्ण हड़ताल की घोषणा कर दी गई। प्रशासन की ओर से लोगों को आश्वासन दिया गया कि रेजिडेंट के द्वारा घटना की जांच करवाई जाएगी। इसके बाद हड़ताल वापस ली गई।[6]

रामकरण का राजनीतिक प्रभाव

दिसम्बर, 1927 में अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य ब्रिटिश भारत की तरह रियासतों को भी राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ना और वहां के राजाओं की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन स्थापित करना था।[7] सशस्त्र आंदोलन के राष्ट्रीय स्तर के सूत्रधारों में शामिल अर्जुनलाल सेठी की जन्मस्थली होते हुए भी जयपुर रियासत में एक स्थाई संगठन की कमी महसूस की जा रही थी। जयपुर के राजनीतिक कार्यकर्ताओं के सामने एक बड़ी चुनौती यह भी थी कि उनका सीधा मुकाबला ब्रिटिश हुकूमत से हो रहा था। महाराजा माधो सिंह द्वितीय के देहांत के बाद से उनके उत्तराधिकारी मान सिंह द्वितीय के अवयस्क होने के कारण शासन की बागडोर रेजीडेंट के जरिए ब्रिटिश हुकूमत के पास थी। जैसे ही मान सिंह को शासन सौंपे जाने की तैयारी शुरू हुई, उत्तरदायी शासन की मांग के लिए संगठन बनाने की कोशिशें भी तेज होने लगीं। सेठी के प्रिय शिष्य कर्पूरचंद पाटनी*

*कर्पूरचंद पाटनी का जन्म जयपुर के एक प्रतिष्ठित जैन घराने में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा अर्जुनलाल सेठी के वर्धमान जैन विद्यालय में हुई थी। युवावस्था से ही वे स्वतंत्र जीविकोपार्जन करते हुए समाजसेवा के कार्यों में लग गए। उनके मार्गदर्शन में पद्मावती पुस्तकालय, वीर सेवक मंडल, समाज सुधारक मंडल, हिन्दू अनाथाश्रम, कन्या शिक्षा प्रचारिणी समिति आदि संस्थाओं का गठन हुआ। जमनालाल बजाज की देखरेख में पाटनी ने राजपूताना और मध्य भारत में खादी का काम संभाला और साथ में हरिजन सेवा का काम भी करते रहे। उन्होंने जैन जगत, समाज-सुधारक आदि पत्रों का संपादन भी किया। 1931 में अनाज पर कर लगाने के विरोध में जयपुर प्रशासन के खिलाफ आंदोलन की शुरुआत हुई, जिसमें उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके साथ ही पाटनी का प्रत्यक्ष राजनीति में आगमन हुआ। (सुमनेश जोशी: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, ग्रंथागार, जयपुर, पृष्ठ 552)

अग्रणी भूमिका में थे। यद्यपि सेठी ने जयपुर में क्रांति के बीज बो दिए थे, लेकिन उनके अजमेर** को अपना घर बना लेने से जयपुर में राजनीतिक गतिविधियां ठंडी पड़ गईं। पाटनी ने 1931 में जयपुर राज्य प्रजामंडल का गठन किया।[8]

9 वर्षों तक कौंसिल ऑफ रीजेंसी की देखरेख में प्रशासन की बारीकियां सीखने और ब्रिटिश पद्धति के अनुसार शिक्षा ग्रहण करने के बाद 14 मार्च, 1931 को मान सिंह ने महाराजा के सारे अधिकारों के साथ जयपुर की गद्दी संभाली।[9] 5 अप्रेल को राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने मोतीलाल दिवस का आयोजन किया। यह कार्यक्रम भील नेता मोतीलाल तेजावत की रिहाई की मांग करने के लिए था, जो मुकदमा चलाए बिना लगभग दो वर्षों से बंदी बनाकर रखे गए थे। जयपुर पुलिस ने तुरंत दमनकारी कदम उठाया। कार्यक्रम में शामिल खादी भंडार के गुलाबचंद चौधरी, कुंदन लाल और किशोर सिंह सहित अनेक कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार करके कठोर दंड दिया गया।[10] इस दमन से जयपुर में आतंक का वातावरण उत्पन्न हो गया और आने वाले वर्षों में राजनीतिक गतिविधियां लगभग समाप्त हो गईं।[11] इसके कारण पाटनी को आवश्यक जनसहयोग नहीं मिला और काफी समय तक उनकी संस्था निर्जीव रही।[12]

उसी दौरान ब्रिटिश हुकूमत और जयपुर राज के विरुद्ध विद्रोह के मिले-जुले भाव के बीच दौसा के एक अध्यापक आदर्श के रूप में उभरे। वे उग्रवादी नहीं थे, लेकिन उदारवादी भी नहीं थे। सादगी इतनी कि प्रारंभिक काल में सिले हुए कपड़े नहीं पहनते थे और धोती के ऊपर केवल चादर ओढ़ते थे। पंचवटी में वे गीता के प्रवचन का कार्यक्रम चलाते। गीता के संदेश 'कर्म' को प्रचारित करते हुए जनता में स्वराज्य का शंखनाद करना उनके कार्यक्रमों में शामिल था। धार्मिक प्रवृत्तियों को भी उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन का भाग बना दिया। गरीबों, दुखियों और किसानों के हितैषी थे तथा उनके सुधारात्मक, रचनात्मक और संगठनात्मक कार्यों के पीछे उनकी सांस्कृतिक चेतना थी। उनका संघर्षमय जीवन दमन चक्रों से जूझते हुए देश सेवा के लिए मर मिटने की अमिट छाप छोड़ जाता था। वे थे दौसा के अध्यापक रामकरण जोशी**।

---

*अजमेर में कांग्रेस के दो गुट सक्रिय थे। एक तरफ जमनालाल बजाज, हरिभाऊ उपाध्याय और नृसिंहदास अग्रवाल (बाबाजी) थे; और दूसरी तरफ, अर्जुनलाल सेठी, चंदूलाल भार्गव, सिरेमल दुग्गड़ और मौलाना अब्दुल कादिर वगैरह थे। 1928 में कांग्रेस कमेटी के नेतृत्व के प्रश्न पर मतभेद पैदा हो गए। कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष पद के लिए हुए चुनाव में अर्जुनलाल सेठी को जमनालाल बजाज, नृसिंहदास अग्रवाल और पंडित जियालाल ने विरोधियों को खादी वस्त्र और रुपए बांटकर अनैतिक तरीकों से परास्त करवा दिया। गुजरात से आए हरिभाऊ उपाध्याय को कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष चुना गया। यहीं से कांग्रेस पर गांधीवादियों का प्रभाव स्थापित हो गया। सेठी पुनः राजनीति में सक्रिय नहीं हो सके। (डॉ. लता अग्रवाल: अजमेर में जनप्रतिरोध, अभिनव प्रकाशन, अजमर, 2013, पृष्ठ 84)

**रामकरण जोशी (2 अक्टूबर, 1916-17 जनवरी, 1983) जयपुर राज्य प्रजामंडल द्वारा शुरू किए गए 1939 और 1942 के आंदोलनों के सक्रिय नेताओं में शामिल थे। वे वर्षों तक जयपुर जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष, प्रदेश कांग्रेस कमेटी के महामंत्री और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य रहे। 1952 में आम चुनाव में सवाईमाधोपुर क्षेत्र से लोकसभा और दौसा क्षेत्र से विधानसभा के लिए एक साथ चुने गए। बाद में उन्होंने लोकसभा से त्यागपत्र दिया और राज्य की प्रथम निर्वाचित पालीवार सरकार में 24 मई, 1952 से एक नवंबर 1952 तक श्रम, स्वायत्त शासन और पंचायत मंत्री रहे। 1 नवंबर, 1952 को गठित जयनारायण व्यास मंत्रिमंडल में भी वे इन्हीं विभागों के मंत्री बने रहे। 1 नवंबर, 1956 को वे सुखाड़िया मंत्रिमंडल में चिकित्सा मंत्री नियुक्त किए गए और दूसरा आम चुनाव होने तक 10 अप्रेल, 1957 तक पद पर रहे। 1957 और 1962 के विधानसभा चुनावों में पराजय के बाद दिसंबर, 1966 में पूर्व मंत्री कुंभाराम आर्य और झालावाड़ के महाराजा हरिश्चंद्र के साथ उन्होंने कांग्रेस छोड़कर जनता पार्टी और बाद में भारतीय क्रांतिदल की सदस्यता स्वीकार कर ली। 1967 में विधानसभा और 1971 में लोकसभा का मध्यावधि चुनाव लड़ा लेकिन सफल नहीं हो सके।

सामान्य परिवार, शैक्षिक-संस्कारिक पृष्ठभूमि, समान बाल्य दुख और पिता की तरह आदर्श व्यक्तित्व के कारण रामकरण ने सहज रूप से नवलकिशोर को आकर्षित किया। जोशी स्काउट के भी शिक्षक थे और नवलकिशोर छात्रों में स्काउट किंग थे। दोनों की निकटता का यह माध्यम भी बना। नवलकिशोर ने अल्पायु में पिता को खो दिया था; रामकरण के सिर से भी पिता का साया उठा तो वे सिर्फ चार वर्ष के ही थे। माता रुक्मिणी देवी ने चरखा कातकर अपने दोनों पुत्रों हर्षनारायण और रामकरण को संस्कारित, समाजसेवी और शिक्षानुरागी बनाए रखा। स्वतंत्रता सेनानी के साथ क्रांतिमूलक विचारधारा के प्रबल समर्थक होने के कारण वे जनता के बीच 'वीर रामकरण' के नाम से विख्यात थे। अध्यापक के रूप में वे छात्रों को औपचारिक शिक्षा देने के साथ ही, उनमें राजनीतिक चेतना जगाने के लिए भी प्रयासरत रहते थे। वे किसी संगठन से सीधे तौर पर जुड़े हुए नहीं थे, लेकिन सार्वजनिक जीवन और राजनीतिक गतिविधियों के प्रति उदासीन रहना उनके स्वभाव में नहीं था। निष्कलंक और चरित्रवान रामकरण नागरिक स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे थे।

आसपास के क्षेत्रों में समान संस्कारों के युवा स्वतंत्रता आंदोलन में विभिन्न रूप से सक्रिय थे। झुंझुनूं जिले में पचेरी बड़ी के ताड़केश्वर शर्मा किसानों में अलख जगाने में लगे थे। उनके पिता ने संस्कृत पढ़ाते समय बचपन में ही देश की दासता और दुरावस्था की चर्चा की, जिससे उनके मन में ब्रिटिश सत्ता के प्रति घृणा का भाव भर गया। शर्मा शेखावाटी में सामंती शक्तियों की जुल्म-ज्यादतियों का अंत, किसानों को फसल का भरपूर लाभ और उन्हें समानता का दर्जा दिलवाना चाहते थे। इसी सोच ने उन्हें जन-जन से जोड़ दिया और वे जाट नहीं होते हुए भी जाट सभा, जाट पंचायत और किसान सभा के प्रमुख नेता बने। अपनी सूझबूझ, दूरदर्शिता, विद्वता, बौद्धिक क्षमता और लेखन सामर्थ्य से उन्होंने किसान आंदोलनों में प्राण फूंके और स्वतंत्रता का शंखनाद किया।[13] स्वतंत्रता सेनानी टीकाराम पालीवाल के भी बाल्यकाल में ही पिता का साया सिर से उठ गया। बड़े भाइयों और बहन की शिक्षा मंडावर में हुई। टीकाराम के बड़े भाई बंशीधर ने संस्कृत और आयुर्वेद का ज्ञान अर्जित किया। वे मंडावर में वैद्य थे, लेकिन मरीजों से इलाज के पैसे नहीं लेते थे। उनके इस संस्कार का असर टीकाराम पर पड़ा।[14]

जयपुर में प्रजामंडल का पुनर्गठन

स्वतंत्रता संग्राम के उस दौर में राजनीतिक परिवर्तन चाहने वाले लोगों ने जयपुर प्रजामंडल को एक बार फिर सक्रिय करने के प्रयास किए। 22 अक्टूबर, 1936 को वनस्थली में राजस्थान संघ की बैठक हुई। इस बैठक में जयपुर रियासत के भीतर कांग्रेस की गतिविधियों को बढ़ाने के लिए प्रजामंडल की स्थापना का प्रस्ताव रखा गया। इस प्रस्ताव में कहा गया कि राजपूताना की रियासतों में राज्य प्रजामंडल वैसे ही कार्य करेंगे, जैसे ब्रिटिश भारत में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी कर रही है। प्रजामंडल का मुख्य उद्देश्य रियासतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए जनता को जागरूक करके राजनीतिक आंदोलन चलाना था। जयपुर राज्य प्रजामंडल के पहले अध्यक्ष चिरंजीवलाल मिश्र और महामंत्री हीरालाल शास्त्री

बनाए गए। आगे चलकर हरिश्चंद्र शर्मा, चिरंजीलाल अग्रवाल, हंस डी. राय और लादूराम जोशी भी उनके साथ आ गए और जयपुर राज्य प्रजामंडल सक्रिय रूप से काम करने लगा।[15] प्रजामंडल ने जयपुर राज को प्रतिक्रियावादी नीति छोड़कर जनता की मांग पर ध्यान देने के लिए कहा और जनसभाओं, भाषणों तथा अखबारों से प्रतिबंध हटाने की मांग की। जयपुर राज ने प्रजामंडल की मांगों को ठुकरा दिया और उस पर नीतियां बदलने से लेकर नाम बदलने तक के लिए लगातार दबाव बनाना शुरू कर दिया।

19–20 सितम्बर, 1937 की आधी रात जवाहरलाल नेहरू जयपुर से होकर गुजरे। उनके स्वागत के लिए प्रजामंडल और आर्य समाज के लोगों के अलावा कई वकील, व्यापारी तथा छात्र जयपुर स्टेशन पर एकत्रित हुए। लोगों ने नेहरू को मालाएं पहनाईं और उनके समर्थन में नारे लगाए। प्रजामंडल के सदस्यों ने उसी शाम जौहरी बाजार में बैठक करके कमला नेहरू मेमोरियल फंड के तहत धन इकट्ठा किया था। यहां तक कि स्टेशन पहुंचने के बाद भी लोगों से चंदा मांगा जा रहा था। नेहरू के आने से पहले प्लेटफॉर्म पर दरी बिछाकर मेज-कुर्सी लगा दी गई थी ताकि लोग उन्हें व्यवस्थित तरीके से सुन सकें। यह प्रबंध प्रजामंडल के चिरंजीवलाल मिश्र, चिरंजीलाल अग्रवाल और कर्पूरचंद पाटनी द्वारा किया गया। तीनों अपने परिवारों के साथ स्टेशन पहुंचे थे। नेहरू ने प्लेटफॉर्म पर आकर भाषण दिया और कहा कि पूरा भारत एक है, जिसे बांटा नहीं जा सकता। उन्होंने लोगों से कहा कि वे सब एक साथ गुलाम बनाए गए हैं और एक साथ ही आजाद होंगे। भाषण के बाद प्रजामंडल की ओर से नेहरू को चंदे की राशि सौंपी गई और फिर वे अपने डिब्बे में चले गए। ट्रेन रवाना होने तक प्लेटफॉर्म पर खड़ी भीड़ नारे लगाती रही।[16]

फरवरी, 1938 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन गुजरात के हरिपुरा में हुआ। वहां एक प्रस्ताव पारित करके रियासतों में कांग्रेस समितियां संगठित करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया।[17] इस निर्णय से रियासती जनता के संघर्ष को आघात पहुंचा। जयपुर राज प्रजामंडल की गतिविधियों पर नजर बनाए हुए था, लेकिन उसे मान्यता देने या प्रतिबंधित करने के बारे में कोई भी स्पष्ट निर्णय नहीं ले रहा था। उस समय प्रजामंडल के पहले वार्षिक अधिवेशन की तैयारी भी चल रही थी। जनता में प्रजामंडल की बढ़ती लोकप्रियता देखकर जयपुर स्टेट कौंसिल ने 30 मार्च, 1938 को एक आदेश जारी किया, जिसमें कहा गया कि प्रशासन की अनुमति के बिना रियासत में किसी भी सार्वजनिक संस्था का गठन नहीं किया जा सकता। इस आदेश के बाद प्रजामंडल के लिए स्थिति चुनौतीपूर्ण हो गई। प्रजामंडल ने भी जयपुर कौंसिल को चुनौती देते हुए घोषणा कर दी कि 8–9 मई, 1938 को जमनालाल बजाज के नेतृत्व में जयपुर प्रजामंडल का पहला वार्षिक अधिवेशन आयोजित किया जाएगा।[18]

सरकार की तमाम अड़चनों के बावजूद प्रजामंडल का पहला अधिवेशन जयपुर के लोकतांत्रिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण अध्याय बन गया। इसमें शामिल होने के लिए कस्तूर बा और उनके पुत्र देवदास जयपुर पहुंचे। 7 मई की सुबह जब उनका आगमन हुआ, तो बजाज के नेतृत्व में एक विशाल जुलूस निकाला गया। इस जुलूस में लगभग 10 हजार

नागरिक शामिल हुए। दोपहर में कस्तूर बा ने एक प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। 8-9 मई को जमनालाल बजाज की अध्यक्षता में जयपुर प्रजामंडल का पहला अधिवेशन आयोजित हुआ। 8 मई की शाम सात बजे से लेकर रात ग्यारह बजे तक अधिवेशन का खुला सत्र चला, जिसमें 7 हजार लोगों ने टिकट खरीदकर भाग लिया।[19]

प्रजामंडल को निष्क्रिय करने के लिए जयपुर राज की कोशिशें जारी रहीं। गतिरोध की स्थिति को बदलने के लिए घनश्यामदास बिड़ला ने पहल की। उन्होंने 24 सितम्बर, 1938 को दिल्ली में एफ.एस. यंग की गांधी से मुलाकात करवाई। गांधी बिड़ला हाउस में कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक में भाग लेने आए हुए थे। उन्होंने ढाई घंटे यंग से बातचीत की। यंग ने गांधी को जयपुर की सारी स्थिति और अपनी कठिनाइयां तथा अड़चनें बताते हुए उनकी मदद मांगी। गांधी ने कहा कि जिन लोगों ने शांति के लिए अपने को स्वेच्छा से प्रशासन के हवाले कर दिया है, उन्हें रियासत में रहने देने के बजाए यदि जेल में डाल दिया जाता है तो यह नासमझी का काम होगा। उन्होंने कहा कि प्रजामंडल पर प्रतिबंध लगाने का अर्थ संकट को न्यौता देना है। इस पर यंग ने गांधी को विश्वास दिलाया कि किसी को जेल में डालने का प्रश्न ही नहीं है। गांधी ने कहा कि प्रजामंडल से जुड़े लोग उत्तरदायी शासन के लिए आंदोलन करने के अपने अधिकार को नहीं छोड़ सकते। अधिकारीगण उनकी मांग को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकते हैं, लेकिन उन्हें उस प्रवृत्ति पर रोक नहीं लगानी चाहिए, जो स्वभावत: शांतिपूर्ण है। शांति बनाए रखने के लिए सभी आवश्यक कदम बेशक उठाए जा सकते हैं।

इसके बावजूद जयपुर राज ने प्रजामंडल को निष्क्रिय करने के लिए दिसम्बर, 1938 में बजाज के जयपुर रियासत में प्रवेश पर पाबंदी लगा दी। गांधी ने फैसला किया कि बजाज को जयपुर जाकर निषेधाज्ञा का उल्लंघन करना चाहिए। उस दौरान निषेधाज्ञा का उल्लंघन करने पर 11-12 फरवरी, 1939 की रात को बजाज को गिरफ्तार कर लिया गया।[20] उसी दिन हीरालाल शास्त्री, कर्पूरचंद पाटनी, हरिश्चंद्र शर्मा, चिरंजीलाल अग्रवाल और हंस डी. राय को गिरफ्तार करके मोहनपुरा गांव में नजरबंद कर दिया गया।[21] जयपुर रियासत के ब्रिटिश प्रधानमंत्री हेनरी ब्यूचैम्प ने अहिंसक आंदोलन का जवाब मशीनगन से देने की धमकी दी और गांधी ने उसे राष्ट्रीय मुद्दा बनाकर जयपुर सत्याग्रह की बागडोर प्रत्यक्ष रूप से अपने हाथ में ले ली। रियासतों में हस्तक्षेप नहीं करने की कांग्रेस की नीति को दरकिनार करते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा:

> कांग्रेस पार्टी के पास शक्ति है। वह हाथ बांधे हुए यह सब नहीं देख सकती। जयपुर की जनता को मानसिक और नैतिक भूख से मरने के लिए नहीं छोड़ा जा सकता, विशेष रूप से उस समय, जब उसे एक मूलभूत अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और ब्रिटिश साम्राज्य इस नीति का समर्थन कर रहा है। यदि प्रधानमंत्री अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर निर्णय ले रहे हैं तो उन्हें वापस भेजने का समय आ गया है।[22]

नवलकिशोर का जीवन मंत्र

जयपुर सत्याग्रह को गांधी की ओर से मिल रहे प्रत्यक्ष समर्थन ने रियासत के आंदोलनकारी स्वभाव वाले बुद्धिजीवियों में नए सिरे से उत्साह का संचार किया। रामकरण उनमें से एक थे। 1 मार्च, 1939 को उन्होंने दौसा में वीरेंद्रसिंह चौहान के साथ विद्रोहपूर्ण भाषण दिया।[23] यहीं से वे प्रशासन की नजर में गड़ गए। इन गतिविधियों के बीच नवलकिशोर का व्यक्तित्व एक जागरूक किशोर के रूप में आकार ले रहा था। रामकरण के सान्निध्य से उनके मन में स्वराज्य की ललक पैदा हो रही थी।

12 मार्च, 1939 को आयोजित जयपुर दिवस पर पूरी रियासत में जगह-जगह हड़ताल हुई। जयपुर के आम जन सड़कों पर निकल पड़े। पुलिस ने अहिंसक सत्याग्रहियों को रोकने के लिए उनके ऊपर लाठीचार्ज किया। कुछ जगह सत्याग्रहियों को पीटा गया और गिरफ्तार कर लिया गया। लगभग 20 हजार नागरिक जयपुर के चांदपोल बाजार में इकट्ठे हुए। तिरंगी टोपी लगाए प्रजामंडल के स्वयंसेवक भीड़ की व्यवस्था कर रहे थे। प्रात: 9 बजे पहला जत्था चांदपोल दरवाजे की ओर से जुलूस के रूप में रवाना हुआ। ये सत्याग्रही ग्रामीण वेश में राष्ट्रीय और प्रजामंडल के नारे लगाते हुए आ रहे थे और जनता राष्ट्रीय नारों से इनका स्वागत कर रही थी। पुलिस ने इन्हें गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद सत्याग्रहियों के कई और जत्थे आसपास के स्थानों से आते दिखाई दिए। पुलिस ने सभी सत्याग्रहियों को गिरफ्तार कर लिया और उनको दो लारियों में बैठाकर ले गई। इनमें से ग्यारह किसानों को जयपुर सेंट्रल जेल में रखा गया।[24]

इसी दिन दोपहर में महिलाओं के सत्याग्रह का कार्यक्रम था। जौहरी बाजार में दोपहर डेढ़ बजे हजारों नागरिक एकत्रित हुए। इनकी संख्या पच्चीस हजार मानी गई। काफी तादाद में पुलिस तैनात थी। ठीक दो बजे महिलाओं का जत्था तांगों से उतरा और उपस्थित जनसमूह ने वंदेमातरम् के गगनभेदी नारों से उनका स्वागत किया। सभी महिलाएं केसरिया साड़ी पहने थीं, कुछ के साथ उनके बच्चे भी थे। 'जयप्रजा' समाचार पत्र के अनुसार, 'रियासत में विभिन्न स्थानों पर 146 लोगों को गिरफ्तार किया गया, जिनमें 14 महिलाएं शामिल थीं। ये सभी महिलाएं जयपुर शहर की रहने वाली थीं। जयपुर में रमादेवी देशपांडे के नेतृत्व में निकले सत्याग्रहियों ने गिरफ्तारी दी।'[25]

जयपुर शहर के बाहर भी कई स्थानों पर व्यापक आंदोलन हुए। हिंडौन में टीकाराम पालीवाल और चंद्रशेखर को भाषण से पहले गिरफ्तार कर लिया गया। उनकी गिरफ्तारी के बाद जनता ने टोलियां बनाकर हड़ताल करवानी शुरू कर दी। जैसे ही ये टोलियां थाने के पास पहुंचीं, पुलिस ने उनको रोकते हुए लाठीचार्ज कर दिया। इससे 200 लोग घायल हुए।[26] सवाईमाधोपुर में जुलूस निकालने के कारण प्रजामंडल के 8 प्रमुख कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। गंगापुर में जयपुर दिवस के उपलक्ष्य में प्रभातफेरी निकाली गई तो पुलिस ने नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। इनको धक्के मारते हुए जूतों, डंडों और चांटों से मारते हुए ले जाया गया। चौमूं में जनता ने तीन जत्थों में जुलूस निकाला। वहां सभा होने लगी तो

पुलिस ने शांत खड़े लोगों पर लाठीचार्ज किया। इस घटना में कई लोग घायल हुए।[27]

दौसा में रामकरण के स्कूल के छात्रों ने जयपुर दिवस के अवसर पर जुलूस निकालने का प्रयास किया तो उनकी पिटाई करवाई गई। पुलिस के इस रवैए का रामकरण ने कड़ा प्रतिरोध किया। वीरेंद्रसिंह चौहान, नारायण चतुर्वेदी, चंद्रशेखर भट्ट, इंद्रदत्त चौहान, राजेंद्र कुमार अजेय के आग्रह पर उन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ने का निश्चय किया।[28] 14 मार्च को उन्होंने इस्तीफा दे दिया। उस दिन दौसा में पूरी तरह हड़ताल रही। जिला मजिस्ट्रेट और थानेदार ने जनता को आश्वासन दिया कि पुलिस की ओर से भविष्य में इस तरह की हरकतें नहीं होंगी, तब जाकर हड़ताल खत्म की गई। शाम को रामकरण और वीरेंद्र सिंह को गिरफ्तार करके जयपुर भेज दिया गया।[29]

गिरफ्तारी से पूर्व रामकरण ने अपनी धर्मपत्नी तारादेवी से कहा कि वे अब ऐसे रास्ते पर चलने लगे हैं, जिसका गंतव्य जेल है, यातना है या फिर बलिदान। ऐसी स्थिति में घर का संपूर्ण दायित्व वे वहन नहीं कर सकेंगे और यह बात तारादेवी ने भी अच्छी तरह समझ ली। उन्होंने नवलकिशोर सहित अपने छात्रों से भी कहा, 'हो सकता है कि मेरी गिरफ्तारी हो जाए और रियासती सरकार मुझे नहीं छोड़े। ऐसी स्थिति में आजादी के लिए संघर्ष की पताका आप सबको फहरानी है। यह संघर्ष का समय ही नहीं, हमारा इम्तिहान भी है कि हम देश के प्रति कितने जागरूक और खरे हो सकते हैं। लोग गिरफ्तारियां नहीं देंगे, मरेंगे-मिटेंगे नहीं तो देश में आजादी कैसे आएगी! हमें खून देकर भी देश की आजादी हर हाल में हासिल करनी होगी।'[30] रामकरण का यह संदेश नवलकिशोर के लिए जीवन का मंत्र बन गया।

प्रशासनिक दमन के बावजूद आंदोलन जारी रहा। 15 मार्च को श्रीमाधोपुर में मालीराम ने एक जुलूस निकाला। वे प्रजामंडल के बैज लगाए हुए थे। जुलूस प्रमुख बाजारों से होता हुआ चौपड़ पर पहुंचा और वहां एक सभा के रूप में बदल गया। वहां भाषण के दौरान मालीराम और बिहारीलाल को पुलिस गिरफ्तार करके जयपुर ले गई। रींगस स्टेशन पर जनता ने उनका स्वागत किया। उसी दिन दोपहर 1 बजे पिलानी का सत्याग्रही जत्था रामदयाल छैल के नेतृत्व में झुंझुनूं से होकर पिलानी पहुंचा। चिड़ावा के कार्यकर्ताओं ने कस्टम हाउस पर उनका स्वागत किया। दलपति तथा अन्य सत्याग्रहियों ने मार्मिक भाषण दिए। सभा में लगभग 1000 व्यक्ति उपस्थित थे। बाद में सभा जुलूस के रूप में बदल गई, जो मुख्य-मुख्य मार्गों से होता हुआ झुंझुनूं की ओर रवाना हो गया। झुंझुनूं में स्वामी केशवदास दादूपंथी के नेतृत्व में आठ आदमियों का एक दल सत्याग्रह करता हुआ गिरफ्तार कर लिया गया; दो व्यक्ति जुलूस के कार्यक्रम का ऐलान करते समय पहले ही पकड़ लिए गए थे। 16 मार्च को सीकर में प्रजामंडल ने दूसरा सत्याग्रह जत्था भेजा। इसके नेता श्रीराम शर्मा थे। जत्थे में ही मदनलाल पुरोहित, मदनलाल दर्जी, मनीराम और गणेश दारोगा शामिल थे। घटना स्थल पर हजारों लोगों की भीड़ थी। जुलूस के दिखते ही लोगों ने राष्ट्रीय नारों से आकाश को गुंजा दिया। सत्याग्रहियों को पकड़ने के क्रम में पुलिस ने दूर खड़े हुए उन लोगों को भी पकड़ लिया, जो जुलूस में शामिल नहीं थे।[31]

जयपुर के जौहरी बाजार में 4 जत्थों ने सत्याग्रह किया। जत्थों का नेतृत्व कर रहे दलपतियों ने संदेश दिया, 'अहिंसा का अर्थ प्रेम है, इसलिए सत्याग्रही प्रत्येक व्यक्ति से प्रेम करता है। पुलिस के भाई हम लोगों को गिरफ्तार करके जेल ले जाते हैं, लेकिन फिर भी हम उनसे द्वेष नहीं करते, बल्कि उन्हें अपना भाई ही समझते हैं। हमारा उनके प्रति उतना ही प्रेम है, जितना अपने साथी से। हम सत्याग्रही लोग हथियारों पर भरोसा नहीं करते, बल्कि हम अपनी आंतरिक शक्ति को इतना प्रबल समझते हैं कि जिनका मुकाबला लाखों तोपें और मशीनगनें भी नहीं कर सकतीं। यह बात कहने की नहीं, बल्कि स्वयं अनुभव करने की है। जिसको सत्य और अहिंसा पर पक्का भरोसा नहीं हो, उसे सत्याग्रह में शरीक नहीं होना चाहिए।'[32]

17 मार्च को रामकरण और वीरेंद्र सिंह पर 1 मार्च को दिए गए भाषण के लिए मुकदमा दर्ज हुआ। रामकरण को 3 अप्रेल को रिहा कर दिया गया, जबकि वीरेंद्र सिंह को चार महीने के सामान्य कारावास की सजा सुनाई गई। जयपुर राज रामकरण की रिहाई नहीं चाहता था। लोक अभियोजक को उनकी रिहाई के खिलाफ अपील करने का निर्देश दिया गया। 10 अप्रेल को लोक अभियोजक ने जयपुर के प्रधानमंत्री और पुलिस महानिदेशक को रिपोर्ट भेजकर सूचित किया कि मुख्य न्यायालय में अपील दायर कर दी गई है और 1 मई को मामले की सुनवाई होगी।[33] इस प्रकरण के बाद रामकरण ने पूरी तरह विद्रोही रूप अपना लिया और राजनीति में सक्रिय हो गए।

जयपुर प्रजामंडल के विधान में निजामत, वार्ड आदि स्तरों पर समितियों के गठन का प्रावधान किया गया। प्रजामंडल की केंद्रीय कार्यसमिति में अलग-अलग स्थानों से सदस्य नियुक्त किए जाने का फैसला हुआ। पदाधिकारियों के अलावा सदस्यों की कुल संख्या 117 रखी गई; इनमें से आठ सदस्य दौसा से नियुक्त किए जाने थे।[34] 1939 में दौसा में प्रजामंडल की ओर से सभा आयोजित की गई। रामकरण ने उस दिन प्रजामंडल में सम्मिलित होकर राजनीति को अपना जीवन समर्पित करके जनसेवा का व्रत लिया।[35] तभी से नवलकिशोर देश के स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ गए।[36]

जनवरी, 1940 में जयपुर राज ने सरकारी कर्मचारियों पर राज्य संबंधी चर्चाओं में भाग लेने पर प्रतिबंध लगा दिया। प्रजामंडल ने इस दमनकारी नीति का विरोध किया और राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना की मांग की। इसके बाद पुलिस ने फरवरी, 1940 में प्रजामंडल के कार्यालय से समस्त कागजात और फाइलों को जब्त कर लिया। सरकार ने प्रजामंडल को पंजीकृत करवाने के आदेश दिए। इस घटना से जयपुर राज में राजनीतिक तनाव की स्थिति उत्पन्न हो गई। 25 मार्च, 1940 को जयपुर में प्रजामंडल के अधिवेशन में राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना की मांग की गई। यह मांग लगातार दोहराई जाती रही। उसी दौरान प्रजामंडल की कार्यकारिणी के सदस्यों में मतभेद हो जाने के कारण जयपुर प्रजामंडल दो भागों में विभाजित हो गया। हीरालाल शास्त्री प्रजामंडल के अध्यक्ष बने रहे, लेकिन चिरंजीलाल अग्रवाल के नेतृत्व में प्रजामंडल प्रगति दल नामक संस्था की स्थापना की गई।[37]

भारत छोड़ो आंदोलन में भूमिका

8-9 अगस्त, 1942 की रात 12 बजे बंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने ऐतिहासिक 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकार किया। इसे जवाहरलाल नेहरू ने प्रस्तुत किया और वल्लभभाई पटेल ने इसका समर्थन किया। मौलाना अबुल कलाम आजाद अध्यक्षता कर रहे थे। इस अवसर पर कांग्रेस के मार्गदर्शक महात्मा गांधी ने कहा कि अगर संभव हो सके तो मैं तुरंत आजादी चाहता हूं। अगर हो सके तो अगला दिन निकलने से पहले आज की रात ही में। मैं एक छोटा-सा मंत्र आपको दे रहा हूं। आप इसे दिल में लिख लीजिए और आपकी हर सांस के साथ यह मंत्र उजागर होना चाहिए.. 'करो या मरो'। अपनी आत्मा को गवाह बनाकर ईश्वर के सामने प्रतिज्ञा कीजिए कि आप जब तक आजादी प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक दम नहीं लेंगे। आजादी को प्राप्त करने में अपनी जान की भी बाजी लगाने को तैयार रहेंगे; कमजोर दिलवालों और कायरों के लिए आजादी नहीं हुआ करती।[38] उन्होंने हर भारतीय से कहा कि वह अपने को आजाद समझे।

आंदोलन शुरू करने से पहले गांधी ने प्रजामंडलों के अध्यक्षों की बंबई में बैठक बुलाई थी। वहां उन्होंने सलाह दी कि प्रत्येक प्रजामंडल अपनी रियासत के राजा को पत्र लिखकर ब्रिटिश सत्ता से संबंध तोड़ने का अनुरोध करे। यह पहला अवसर था, जब गांधी ने रियासतों की जनता से अपने ब्रिटिश क्षेत्र में सक्रिय साथियों के साथ कदम मिलाकर चलने का आह्वान किया। एक तरफ, राजपूताना के शासक द्वितीय विश्वयुद्ध में फंसी ब्रिटिश सरकार की यथासंभव सहायता के लिए तत्पर थे; दूसरी ओर, यहां की आम जनता सत्याग्रह आंदोलन शुरू करने के लिए कमर कस रही थी। 'करो या मरो' के नारे ने रियासती जनता में क्रांति की लहर का संचार कर दिया। उत्तरदायी शासन की मांग तक सीमित रहा संघर्ष राष्ट्रीय चेतना से एकाकार हो गया।[39] लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध चल रहे निर्णायक संघर्ष में जयपुर प्रजामंडल की भूमिका सवालों के घेरे में आ गई। हीरालाल शास्त्री तब इसके अध्यक्ष थे। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के बंबई सम्मेलन में उन्होंने जयपुर का प्रतिनिधित्व किया।

बंबई से लौटकर शास्त्री ने प्रजामंडल की कार्यसमिति और साधारण समिति की बैठक बुलाई। वहां प्रजामंडल ने देश की आजादी की मांग की और नेताओं की गिरफ्तारी की निंदा की। इसके साथ ही, जल्दी से जल्दी उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए कहा गया। महाराजा की ओर से प्रजामंडल को उत्तर मिला, 'महाराजा की नीति राज-काज में जनता को शामिल करने की है।' प्रजामंडल को उत्तर से संतोष हो गया। उसके सामने आंदोलन छेड़ने का कोई प्रश्न ही नहीं था। जयपुर के तत्कालीन प्रधानमंत्री मिर्जा इस्माइल* ने 14 अगस्त, 1942 को जयपुर के पॉलिटिकल एजेंट मेजर पाउल्टन को सूचित किया कि यह विश्वास

*मिर्जा इस्माइल शिया मुस्लिम थे। उनके दादा 1824 में ईरान के शीराज शहर से बंगलौर आए थे। व्यापारी के रूप में उनकी मैसूर महाराजा से नजदीकियां बढ़ीं और वे वहीं बस गए। मिर्जा का जन्म 1883 में हुआ। 1905 में रियासत की नौकरी शुरू करके वे पुलिस अधीक्षक से महाराजा के निजी सचिव के पद तक पहुंच गए। 1926 में उन्हें मैसूर का दीवान बनाया गया, वहां उन्होंने 1941 तक काम किया। 1942 में वे केवल एक वर्ष के लिए जयपुर आए थे। बाद में उन्होंने दो वर्ष और एक वर्ष के कार्यकाल विस्तार स्वीकार किए। इस तरह, वे चार वर्ष तक जयपुर के प्रधानमंत्री रहे। (मिर्जा इस्माइल: माय पब्लिक लाइफ, जॉर्ज एलेन एंड अनविन, लंदन, 1954, पृष्ठ 85)

करने के लिए अच्छे कारण हैं कि जयपुर प्रजामंडल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सहानुभूति में कोई कार्रवाई नहीं करेगा। इसके बावजूद प्रजामंडल में एक ऐसा वर्ग था, जो किसी भी कीमत पर जयपुर को कांग्रेस के अखिल भारतीय आंदोलन से अलग रखने को तैयार नहीं था। इनमें नवलकिशोर के राजनीतिक गुरु रामकरण के साथ बाबा हरिश्चंद्र, दौलतमल भंडारी और हंस डी. राय अग्रणी थे। इस गुट की तरफ से भंडारी ने 16 अगस्त, 1942 को शास्त्री से भेंट की और अपने साथियों का दृष्टिकोण रखा। शास्त्री ने 17 अगस्त की शाम को जयपुर में एक सार्वजनिक सभा में आंदोलन का श्रीगणेश करने का वादा किया। निश्चित कार्यक्रम के अनुसार जयपुर में सार्वजनिक सभा हुई, लेकिन शास्त्री ने अपने भाषण में आंदोलन की घोषणा करने के बजाए रियासत के साथ हुई समझौता वार्ता के बारे में प्रकाश डाला।[40]

राजस्थान अभिलेखागार से मिर्जा और शास्त्री के पत्र व्यवहार से संबंधित फाइल गायब है। इसके बावजूद अन्य गोपनीय फाइलों में मिर्जा, शास्त्री और घनश्यामदास बिड़ला के पत्र मौजूद हैं, जिनसे स्पष्ट है कि बिड़ला के माध्यम से शास्त्री का मिर्जा से घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गया था और मिर्जा के शास्त्री विश्वासपात्र बन गए थे*। बिड़ला ने अपने पत्रों में मिर्जा को आश्वासन दिया था कि जयपुर का वातावरण शांत रखने में शास्त्री उन्हें पूर्ण सहयोग देंगे। इन पत्रों से यह भी स्पष्ट है कि मिर्जा भारत छोड़ो आंदोलन से निबटने के संबंध में नीति बनाने में शास्त्री से परामर्श करते थे और उनके सुझावों को महत्व देते थे।[41] आंदोलन के आह्वान के बाद देश में तीव्र प्रतिरोध देखने को मिला, तोड़फोड़ की घटनाएं हुईं, गोलियां चलीं, लेकिन जयपुर में पूर्ण शांति रही। उस दौर में जयपुर के राजनीतिक हालात के बारे में न्यूयॉर्क टाइम्स के संवाददाता रॉबर्ट एल. मैथ्यूज** ने अपनी रिपोर्ट में लिखा:

> तीन दिनों के प्रवास के दौरान सभी वर्गों के लोगों से हुई चर्चा ने आश्वस्त किया है कि यहां कांग्रेस पार्टी के कार्यक्रम के प्रति गहरी सहानुभूति है, भले ही वह उग्र रूप धारण नहीं करती है। जयपुर अपने प्रधानमंत्री का धन्यवाद करते हुए विचार करता है कि अन्य जगहों के प्रशासक उनकी तरह व्यवहार क्यों नहीं करते हैं। सर मिर्जा छात्रों, मजदूरों और आंदोलनकारियों से कहते हैं, 'आप जी भरके प्रदर्शन, हड़ताल और परेड कीजिए। मैं आपको तब तक नहीं रोकूंगा, जब तक आप कांग्रेस के कार्यक्रम के अनुसार अहिंसक रहेंगे। जयपुर में कोई दमन और कोई आतंक नहीं होगा।' परिणामस्वरूप, यहां कोई हिंसा या तोड़फोड़ नहीं हुई है। पुलिस और सैनिकों ने लाठीचार्ज नहीं किया है और न ही भीड़ पर गोलियां चलाई हैं। लोगों के मन में प्रशासन के लिए किसी तरह की कड़वाहट नहीं है।[42]

---

*हीरालाल शास्त्री और जमनालाल बजाज का 1926 से संपर्क बना हुआ था। शास्त्री ने जमनालाल से मिलकर तय किया कि नौकरी छोड़कर घनश्यामदास बिड़ला के पास पिलानी जाना चाहिए। शास्त्री पिलानी से ही हरिभाऊ उपाध्याय के साथ साबरमती गए। (हीरालाल शास्त्री: प्रत्यक्षजीवनशास्त्र, अनुपम प्रकाशन मंदिर, जयपुर, 1960, पृष्ठ 34-35)

**स्पेन के गृह युद्ध की कवरेज से प्रसिद्ध हुए मैथ्यूज ने 1957 में यह खुलासा करके दुनिया को चौंका दिया था कि क्यूबा के क्रांतिकारी फिदेल कास्त्रो जीवित हैं और उन्हें मार गिराए जाने को लेकर क्यूबा के राष्ट्रपति फुल्गेंकियो बतिस्ता का दावा झूठा है।

इन हालात पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए बिड़ला ने मिर्जा को लिखा, 'आप जयपुर राज्य में शांति कायम रखने में सफल हुए हैं। निश्चय ही शास्त्री इसमें आपकी सहायता कर रहे हैं। मैं उनके निरंतर संपर्क में हूं।'[43] दूसरी ओर, शास्त्री के रवैए की जयपुर में और जयपुर से बाहर भारी आलोचना हुई। उनकी नीतियों से असहमत प्रजामंडल के गुट ने नया संगठन बनाकर आंदोलन छेड़ दिया। 14-15 सितम्बर को जयपुर के आजाद चौक में 'आजाद मोर्चा' का गठन हुआ। इस अवसर पर बाबा हरिश्चंद्र, रामकरण जोशी और दौलतमल भंडारी ने भाषण दिए और जयपुर में आंदोलन को आगे बढ़ाने का आह्वान किया। 16 सितम्बर को कॉलेज-स्कूलों में धरना दिया गया। इसी दिन रामकरण ने 20-25 कार्यकर्ताओं का जत्था लेकर युद्ध का सामान बनाने वाले कारखाने को बंद करवाया। छोटी चौपड़ पर जनसभा को संबोधित करते हुए रामकरण ने कहा, 'ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ आजादी की लड़ाई शुरू हो चुकी है। अंग्रेजों को भारत छोड़ना ही होगा। सभी लोगों को आजादी के इस आंदोलन में आहुति देनी होगी। जो वकील जेल नहीं जा सके, वे देशभक्तों के मुकदमे निःशुल्क लड़ेंगे। हम एक थे, एक हैं और एक ही रहेंगे।'[44]

आंदोलन जोर पकड़ता देखकर शास्त्री दुविधा में पड़ गए। इस बार उन्होंने साहस बटोरकर मिर्जा को अल्टीमेटम दे दिया कि वे प्रजामंडल के विधान को स्थगित करके जयपुर की जनता का आह्वान कर रहे हैं कि वह महात्मा गांधी के निर्देशानुसार आजादी के संग्राम में पूरी शक्ति के साथ जुट जाए। उन्होंने लिखा, 'भारत की जनता जिसमें जयपुर भी शामिल है, ब्रिटिश जूए को उतार फेंकने के लिए कटिबद्ध है। जबकि महाराजा चाहे स्वयं भी जूए से थक गए हों, उसे फेंककर भारत की जनता द्वारा छेड़े गए संग्राम में शामिल होने का साहस नहीं कर सकते। इन परिस्थितियों में यह अनिवार्य हो गया है कि महाराजा के विरुद्ध, जो ब्रिटिश सम्राट के एक मातहत हैं, सीधा संघर्ष शुरू किया जाए।'[45]

इस पत्र में शास्त्री का स्वर बंबई के सम्मेलन में दी गई गांधी की सलाह के अनुरूप था। अन्य रियासतों के नेताओं ने भी आंदोलन शुरू करने के पूर्व लगभग इसी प्रकार के पत्र अपनी-अपनी रियासतों के शासकों को लिखे थे। शास्त्री ने अपने इस पत्र में समझौते की किसी प्रकार की गुंजाइश नहीं छोड़ी थी। मिर्जा को दिए गए अल्टीमेटम की सार्वजनिक घोषणा शास्त्री अगले दिन 18 सितम्बर को करने वाले थे, पर वह शुभ दिन आया ही नहीं। शास्त्री का अल्टीमेटम पाते ही मिर्जा ने उन्हें वार्ता के लिए आमंत्रित किया। शास्त्री उनसे मिले और तुरंत ही एक समझौता हो गया, जिसे 'जेंटलमेंस एग्रीमेंट' का नाम दिया गया। इसके फलस्वरूप, शास्त्री ने महाराजा के विरुद्ध संघर्ष छेड़ने का विचार त्याग दिया। जेंटलमेंस एग्रीमेंट द्वारा प्रजामंडल की मुख्यत: निम्न मांगें स्वीकार कर ली गईं:

1. जयपुर राज युद्ध के लिए अंग्रेजों को आगे जन-धन की सहायता नहीं देगा।
2. प्रजामंडल को राज्य में शांतिपूर्वक युद्ध विरोधी अभियान चलाने की स्वतंत्रता होगी।
3. राज्य द्वारा जनता को उत्तरदायी शासन देने की दृष्टि से कार्यवाही जल्दी से जल्दी शुरू की जाएगी।[46]

शास्त्री के अनुसार, 'जयपुर में प्रजामंडल ने महाराजा के खिलाफ सीधी लड़ाई नहीं करने फैसला किया, वह नैतिक आधार पर था। महाराजा की ओर से जयपुर में जिस तरह ब्रिटिश विरोधी और युद्ध विरोधी आंदोलन को सहन किया गया, वह बड़े साहस की बात थी। जयपुर महाराजा और जयपुर प्रजामंडल ब्रिटिश सरकार के मुकाबले में तत्वत: एक हो गए थे, वह अपने आप में अभूतपूर्व योगदान माना जाएगा।'[47] यह ध्यान देने योग्य है कि शास्त्री द्वारा मिर्जा को दिए गए अल्टीमेटम में केवल एक मांग थी कि महाराजा ब्रिटिश सरकार से संबंध विच्छेद कर दें, लेकिन जेंटलमेंस एग्रीमेंट में जिन मांगों को स्वीकार करना बताया गया, वे अल्टीमेटम का अंग थी ही नहीं। मिर्जा एक सफल सौदागर सिद्ध हुए। वे बिना कुछ दिए ही प्रजामंडल को निष्क्रिय बनाने में कामयाब हो गए।[48] हालांकि जब ब्रिटिश हुकूमत ने जयपुर आए क्रांतिकारियों जयप्रकाश नारायण, सादिक अली, अरुणा आसफ अली, शीलभद्र याजी और मुकुंदलाल सरकार को गिरफ्तार करने के लिए मिर्जा को पत्र लिखा तो शास्त्री ने गिरफ्तारी से बचने की सलाह दी।[49] जयपुर राज ने इन नेताओं को गिरफ्तार नहीं किया। इसके बावजूद हकीकत यही थी कि मिर्जा ने जयपुर प्रजामंडल को तेजहीन बना दिया। शास्त्री इस कूटनीति को नहीं समझ सके और स्थानीय तथा स्थाई लाभ के लोभ से वे राष्ट्रीय आंदोलन की प्रबल वेगवती धारा से दूर होकर खड़े हो गए।[50]

बिड़ला को भी समर्थन देने के बदले लाभ मिला*। मिर्जा से उनका पुराना संपर्क था। जयपुर में जब बैंकों की शाखाएं खोलने की अनुमति दी गई तो बिड़ला की अध्यक्षता वाला यूनाइटेड कॉमर्शियल बैंक सबसे आगे रहा। मिर्जा के कारण ही जयपुर में नेशनल बॉल बियरिंग कंपनी की स्थापना की गई। मिर्जा की जयपुर में नियुक्ति के काफी पहले से बिड़ला अपने जन्मस्थान पिलानी के इंटरमीडिएट कॉलेज को डिग्री कॉलेज में क्रमोन्नत करना चाह रहे थे। वे सारा खर्च खुद वहन करने को तैयार थे, इसके बावजूद उन्हें जयपुर राज से अनुमति नहीं मिल रही थी। उन्होंने बंगलौर में इस संबंध में मिर्जा से चर्चा भी की थी। मिर्जा के जयपुर आने के कुछ ही समय बाद उन्हें अनुमति मिल गई। व्यावसायिक लाभ के अलावा, बिड़ला की प्रतिष्ठा भी बढ़ी। उन दिनों उन्हें प्रजामंडल का संरक्षक माना जाता था और वे राजनीतिक विभाग की नजर में चढ़े हुए थे। हालात ऐसे थे कि पिलानी के निजी दौरे में बिड़ला के यहां ठहरने पर भारत के मुख्य न्यायाधीश मॉरिस ग्वायर तक से जवाब तलब किया गया कि वे जयपुर प्रशासन की अनुमति लिए बिना वहां क्यों चले गए। कस्टम अधिकारियों द्वारा तंग किए जाने के डर से मारवाड़ी उद्योगपति जयपुर होकर गुजरने से भी बचा करते थे। मिर्जा ने इस मामले में भी पहल की। उन्होंने बिड़ला और एक अन्य जयपुर मूल के उद्योगपति बद्रीदास

*राजस्थान पर घनश्यामदास बिड़ला का प्रभाव बाद तक बना रहा। 1962 के चुनाव के समय मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया अपने साथ मथुरादास माथुर और कुंभाराम आर्य को लेकर बिड़ला के पास कलकत्ता पहुंचे। बिड़ला ने तुरंत एक प्रस्ताव रखा कि उन्हें जितना चंदा चाहिए, मिल जाएगा। उनके प्रस्ताव का ठोस रूप यह था कि एक-एक कपड़ा मिल के लाइसेंस पर ढाई लाख रुपए मिल जाएंगे। वे जितनी मिलों के लाइसेंस दिला देंगे, ढाई लाख रुपए प्रति लाइसेंस के हिसाब से रकम पहुंचा दी जाएगी। आजादी के बाद राजस्थान में लगी कुछेक कपड़ा मिलों का यही इतिहास है। (कर्पूरचंद कुलिश: चौधरी कुंभाराम आर्य स्मृति ग्रंथ, चौधरी कुंभाराम आर्य मेमोरियल ट्रस्ट, जयपुर, 1999, पृष्ठ, 330)

गोयनका को जयपुर आमंत्रित करने के लिए महाराजा को राजी किया। वे जयपुर पहुंचे और महाराजा ने उनका स्वागत किया। उसी दौर में बिड़ला, गोयनका, पोद्दार आदि घरानों को राजमहल के पास जमीनें आवंटित की गईं।[51]

आजाद मोर्चा के नेतृत्व में जयपुर में आंदोलन चलता रहा। रामकरण के शिष्य के रूप में युवा नवलकिशोर आजाद मोर्चा के नेताओं के संपर्क में थे। उन्होंने आंदोलन में सक्रिय होकर भाग लिया।[52] 21-22 सितम्बर को जयपुर में हड़तालें हुईं। जयपुर से आजादी का बिगुल बजाने के लिए दस नेताओं का जत्था गोविंदगढ़ पहुंचा। इसमें रामकरण भी शामिल थे। वहां सभा करके जुलूस निकाला गया और स्कूल बंद करवाए गए। रात को वही जत्था सीकर पहुंचा और फिर जनसभा की। दूसरे दिन भी धरना देकर हड़ताल करवा दी। फिर यह जत्था नवलगढ़ पहुंचा, जहां बृजलाल गोयनका की अध्यक्षता में जनसभा हुई। रामकरण ने सभा से ब्रिटिश सत्ता को ललकारा और आजादी की लड़ाई में भाग लेने के लिए जनता का आह्वान किया। नवलगढ़ के पोद्दार कॉलेज में भी ताले लगवाए गए, कस्बे के बाजारों को बंद करवाया गया। इस कार्य में सांवलराम और प्रहलाद राय का विशेष सहयोग रहा। वहां दो जत्थे बने। एक जत्थे का नेतृत्व रामकरण ने किया, जो फतेहपुर पहुंचा और वहां भी हड़तालें करवाईं। दूसरा जत्था मुकुंदगढ़ पहुंचा, जहां आमसभा हुई और हड़ताल भी करवाई गई। यह जत्था झुंझुनूं भी पहुंचा, जहां स्टेशन पर ही रामकरण को पुलिस के डिप्टी सुप्रिटेंडेंट द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। झुंझुनूं की सार्वजनिक सभा के कारण देशभक्त 'पाराशर', बाबा हरिश्चंद्र और दौलतमल भंडारी पर भी मुकदमे चलाए गए। इसके बावजूद आंदोलनकारियों का हौसला टूटा नहीं और आजाद मोर्चे की गतिविधियां बढ़ती चली गईं। रामकरण की प्रेरणा से नवयुवक मंडल के संगठन भी आजादी के लिए सक्रिय हो गए।[53]

नवलकिशोर का क्रांतिकारी स्वरूप

जुलूस निकालने, हड़ताल करने और युवाओं में क्रांतिकारी भावना जगाने की गतिविधियां जारी रहीं। विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञों ने अलग-अलग मोर्चे संभाले। रघुराज सिंह ने रत्नाकर भारतीय और राधेश्याम टिक्कीवाल को बम बनाना सिखाया। इन दोनों ने कुछेक जगहों पर विस्फोट करने के असफल प्रयास भी किए। गोपालदत्त वैद्य ने सरकारी संपत्ति नष्ट करने की योजनाएं बनाने के लिए गुप्त संगठन बनाया। उन्होंने नाहरगढ़ की तलहटी में एक सुरंग में विस्फोट सामग्री जुटाई, लेकिन पुलिस ने छापेमारी करके उन्हें गिरफ्तार कर लिया। नौजवानों ने सरकारी दफ्तरों में आग लगाई और महाराजा कॉलेज के दस्तावेजी रिकॉर्ड जलाकर राख कर दिए। परमेश्वरदयाल विद्यार्थी और बद्रीनारायण खूंटेटा ने भूमिगत रहते हुए ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने की मुहिम जारी रखी। कई दिनों तक जयपुर में शिक्षा संस्थाओं पर ताला लगा रहा। लड़कियों ने भी आंदोलन में हिस्सा लिया। हीरालाल शास्त्री की पत्नी रतन शास्त्री के निर्देश पर वनस्थली विद्यापीठ की छात्राएं भारत छोड़ो आंदोलन में शामिल होने के लिए दिल्ली और उत्तर प्रदेश गईं। रतन शास्त्री ने भूमिगत क्रांतिकारियों के परिवारों की भी मदद की।[54]

उस समय रामकरण द्वारा प्रारंभ किए गए साप्ताहिक 'सुराज्य' में प्रकाशित समाचार और आलेख चर्चा के विषय हुआ करते थे। इस साप्ताहिक की कविताएं राष्ट्रीयता से ओतप्रोत हुआ करतीं। विजयसिंह पथिक के अनुसार, 'जयपुर राज की जन क्रांति का सीधा संबंध रामकरण से है। वे इस क्रांति को दूर तक ले जाने के लिए छटपटा रहे हैं। वे बारूद के गोले तो नहीं दागते, लेकिन शब्दों के गोले दागते हैं जिनसे लोग मरते नहीं, जागते हैं। वे लोगों के मन को जगाना जानते हैं, चाहते हैं।'[55] इसका सीधा प्रभाव नवलकिशोर पर पड़ रहा था। उन्होंने अपने स्कूली साथियों से मिलकर बम बनाने की कोशिश की। इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली।[56] आगे चलकर आंदोलनों में उन्हें गिरफ्तार भी किया गया। कई नेता-कार्यकर्ता गिरफ्तार कर लिए गए। राजस्थान चरखा संघ के कर्मचारी और सैकड़ों अन्य नागरिकों ने आंदोलन में भाग लेकर जयपुर की बात रखी। जेंटलमेंस एग्रीमेंट के अनुसार इन कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार नहीं करना चाहिए था, लेकिन उन्हें गिरफ्तार करके समझौते का उल्लंघन किया गया।[57]

राजनीति की डगर पर

नवलकिशोर के मन में स्वातंत्र्य चेतना प्रबल हो रही थी। देश भर में प्रत्येक स्तर पर ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध संघर्ष विकराल रूप लेता जा रहा था। उस दौर में आजादी के आंदोलन से जुड़े राष्ट्रीय नेताओं में अधिकांश वकालत या पत्रकारिता की पृष्ठभूमि से आए थे। युवा नवलकिशोर का मन यह महसूस कर रहा था कि अन्याय के विरुद्ध लड़ाई में देशकाल की परिस्थितियों का ज्ञान ही प्रमुख हथियार है। उन्होंने अपनी संगठनात्मक सक्रियता के बीच पढ़ाई जारी रखी। वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल में दसवीं तक शिक्षा ग्रहण करके नवलकिशोर ने बारहवीं की शिक्षा स्थानीय गवर्मेंट स्कूल से पूरी की। वे स्कूल के होनहार और अनुशासित विद्यार्थियों में गिने जाते थे। राजनीति विज्ञान और अंग्रेजी विषय में उनकी अधिक रुचि थी। छात्र रहते हुए ही परिवार ने उनका विवाह तय कर दिया। 1944 में उनका विवाह मनभरी देवी (मुन्नी देवी) से हो गया। पांचवीं कक्षा तक पढ़ी मुन्नी देवी व्यवहारकुशल महिला थीं। वे घर में आने वाले किसी भी व्यक्ति को खाना खिलाए बिना नहीं जाने देतीं। सीमित संसाधन होते हुए भी वे दूसरों की सहायता के लिए तत्पर रहतीं*।

विवाह के बाद भी नवलकिशोर ने पढ़ाई जारी रखी। उच्च शिक्षा के लिए वे दौसा से जयपुर पहुंचे। इसी दौरान प्रजामंडल के संघर्ष के सकारात्मक परिणाम सामने आने लगे। उत्तरदायी शासन की स्थापना के प्रथम चरण में म्युनिसिपल कौंसिल के चुनाव करवाए गए। प्रजामंडल को अच्छा बहुमत मिला और देवीशंकर तिवारी कौंसिल के चेयरमैन बने।[58] 1945 में अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद का अधिवेशन उदयपुर में हुआ। मार्च, 1946 में मिर्जा इस्माइल और हीरालाल शास्त्री की बातों के परिणामस्वरूप यह निश्चय हुआ कि उत्तरदायी शासन के प्रथम चरण के रूप में राज्य सरकार में प्रजामंडल के एक प्रतिनिधि को

---

*आगे चलकर मुन्नी देवी का परमार्थी स्वभाव बढ़ता ही गया। यहां तक कि वे घर में उपलब्ध मिठाई, सब्जी आदि भी आगंतुकों और नौकरों में बांट देती थीं। (राज्यपाल के विशेष कार्याधिकारी (ओएसडी) बाबूलाल निर्झर के लिखित संस्मरण)

शामिल किया जाए। 15 मार्च, 1946 को राजपूताना के किसी भी स्टेट के प्रथम जन नेता के रूप में देवीशंकर तिवारी को मंत्री बनाया गया।[59] उसी वर्ष रामकरण ने कांग्रेस समाजवादी सम्मेलन आयोजित किया तो प्रजामंडल के अनेक मोर्चों ने जन आंदोलन शुरू कर दिए। नवलकिशोर पर इन सबका सीधा प्रभाव पड़ा। उस क्षेत्र में अनुसूचित जनजाति के जरायम पेशा कानून के खिलाफ भी आंदोलन हुआ। लाग-बाग, बेगार और भारी लगान के विरोध में भी प्रजामंडल ने अनेक जगहों पर आंदोलन किए। ऐसी सभाएं जयपुर रियासत के सैकड़ों गांवों में हुई; इनमें दौसा और वहां के इन नेताओं की महत्वपूर्ण भूमिका थी। रामकरण धोती पहने, बदन पर चादर ओढ़े और हाथ में कमंडल लिए जनसभाओं को संबोधित करते। इन आंदोलनों के कारण जागीरदारों ने लाग-बाग और बेगार तो बंद कर दी, लेकिन लगान उपज का आधा रहने दिया।[60]

इसके कारण नवलकिशोर की समाजवादी पृष्ठभूमि भी तैयार होती चली गई। लेकिन उन्होंने उस समय अधिक ध्यान पढ़ाई पर ही लगाया। 1946 में उन्होंने जयपुर के महाराजा कॉलेज से बी.ए. की डिग्री प्राप्त की। उनका मन कानून की पढ़ाई करके वकील बनने का था। इसके लिए उन्हें जयपुर से बाहर जाना पड़ता और पैसों की अधिक जरूरत होती। दोनों बड़े भाई सरकारी नौकरी में थे और पढ़ाई के लिए पूरा सहयोग करते थे, लेकिन नवलकिशोर अपनी पढ़ाई का खर्च खुद जुटाना चाहते थे। इसी दौरान दौसा से लगभग 200 किलोमीटर दूर नवलगढ़ के एक स्कूल में अध्यापक की भर्ती निकली। नवलकिशोर ने ऐसे ही एक कागज पर लिखकर आवेदन भेज दिया और वह कागज भी बरसात में कुछ गीला हो गया था। लेकिन सौभाग्य से उनकी नियुक्ति का पत्र आ गया। जब वे पढ़ाने पहुंचे तो कम उम्र के कारण साथी अध्यापक उनका मजाक बनाते थे। वहां के बंगाली प्रधानाध्यापक ने उन्हें अनुशासनहीन छात्रों की कक्षा में पढ़ाने भेजा। नवलकिशोर ने जैसे ही अंग्रेजी पढ़ाना शुरू किया, उनके प्रभाव से विद्यार्थी अनुशासन मानने लग गए। अध्यापक के रूप में नवलकिशोर को 80 रूपए प्रतिमाह मिलते थे। इसी राशि में से उन्होंने अपनी वकालत की पढ़ाई का खर्च बचाना शुरू किया।[61] आठ महीने तक अध्यापक रहने के बाद वे वकालत पढ़ने आगरा चले गए। उस समय कानून की किताबें सिर्फ अंग्रेजी में होती थीं। नवलकिशोर की अंग्रेजी बचपन से ही अच्छी थी। अंग्रेजी में और महारत हासिल करने के लिए उन्होंने पुस्तकालय में ज्यादा से ज्यादा समय बिताया। उनके मन में यह विश्वास था कि वे एक कामयाब वकील बनेंगे। उन्होंने यह जान लिया था कि वकालत के लिए स्मरणशक्ति और वाक् चातुर्य का प्रबल होना एक अतिरिक्त गुण है। उन्हें ये गुण ईश्वरीय देन थे, जो बड़े सहयोगी बने।[62]

उस दौरान रियासती जनता में शासक वर्ग के प्रति असंतोष बढ़ता गया और एक स्वत: स्फूर्त संघर्ष आकार लेता हुआ पराकाष्ठा पर पहुंच गया। जयपुर राज और ब्रिटिश हुकूमत की दोहरी गुलामी से त्रस्त जनता प्रतिकार के लिए उद्यत हुई और क्रांति की यह धारा अनेक दुर्गम बीहड़ों से होती हुई अपने गंतव्य तक पहुंचने में सफल हुई। इस गौरवगाथा की परिणति 15 अगस्त, 1947 को हुई, जब सैकड़ों वर्षों की गुलामी की जंजीरों को तोड़कर भारत एक

स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उभरा और यूनियन जैक की जगह तिरंगा लहरा उठा। दिल्ली के ऐतिहासिक लाल किले की प्राचीर पर भारतीय अस्मिता के प्रतीक के रूप में पहली बार लहराया राष्ट्रीय ध्वज दौसा के खादी बुनकरों द्वारा तैयार किया गया था*।[63]

देश आजाद होने के बाद नवलकिशोर ने राजनीति में अधिक सक्रिय होना शुरू किया। इस दौरान नवलकिशोर का टीकाराम पालीवाल से घनिष्ठ संपर्क हुआ। पालीवाल 1938 में मेरठ छोड़कर हिंडौन आ गए थे। उन्होंने वहां 1939 में प्रजामंडल की ओर से नागरिक स्वतंत्रता प्राप्ति आंदोलन शुरू किया। इसके बाद वे जयपुर प्रजामंडल के प्रमुख नेताओं में शामिल रहे और 1947 में प्रजामंडल के अध्यक्ष बनाए गए। उसी वर्ष जयपुर रियासत में गैर सरकारी मंत्रिमंडल का गठन किया गया। इसमें प्रजामंडल के चार और जागीरदारों के दो प्रतिनिधि शामिल किए गए। हीरालाल शास्त्री मुख्यमंत्री, टीकाराम पालीवाल राजस्व मंत्री, देवीशंकर तिवारी शिक्षा मंत्री, दौलतमल भंडारी विकास मंत्री, ठाकुर कुशल सिंह गीजगढ़ सार्वजनिक निर्माण मंत्री और जनरल अमर सिंह गृह मंत्री नियुक्त किए गए। वी.टी. कृष्णमाचारी को दीवान का पद दिया गया।[64]

1947-48 के दौरान बांदीकुई तहसील के धनावड़ गांव के किसान सम्मेलन में टीकाराम पालीवाल के साथ नवलकिशोर शामिल हुए। रात 12 बजे सम्मेलन समाप्त हुआ और उसके बाद भोजन करके वे दौसा के लिए रवाना हुए, वे जीपों में सवार थे। धनावड़ उनके लिए नई जगह नहीं थी लेकिन वहां से दौसा के लिए सड़क बनी हुई नहीं थी। गाड़ियों के निशान देखकर ही जाना पड़ता था। इसलिए रास्ता भूल गए। बड़ी मुश्किल से सुबह 5 बजे तक आगरा रोड पर सीतारामजी के मंदिर पहुंच पाए। चार घंटे भटकते रहने के बावजूद पालीवाल ने धैर्य नहीं खोया। रास्ता भूलने पर कार्यकर्ताओं पर थोड़ी नाराजगी भी व्यक्त नहीं की। नवलकिशोर सहित अन्य कार्यकर्ता अपने को दोषी मान रहे थे। उन्होंने पालीवाल से रास्ता भूलने के लिए क्षमा मांगी तो पालीवाल ने कहा, 'कभी-कभी रास्ता भूलना तो ठीक रहता है। राजनीति में भी यह होता है, लेकिन रास्ता भूलने पर आदमी सही रास्ते पर आ जाए तो यह बड़ी उपलब्धि होती है।' यह बात सहज ढंग से कही गई थी, लेकिन इस बात ने नवलकिशोर को काफी प्रभावित किया और पालीवाल के नजदीक लाने का काम किया।[65]

आम तौर पर माना जाता था कि पालीवाल के जागीरदारों से अच्छे संबंध हैं। हिंडौन के पास पदमपुरा ठिकाने के ठाकुर से भी इनके व्यक्तिगत संबंध थे। सिकराय-दौसा के लाखा-बहरावंडा के किसानों पर पदमपुरा के ठाकुर ने जुल्म ढाने शुरू किए। स्थानीय कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने रामस्वरूप मिश्र के नेतृत्व में इसका विरोध किया। जागीरदार के लोगों ने

---

*महात्मा गांधी की प्रेरणा से स्थापित अखिल भारतीय चरखा संघ का क्षेत्रीय मुख्यालय जयपुर के पास गोविंदगढ़ में था। इसकी एक इकाई दौसा तहसील के आलूदा गांव में बनाई गई। गांधी ने भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान आलूदा में बना तिरंगा झंडा फहराया था। आजादी के कुछ समय पहले उन्होंने आलूदा इकाई से एक झंडा दिल्ली भेजने के लिए कहा। तीन अन्य राज्यों के केंद्रों ने भी खादी से बना झंडा भेजा, लेकिन अंततः आलूदा के झंडे को लाल किले पर फहराने के लिए चुना गया। (जॉयशेन जोसेफः टाइम्स ऑफ इंडिया (वेब), 20 नवम्बर, 2018) उस तिरंगे का कपड़ा आलूदा के भौंरीलाल महावर, चौथमल और नानगराम ने बुना था। (गौरव खंडेलवाल: पत्रिका (वेब), 26 जनवरी, 2018)

रामस्वरूप को पीटा और आंदोलन को कुचलने के लिए अनेक हथकंडे अपनाकर किसानों को काश्त की जमीन से बेदखल करना शुरू किया। इसके कारण आसपास में तनावपूर्ण वातावरण पैदा हो गया। नवलकिशोर सहित कांग्रेस कार्यकर्ता इस विषय में पालीवाल से मिलने जयपुर आए। उन्हें आशंका थी कि पालीवाल के जागीरदारों से अच्छे संबंध होने के कारण उनकी बात नहीं सुनी जाएगी। लेकिन पालीवाल ने तत्काल काश्तकारों को उचित संरक्षण देने के लिए अफसरों को निर्देश दिए। रामस्वरूप के मामले में भी मुकदमा दर्ज करने और कानूनसम्मत कार्रवाई करने के निर्देश हुए। इससे जागीरदार के जुल्म का अंत हुआ। नवलकिशोर के सामाजिक जीवन में पहली सफलता के रूप में यह उल्लेखनीय घटना रही।[66]

1948 में शास्त्री मंत्रिमंडल द्वारा पैदावार का एक चौथाई हिस्सा लगान में लेने का आदेश जारी हुआ तो जागीरदार तिलमिला उठे। फिर आंदोलन हुआ; नींदड़, मोरीजा, बगवाड़ा, इटावा भोपजी, भांडारेज, मोहनपुरा, लवाण और चित्तौड़ा में किसान सम्मेलन करके जन-जागृति की गई और किसानों से एक चौथाई लगान देने का आह्वान किया गया। उधर, जागीरदारों ने भी संगठित होकर हथियारबंद गिरोह बनाकर किसानों पर हमले किए, जिनमें अनेक किसान मारे गए। इसके विरोध में गांवों में जागरण यात्राएं हुईं और किसानों का आत्मबल बनाए रखने के प्रयास हुए।[67] यह नवलकिशोर की राजनीतिक सक्रियता का दौर रहा।

महात्मा गांधी की नृशंस हत्या के दिन नवलकिशोर आगरा में थे। उन्होंने काफी दूर तक पैदल चलकर ट्रेन पकड़ी और बहुत मुश्किलों से गांधी के दाह संस्कार में शामिल होने पहुंचे।[68] उसी वर्ष (1948) उन्होंने एलएलबी की डिग्री प्राप्त की और आगरा यूनिवर्सिटी में ऑर्डर ऑफ रिपोर्ट में तृतीय स्थान प्राप्त किया। हिंदी की विशारद परीक्षा भी उत्तीर्ण की। डिग्री लेकर लौटने के बाद उन्होंने दौसा में वकालत शुरू की और जल्दी ही जिले के प्रमुख वकीलों में स्थान बना लिया।[69] उसी दौरान सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में राजपूताना की रियासतों के विलय से 'राजस्थान' आकार ले रहा था।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, बुधवार, संवत् 2006 तदनुसार 30 मार्च, 1949 की प्रभात वेला में रेवती नक्षत्र, इंद्रयोग में 10 बजकर 40 मिनट पर विधिवत पूजन के साथ राजस्थान का निर्माण हुआ। पटेल ने जयपुर के ऐतिहासिक दरबार हॉल में राजस्थान का उद्घाटन किया। उन्होंने कहा, 'राजपूताना में आज नए साल का प्रारंभ है। यहां आज के दिवस साल बदलता है। शक बदलता है। यह नया वर्ष है तो आज के दिन हमें नए महा राजस्थान को पूर्ण रीति से समझ लेना चाहिए। आज अपना हृदय साफ कर ईश्वर से हमें प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमें राजस्थान के लिए योग्य राजस्थानी बनाए। राजस्थान को उठाने के लिए, राजपूतानी प्रजा की सेवा के लिए ईश्वर हमको शक्ति और वृद्धि दे। आज इस शुभ दिन हमें ईश्वर से आशीर्वाद मांगना है। मैं उम्मीद करता हूं कि आप सब मेरे साथ राजस्थान की सेवा की इस प्रतिज्ञा में, इस प्रार्थना में शरीक होंगे।'[70]

संदर्भ सूची

1. विनोदबिहारी शर्मा, नवलकिशोर शर्मा के भतीजे के संस्मरण
2. वही
3. विधानसभा परिचय ग्रंथ के लिए प्रेषित विवरण, 16 जुलाई, 1968
4. विनोदबिहारी शर्मा, नवलकिशोर शर्मा के भतीजे के संस्मरण
5. वही
6. के.एस. सक्सेना: द पॉलिटिकल मूवमेंट्स एंड अवेकनिंग इन राजस्थान, एस.चांद एंड कंपनी, नई दिल्ली, 1971, पृष्ठ 196–197
7. डॉ. विष्णुदयाल माथुर: स्टेट्स पीपल्स कांफ्रेंस–ओरिजिन एंड रोल इन राजस्थान, पब्लिशिंग स्कीम, जयपुर, 1984, पृष्ठ 28
8. बी.एल. पानगड़िया: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 51–52
9. जदुनाथ सरकार: अ हिस्ट्री ऑफ जयपुर, ओरिएंट ब्लैक स्वान, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ 360
10. के.एस. सक्सेना: द पॉलिटिकल मूवमेंट्स एंड अवेकनिंग इन राजस्थान, एस. चांद एंड कंपनी, नई दिल्ली, पृष्ठ 118
11. टीकाराम पालीवाल स्मृति ग्रंथ, पालीवाल जनहितकारी ट्रस्ट, जयपुर, 2001, पृष्ठ 182–183
12. बी.एल. पानगड़िया: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 52
13. डॉ. तारादत्त निर्विरोध: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा पं. ताड़केश्वर शर्मा, राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति, जयपुर, पृष्ठ 5
14. टीकाराम पालीवाल स्मृति ग्रंथ, पालीवाल जनहितकारी ट्रस्ट, जयपुर, 2001, पृष्ठ 22
15. वही, पृष्ठ 263
16. जयपुर महकमा खास दस्तावेज 1937, बस्ता संख्या–1, क्रम संख्या–10, फाइल संख्या–313 गोपनीय
17. डॉ. पट्टाभि सीतारामय्या: कांग्रेस का इतिहास, खंड–2, सस्ता साहित्य मंडल, 2009, पृष्ठ 80
18. टीकाराम पालीवाल स्मृति ग्रंथ, पालीवाल जनहितकारी ट्रस्ट, जयपुर, 2001, पृष्ठ 263–264
19. एम.वी. कामत: गांधी'ज कुली–लाइफ एंड टाइम्स ऑफ रामकृष्ण बजाज, अलाइड

पब्लिशर्स लिमिटेड, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 41-42

20. जमनालाल बजाज की डायरी, खंड 5, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, 1978, पृष्ठ 288
21. हीरालाल शास्त्रीः प्रत्यक्षजीवनशास्त्र, खंड 1, अनुपम प्रकाशन मंदिर, जयपुर, 1970, पृष्ठ 235
22. हरिजन, 11 फरवरी, 1939
23. लोक अभियोजक की रिपोर्ट/ टीकाराम पालीवाल स्मृति ग्रंथ, पालीवाल जनहितकारी ट्रस्ट, जयपुर, 2001, पृष्ठ 336
24. गोपाल शर्माः गांधी जयपुर सत्याग्रह महानगर प्रकाशन जयपुर 2020 पृष्ठ 285
25. वही, पृष्ठ 285-286
26. टीकाराम पालीवाल स्मृति ग्रंथ, पालीवाल जनहितकारी ट्रस्ट, जयपुर, 2001, पृष्ठ 336
27. वही, पृष्ठ 333-334
28. राजेंद्र कुमार अजेयः हमारा वतन साप्ताहिक, 12 जुलाई, 2004
29. टीकाराम पालीवाल स्मृति ग्रंथ, पालीवाल जनहितकारी ट्रस्ट, जयपुर, 2001, पृष्ठ 336
30. तारादत्त निर्विरोधः राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा रामकरण जोशी, राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति, जयपुर, पृष्ठ 5
31. जय प्रजा, आगरा, 18 मार्च, 1939/ टीकाराम पालीवाल स्मृति ग्रंथ, पालीवाल जनहितकारी ट्रस्ट, जयपुर, 2001, पृष्ठ 330-331
32. वही, पृष्ठ 330-331
33. टीकाराम पालीवाल स्मृति ग्रंथ, पालीवाल जनहितकारी ट्रस्ट, जयपुर, 2001, पृष्ठ 293
34. टीकाराम पालीवाल स्मृति ग्रंथ, पालीवाल जनहितकारी ट्रस्ट, जयपुर, 2001, पृष्ठ 277-278
35. राजेंद्र कुमार अजेयः हमारा वतन साप्ताहिक, 12 जुलाई, 2004
36. नवलकिशोर शर्माः टीकाराम पालीवाल स्मृति ग्रंथ, पालीवाल जनहितकारी ट्रस्ट, जयपुर, 2001, पृष्ठ 64
37. टीकाराम पालीवाल स्मृति ग्रंथ, पालीवाल जनहितकारी ट्रस्ट, जयपुर, 2001, पृष्ठ 195
38. गोपाल शर्माः आजादी के बाद, प्रज्ञा प्रकाशन, जयपुर, 1997, पृष्ठ 39
39. विनीता परिहारः द ईको ऑफ क्विट इंडिया मूवमेंट इन द स्टेट्स ऑफ जोधपुर एंड जयपुर, प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, खंड 62, 2001, पृष्ठ 501
40. बी.एल. पानगड़ियाः राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 63-64
41. शंकरसहाय सक्सेनाः जो देश के लिए जिए, शिक्षा भारती प्रेस, बीकानेर, पृष्ठ 144
42. मिर्जा इस्माइलः माय पब्लिक लाइफ, जॉर्ज एलेन एंड अनविन, लंदन, 1954, पृष्ठ 81

43. घनश्यामदास बिड़ला का मिर्जा इस्माइल को पत्र, 11 सितम्बर, 1942/ बी.एल. पानगड़िया: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 64
44. तारादत्त निर्विरोध: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा रामकरण जोशी, राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति, जयपुर, पृष्ठ 14
45. हीरालाल शास्त्री का मिर्जा इस्माइल को पत्र, 16 सितम्बर, 1942/ बी.एल. पानगड़िया: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 64–65
46. बी.एल. पानगड़िया: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 65–66
47. हीरालाल शास्त्री: प्रत्यक्षजीवनशास्त्र, अनुपम प्रकाशन मंदिर, जयपुर, 1960, पृष्ठ 73
48. बी.एल. पानगड़िया: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 66
49. हीरालाल शास्त्री का मिर्जा इस्माइल को पत्र, 19 सितम्बर, 1942
50. शंकरसहाय सक्सेना: जो देश के लिए जिए, शिक्षा भारती प्रेस, बीकानेर, पृष्ठ 150–151
51. मिर्जा इस्माइल: माय पब्लिक लाइफ, जॉर्ज एलेन एंड अनविन, लंदन, 1954, पृष्ठ 85–86
52. नवलकिशोर शर्मा: विधानसभा परिचय ग्रंथ के लिए प्रेषित विवरण, 16 जुलाई, 1968
53. तारादत्त निर्विरोध: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा रामकरण जोशी, राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति, जयपुर, पृष्ठ 14–15
54. विनीता परिहार: द ईको ऑफ क्विट इंडिया मूवमेंट इन द स्टेट्स ऑफ जोधपुर एंड जयपुर, प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, खंड 62, 2001, पृष्ठ 504
55. तारादत्त निर्विरोध: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा रामकरण जोशी, राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति, जयपुर, पृष्ठ 25
56. जयपुर महानगर टाइम्स, 9 मई, 2003
57. बी.एल. पानगड़िया: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 66
58. डॉ. विष्णुचंद्र पाठक: राजस्थान की विभूति देवीशंकर तिवारी, एस.के. प्रिंटर्स, जयपुर, पृष्ठ 84
59. वही, पृष्ठ 107
60. तारादत्त निर्विरोध: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा रामकरण जोशी, राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति, जयपुर, पृष्ठ 17
61. विनोदबिहारी शर्मा, नवलकिशोर शर्मा के भतीजे के संस्मरण
62. वही
63. जॉयशेन जोसेफ: टाइम्स ऑफ इंडिया वेब, 20 नवम्बर, 2018

64. डॉ. विष्णुचंद्र पाठकः राजस्थान की विभूति देवीशंकर तिवारी, एस.के. प्रिंटर्स, जयपुर, पृष्ठ 107
65. नवलकिशोर शर्माः टीकाराम पालीवाल स्मृति ग्रंथ, पालीवाल जनहितकारी ट्रस्ट, जयपुर, 2001, पृष्ठ 65–67
66. वही, पृष्ठ 67–68
67. तारादत्त निर्विरोधः राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा रामकरण जोशी, राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति, जयपुर, पृष्ठ 17
68. विष्णु मोदी, पूर्व सांसद के संस्मरण
69. नवलकिशोर शर्माः विधानसभा परिचय ग्रंथ के लिए प्रेषित विवरण, 16 जुलाई, 1968
70. जयपुर महानगर टाइम्स, 3 फरवरी, 2006

विरासत में वैमनस्यता

जनता पार्टी की स्थापना जनता को सुख, शांति और समृद्धि दिलाने के लिए हुई है। यह राजस्थान की राजनीति में एक नए युग का आरंभ है क्योंकि लंबे समय से राजस्थान के कुछ कांग्रेसजन ईमानदारी से यह अनुभव कर रहे थे कि कांग्रेस का वर्तमान स्वरूप जनभावनाओं के प्रतिकूल आचरण कर रहा है। जनता के अभाव-अभियोग बढ़ जाने से आज स्थिति यहां तक पहुंच गई है कि जनता की अनिवार्य आवश्यकताओं की भी उपेक्षा होने लग गई है, जिससे जनता को भय, संकट और चिंता का मुकाबला करना पड़ रहा है।

–कुंभाराम आर्य

राजस्थान का एकीकरण होने के दौरान नवलकिशोर शर्मा दौसा में वकील के रूप में अपनी पैठ जमाने की कोशिश कर रहे थे। गरीबी का दंश भोगकर निकले युवा नवलकिशोर के सामने जहां पारिवारिक चुनौतियां थीं; वहीं, उनके मन में कुछ बड़ा और यादगार करने की जिजीविषा प्रबल हो रही थी। वे दिन अनेक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संकटों से घिरे हुए थे। बरसात की कमी से जयपुर रियासत में पानी का संकट था और अकाल जैसे हालात थे। दैनिक उपयोग के लिए गेहूं और चीनी जैसी अत्यंत आवश्यकता की चीजें राशन से मिल रही थीं।[1]

दौसा उस समय सब-डिवीजन था और लालसोट, बांदीकुई, सिकराय के क्षेत्र इसके अंतर्गत आते थे। नवलकिशोर के अधिकतर मुवक्किल ग्रामीण क्षेत्रों के निवासी होते थे। इसलिए वे गरीबों से पैसों की मांग नहीं करते; जिसने जो दिया, उसी में संतुष्ट हो जाते। उनका अपने मुवक्किलों से पारिवारिक संबंध हुआ करता था। ये लोग नवलकिशोर के पास आते तो उनके पास ही ठहरते और वहीं खाना भी खाते।[2] सुबह होने के साथ नवलकिशोर का सार्वजनिक जीवन शुरू हो जाता और देर रात तक वे फाइलों का अध्ययन करते रहते। मुकदमेबाजी और वाद-विवाद को नजदीक से देखने के कारण समाज के ताजा हालात से वे अवगत रहते और राजनीतिक पृष्ठभूमि उनके परामर्श को वजनदार बनाने में सहयोगी रहती। अगर कोई व्यक्ति उन्हें निर्दोष मालूम पड़ता तो उसे न्याय दिलाने के लिए वे अथक प्रयास करते; वहीं, दोष नजर आने पर वे सजा दिलवाने के लिए प्रतिबद्ध रहते। साफगोई और स्वाभिमान उनके स्वभाव का मुख्य हिस्सा थे। वे न तो अनुचित कामों के लिए किसी से

सिफारिश करते और न ही किसी की सिफारिश सुनते। उन्हें अपनी विरासत पर गर्व था। अपने नाम और दौसा का होने को लेकर उन्हें विशेष जुड़ाव था। वे अपने उद्धरणों में दौसा क्षेत्र की विशिष्टता का ऐतिहासिक संदर्भों के साथ उल्लेख करते। देश-विदेश की राजनीति, समाजशास्त्र, इतिहास जैसे विषयों के व्यापक अध्ययन और पारिवारिक परंपरा से मिली वाक् पटुता उनकी बातों को रुचिकर बनाती और लोग ध्यान से उन्हें सुनते।

अभावपूर्ण बचपन बिताए नवलकिशोर के लिए परिवार की आर्थिक सुरक्षा महत्वपूर्ण थी। शुरुआती दौर में उनकी आमदनी कामचलाऊ ही थी, लेकिन मितव्ययी स्वभाव के कारण वे उसमें भी बचत करने में सक्षम थे। 1950 में उन्होंने नया मकान बना लिया।[3] वे दो पुत्रों के पिता भी बन चुके थे। पहले पुत्र का नाम बृजकिशोर* और दूसरे पुत्र का नाम शिवकिशोर रखा गया। परिवार, वकालत और राजनीति के बीच नवलकिशोर ने अद्‌भुत सामंजस्य बनाया। 1950 में वे जयपुर जिला कांग्रेस की कार्यसमिति के सदस्य बने और 1951 में जयपुर जिला बोर्ड के सदस्य चुन गए। गांधीवादी मूल्यों से प्रभावित रहे नवलकिशोर हरिजन उद्धार, रचनात्मक कार्य, खादी और ग्रामोद्योग के क्षेत्र में भी निरंतर सक्रिय रहे।[4]

ईमानदारी नवलकिशोर के चरित्र की प्राथमिक विशेषता रही। राजनीति के प्रारंभिक दौर से ही उन्होंने अपने लिए मानक तय किए और उन पर अडिग रहे। जब वे जिला बोर्ड के सदस्य थे तो स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एंड जयपुर की शाखा रासमंडी में थी। उस समय जो भी वहां धन लाकर जमा करवाता था, उसे बतौर प्रोत्साहन कुछ पैसा दिया जाता था। उस समय बैंक में प्रभु नामक कैशियर नवलकिशोर के मित्र थे। प्रभु ने एक बार उनसे आग्रह किया कि वे जिला बोर्ड का कुछ पैसा उनकी शाखा में जमा करवा दें। नवलकिशोर ने बोर्ड का कुछ धन वहां जमा करवा दिया। कुछ दिन बाद नवलकिशोर कोर्ट जा रहे थे तो प्रभु उन्हें मिल गए। उन्होंने बताया कि धन लाने वालों को प्रोत्साहन राशि दी जाती है और यह उन्हें भी मिलेगी। इस पर नवलकिशोर बोले, 'मैं यह पैसा नहीं लूंगा। अगर देना है तो किसी गरीब को ये पैसा दीजिए, मुझे नहीं।'[5]

विभिन्न निर्वाचित पदों पर रहते हुए नवलकिशोर का राजस्थान के बड़े नेताओं से संपर्क स्थापित होना शुरू हुआ। उनका आत्मविश्वास से भरा कर्मठ व्यक्तित्व और विभिन्न विषयों पर तीक्ष्ण दृष्टिकोण सहज ही ध्यान खींचता था। वे रोज सुबह कम-से-कम दो घंटे का समय अखबार पढ़ने में बिताते थे। राजनीति से जुड़ी खबरें और संपादकीय कॉलम विशेष रूप से पढ़ते।[6] उनकी आंखों में भविष्य की ऊंची उड़ान के सपने जरूर थे, लेकिन वर्तमान को लेकर कोई असंतोष का भाव नहीं होता। उनकी निगाह सत्ता के गलियारों की चकाचौंध की ओर नहीं, गरीब-वंचित वर्ग की समस्याओं के समाधान की खोज में लगी रहती। हिंदी-अंग्रेजी में सिद्धहस्त और कानून के ज्ञाता होने के कारण नवलकिशोर जयपुर जिले में संगठनात्मक स्तर पर सक्रिय किए गए। उन्हें जयपुर जिला देहात कांग्रेस कमेटी के कार्यकारिणी सदस्य के

*2003 में बृजकिशोर शर्मा ने पहली बार विधानसभा चुनाव लड़ा और कांग्रेस के टिकट पर जयपुर ग्रामीण सीट से निर्वाचित हुए। 2008 में हवामहल से जीते और शिक्षा मंत्री के रूप में अशोक गहलोत मंत्रिमंडल में शामिल हुए।

बाद महासचिव का पद दिया गया। संगठन और वकालत के कामों से वे दौसा से रोडवेज बस में बैठकर जयपुर आते और अपने लिए एक साइकिल का प्रबंध करके शहर में घूमते। नवलकिशोर का व्यक्तित्व इतना असरदार और मिलनसार था कि उनसे हर व्यक्ति बहुत जल्दी प्रभावित हो जाता था।

गुटबाजी की गहमागहमी

इस दौरान राजस्थान की राजनीति नित नए मोड़ ले रही थी। सरदार पटेल के समर्थन से एकीकृत राजस्थान के प्रधानमंत्री नियुक्त हुए हीरालाल शास्त्री को अपदस्थ करने के लिए सघन अभियान चला, जिसमें प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष जयनारायण व्यास केंद्रीय भूमिका में थे। पटेल के देहांत के बाद शास्त्री की रही-सही ताकत खत्म हो गई और वे पद छोड़ने के लिए मजबूर कर दिए गए। उनके इस्तीफे के बाद अफसरों ने अस्थाई रूप से शासन संभाला। भारतीय सिविल सेवा (आईसीएस) के अधिकारी सी.एस. वेंकटाचारी के नेतृत्व में अंतरिम मंत्रिमंडल का गठन हुआ। इसके बाद प्रदेश कांग्रेस द्वारा जयनारायण व्यास को मुख्यमंत्री बनाने की कोशिशें तेज होने लगीं। 20 जनवरी, 1951 को बीकानेर में प्रदेश कांग्रेस कमेटी कार्यकारिणी की बैठक हुई। वहां व्यास को मुख्यमंत्री बनाने के फैसले के साथ यह तय हुआ कि मंत्रिमंडल का गठन माणिक्यलाल वर्मा, मास्टर आदित्येंद्र और रामकरण जोशी की सलाह से किया जाएगा।[7] विस्तृत चर्चा के बाद प्रदेश कांग्रेस कमेटी को व्यास के नेतृत्व में सरकार बनाने के लिए आलाकमान से अनुमति मिल गई। 26 अप्रेल, 1951 को व्यास ने मुख्यमंत्री पद की शपथ ली। उन्होंने अपने मंत्रिमंडल में प्रमुख क्षेत्रों के नेताओं या उनके प्रतिनिधियों को जगह दी। वर्ष के अंत तक वे राजस्थान कांग्रेस के प्रभावशाली नेता के रूप में स्थापित हो गए और जोधपुर गुट प्रमुख भूमिका में आ गया।[8]

दूसरी तरफ, मुख्यमंत्री पद से हटने के लिए विवश किए गए शास्त्री ने कांग्रेस से भी त्यागपत्र देने का निश्चय किया। वे एक नए राजनीतिक दल 'जनता पार्टी' की स्थापना का प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने नई पार्टी के अध्यक्ष पद पर बने रहना भी स्वीकार कर लिया। कांग्रेस जनों में शास्त्री को लेकर दुविधा बनी हुई थी; राजस्थान के ज्यादातर नेता उनके पक्ष में नहीं थे, जबकि केंद्रीय नेता चाहते थे कि आगामी चुनावों को देखते हुए वे पार्टी में बने रहें। 8 सितम्बर, 1951 को शास्त्री ने कांग्रेस से त्यागपत्र देकर नई पार्टी खड़ी करने की घोषणा कर दी।

इन परिस्थितियों में 1951-52 के प्रथम आम चुनाव आए। व्यास के मुख्यमंत्री बनने के बाद प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष की भूमिका में माणिक्यलाल वर्मा थे। राजस्थान में उस समय 76,76,419 मतदाता थे और विधानसभा सदस्यों की संख्या 160 थी।[9] सात सीटों पर कांग्रेस उम्मीदवार निर्विरोध चुन लिए गए, इसलिए 153 सीटों के लिए ही मतदान हुआ।[10] जोधपुर के भूतपूर्व महाराजा हनवंत सिंह के नेतृत्व में जागीरदारों ने हाथ से निकली हुई सत्ता पुन: प्राप्त करने की भरपूर चेष्टा की। रामराज्य परिषद जैसी पार्टियों ने भी उनका सहयोग किया।[11]

हनवंत सिंह ने दृढ़ता से महसूस किया कि कांग्रेस का प्रभावशाली विरोधी दल तैयार होना चाहिए। इसके लिए उन्होंने 35 निर्दलीय उम्मीदवार खड़े किए।[12] उन्होंने अपने गृहक्षेत्र से लोकसभा* और विधानसभा के लिए निर्दलीय नामांकन दाखिल किए।

व्यास ने अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए जोधपुर शहर-बी विधानसभा सीट पर हनवंत सिंह के सामने चुनाव लड़ने का फैसला किया। हालांकि उन्होंने एक अन्य सीट जालोर-ए से भी नामांकन भर दिया। हनवंत सिंह सघन चुनाव अभियान के बाद आराम के लिए निजी विमान से गए तो उड़ान के समय विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया और उनकी मृत्यु हो गई। जोधपुर में उम्मेद भवन पैलेस अपने प्रिय महाराजा की मृत्यु में व्यथित लोगों से भर गया था। उनकी मृत्यु के पीछे षडयंत्र होने की संभावना से अफवाहें भरी हुई थीं और व्यास को देखते ही भीड़ उत्तेजित हो गई। आवेश में लोगों ने महल तक उनका पीछा करने की कोशिश की और वहां से बड़ी मुश्किल से जनाना की तरफ से परदे वाली कार से उनको ले जाना संभव हो सका। बाद में चुनाव परिणाम घोषित हुए तो आसपास के क्षेत्रों में हनवंत सिंह द्वारा मनोनीत लोगों ने 35 में से 33 सीटें जीतीं।[13] व्यास दोनों सीटों पर बड़े अंतर से परास्त हुए। जोधपुर में हनवंत सिंह ने उन्हें 8,627 वोटों से हराया। वहीं, जालोर में वे रामराज्य परिषद के माधो सिंह से 9,184 वोटों के अंतर से हारे। इस चुनाव में कांग्रेस के 82 उम्मीदवारों को जीत हासिल हुई। रामराज्य परिषद को 24, भारतीय जनसंघ को 8, कृषिकार लोक पार्टी को 7, हिन्दू महासभा को 2 और कृषक मजदूर पार्टी तथा सोशलिस्ट पार्टी को 1-1 सीट पर सफलता मिली। शेष 35 सीटों पर निर्दलीय उम्मीदवार निर्वाचित हुए।[14]

प्रदेश के सर्वमान्य नेता होने के नाते चुनाव के दौरान व्यास का पुन: मुख्यमंत्री बनना तय माना जा रहा था, लेकिन उनकी हार के कारण नया नेता चुनने की स्थिति बनी। 3 फरवरी, 1952 को दिल्ली में कांग्रेस संसदीय बोर्ड की बैठक में इस विषय पर विचार हुआ। वहां प्रदेश अध्यक्ष माणिक्यलाल वर्मा ने राय दी कि व्यास को दुबारा चुनाव लड़वाया जाए। इससे नेहरू भी सहमत हुए। अंतरिम काल के लिए वर्मा के आग्रह पर व्यास मंत्रिमंडल के वरिष्ठतम सदस्य टीकाराम पालीवाल को मुख्यमंत्री चुनने का निर्णय हुआ।[15] पालीवाल ने महुवा और मलारना चौड़ से चुनाव लड़ा था और दोनों ही सीटों से जीते थे। 3 मार्च, 1952 को उन्होंने मुख्यमंत्री पद की शपथ ग्रहण की। नरोत्तमलाल जोशी राजस्थान के पहले विधानसभा अध्यक्ष बने और जनसंघ के लालसिंह शक्तावत उपाध्यक्ष चुने गए। सभी गैर कांग्रेसी दलों ने मिलकर संयुक्त विधायक दल का गठन किया, जिसके नेता कुंवर जसवंत सिंह और उपनेता इंद्रनाथ मोदी बनाए गए।[16]

मुख्यमंत्री बनते ही पालीवाल के प्रति प्रदेश कांग्रेस में विरोध उभरने लगा। उनके मंत्रिमंडल में सभी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व नहीं था और कई वरिष्ठ नेता सम्मिलित नहीं किए

*हनवंत सिंह ने वी.पी. मेनन को पत्र लिखकर जोधपुर लोकसभा सीट से चुनाव लड़ने के लिए आग्रह किया। उन्होंने आश्वासन दिया कि यह एक सुरक्षित सीट है और कहा कि अगर प्रस्ताव मंजूर है तो तुरंत जोधपुर आ जाइए। मेनन ने उन्हें स्नेहपूर्वक जवाब लिखकर चुनाव लड़ने से मना कर दिया। (वी.पी. मेनन: इंट्रीगेशन ऑफ द स्टेट्स, ओरिएंट लॉन्गमैन, मुंबई, 1999, पृष्ठ 135)

गए थे। माना जा रहा था कि पालीवाल ने जानबूझकर व्यास समर्थकों को मंत्रिमंडल से अलग रखा। व्यास ने जातिगत समीकरण के आधार पर जाट नेता कुंभाराम आर्य और राजपूतों के प्रतिनिधि के रूप में जसवंत सिंह को मंत्री बनाया था। पालीवाल ने कुंभाराम की जगह नाथूराम मिर्धा को लिया, लेकिन उनके मंत्रिमंडल में कोई राजपूत नहीं था।[17]

राजनीति में प्रवेश

प्रदेश कांग्रेस में व्याप्त अंतर्दलीय राजनीतिक वैमनस्यता ने नवलकिशोर को चाहे-अनचाहे कांग्रेस की गुटबाजी का हिस्सा बना दिया। वे रामकरण जोशी के अनुयायी थे, जिनके नेता व्यास थे। रामकरण भी लोकसभा और विधानसभा दोनों के लिए चुनाव लड़े। वे दोनों क्षेत्रों में भारी बहुमत से चुनाव जीते। व्यास समर्थकों से दूरी बनाकर चल रहे पालीवाल को दबाव के कारण रामकरण को मंत्रिमंडल में लेना पड़ा। व्यास और रामकरण की राजनीतिक गतिविधियों का सीधा परिणाम नवलकिशोर पर पड़ता रहा। इन्हीं नेताओं की छत्रछाया में नवलकिशोर ने राजनीति शुरू की। 1952 में उन्होंने नगरपालिका चुनावों में हाथ आजमाने का विचार किया। पहले ही चुनावी मुकाबले में 27 वर्षीय नवलकिशोर को जीत हासिल हुई। वे दौसा नगरपालिका के चेयरमैन चुन लिए गए। यह भी एक सुखद संयोग था कि उनके तीसरे और सबसे छोटे पुत्र आनंद का जन्म चुनाव परिणाम की घोषणा के दिन ही हुआ*।[18]

दूसरी तरफ प्रदेश कांग्रेस में विद्रोह के बीज फिर से फूटे। पालीवाल को मुख्यमंत्री पद से हटाने की मुहिम शुरू हुई। व्यास समर्थक गुट ने केंद्रीय नेताओं की मदद से व्यास को उपचुनाव लड़ने के लिए तैयार किया। व्याव ने उपचुनाव लड़कर जीता और 1 नवम्बर, 1952 को मुख्यमंत्री चुन लिए गए। इस पूरे घटनाक्रम में रामकरण की प्रमुख भूमिका रही। व्यास के नेतृत्व में सरकार बनी तो पालीवाल उपमुख्यमंत्री बनाए गए। व्यास ने पालीवाल के पूरे मंत्रिमंडल* को भी यथावत स्वीकार कर लिया। लेकिन एक महीने के भीतर उन्होंने मंत्रिमंडल पुनर्गठन के जरिए पालीवाल को कमजोर करने की कोशिश की। उन्होंने पालीवाल से राजनीतिक विभाग की जिम्मेदारी लेकर अपने पास रख ली और सामान्य प्रशासन में भी पालीवाल का एकाधिकार नहीं रहने दिया; इसका 'विभाजन' किया गया। पालीवाल के समर्थक रामकिशोर व्यास से नगरीय विकास मंत्रालय लेकर अपने विश्वासपात्र रामकरण को दे दिया।[19]

इसके बाद अन्य मुद्दों पर विवाद चलता रहा। परिस्थिति की जटिलता को देखते हुए कांग्रेस आलाकमान ने कार्यकारिणी के चुनाव स्थगित कर दिए। राजस्थान को लेकर केंद्रीय नेतृत्व संशय की स्थिति में था। 14 अप्रेल, 1953 को पालीवाल, मिर्धा और रामकिशोर व्यास ने मतभेदों के कारण मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया। कुंभाराम को मंत्री पद दिलवाने के लिए नेहरू को हस्तक्षेप करना पड़ा। व्यास और वर्मा में भी दूरियां पैदा हो गईं। वर्मा ने व्यास और

---

*आनंद के बाद नवलकिशोर को एक और पुत्र की प्राप्ति हुई, लेकिन अल्पायु में ही उसका निधन हो गया।

पालीवाल के बीच समझौता करवाना चाहा तो व्यास ने इसे अपने विरुद्ध साजिश समझा।[20] 8 जनवरी, 1954 को पालीवाल पुनः मंत्रिमंडल में शामिल कर लिए गए, लेकिन कांग्रेस विधायक दल में मतभेद कायम रहे। एक दिन व्यास सरकार विधानसभा में एक मत से हार जाती, अगर विपक्ष के खेतसिंह राठौड़ ने वोट देकर उसे नहीं बचाया होता। कुछ सप्ताह बाद जब राज्यसभा के लिए मतदान हुए तो 15 कांग्रेस विधायकों ने पार्टी व्हिप के विरुद्ध कम्युनिस्ट उम्मीदवार के पक्ष में मतदान कर दिया। यह व्यास के विरुद्ध खुले विद्रोह का संकेत था।[21]

इसी दौरान व्यास ने विचार किया कि कांग्रेस को मजबूत करने के लिए जागीरदारों को संगठन से जोड़ा जाए। इससे विधानसभा में कांग्रेस का बहुमत काफी बढ़ जाने वाला था और उन जागीरदार विधायकों का लाभ व्यास को मिलना सुनिश्चित दिखाई दे रहा था। व्यास ने नेहरू से बात करके इस विषय में उनकी स्वीकृति प्राप्त कर ली।[22]

यह विषय प्रदेश कांग्रेस कमेटी के समक्ष आया तो वर्मा के सुझाव पर जागीरदारों को इस शर्त पर लेने की अनुमति दी गई कि वे जागीर की समाप्ति के संबंध में 'पंत निर्णय' का समर्थन करेंगे, चाहे बहुमत विरोध में हो या कानून उनके पक्ष में हो।[23] इसके बाद फरवरी, 1954 में क्षत्रिय महासभा ने अपने सदस्यों को किसी भी राजनीतिक दल में शामिल होने की छूट दे दी। उसी महीने में नवलगढ़ के रावल मदन सिंह, पोकरण के ठाकुर भवानी सिंह और 25 जागीरदार विधायकों सहित 43 बड़े जागीरदारों ने एक संयुक्त वक्तव्य जारी करके सभी प्रदेशवासियों से कांग्रेस में शामिल होने की अपील की। उन्होंने घोषणा की कि 'सांप्रदायिक और फिरकापरस्त तरीके से' काम करके भारत का आशानुकूल भविष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसके बाद 22 जागीरदार विधायकों ने कांग्रेस विधायक दल में शामिल होने के लिए आवेदन किया, जो स्वीकृत हो गया।[24]

जागीरदारों को कांग्रेस में शामिल किए जाने के बाद व्यास के प्रति विरोध बढ़ा, जबकि उन जागीरदारों ने कांग्रेस को यह लिखकर दे दिया था कि वे जागीर उन्मूलन कानून में संशोधन के लिए कोई प्रस्ताव नहीं लाएंगे।[25] उसी दौरान व्यास की उपस्थिति में जोधपुर कांग्रेस की बैठक होने की बात सामने आई। इसमें जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर को मिलाकर अलग राज्य बनाने और अगली तय तारीख पर उसका नक्शा तैयार करवाने की बात की गई थी। जब यह विषय फैला तो व्यास ने उस विषय पर किसी से बात करने से इनकार कर दिया। सरकार में व्यास के संपूर्ण प्रभुत्व का भी विषय उठा। वर्मा ने मंत्रियों के अधिकार बढ़ाने की मांग की। उनका कहना था कि स्थानांतरण और नियुक्तियां मंत्रियों से पूछकर लोकतांत्रिक तरीके से होनी चाहिए। व्यास का कहना था कि वर्मा को शासन में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। विवाद इस हद तक बढ़ा कि प्रदेश कांग्रेस कमेटी की बैठक में वर्मा ने व्यास से कह दिया, 'आज से मैं आपकी हुकूमत के खिलाफ विद्रोह करता हूं। आप भी शास्त्री

*मोहनलाल सुखाड़िया, रामकिशोर व्यास, भोगीलाल पंड्या, रामकरण जोशी, मास्टर भोलानाथ, नाथूराम मिर्धा और अमृतलाल यादव।

(हीरालाल) के रास्ते पर जा रहे हैं। कांग्रेस की बात आप मानना नहीं चाहते, यह नहीं चल सकता। आपका नेतृत्व कांग्रेस की हथेलियों पर है।' व्यास ने जवाब दिया, 'मैं मुख्यमंत्री हूं तो मुख्यमंत्री हूं। धमकियों से डरता नहीं और किसी के झुकाने से नहीं झुक सकता।'[26]

सुखाड़िया का उदय

जयनारायण व्यास और माणिक्यलाल वर्मा के राजनीतिक संघर्ष ने मोहनलाल सुखाड़िया* का नेतृत्व उभारा। वर्मा के कारण सुखाड़िया मंत्रिमंडल में लिए गए थे और वे वर्मा के ही विश्वासपात्र थे। जब वर्मा के व्यास से मतभेद बढ़े तो सुखाड़िया मंत्रिमंडल से इस्तीफा देने को भी तत्पर हो गए, लेकिन वर्मा ने उन्हें यह कहकर रोक दिया कि इससे व्यास के बारे में और अधिक भ्रम फैलेगा।[27] सुखाड़िया उन नेताओं में प्रमुख थे, जो सोचते थे कि जागीरदार विधायकों के कांग्रेस में शामिल होने की स्थिति में व्यास उनकी अधिक उपेक्षा करेंगे। उस दौरान कांग्रेस में ऐसा गुट तैयार हो गया, जो व्यास को हटाकर सुखाड़िया को मुख्यमंत्री बनाना चाहता था। इसमें हरलाल सिंह, कुंभाराम आर्य, कपिल देव, दामोदरलाल व्यास, मथुरादास माथुर वगैरह शामिल थे। यह गुटबाजी ही निरंतर जारी राजनीतिक अस्थिरता का प्रमुख कारण थी, जो राज्य के गठन के समय से ही प्रदेश कांग्रेस में व्याप्त थी। सबसे पहले क्षेत्रीय धड़ेबंदी उजागर हुई और विभिन्न क्षेत्रों के गुट बने। इनमें से एक उदयपुर गुट था, जिसका नेतृत्व वर्मा और सुखाड़िया कर रहे थे। व्यास के नेतृत्व वाले गुट ने प्रथम आम चुनाव के बाद अपने को राज्य के पूर्वी मैदानी क्षेत्र में केंद्रित कर लिया था, जिसमें भूतपूर्व जयपुर रियासत का इलाका पड़ता था। तीसरा प्रमुख गुट जाट नेताओं का था, जिसमें जोधपुर और बीकानेर के किसान नेता शामिल थे।[28]

व्यास मंत्रिमंडल में परिवर्तन करना चाहते थे। सुखाड़िया गुट ने भी अपने सुझाव दिए। व्यास ने कहा कि वे पार्टी का विश्वास प्राप्त करके अपने मन का मंत्रिमंडल बनाएंगे। उन्होंने सामंती प्रतिनिधियों के साथ भी बात की। इससे लगने लगा कि राजस्थान में राजनीति नया मोड़ लेगी। रफी अहमद किदवई राजस्थान आए। दोनों गुटों के साथ बैठकर उन्होंने तालमेल बैठाने की कोशिश की, लेकिन ऐसा नहीं हो सका।[29] दूसरी तरफ, जाट नेताओं ने आरोप लगाया कि जागीरदारों को लाकर उन्हें कमजोर करने की कोशिश की जा रही है। कुंभाराम ने व्यास को चुनौती देने के लिए विधायक दल की बैठक बुलाने की मांग की। व्यास ने नेहरू को पत्र लिखकर राज्य की स्थिति से अवगत करवाया। सुखाड़िया समर्थकों ने व्यास की कार्यशैली और जागीरदारों को प्रवेश देने की निंदा करते हुए नेहरू को ज्ञापन भेजा।[30]

इस संघर्ष से केंद्रीय नेतृत्व चिंतित था। किदवई ने वर्मा से इस विषय में बात की। उन्होंने कहा कि व्यास के समर्थक बहुमत होने का दावा कर रहे हैं। व्यास समर्थकों का मानना था कि उनके साथ 30 कांग्रेसी, 24 जागीरदार और अनुसूचित जाति के 21 विधायकों का बहुमत है। वर्मा ने जवाब दिया, 'जिस दिन यह प्रश्न उठ खड़ा होगा कि बहुमत किधर है, वह दिन बहुत बुरा होगा। हम उसे टालना चाहते हैं और कुछ सुझाव देना चाहते हैं, जिससे कांग्रेस

अगला चुनाव जीत जाए।' किदवई ने कहा कि वे इस संबंध में नेहरू से बात करेंगे। इस बीच व्यास ने नेहरू से वर्मा की शिकायत करते हुए शासन में रुकावट डालने का आरोप लगाया। नेहरू ने वर्मा को दिल्ली बुलाया। 28 जुलाई, 1954 को व्यास के घर एक बैठक चल रही थी। मास्टर आदित्येंद्र और कुछ मंत्री एकत्रित थे। उसी दौरान दिल्ली से केंद्रीय मंत्री राजबहादुर का टेलीफोन आया। उन्होंने कहा कि किदवई मानते हैं कि बहुमत व्यास के साथ नहीं है। व्यास को यह बात चुभ गई। उन्होंने बैठक में मौजूद लोगों से कहा कि अब वे विश्वास प्रस्ताव लाएंगे, तभी आगे काम की सोचेंगे। उन्हें रोकने की कोशिश की गई, लेकिन वे नहीं माने। उनका कहना था कि यह सब वर्मा करवा रहे हैं।[31]

19 अगस्त को व्यास, वर्मा, आदित्येंद्र, पालीवाल और सुखाड़िया ने नेहरू से मुलाकात की। नेहरू ने व्यास से कहा, 'मेरी स्पष्ट सहमति है कि आप पार्टी से विश्वास प्रकट करने के लिए मत कहिए।' व्यास ने नेहरू को जवाब दिया, 'मैं कठपुतली बनकर शासन नहीं चला सकता। मैं शासन अपने ढंग से ही चलाऊंगा।' नेहरू ने उन्हें अपनी इच्छानुसार मंत्रिमंडल बनाकर विश्वास मत प्राप्त करने की सलाह दी।[32] व्यास ने न नेहरू का यह परामर्श माना कि उनको विश्वास मत के लिए जल्दी नहीं करनी चाहिए और न ही दल के किसी सदस्य से मिलकर उसको अपने साथ मिलाने का प्रयत्न किया।[33] आखिरकार, 6 नवम्बर को कांग्रेस विधायक दल की बैठक में नेता पद का चुनाव हुआ। व्यास को 51 और सुखाड़िया को 59 मत प्राप्त हुए।

व्यास निष्पक्ष और सिद्धांतवादी नेता थे। उन्होंने अपने जीवन को देश सेवा में लगाए रखा और देशी राज्यों की निरीह प्रजा के अधिकारों के लिए जूझते रहे। उनमें स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा था; साथ ही, वे भावना प्रधान संवेदनशील व्यक्ति थे। राजनेता के साथ ही, एक भावुक और मस्तमौला कलाकार के रूप में भी उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण किया जा सकता है। उनके मुख्यमंत्रित्व काल के दौरान एक बार जयपुर देहात कांग्रेस की बैठक रामकरण जोशी के खेत पर हुई। नृत्य-संगीत के शौकीन व्यास ने रात होने पर कार्यकर्ताओं के बीच महिला वेश धारण करके नृत्य किया, ढपली बजाई और गीत गाए।[34] मुकदमा चलने के दौरान उनसे व्यक्तिगत बातों में पूछा गया, 'मुकदमे में सजा हो गई और राजनीति से

---

*मोहनलाल सुखाड़िया का जन्म 31 जुलाई, 1916 को झालावाड़ में हुआ था। उनके पिता का नाम पुरुषोत्तमदास सुखाड़िया था। नाथद्वारा और उदयपुर से अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के बाद उन्होंने बंबई में विद्युत इंजीनियरिंग का अध्ययन किया। वे प्रजामंडल आंदोलन से सक्रिय रुप से जुड़े और विद्यार्थी जीवन से ही स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान उन्हें डेढ़ वर्ष की जेल हुई। 1946 में तत्कालीन मेवाड़ राज्य (उदयपुर) के नागरिक आपूर्ति, सार्वजनिक निर्माण, राहत और पुनर्वास मंत्री बने। राजस्थान में दलित जनता के उत्थान के लिए ठक्कर बापा की कल्याण योजनाओं से भी संबद्ध रहे। राजस्थान राज्य का गठन होने के बाद 1948 में उन्होंने विकास मंत्री के रूप में कार्यभार संभाला। 1951-52 में नागरिक आपूर्ति, कृषि एवं सिंचाई मंत्री रहे। 1952 में हुए पहले आम चुनावों में राजस्थान विधानसभा के लिए चुने जाने पर राजस्व, कृषि एवं अकाल राहत मंत्री बने। 13 नवम्बर, 1954 को राजस्थान के मुख्यमंत्री बने और बीच में 44 दिन के राष्ट्रपति शासन के अलावा 9 जुलाई, 1971 तक इस पद पर कार्य करते रहे। मुख्यमंत्री के रूप में राज्य में भूमि सुधार और पंचायती राज शुरू करने में उन्होंने एक मार्गदर्शक की भूमिका निभाई। राजस्थान को एक सुदृढ़ राज्य बनाने की चुनौती का उन्होंने स्थिरचित्त होकर सामना किया। 1 फरवरी, 1972 से 8 अप्रेल, 1977 के बीच की अवधि के दौरान वे कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु के राज्यपाल नियुक्त किए गए। 1980 में वे उदयपुर संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से लोकसभा के लिए चुने गए। 2 फरवरी, 1982 को उनका देहावसान हो गया।

अलग होना पड़ गया तो आप क्या करेंगे?' व्यास ने सहज मस्ती में जवाब दिया, 'अपने पुराने साथियों की मंडली जमाकर नाटक कंपनी खड़ी करूंगा और सारे देश का दौरा करके नाटकों के माध्यम से जनता को राजनीतिक प्रशिक्षण दूंगा।' वे कहते, 'जलजलों का पला हूं, यह भी जलजला है। आ गया है, चला जाएगा।'[35] जोधपुर का मुकदमा वापस ले लिया गया तो दिल्ली में उन्होंने शिव का तांडव नृत्य किया। जोधपुर में पृथ्वीराज कपूर के स्वागत आयोजन में वहां के मुख्यमंत्री होते हुए भी नृत्य द्वारा उनका कलात्मक अभिनंदन किया।[36] जोधपुर में जिस दिन व्यास को हार की सूचना मिली, उसी रात उनके निवास पर नृत्य विशारदों का जमघट लगा। जब सभी नृत्यकार अपना कौशल दिखा चुके तब व्यास ने पूछा कि वे कौन-सा नृत्य दिखाएं। इस पर कन्हैयालाल सेठिया ने मजाक में कहा कि पराजय नृत्य दिखलाएं। व्यास वास्तव में पैरों पर घुंघरू बांधकर नृत्य की मुद्रा में खड़े हो गए।[37]

व्यास के विरुद्ध चले अभियान के संदर्भ में सुखाड़िया का कहना था, 'व्यास कुछ समय से मुझसे और मेरे साथियों से नाराज चले आ रहे थे। हमें मंत्रिमंडल से निकाल देना चाहते थे। यह सब वे हमारे कुछ विरोधी साथियों की सलाह पर कर रहे थे, जो उनके निकट हो गए थे। मेरे प्रत्याशी घोषित हो जाने के बाद भी मैं अपने साथियों की मांग के खिलाफ व्यास के पास गया और विश्वास दिलाने की कोशिश की कि हम उन्हें नेता मानते हैं, वे भी अपना मानें।' लेकिन व्यास ने सुनने और कुछ कहने की अपेक्षा पूरी तरह नकार दिया।[38]

विधायक दल के नेता चुन लिए जाने के बावजूद सुखाड़िया के लिए मुख्यमंत्री पद की राह आसान नहीं रही। केंद्रीय नेतृत्व और विशेषकर नेहरू उनके पक्ष में नहीं थे। उस दौरान यह भी सोचा गया कि व्यास के हटने की स्थिति में मास्टर आदित्येंद्र को मुख्यमंत्री बना दिया जाए। आदित्येंद्र ने इनकार कर दिया। सुखाड़िया के नेता निर्वाचित हो जाने के बावजूद मंत्रिमंडल बनाने के लिए नेहरू की सहमति प्राप्त करने में लगभग सप्ताह भर का समय लग गया। व्यास को अपदस्थ किए जाने से नेहरू अप्रसन्न थे। उन्होंने मथुरादास माथुर को मंत्री बनाने के लिए सहमति नहीं दी। वर्मा और सुखाड़िया ने नेहरू की इच्छानुसार चलने का निर्णय किया।[39]

व्यास की पहचान ऐसे नेता के रूप में रही थी, जो समझौते के लिए तैयार नहीं होते और सिद्धांतों पर विवादों को सुलझाते। उनका रवैया इस हद तक सख्त था कि उन्होंने कथित रूप से आदेश जारी कर दिया कि पार्टी नेतृत्व से अनुमति लिए बिना विधायक अपने क्षेत्र की समस्याएं लेकर सचिवालय नहीं आ सकते। सुखाड़िया इस शैली से सहमत नहीं थे और उनके मुख्यमंत्री बनने के बाद विधायकों के पास अपने प्रभाव का इस्तेमाल करने की अधिक आजादी थी।[40] लेकिन अंदरखाने में सुखाड़िया के प्रति रोष बरकरार था, जो समय-समय पर उजागर होता रहा। व्यास के मन में क्षोभ था ही; रामकरण और पालीवाल आदि भी कड़े शब्दों में नाराजगी प्रकट कर रहे थे। प्रदेश के एक धड़े और केंद्र द्वारा दबाव डालकर कुंभाराम का इस्तीफा ले लिए जाने से जाट नेता भी आक्रोशित हो गए।[41] कुछ केंद्रीय नेता यहां तक मानते थे कि सुखाड़िया से त्यागपत्र दिलवाकर ही

राजस्थान कांग्रेस में एकता स्थापित की जा सकती है। विवाद चलता रहा और नेताओं को एकजुट करने के प्रयत्न असफल रहे।[42]

सुखाड़िया और नवलकिशोर

उस दौरान नवलकिशोर शर्मा मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया से भी प्रभावित हुए। इसमें सुखाड़िया के व्यवहार का ज्यादा हाथ था। यदा-कदा सार्वजनिक या व्यक्तिगत कार्यवश सुखाड़िया से नवलकिशोर की मुलाकात होती तो सुखाड़िया गहरे मित्र होने का अहसास करवाते। वे नवलकिशोर का सहयोग करते, इससे नवलकिशोर के मन पर सुखाड़िया की सौम्य और हृदय की विशालता की छवि बननी शुरू हुई।[43]

द्वितीय विधानसभा चुनाव नजदीक आ रहे थे और पार्टी बिखरी हुई दिखाई दे रही थी। मार्च, 1956 में राज्यसभा के लिए हुए मतदान में खतरे की घंटी सुनाई दी, जब कांग्रेस विधायक दल के 117 सदस्यों में से 24 ने विपक्ष के उम्मीदवार को वोट दिया।[44] इसके बाद पार्टी के भीतर एकजुटता लाने के लिए नए सिरे से कोशिशें शुरू हुईं। अप्रेल में प्रदेश कांग्रेस कमेटी की बैठक में व्यास और सुखाड़िया के बीच मतभेद समाप्त करने की पहल की गई। वर्मा ने व्यास को अपदस्थ करने में अपनी भूमिका स्वीकार करते हुए सार्वजनिक रूप से माफी मांगी और कहा कि उनका इरादा प्रदेश तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की सदस्यता छोड़कर हरिजनों के बीच रचनात्मक कार्य करने का है। आदित्येंद्र ने भी प्रदेश अध्यक्ष के पद से इस्तीफा देने की घोषणा की और कहा कि कोई भी दबाव उन्हें ऐसा करने से नहीं रोक सकेगा। सुखाड़िया ने कहा कि वे पार्टी की एकजुटता के लिए हर त्याग करने को तैयार हैं, चाहे वह मुख्यमंत्री पद क्यों न हो। राष्ट्रीय अध्यक्ष यू.एन. ढेबर के नेतृत्व में समझौता वार्ता भी हुई, लेकिन व्यास समर्थक सुखाड़िया के इस्तीफे से कम में मानने को तैयार नहीं थे।[45] उसी दौरान ढेबर ने वर्मा को मुख्यमंत्री पद की पेशकश की। वर्मा ने जवाब दिया कि उन्हें इस नर्क यातना में नहीं डाला जाए। ढेबर ने उनसे पूछा कि अगर नेहरू आदेश दें तो क्या वे मानेंगे? वर्मा का कहना था, 'वे देश के नेता हैं। दूसरे सब हुक्म मानूंगा, इसकी तामील नहीं करूंगा।'[46]

लालबहादुर शास्त्री के नेतृत्व में बातचीत शुरू हुई और व्यास को प्रदेश अध्यक्ष बनाए जाने की घोषणा हुई। 20 अगस्त, 1956 को वे निर्विरोध अध्यक्ष चुन लिए गए।[47] उसी वर्ष 1 नवम्बर को राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों के अनुसार अजमेर-मेरवाड़ा को राजस्थान में विलीन कर दिया गया। हरिभाऊ उपाध्याय के नेतृत्व वाले त्रिसदस्यीय मंत्रिमंडल को भंग करके अजमेर विधानसभा के सभी 30 सदस्यों को राजस्थान विधानसभा का सदस्य बना दिया गया। अजमेर के विलय के बाद कांग्रेस विधायक दल के नेता का फिर से चुनाव आवश्यक हो गया। व्यास, पालीवाल, रामकरण और मास्टर भोलानाथ वगैरह ने मिलकर अजमेर के निवर्तमान मुख्यमंत्री हरिभाऊ को नेता पद का चुनाव लड़ने के लिए आगे किया, लेकिन चुनाव के दिन उपाध्याय के चुनाव लड़ने से इनकार करने के कारण सुखाड़िया एकीकृत राजस्थान विधानसभा के पुन: सर्वसम्मत नेता हो गए।[48]

इन हालात में 1957 के विधानसभा चुनाव का समय आया। कांग्रेस में टिकटों के बंटवारे को लेकर मतभेद और अधिक उग्र हो गए। उदयपुर क्षेत्र के जिन लोगों को प्रत्याशी बनाया गया, उनमें से निरंजननाथ आचार्य के अलावा शेष ने चुनाव लड़ने से इनकार कर दिया। आखिर, नेहरू के हस्तक्षेप से स्थितियां बदलीं और वर्मा आदि ने चुनाव लड़ा।[49] दूसरी ओर, केंद्रीय चुनाव समिति ने सुखाड़िया मंत्रिमंडल के लगभग आधे सदस्यों के टिकट काट दिए।[50] उनके चार मंत्रियों और दो उप मंत्रियों को टिकट नहीं दिए गए। कुंभाराम और माथुर के भी टिकट काटे गए। सुखाड़िया के कई समर्थकों को असुरक्षित मानी जाने वाली सीटों पर खड़ा किया गया। सुखाड़िया ने नेहरू, मौलाना आजाद और लालबहादुर शास्त्री से लगातार मुलाकातें कीं और अपने समर्थकों के साथ टिकट लेने के प्रति अनिच्छा प्रकट की।[51] कांग्रेस के 100 विधायकों ने इन लोगों को टिकट नहीं दिए जाने तक टिकट लेने से इनकार करने की घोषणा कर दी।[52] यह विरोध प्रदर्शन कारगर साबित हुआ। कुंभाराम के कुछ समर्थकों को टिकट देना मंजूर कर लिया गया, हालांकि कुंभाराम खुद टिकट हासिल नहीं कर सके*।[53] पूर्वी राजस्थान के दो मंत्रियों और बीकानेर जिले के पांच विधायकों को उम्मीदवारों की सूची में पुनः शामिल किया गया। गुटबाजी समाप्त करने के लिए गुटों का नेतृत्व करने वालों को राजस्थान से दूर करने की कोशिश की गई। जोधपुर के महत्वपूर्ण नेता मथुरादास को विधानसभा की जगह लोकसभा का टिकट दिया गया**।[54]

सुखाड़िया ने बेहतरीन चुनाव परिणाम दिया। लोकसभा और विधानसभा चुनावों में कांग्रेस का डंका बज गया। कांग्रेस को लोकसभा की 22 में से 19 सीटें मिलीं; वहीं, विधानसभा की 176 सीटों में से 119 सीटों पर जीत हासिल हुई। जनसंघ 6 सीटों पर सिमट गया। रामराज्य परिषद को 17 सीटों पर जीत मिली। 32 निर्दलीय विधायक निर्वाचित हुए। कम्युनिस्ट पार्टी और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी को 1-1 सीट ही मिल सकी। नेहरू और शास्त्री चाहते थे कि पालीवाल मुख्यमंत्री बनें, लेकिन लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सुखाड़िया कांग्रेस विधायक दल के नेता चुने गए। पालीवाल के अनुसार, '1957 के चुनाव में उम्मीदवारों के चयन की जिम्मेदारी लालबहादुर शास्त्री को सौंपी गई। उन्होंने मुझसे कहा कि जवाहरलाल और ढेबर भाई चाहते हैं कि आप विधानसभा में जाएं। मैंने उनकी बात मान ली। चुनाव के बाद जब संसदीय बोर्ड की बैठक में मुख्यमंत्री की बात आई तो नेहरू, शास्त्री वगैरह चाहते थे कि मैं मुख्यमंत्री बनूं। सुखाड़िया और उनके समर्थक चाहते थे कि मतदान हो। संसदीय बोर्ड में जब बात चली तो गोविंदवल्लभ पंत ने कहा कि, 'भाई लोकतांत्रिक प्रक्रिया चलने दो।' वही हुआ। गुप्त मतदान में सुखाड़िया विजयी रहे।'[55]

नवलकिशोर प्रारंभिक दौर में सुखाड़िया के व्यक्तित्व से प्रभावित तो थे, लेकिन उनकी क्षमता पर नवलकिशोर को पूरा भरोसा नहीं था। जब सुखाड़िया ने सामंतवाद का विरोध शुरू किया तो नवलकिशोर को नहीं लगता था कि सुखाड़िया वास्तविक रूप से सामंतवाद को समाप्त कर सकेंगे। लेकिन बाद में उन्होंने सामंतवाद के अंधड़ में सुखाड़िया को अडिग देखा। नवलकिशोर को इस बात ने विशेष प्रभावित किया कि सुखाड़िया ने मृदुभाषिता और

सहनशीलता से पूरे प्रदेश की रक्षा की और सामंतवाद को खत्म करके दिखाया। नवलकिशोर का मानना था कि सुखाड़िया ने काश्तकारी अधिनियम की धारा 15 के माध्यम से किसानों को जमीन का मालिक बनाने का जो निर्णय किया, वह ऐतिहासिक है और इसके कारण राजस्थान भूमि सुधारों में देश में अग्रणी रहा।[56] उनका कहना था:

> परंपराओं में जकड़े प्रदेश में जमींदारी और जागीरदारी प्रथाओं की जड़ें गहरी होना स्वाभाविक था। सुखाड़िया ने भूमि सुधार का कुठार इन जड़ों पर चलाया। जितना भूमि सुधार का कार्य राजस्थान में सुखाड़िया के शासनकाल में हुआ, उतना भारत के किसी प्रांत में कहीं नहीं हुआ। सुखाड़िया को राजस्थान में पंचायतराज प्रथा के जन्मदाता और पोषक के रूप में देखकर उनकी चिंतन शैली और वास्तविक प्रजातंत्रात्मक भावना का परिचय पाया क्योंकि ग्राम पंचायतें हमारे प्रजातंत्र की आधारशिलाएं हैं। पंचायतराज के माध्यम से सुप्त और सदियों से पिछड़े ग्रामीण समाज में सामंतवाद के विरुद्ध की चेतना एवं आत्मकल्याण की भावना जाग्रत करते हुए देखा। पंचायत शासन प्रणाली में जो ग्राम विकास हुआ, वह सब सुखाड़िया का ही प्रतिबिंब है।[57]

1956 तक नवलकिशोर नगरपालिका के चेयरमैन रहे। उन्होंने दुबारा नगरपालिका का चुनाव नहीं लड़ा। 1957 तक जयपुर जिला बोर्ड के सदस्य के रूप में भी सक्रिय रहे। 1961 में उन्होंने पंचायत चुनावों में दावेदारी पेश की और दौसा पंचायत समिति के प्रधान चुने गए।[58] दूसरी तरफ, प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस के सामने एक नई चुनौती खड़ी हो रही थी।

1957 की चुनावी जीत में सुखाड़िया की व्यक्तिगत लोकप्रियता का योगदान तो था ही; यह भी एक तथ्य है कि तब कांग्रेस के सामने कोई बड़ी चुनौती नहीं थी। हनवंत सिंह की मृत्यु होने से जागीरदारों में कोई एक नेता नहीं था। उस समय जनसंघ एक प्रभावहीन पार्टी थी, रामराज्य परिषद भी सर्वत्र प्रभावी नहीं थी, हिन्दू महासभा भी राज्य में अपना अस्तित्व खो चुकी थी। लेकिन अगले चुनाव आने से पहले स्थिति पूरी तरह बदल गई। भारत के भूतपूर्व गवर्नर जनरल सी. राजगोपालाचारी ने राजा-महाराजाओं, सामंतों, उद्योगपतियों और दक्षिणपंथी लोगों को साथ लेकर स्वतंत्र पार्टी का गठन किया। राजस्थान में महारानी गायत्री देवी और भूतपूर्व डूंगरपुर रियासत के महारावल लक्ष्मण सिंह के जुड़ने से स्वतंत्र पार्टी को

---

* कुंभाराम को विधानसभा के शुरुआती तीन चुनावों तक टिकट नहीं दिया गया जबकि वे जनाधार के लिहाज से महत्वपूर्ण नेता थे। प्रथम चुनाव में नेहरू के मना करने के बावजूद कुंभाराम ने चुनाव लड़ा था। उन्होंने तर्क दिया कि नेहरू का संदेश मिलने तक नामांकन वापस लेने की समय सीमा समाप्त हो चुकी थी। अगस्त, 1955 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में जातिवाद का आरोप लगने के बाद कुंभाराम ने मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया। माना जाता है कि उन्हें कांग्रेस संसदीय बोर्ड की ओर से यह निर्देश मिला था। दूसरे विधानसभा चुनाव के बाद उन्हें राज्यसभा के लिए चुनकर राजस्थान से दूर करने की कोशिश की गई। (लॉरेंस एल. श्रेडर: राजस्थान/स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968, पृष्ठ 358)

**मथुरादास दो वर्ष बाद प्रदेश की राजनीति में लौटने में सफल रहे। 1959 में उन्हें प्रदेश अध्यक्ष का पद मिला। (लॉरेंस एल. श्रेडर: राजस्थान/ स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968, पृष्ठ 357)

मजबूत आधार मिल गया। 1962 के विधानसभा चुनाव में स्वतंत्र पार्टी के 93 में से 36 उम्मीदवार विजयी हुए। जनसंघ को भी मजबूती मिली और उसके 15 विधायक निर्वाचित हुए। कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला; बहुमत के लिए जरूरी 89 सीटों की जरूरत थी और कांग्रेस 88 सीटें ही जीत सकी।

जयनारायण व्यास ने भी राजस्थान में कांग्रेस के खिलाफ सघन अभियान चलाया। 1961 में पाली में प्रदेश संसदीय बोर्ड के सदस्यों का चुनाव करने के लिए बैठक हुई तो व्यास भी उम्मीदवार थे, लेकिन वे चुने नहीं जा सके। 1962 के चुनाव और उसके बाद व्यास ने कांग्रेस में बढ़ते भ्रष्टाचार और पक्षपात के विरोध में साहस से आवाज उठाई। जयपुर और बीकानेर में उनके नेतृत्व में राजस्थान के पुराने कांग्रेसियों के सम्मेलन हुए। उनमें राजनीतिक संस्था के गठन को लेकर काफी ऊहापोह रही, लेकिन यह संभव नहीं हो सका।[59] चुनाव के दौरान व्यास खुलकर प्रहार की मुद्रा में आ गए थे। उन्होंने सुखाड़िया पर पूंजीवादियों के संपर्क का व्यक्तिगत लाभ उठाने का आरोप लगाया। उन्होंने यह भी कहा कि राजस्व मंत्री दामोदरलाल व्यास ने महाराजा मान सिंह से मिलकर क्षमादान मांगा। व्यास ने मथुरादास और नाथूराम मिर्धा पर कांग्रेस के फंड का पार्टी के विरोध में इस्तेमाल करने का आरोप लगाया। यहां तक कि अलवर जिले के दौरे में उन्होंने पूरे जिले के सभी कांग्रेस उम्मीदवारों को हराने का आह्वान किया और वहां के तत्कालीन सांसद को विशेष रूप से निशाने पर लेते हुए उन्हें 'भ्रष्ट कांग्रेसी नेता का निकृष्ट उदाहरण' बताया।[60]

चुनाव के बाद मथुरादास की जगह प्रदेश अध्यक्ष बनाए गए हरिदेव जोशी भी मानते थे कि बड़े स्तर पर भितरघात हुआ। राष्ट्रीय नेतृत्व ने इसकी जांच के लिए पूर्व केंद्रीय मंत्री खंडूभाई देसाई को नियुक्त किया। देसाई की रिपोर्ट के कुछ हिस्से समय से पूर्व ही प्रचारित हो गए। इसमें मुख्य दोष कुंभाराम पर आरोपित किया गया था। मथुरादास और मिर्धा पर भी आंशिक रूप से कुछ आरोप लगाए गए थे। कांग्रेस में विस्फोटक स्थिति पैदा हो गई और सुखाड़िया गुट तथा कुंभाराम गुट ने खुलकर एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप शुरू कर दिया। कुंभाराम ने इस रिपोर्ट को एकपक्षीय बताया। उन्होंने कहा कि देसाई ने जब राजस्थान में जांच-पड़ताल की थी तो न तो उन्हें बुलाया गया था और न ही उनसे कोई पूछताछ की गई थी। कांग्रेस अनुशासन समिति ने कुंभाराम के विरुद्ध कार्रवाई करने का फैसला किया। यह तय हुआ कि यदि वे चाहें तो कांग्रेस के साधारण सदस्य रह सकते हैं, लेकिन अन्य सभी पदों से उन्हें इस्तीफा देना पड़ेगा। हालांकि उनके राज्यसभा सदस्य रहने पर आपत्ति नहीं थी। कुंभाराम का कहना था कि उन्हें यह फैसला मंजूर नहीं है और वे किसी पद से इस्तीफा नहीं देंगे। वहीं, सुखाड़िया गुट ने अनुशासन समिति के फैसले का स्वागत किया और कहा कि कुंभाराम के खिलाफ कार्रवाई अवश्य की जाए। कुंभाराम मांग कर रहे थे कि सारे मामले की पुन: जांच करवाई जाए और दोषी व्यक्ति को सजा दी जाए। उन्होंने मंत्रियों की हार का कारण उनकी घटती हुई लोकप्रियता और उनके कारनामों को बताया। उधर, सुखाड़िया गुट का कहना था कि कुंभाराम ने जयपुर महाराजा से मिलकर मंत्रियों को हरवाया।[61]

राजस्थान कांग्रेस के नेताओं का दिल्ली में जमावड़ा शुरू हुआ। कुंभाराम के विरुद्ध उठाए जाने वाले अनुशासनात्मक कदमों पर गहन विचार-विमर्श हुआ। राज्य में कांग्रेस मंत्रिमंडल की स्थिति नाजुक थी, इसलिए नेतृत्व चिंतित था कि अगर कुंभाराम निर्णय को नहीं मानेंगे तो उन्हें कांग्रेस से निष्कासित करना होगा, जिसका संभावित परिणाम यह हो सकता है कि कुछ सदस्य उनके साथ कांग्रेस छोड़कर चले जाएं। सुखाड़िया और जोशी दोनों इस बात पर तत्पर थे कि कुंभाराम को कांग्रेस से निकाल दिया जाए। उनका मानना था कि इससे मंत्रिमंडल पर कोई असर नहीं पड़ेगा।[62] वहीं, कुंभाराम के समर्थकों का कहना था कि अनुशासनात्मक कार्रवाई किए जाने पर कम-से-कम 30 विधायक पार्टी से इस्तीफा दे देंगे। 29 विधायकों, 12 जिला कांग्रेस कमेटी अध्यक्षों तथा 12 जिला परिषद प्रमुखों का दल कुंभाराम का समर्थन करते हुए दिल्ली में देसाई आयोग के सामने प्रस्तुत हुआ। इसके बाद नेहरू ने कुंभाराम से बात की। कुंभाराम ने कहा कि वे नेहरू की इच्छा के अनुसार चलेंगे। अगस्त, 1962 में प्रदेश कांग्रेस कमेटी कार्यकारिणी और प्रदेश चुनाव समिति से कुंभाराम का इस्तीफा ले लिया गया।[63]

सुखाड़िया की स्थिति मजबूत होती गई। नेहरू ने भी उन्हें राजस्थान के लिए जरूरी माना। 1963 में जब कामराज प्लान के तहत पार्टी के वरिष्ठ नेताओं को पद छोड़कर सांगठनिक काम करने के लिए कहा जा रहा था, तब सुखाड़िया ने भी पद रिक्त करने की इच्छा के साथ नेहरू से भेंट की। देर रात तक बात करने के बाद नेहरू ने सुखाड़िया से पूछा, 'राजस्थान का क्या होगा? इस बारे में निश्चिंत नहीं हो सकता। तुम्हें पद पर बने रहना चाहिए।'[64]

नेहरू के बाद

वह 1962 के युद्ध के बाद का निराशापूर्ण दौर था। मित्र देश समझे जा रहे चीन द्वारा किए गए आक्रमण ने राष्ट्रीय नेतृत्व को तितर-बितर कर दिया था और कांग्रेस में वैचारिक फूट की जमीन तैयार होने लगी थी। नेहरू को दिल का दौरा पड़ा और उनकी तबीयत तेजी से बिगड़ रही थी। डेढ़ दशक के समय में देश में पहली बार यह चर्चा शुरू हुई कि नेहरू के बाद प्रधानमंत्री कौन बनेगा। कांग्रेस के अंदरखाने में भी इस मुद्दे पर मंत्रणा तेज होने लगी। उस दौर में सिंडिकेट के नाम से मशहूर वरिष्ठ कांग्रेसी नेताओं के समूह ने तिरुपति में बैठक करके इस बारे में चर्चा की। वहां के. कामराज, एस. निजलिंगप्पा, नीलम संजीव रेड्डी, एस.के. पाटिल, श्रीनिवास मलैया और अतुल्य घोष मौजूद थे। यह महसूस किया जा रहा था कि नेहरू अपनी बेटी इंदिरा की सलाहों पर अमल करके सरकार चला रहे हैं। देर रात तक चली इस बैठक में नेहरू के उत्तराधिकारी के रूप में मोरारजी देसाई और लालबहादुर शास्त्री के नाम पर चर्चा हुई और अंततः शास्त्री के नाम पर सहमति बनी। 27 मई, 1964 को नेहरू की मृत्यु हो गई और सिंडिकेट नेताओं की योजना के अनुसार शास्त्री ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली*।[65]

इसके बाद आलाकमान की कोशिश रही कि राजस्थान में जो तनाव और मतभेद बने हुए हैं, उनको समाप्त करके एक सुदृढ़ सरकार की स्थापना की जाए। यह महसूस किया गया कि जब तक कुंभाराम को सत्ता से दूर रखा जाएगा, तब तक सुखाड़िया सरकार स्थिर नहीं रह

सकेगी। सुखाड़िया को इस बात के लिए तैयार किया गया कि वे कुंभाराम को पुनः मंत्रिमंडल में शामिल करें। कम्युनिस्ट विधायक श्योपत सिंह का चुनाव रद्द किए जाने से खाली हुई हनुमानगढ़ सीट से कुंभाराम को चुनाव लड़वाया गया। सुखाड़िया ने उनके पक्ष में चुनावी दौरे किए।[66] 19 अक्टूबर, 1964 को कुंभाराम उपचुनाव में निर्वाचित हुए। 14 नवम्बर को उन्हें मंत्रिमंडल में शामिल किया गया। 2 जून, 1965 को मंत्रिमंडल का तीसरा विस्तार हुआ, जिसमें हरिदेव जोशी को भी मंत्री पद पर नियुक्त किया गया। जोशी को मंत्री बना दिए जाने के बाद कुंभाराम के जाट गुट ने प्रदेश अध्यक्ष के चुनाव के लिए दबाव बनाना शुरू किया।[67]

दूसरी तरफ, राज्य के पुराने कांग्रेस नेताओं का पार्टी से मोहभंग होता जा रहा था। यहां तक कि जनसंघ ने कच्छ समझौते** के विरोध में 16 अगस्त, 1965 को संसद के समक्ष प्रदर्शन किया तो राजस्थान के प्रभावी कांग्रेस नेताओं ने मंच पर जाकर प्रदर्शन की सराहना की। इनमें माणिक्यलाल वर्मा, टीकाराम पालीवाल और जोधपुर के पूर्व सांसद जसवंतराज मेहता शामिल थे।[68]

10–11 जनवरी, 1966 की रात आजाद भारत की सबसे रहस्यमय खबर लेकर आई। पाकिस्तान के साथ युद्धविराम के लिए सोवियत संघ के ताशकंद में समझौते पर हस्ताक्षर करने गए प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री की अज्ञात कारणों से मौत हो गई। हड़कंप मच गया। पूरे देश में आधी रात को टेलीफोन की घंटी बजने लगी। सभी महत्वपूर्ण नेताओं को फौरन दिल्ली पहुंचने का फरमान मिला। रात के 3 बजकर 15 मिनट पर राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कार्यकारी प्रधानमंत्री के रूप में गुलजारीलाल नंदा को शपथ दिलवाई। राष्ट्रीय शोक की इस घड़ी में भी राजनीतिक खेमेबाजी शुरू होने में देर नहीं लगी। इस सवाल पर चर्चा तेज होने लगी कि शास्त्री की जगह कौन लेगा। सभी जानते थे कि नंदा को केवल खानापूर्ति के लिए रखा गया है और न तो वे स्वयं स्थायी प्रधानमंत्री बनने का इरादा रखते हैं और न ही अन्य नेताओं द्वारा उन्हें टिकने दिया जाएगा। भारत सकते की स्थिति में था और एक बार फिर उत्तराधिकारी चुनने का बड़ा भार कांग्रेस पर आ गया। पार्टी के दिग्गज नेताओं, जिन्हें सिंडिकेट कहा जाता था, का खयाल था कि प्रधानमंत्री उनमें से ही कोई होना चाहिए।[69] उस समय प्रधानमंत्री पद के तीन दावेदार देखे जा रहे थे.. नेहरू के जमाने से ही सशक्त उम्मीदवार माने जा रहे मोरारजी देसाई, सिंडिकेट के रूप में किंगमेकर की भूमिका निभाने वाले गुट के अग्रणी नेता के. कामराज और गांधी–नेहरू की विरासत के साथ अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने में लगी इंदिरा गांधी।

सुबह होते ही दिल्ली में हर प्रदेश के बड़े नेताओं का जमावड़ा लगना शुरू हो गया। सभी अपने पसंदीदा नेता को प्रधानमंत्री बनाने के लिए जरूरी समीकरण बैठाने में जुट गए। राजस्थान के मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया, बंगाल कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष अतुल्य घोष, महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री वसंतराव नाइक जैसे कद्दावर नेता वहां पहुंच चुके थे, जिनके खेमे को अनौपचारिक रूप से सिंडिकेट कहा जाता था। यह खेमा दिल्ली की राजनीति को मनचाहे तरीके से चलाने का माद्दा रखता था। सिंडिकेट नेता किसी भी कीमत पर मोरारजी को प्रधानमंत्री नहीं बनने देना

चाहते थे। उन्हें पता था कि मनमौजी और दबंग व्यक्तित्व वाले मोरारजी प्रधानमंत्री बनने के बाद और भी ताकतवर हो जाएंगे और सिंडिकेट का सत्ता से नियंत्रण खत्म हो जाएगा। इंदिरा के धुर विरोधी माने जाने वाले सुखाड़िया के लिए भी मोरारजी को रोकना ही पहली प्राथमिकता थी। दूसरी ओर, अतुल्य घोष सहित कई नेता कामराज को प्रधानमंत्री बनाने के इरादे से दिल्ली आए थे। घोष के बारे में माना जा रहा था कि वे कामराज के बाद राष्ट्रीय अध्यक्ष बनने की चाहत के कारण उन्हें प्रधानमंत्री बनाने पर तुले हुए थे। लेकिन कामराज को अपनी सीमाओं का पता था। उनकी समस्या थी, 'भारत के प्रधानमंत्री को हिंदी और अंग्रेजी दोनों आनी चाहिए। मुझे दोनों ही नहीं आती।' कामराज के सहयोगी और मद्रास के मुख्यमंत्री के रूप में उनके उत्तराधिकारी एन. भक्तवत्सलम के अनुसार, 'कामराज को डर था कि अगर मुकाबले की नौबत आई तो वे मोरारजी देसाई को नहीं हरा पाएंगे, जो उत्तर पश्चिम के थे, लेकिन उत्तर प्रदेश की होने के कारण इंदिरा गांधी उन्हें आसानी से मात दे सकती थीं।'[70]

सुखाड़िया और घोष घनिष्ठ मित्र माने जाते थे। बड़ी संख्या में कलकत्ता में बसे मारवाड़ी व्यापारियों का तंत्र इन दोनों नेताओं के करीब आने का महत्वपूर्ण कारण था। सुखाड़िया से मुलाकात होने पर घोष ने कहा कि उनके मतानुसार शास्त्री का उत्तराधिकारी कामराज को होना चाहिए। सुखाड़िया ने कभी इंदिरा के प्रति नरम रवैया नहीं रखा था, लेकिन अनुभवी राजनेता होने के कारण वे बखूबी जानते थे कि मोरारजी के सामने सीधे मुकाबले में कामराज नहीं टिक पाएंगे और केवल इंदिरा ही मोरारजी को परास्त करने का माद्दा रखती हैं। सुखाड़िया ने कामराज के नाम को खारिज नहीं किया, लेकिन घोष को सलाह दी कि दूसरी पसंद के रूप में वे इंदिरा को चुनें। घोष इसके लिए सहमत हो गए क्योंकि उन्हें लगता था कि 1964 की तरह (नेहरू के देहांत के बाद) इंदिरा इस बार भी प्रधानमंत्री बनने की इच्छुक नहीं होंगी। लेकिन कामराज को प्रधानमंत्री के रूप में देखने की तीव्र उत्सुकता के कारण वे उनके सभी विरोधियों को ठीक से टटोल लेना चाहते थे। उन्होंने सुखाड़िया से इंदिरा के मनोभावों का पता लगाने के लिए कहा। 12 जनवरी को सुखाड़िया ने इंदिरा से मुलाकात की और घोष को बताया कि वे कांग्रेस नेताओं की इच्छा के अनुसार चलने की बात कह रही हैं।[71]

यह स्पष्ट हो गया था कि पार्टी का समर्थन मिलने पर इंदिरा प्रधानमंत्री पद अस्वीकार नहीं करने वाली थीं। इंदिरा ने घोषणा की कि कामराज उनके नेता हैं और कांग्रेस अध्यक्ष भी हैं; वे जो कहेंगे, वही वे करेंगी। इससे कामराज और उनके मित्रों को लगा कि इंदिरा उनकी

---

*इंदिरा के अनुसार, 'शास्त्री अचानक ही प्रधानमंत्री नहीं बने थे। उन दिनों एक अमेरिकी पत्रकार यह पुस्तक लिख रहा था कि नेहरू के बाद प्रधानमंत्री के रूप में उनका उत्तराधिकारी कौन होगा? वह मुझसे भी मिला और मुझे यह कहने के लिए क्षण भर नहीं ठिठकना पड़ा कि वर्तमान परिस्थितियों में अगर अचानक कोई परिवर्तन हो जाए तो नेहरू के उत्तराधिकारी केवल शास्त्री हो सकते हैं।'
(इंदिरा गांधी: चुने हुए भाषण और लेख, 1972-1977, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ 815)
**पाकिस्तान ने फरवरी, 1965 से कच्छ के रण में घुसपैठ शुरू कर दी। भारतीय सेनाओं ने शत्रु के मुकाबले और प्रत्याक्रमण के लिए मोर्चेबंदी की तो ब्रिटेन के प्रधानमंत्री मध्यस्थता के लिए बीच में कूद पड़े। उनकी अपील पर भारत के प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने पहले तो युद्ध विराम स्वीकार कर लिया, बाद में राष्ट्रमंडल के प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में पाकिस्तान के साथ अनौपचारिक बातचीत के परिणामस्वरूप कच्छ के रण के विवाद को पंच फैसले के लिए सुपुर्द करने का फैसला कर लिया। यहां तक कि संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव के आश्वासन पर भारत ने कारगिल की चौकियों को खाली कर दिया। इस कच्छ समझौते के खिलाफ जनसंघ ने देश भर में जनमत संगठित किया और संसद भवन के समक्ष विशाल प्रदर्शन किया।

सलाह से काम करेंगी और कांग्रेस में उनका वर्चस्व बना रहेगा। कामराज पर तब भी अपनी उम्मीदवारी की घोषणा करने के लिए दबाव बनाया जा रहा था, लेकिन वे असमंजस में थे। 13 जनवरी को वर्किंग कमेटी की बैठक हुई। बैठक के बाद सुखाड़िया अन्य नेताओं के साथ कामराज से मिलने पहुंचे। कामराज ने स्पष्ट फैसला लेते हुए प्रेस को यह सूचना भेजने के लिए कह दिया कि वे उस वर्ष प्रधानमंत्री के बजाए पार्टी अध्यक्ष बने रहना पसंद करेंगे।[72]इसके बाद इंदिरा के लिए राह और आसान हो गई। इस बीच जगजीवन राम, यशवंतराव चव्हाण जैसे नाम भी चर्चा में आए लेकिन आखिरकार सबने दावेदारी छोड़ दी। अंत में केवल इंदिरा और मोरारजी मैदान में बचे। कामराज ने राज्यों के मुख्यमंत्रियों को साथ लेकर इंदिरा के पक्ष में भारी प्रचार किया।[73] 19 जनवरी, 1966 को पहली बार भारत के प्रधानमंत्री पद के लिए सीधा मतदान हुआ। अपनी जीत को लेकर आश्वस्त और प्रेस में लगातार दावे कर रहे मोरारजी को 169 वोट मिले और 335 वोटों के साथ सनसनीखेज जीत हासिल करके इंदिरा भारत की पहली महिला प्रधानमंत्री बनीं।[74]

उसी महीने में सुखाड़िया ने कांग्रेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष कामराज से मुलाकात में मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा देने की इच्छा जताई। जयपुर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो सुखाड़िया ने कांग्रेस का महासचिव बनने का प्रस्ताव रखा, लेकिन 1967 के चुनाव में राजा-महाराजाओं के कड़े मुकाबले की संभावना देखते हुए उन्हें पद पर बने रहने को कहा गया।[75] 15 फरवरी को कांग्रेस विधायक दल के नेता का चुनाव होना था। कई दावेदारों के नाम चल रहे थे, लेकिन किसी एक नाम पर विधायकों में एकता नहीं हो पा रही थी। तत्कालीन वित्त मंत्री बालकृष्ण कौल, कृषि मंत्री नाथूराम मिर्धा और राजस्व मंत्री कुंभाराम के नाम उभरकर सामने आए। इनमें एक भी सुखाड़िया की पसंद का नहीं था। कुंभाराम ने घोषणा की कि सुखाड़िया जिसे भी मनोनीत कर देंगे, उसे वे स्वीकार कर लेंगे।[76] पुनः गुटबंदी शुरू होने की आशंका को ध्यान में रखकर कामराज ने सुखाड़िया को मुख्यमंत्री पद नहीं छोड़ने की सलाह दी।[77] आखिरकार, सुखाड़िया ने इस्तीफा देने का विचार रद्द कर दिया। इसके दो परिणाम निकले; एक, सुखाड़िया कांग्रेस के एकछत्र नेता हो गए। दूसरा, विधायक दल में कई गुट बन गए।

22 मई, 1966 को प्रदेश अध्यक्ष का चुनाव हुआ।[78] सुखाड़िया गुट की ओर से रामकिशोर व्यास को उम्मीदवार बनाया गया था। उधर, अनेक दिनों के विचार-विमर्श के बाद कुंभाराम गुट के किसी व्यक्ति की उम्मीदवारी तय नहीं हो पा रही थी। चुनाव का दिन बिल्कुल नजदीक आ गया, लेकिन कुंभाराम गुट का उम्मीदवार सामने नहीं था। चुनाव की पूर्व रात्रि को हुई बैठक में कुंभाराम ने खुद चुनाव लड़ने का फैसला किया।[79] उन्हें व्यास के 142 वोटों के मुकाबले केवल 52 वोट मिले।[80]

सुखाड़िया और कुंभाराम के बीच मतभेद बढ़ता गया। कुंभाराम सरकारी नीतियों और प्रक्रिया की सार्वजनिक तौर पर आलोचना करने लगे। स्थिति यह बनी कि कुंभाराम का मंत्रिमंडल से निष्कासित होना तय माना जाने लगा। उनके साथ माने जाने वाले हरिश्चंद्र, दौलतराम सारण, कमला वगैरह भी सुखाड़िया से नाखुश थे। आगे चलकर जब कटुता बहुत बढ़ गई तो कुंभाराम

गुट का मंत्रिमंडल में बने रहना मुश्किल हो गया। 20 दिसम्बर, 1966 को कुंभाराम और हरिश्चंद्र ने मंत्रिमंडल तथा पार्टी से इस्तीफा दे दिया। इसके साथ ही, दौलतराम सारण और कमला बेनीवाल ने भी अपने त्यागपत्र प्रेषित कर दिए।[81] हरिश्चंद्र, दौलतराम और कमला ने संयुक्त इस्तीफा भेजा। कुंभाराम ने अपने संक्षिप्त इस्तीफे में लिखा:

> 'माननीय सुखाड़िया जी,
> कारण आप जानते हैं। अवसर मिला तो मैं भी लिख भेजूंगा। इस पत्र को मंत्रिमंडल से मेरा त्यागपत्र समझें। मां मरुधरा की वाणी में:
> *सांम पड़ोसी झोपड़ो, नित उठ करतो राड़।*
> *आधो बगड़ बुहार तो, आखो बगड़ बुहार*।।*[82]

उसी दिन कम-से-कम 12** अन्य विधायकों ने अपने इस्तीफे सौंप दिए।[83]

रामकरण की अलग राह

कांग्रेस से अलग हुए नेताओं ने एक नई पार्टी के गठन के प्रयास शुरू किए। इन गतिविधियों को तब और बल मिला, जब रामकरण जोशी भी उनके साथ आ गए। 1962 के विधानसभा चुनाव के संबंध में खंडूभाई देसाई की जांच के दौरान रामकरण ने कुंभाराम को कांग्रेस से निकालने की मुहिम का नेतृत्व किया था।[84] लेकिन सुखाड़िया सरकार के प्रति असंतोष ने इन नेताओं को एकजुट कर दिया। दिसम्बर, 1966 के अंतिम सप्ताह में यह तय हो गया कि नई पार्टी का नाम जनता पार्टी होगा; रामकरण इसके अध्यक्ष और दौलतराम सारण सचिव चुने गए।[85] जनता पार्टी के उद्देश्य के बारे में बताया गया:

> 'जनता पार्टी की स्थापना जनता को सुख, शांति और समृद्धि दिलाने के लिए हुई है। यह राजस्थान की राजनीति में एक नए युग का आरंभ है क्योंकि लंबे समय से राजस्थान के कुछ कांग्रेसजन ईमानदारी से यह अनुभव कर रहे थे कि कांग्रेस का वर्तमान स्वरूप जनभावनाओं के प्रतिकूल आचरण कर रहा है। जनता के अभाव-अभियोग बढ़ जाने से आज स्थिति यहां तक पहुंच गई है कि जनता की अनिवार्य आवश्यकताओं की भी उपेक्षा होने लग गई है, जिससे जनता को भय, संकट और चिंता का मुकाबला करना पड़ रहा है।'[86]

---

*झोंपड़ी में शाम को साथ रहने वाला पड़ोसी रोजाना उठकर लड़ाई करता था। नाराज होकर दूसरे पड़ोसी ने कहा कि तुम आधी जमीन पर सफाई करते हो, इसलिए अब पूरी सफाई तुम ही संभालो।

**तत्कालीन समाचारों में अधिकतम 25 इस्तीफे होने के उल्लेख मिलते हैं, लेकिन कुंभाराम, हरिश्चंद्र, दौलतराम, कमला और एक सप्ताह पहले इस्तीफा दे चुके उप मंत्री भीम सिंह सहित कुल 17 विधायकों के ही इस्तीफे की पुष्टि होती है। इन सभी ने आगे चलकर जनता पार्टी की सदस्यता भी ली। (लॉरेंस एल. श्रेडर: राजस्थान/स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968, पृष्ठ 380)

जनता पार्टी के कार्यक्रमों में प्रशासन में सुधार, न्याय प्रदान करने की दायित्वपूर्ण पद्धति, सामाजिक-आर्थिक शोषण की समाप्ति और कृषक समाज की ऋण मुक्ति आदि को सम्मिलित किया गया था। यह पार्टी भूमि कर की समाप्ति और ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम बैंक की स्थापना करना चाहती थी। जनता पार्टी के गठन और रामकरण के उससे जुड़ने से दौसा की राजनीति में अचानक उबाल आ गया। तब तक कांग्रेस के दौसा जिले के प्रमुख नेता रामकरण ही थे और उन्हें 'दौसा के वीर रामकरण' के रूप में पहचान मिली हुई थी। हालांकि कांग्रेस के टिकट पर वे 1957 और 1962 में चुनाव हारे थे। इसके बावजूद पंचायत समिति और नगरपालिका में कांग्रेस का अधिकार बना रहा। इसका प्रमुख श्रेय नवलकिशोर को था, जो गुटबाजी से अलग रहते हुए कार्यकर्ताओं को एकजुट रखने के लिए सतत प्रयासरत थे। राजनीति से धन कमाने को नवलकिशोर अनुचित समझते थे। उनका मानना था कि राजनीति समाजसेवा का माध्यम है। इसलिए राजनीतिक गतिविधियों के बीच भी उन्होंने वकालत जारी रखी।

दौसा के बदलते राजनीतिक समीकरण में नवलकिशोर की भूमिका अचानक महत्वपूर्ण हो गई। उस समय वैसे भी दौसा लोकसभा और विधानसभा सीटें स्वतंत्र पार्टी के पास थीं। यहां तक कि सपोटरा से भी जनसंघ के विधायक थे। कांग्रेस विरोधी माहौल में सामान्य तौर पर माना जा रहा था कि नवलकिशोर आखिरकार अपने शैक्षिक और राजनीतिक गुरु रामकरण के साथ ही खड़े होंगे। लेकिन नवलकिशोर कांग्रेस के प्रति पूरे निष्ठावान बने रहे। उस समय वे जिला कांग्रेस कमेटी के महामंत्री थे। रामकरण ने नवलकिशोर से जनता पार्टी में आने को कहा। नवलकिशोर का जवाब था, 'माट साहब! कांग्रेस छोड़ने में कोई फायदा नहीं है। हमें अधिक से अधिक टिकटें प्राप्त करने की लड़ाई लड़नी चाहिए। उसके बाद उनको जिताने के लिए भरपूर कोशिश करनी चाहिए। इसके बाद सोचना चाहिए कि सुखाड़िया या किसी और के विषय में क्या करना चाहिए।' उन्होंने रामकरण को साफ कहा, 'मैं तो कांग्रेस नहीं छोडूंगा।' रामकरण ने उलाहना दिया, 'तू तो बावळा है।' नवलकिशोर ने जिले के कांग्रेसजनों के सामने भी यही बात स्पष्ट रूप से रखी कि कोई रामकरण के साथ जाना चाहे तो वे मना नहीं करेंगे, लेकिन वे खुद कांग्रेस नहीं छोड़ेंगे। हालात ये बने कि दौसा क्षेत्र के प्रधान रामसहाय मीणा, भगवानसहाय शर्मा सहित ज्यादातर कांग्रेसी नेता रामकरण के साथ जनता पार्टी में चले गए। इन नेताओं के चले जाने से स्थानीय कांग्रेस इकाइयों पर कर्ज भी बकाया रह गया था, जिसका भार कनिष्ठ कार्यकर्ताओं पर पड़ा।[87]

नवलकिशोर अपने तीन प्रमुख सहयोगियों नंदकिशोर आर्किटेक्ट, विश्वप्रिय नागर एडवोकेट और रेवड़मल चौधरी खैरवाड़ के साथ कांग्रेस को पुनः संगठित करने में जुट गए। लेकिन वे दिन नवलकिशोर के लिए अग्निपरीक्षा के साथ-साथ भारी वेदना लिए हुए थे। रामकरण से अलग राह पकड़ने के दूसरे दिन सुबह हुई तो नवलकिशोर गा रहे थे:

जीवन के सफर में हम जिनको समझे थे हमारे साथी हैं
दो कदम चले, फिर छोड़ गए.. कोई यहां गिरा, कोई वहां गिरा।[88]

जयपुर में खूनखराबा

13 वर्षों से सत्तारूढ़ होते हुए भी मोहनलाल सुखाड़िया पार्टी में संपूर्ण वर्चस्व स्थापित नहीं कर पा रहे थे। इन परिस्थितियों में 1967 के चुनाव आए। कई नेताओं ने चुनाव में कांग्रेस से मिले टिकट लौटा दिए और कांग्रेस की प्राथमिक सदस्यता छोड़ दी।[89] स्थिति यह हो चली थी कि सुखाड़िया के राजनीतिक गुरु रहे माणिक्यलाल वर्मा भी विरोध में आ गए। उन्होंने 1967 का लोकसभा चुनाव नहीं लड़ने का फैसला किया। वे कांग्रेस के सिर्फ प्राथमिक सदस्य भर रह गए। प्रदेश कांग्रेस कमेटी और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की सदस्यता भी छोड़ दी।[90]

वह भारतीय राजनीति के स्वरूप के लिए निर्णायक वर्ष था। यह आखिरी मौका था, जब लोकसभा और विधानसभा के चुनाव साथ हुए। इन चुनावों में कांग्रेस की घटती लोकप्रियता के संकेत मिले। पूर्व के लोकसभा चुनावों में हर बार 350 से अधिक सीटें जीतती आ रही कांग्रेस 283 सीटों पर सिमट गई। इंदिरा गांधी के सात मंत्री चुनाव हार गए। एस.के. पाटिल, अतुल्य घोष और कामराज जैसे कद्दावर नेता अपनी सीटें नहीं बचा सके। 16 में से 8 राज्यों में ही कांग्रेस को बहुमत मिला। कामराज के गृह राज्य मद्रास में भी कांग्रेस की सरकार नहीं बनी। 6 प्रदेश अध्यक्ष और 4 मुख्यमंत्री चुनावी मैदान में परास्त हो गए।[91] उधर, राजस्थान में सुखाड़िया पार्टी को बहुमत नहीं दिला पा रहे थे। लेकिन उन्होंने अपनी व्यक्तिगत हैसियत को सुधारा। विधानसभा क्षेत्रों में सुखाड़िया के गढ़ मेवाड़ की 36 सीटों में से विपक्ष आधा दर्जन सीटें ही ले जा सका। यहां तक कि 1962 के लोकसभा चुनाव में जीत का कीर्तिमान कायम करने वाली महारानी गायत्री देवी 1967 का लोकसभा चुनाव जीतने के बावजूद उसी दौरान मालपुरा विधानसभा सीट से कांग्रेस के दामोदरलाल व्यास के मुकाबले नौ हजार से ज्यादा वोटों से चुनाव हार गईं।

चुनाव के ठीक पहले गठित होने के कारण जनता पार्टी ने चुनाव चिह्न के लिए आवेदन करने की पात्रता खो दी। इसके कारण पार्टी ने सदस्यों को अन्य दलों के चुनाव चिह्न पर या निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ने की छूट दी। हरिश्चंद्र* ने स्वयं जनसंघ के चिह्न पर चुनाव लड़ा, जबकि वे जनसंघ के सदस्य भी नहीं थे।[92] 184 विधानसभा सीटों पर हुए चुनाव में कांग्रेस के 89, जनसंघ के 22, स्वतंत्र पार्टी के 48, संयुक्त समाजवादी दल के 8, भाकपा का 1 और 16 निर्दलीय प्रत्याशी विजयी हुए। दामोदर व्यास को दो सीटों (टोंक और मालपुरा) पर जीत मिली थी, इसलिए कांग्रेस की वास्तविक संख्या 88 रह गई। इस प्रकार किसी भी दल को बहुमत प्राप्त नहीं हो सका। गैर कांग्रेसी विधायकों ने मिलकर संयुक्त विरोधी दल बना लिया। इस दौरान माणिक्यलाल वर्मा ने सुखाड़िया से मिलकर सलाह दी कि वे प्रजातंत्र के हित में विपक्ष को मौका दें।[93]

विपक्ष ने बहुमत होने का दावा किया। राज्यपाल डॉ. संपूर्णानंद ने फैसले को लटकाए

---

18 मार्च, 1967 को हरिश्चंद्र का अचानक दिल्ली में देहांत हो गया। उनकी मृत्यु इतनी आकस्मिक थी कि उसके पीछे कोई षडयंत्र होने की संभावना मानी गई। (चौधरी कुंभाराम आर्य स्मृति ग्रंथ, चौधरी कुंभाराम आर्य मेमोरियल ट्रस्ट, जयपुर, 1999, पृष्ठ, 98-99)

रखा। इससे भ्रम की स्थिति पैदा हो गई। विपक्ष को लग रहा था कि राज्यपाल पर कांग्रेस की सरकार बनाए रखने का दबाव है, खास तौर पर उन हालात में, जब कांग्रेस पहले ही 6 राज्यों में चुनाव हार चुकी थी। जयपुर में राजनीतिक तनाव बढ़ता जा रहा था। विपक्ष के विधायकों को कानोता किले में बाड़ाबंदी में रखा हुआ था। दूसरी ओर, जयपुर की सिविल लाइंस (राजभवन सहित मुख्यमंत्री-मंत्रियों का आवासीय क्षेत्र) में धारा 144 लगा दी गई और कांग्रेस को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित कर लिया। इसके खिलाफ विपक्ष ने माणक चौक में सभा बुलाई, जिसमें विशाल संख्या में जनता एकत्रित हुई।[94] इस सभा को भैरोंसिंह शेखावत, सतीशचंद्र अग्रवाल, महारावल लक्ष्मण सिंह, ठाकुर मदनसिंह दांता आदि विपक्ष के नेताओं ने संबोधित किया। भाषण उग्र और सुखाड़िया के खिलाफ थे। जनसभा का वातावरण भी गर्म और जोशीला था। जब ठाकुर मदनसिंह दांता ने अपना भाषण समाप्त किया और मंच के एकदम आगे आकर कमर में लटकी म्यान से तलवार निकाल ली तो पूरी सभा में सन्नाटा छा गया। उन्होंने नंगी तलवार से अपना अंगूठा चीरा और उससे बहते खून से महारानी गायत्री देवी के भाल पर तिलक करके संघर्ष का आह्वान कर दिया। इस घटना से पुलिस अधिकारी चौकन्ने हो गए और जयपुर में उत्तर प्रदेश की पीएसी तथा आरएसी की अतिरिक्त बटालियन नियुक्त करने का फैसला हुआ।[95]

जनसभा में विपक्ष के विधायकों का परिचय करवाकर बहुमत भी दिखाया गया। दूसरे दिन, जबकि कांग्रेस की सरकार को शपथ दिलवाई जानी थी, विपक्ष के नेताओं ने लोगों की भीड़ के साथ राजभवन की ओर बढ़ना शुरू किया। जैसे ही वे प्रतिबंधित क्षेत्र में पहुंचे तो पुलिस ने उन पर आंसू गैस छोड़ी और लाठीचार्ज किया। जयपुर शहर में कर्फ्यू लगा दिया गया। मान सिंह और गायत्री देवी इसके खिलाफ राष्ट्रपति और केंद्रीय गृहमंत्री से मिले तो कर्फ्यू हटा लिया गया। लेकिन जब लोग अपने घरों से बाहर निकलकर हमेशा की तरह सड़कों पर एकत्रित होने लगे तो पुलिस ने उन पर गोलियां चलाईं*। 9 लोगों की मृत्यु हो गई और 49 घायल हुए।[96] इसके बाद राजस्थान में राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया।

राजनीतिक अस्थिरता के उस वातावरण में जयपुर में बड़ी चौपड़ पर कांग्रेस की एक विशाल जनसभा हुई। उपप्रधानमंत्री मोरारजी देसाई और आंध्रप्रदेश के मुख्यमंत्री के. ब्रह्मानंद रेड्डी सरीखे राष्ट्रीय स्तर के अग्रणी नेताओं और मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया सहित राजस्थान के सभी वरिष्ठ कांग्रेस नेता मंचासीन थे। बड़ी चौपड़ से जौहरी बाजार में देवड़ी जी के मंदिर तक लोगों का हुजूम था। रेड्डी ने अपना भाषण अंग्रेजी में दिया। इस भाषण का तत्काल हिन्दी अनुवाद करके जनता को सुनाने का जिम्मा नवलकिशोर ने संभाला। जब उन्होंने जनसभा में रेड्डी के भाषण का अनुवाद किया तो जयपुर शहर के कांग्रेस कार्यकर्ता और सभा में उपस्थित हजारों लोग उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। वहीं, धाराप्रवाह

*जयपुर के एक पत्रकार अनुसूयाप्रसाद थपलियाल ने लिखा कि 94 राउंड गोलियां चलीं। सेना में रह चुके थपलियाल ने गोली की हर आवाज पर अपनी डायरी में छोटी लकीरें चिह्नित करना शुरू कर दिया था। उनकी गवाही के आधार पर जांच करने वाले जस्टिस भगवतीप्रसाद बेनी ने इस प्रणाली को सच्चाई के करीब माना। आंकड़े भी इसी संख्या के आसपास पहुंचते थे। (श्याम आचार्य: तेरा तुझको अर्पण, ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2015, पृष्ठ 61)

और शानदार अनुवादित भाषण ने सुखाड़िया समेत सभी वरिष्ठ कांग्रेस नेताओं का दिल जीत लिया। मोरारजी और रेड्डी भी इस युवा नेता से प्रभावित हुए।[97]

राष्ट्रपति शासन के दौरान कांग्रेस ने विपक्ष में फूट डालकर सरकार बनाने लायक बहुमत बना लिया। राष्ट्रपति शासन हटा और कांग्रेस को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया गया। यह राजस्थान में दल-बदल प्रथा का प्रारंभ था। सुखाड़िया ने जो मंत्रिमंडल बनाया, वह बहुमत जुटाने के लिए हर तरह की शर्तें मानने का घोषणा पत्र था। मंत्रिमंडल पर मुख्यमंत्री का अंकुश हट गया। रिश्वत और भ्रष्टाचार के किस्से सामने आने लगे। उन्हीं दिनों कतिपय मंत्रियों के पुत्रों-पुत्रियों और संबंधियों के विवाह हुए। उन विवाहों में ऐश्वर्य, विलासिता और वैभव का ऐसा प्रदर्शन हुआ कि लोग आश्चर्यचकित रह गए।[98] उस दौर में वर्मा ने यहां तक कहा कि सुखाड़िया सरकार सामंतों और देशद्रोहियों का अखाड़ा तथा कांग्रेस का दफ्तर भूतों का घर हो गया है*।[99]

इस दौरान राष्ट्रीय स्तर पर कुछ विपक्षी नेताओं ने कांग्रेस को चुनौती देने के लिए एक नए संगठन की जरूरत महसूस की। बिहार के मुख्यमंत्री महामायाप्रसाद सिन्हा ने 14 से 16 मई, 1967 तक पटना में एक बैठक बुलाई। उन्होंने सभी गैर कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों, समान सोच वाली पार्टियों के अध्यक्षों-सचिवों और कुछ अन्य महत्वपूर्ण नेताओं को आमंत्रित किया। वहां भारतीय क्रांतिदल का गठन करने का निर्णय हुआ और सिन्हा इसके अध्यक्ष बनाए गए।[100] इस बैठक में जे.बी. कृपलानी, वी.के. कृष्ण मेनन, हरेकृष्ण मेहताब, अजय मुखर्जी आदि नेता शामिल हुए। राजस्थान से कुंभाराम और चैतन्यप्रसाद रंगा उपस्थित थे। भारतीय क्रांतिदल भी कांग्रेस की तरह एक राष्ट्रव्यापी दल होना चाहता था। प्रत्येक शहर और गांव में पार्टी कार्यालय खोलने की योजना थी। देश भर के अनेक कांग्रेसी नेता, जो अपने को गांधीवादी कांग्रेसी कहते थे, कांग्रेस से अलग होकर भारतीय क्रांतिदल में शामिल हो रहे थे। भारतीय क्रांतिदल की स्थापना के समय ही यह निर्णय ले लिया गया था कि प्रांतों में चलने वाले विभिन्न राजनीतिक घटक आखिरकार भारतीय क्रांतिदल में शामिल हो जाएंगे। इधर, रामकरण का सोचना था कि दौसा सहित जयपुर जिले के अधिकांश कांग्रेसजन जनता पार्टी के साथ जुड़ जाएंगे। यहां तक कि उस समय जयपुर में जनता पार्टी का दो दिवसीय सम्मेलन हुआ। इसमें राजस्थान के विभिन्न हिस्सों से बड़ी संख्या में किसानों ने भाग लिया। ये मूलत: कांग्रेस से ही जुड़े हुए किसान थे। इस अधिवेशन की अध्यक्षता रामकरण ने की।[101]

मुख्यमंत्री सुखाड़िया अचानक एकजुट होकर सामने आए इस विपक्ष से घबरा गए। प्रदेश कांग्रेस के लिए भी यह चुनौतीपूर्ण स्थिति थी। 5 सितम्बर, 1967 को सुखाड़िया ने मंत्रिमंडल का विस्तार करके शोभाराम, भीखाभाई, रामप्रसाद लड्ढा, अमृतलाल यादव और शिवचरण माथुर को कैबिनेट मंत्री के रूप में शामिल किया। इनके अलावा हीरालाल देवपुरा, जयकिशन

*माणिक्यलाल वर्मा राजनीति के विकृत होते स्वरूप से निराश होते गए। अपनी वसीयत में उन्होंने 51 बिंदु दर्ज किए, जिनमें से एक यह था कि देश में कांग्रेस, जनसंघ, स्वतंत्र पार्टी आदि कोई पार्टी नहीं रहे; केवल देश निर्माण संघ नामक संस्था हो और उसी के लोग सत्ता में आएं। (शंकरसहाय सक्सेना: जो देश के लिए जिए, शिक्षा भारती प्रेस, बीकानेर, पृष्ठ 279)

शर्मा, बी.एन. जोशी और सुमित्रा सिंह को राज्यमंत्री बनाया गया। चौधरी मनफूल सिंह को पदोन्नत करके राज्यमंत्री बनाया गया। इसी समय 10 नए उपमंत्री भी मंत्रिमंडल में शामिल किए गए। चूंकि मुख्य चुनौती किसानों खासकर जाट नेताओं की तरफ से थी, इसलिए चुनाव हार चुके रामकिशोर व्यास के स्थान पर 24 सितम्बर, 1967 को नाथूराम मिर्धा को सर्वसम्मति से प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष बनाया गया। 22 अक्टूबर को सुखाड़िया ने फिर अपने मंत्रिमंडल का विस्तार किया। चार विधायकों को संसदीय सचिव बनाया गया। यह व्यवस्था राजस्थान में पहली बार की गई।[102]

बांदीकुई के विधायक बी.एन. जोशी को राज्यमंत्री बनाने का कारण दौसा क्षेत्र में रामकरण का प्रभाव कम करना ही था, लेकिन पूर्व मंत्री और संगठक के रूप में रामकरण की जड़ें काफी गहरी थीं। पालीवाल और सुखाड़िया को उन्हें जबरन मंत्रिमंडल में लेना पड़ा था। उस दौर में रामकरण ही ऐसे नेता थे, जो सुखाड़िया गुट से जुड़े नहीं होने के बावजूद प्रदेश कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी में निरंतर जगह बनाए हुए थे।[103] 1963 में जयपुर में अखिल भारतीय कांग्रेस की महासमिति का अधिवेशन हुआ तो आयोजन में रामकरण की प्रमुख भूमिका थी। इसके बाद 1966 में कांग्रेस कार्यकर्ताओं का संभागीय सम्मेलन आमेर में हुआ, उसकी अध्यक्षता भी रामकरण ने ही की थी। उस सम्मेलन में केंद्रीय मंत्री जगजीवन राम सहित कई प्रमुख नेता शामिल हुए।[104]

26 दिसम्बर, 1967 को बड़ी घटना यह हुई कि रामकरण सहित जनता पार्टी के नेताओं ने जनता पार्टी का लाल ध्वज क्रांतिदल के अध्यक्ष महामायाप्रसाद सिन्हा को सौंप दिया; इसके बदले में क्रांतिदल का सफेद ध्वज, जिसमें एक नीली धारी थी, को स्वीकार कर लिया। इस सम्मेलन में कांग्रेस के लिए एक निंदात्मक प्रस्ताव रखा गया कि उसने विभिन्न राज्यों में काम कर रही यूनाइटेड फ्रंट की सरकारों को अपदस्थ कर दिया। यह प्रस्ताव पूर्व मंत्री बद्रीप्रसाद गुप्ता ने रखा और राजस्थान विधानसभा के पूर्व अध्यक्ष नरोत्तमलाल जोशी ने इसका समर्थन किया। एक दूसरा प्रस्ताव भू-राजस्व और बेटरमेंट लेवी को समाप्त करने की मांग लिए हुए था। इन करों को समाजवाद की भावना के प्रतिकूल बताया गया। इस अवसर पर उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री चौधरी चरण सिंह, पश्चिम बंगाल के पूर्व मुख्यमंत्री अजय मुखर्जी और राजस्थान के मार्गदर्शक के रूप में कुंभाराम आर्य उपस्थित थे। कुंभाराम को भारतीय क्रांतिदल का उपाध्यक्ष बनाया गया। 1968 में वे राज्यसभा के लिए चुन लिए गए।[105]

संदर्भ सूची

1. मिलापचंद डंडिया: चेहरों का सच, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2021, पृष्ठ 14
2. महेश शर्मा, नवलकिशोर शर्मा के पूर्व पीए के संस्मरण
3. वही
4. नवलकिशोर शर्मा: विधानसभा परिचय ग्रंथ के लिए प्रेषित विवरण, 16 जुलाई, 1968
5. विनोदबिहारी शर्मा, नवलकिशोर शर्मा के भतीजे के संस्मरण
6. आशुतोष शर्मा, नवलकिशोर शर्मा के पौत्र के संस्मरण
7. विजय भंडारी: राजस्थान की राजनीति, सामंतवाद से जातिवाद के भंवर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 40
8. रिचर्ड सिसन: द कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1972, पृष्ठ 119
9. चुनाव आयोग की रिपोर्ट
10. टीकाराम पालीवाल स्मृति ग्रंथ, पालीवाल जनहितकारी ट्रस्ट, जयपुर, 2001, पृष्ठ 404
11. चौधरी कुंभाराम आर्य स्मृति ग्रंथ, चौधरी कुंभाराम आर्य मेमोरियल ट्रस्ट, जयपुर, 1999, पृष्ठ, 60
12. गायत्री देवी: मेरी स्मृतियां, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1994, पृष्ठ 145
13. वही, पृष्ठ 145–146
14. चुनाव आयोग की रिपोर्ट
15. विजय भंडारी: राजस्थान की राजनीति, सामंतवाद से जातिवाद के भंवर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 57
16. चौधरी कुंभाराम आर्य स्मृति ग्रंथ, चौधरी कुंभाराम आर्य मेमोरियल ट्रस्ट, जयपुर, 1999, पृष्ठ, 63
17. विजय भंडारी: राजस्थान की राजनीति, सामंतवाद से जातिवाद के भंवर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 57–58
18. बृजकिशोर शर्मा, नवलकिशोर शर्मा के पुत्र के संस्मरण
19. रिचर्ड सिसन: द कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1972, पृष्ठ 223
20. शंकरसहाय सक्सेना: जो देश के लिए जिए, शिक्षा भारती प्रेस, बीकानेर, पृष्ठ 195
21. विजय भंडारी: राजस्थान की राजनीति, सामंतवाद से जातिवाद के भंवर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 61

22. शंकरसहाय सक्सेना: जो देश के लिए जिए, शिक्षा भारती प्रेस, बीकानेर, पृष्ठ 199
23. वही
24. रिचर्ड सिसन: द कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1972, पृष्ठ 140-141
25. विजय भंडारी: राजस्थान की राजनीति, सामंतवाद से जातिवाद के भंवर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 65
26. जनार्दनराय नागर: लोकनायक जयनारायण व्यास, राजस्थानी ग्रंथागार, जयपुर, 2017, पृष्ठ 102
27. शंकरसहाय सक्सेना: जो देश के लिए जिए, शिक्षा भारती प्रेस, बीकानेर, पृष्ठ 196
28. लॉरेंस एल. श्रेडर: राजस्थान/स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968, पृष्ठ 356
29. लक्ष्मीचंद गुप्त: आधुनिक राजस्थान के शिल्पी मोहनलाल सुखाड़िया, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2014, पृष्ठ 71
30. विजय भंडारी: राजस्थान की राजनीति-सामंतवाद से जातिवाद के भंवर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 65
31. माणिक्यलाल वर्मा की डायरी, 29 जुलाई, 1954/ शंकरसहाय सक्सेना: जो देश के लिए जिए, शिक्षा भारती प्रेस, बीकानेर, पृष्ठ 201-202
32. विजय भंडारी: राजस्थान की राजनीति-सामंतवाद से जातिवाद के भंवर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 68
33. लाला काशीराम गुप्त: धुन के धनी, संपादक-सत्यदेव विद्यालंकार, मारवाड़ी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 301
34. जयनारायण पुरोहित: जयनारायण व्यास-व्यक्तित्व और विचार, चिन्मय प्रकाशन, 1971, पृष्ठ 29
35. जनार्दनराय नागर: लोकनायक जयनारायण व्यास, राजस्थानी ग्रंथागार, जयपुर, 2017, पृष्ठ 89
36. जयनारायण पुरोहित: जयनारायण व्यास-व्यक्तित्व और विचार, चिन्मय प्रकाशन, 1971, पृष्ठ 44
37. कन्हैयालाल सेठिया: लोकनारायण जयनारायण व्यास, राजस्थानी ग्रंथागार, जयपुर, 2017, पृष्ठ 147
38. प्रवीणचंद्र छाबड़ा: मोहनलाल सुखाड़िया के संस्मरण, समाचार जगत, 31 जुलाई, 2000
39. लक्ष्मीचंद गुप्त: आधुनिक राजस्थान के शिल्पी मोहनलाल सुखाड़िया, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2014, पृष्ठ 73
40. लॉरेंस एल. श्रेडर: राजस्थान/स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968,

पृष्ठ 356
41. रिचर्ड सिसनः द कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1972, पृष्ठ 234–235
42. शंकरसहाय सक्सेनाः जो देश के लिए जिए, शिक्षा भारती प्रेस, बीकानेर, पृष्ठ 208
43. नवलकिशोर शर्माः मोहनलाल सुखाड़िया स्मृति ग्रंथ, पश्चिमी एवं राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन, जयपुर, पृष्ठ 33
44. हिन्दुस्तान टाइम्स, 31 मार्च, 1956/ रिचर्ड सिसनः द कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1972, पृष्ठ 236
45. रिचर्ड सिसनः द कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1972, पृष्ठ 236
46. शंकरसहाय सक्सेनाः जो देश के लिए जिए, शिक्षा भारती प्रेस, बीकानेर, पृष्ठ 208
47. रिचर्ड सिसनः द कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1972, पृष्ठ 236
48. लक्ष्मीचंद गुप्तः आधुनिक राजस्थान के शिल्पी मोहनलाल सुखाड़िया, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2014, पृष्ठ 49
49. शंकरसहाय सक्सेनाः जो देश के लिए जिए, शिक्षा भारती प्रेस, बीकानेर, पृष्ठ 209
50. लॉरेंस एल. श्रेडरः राजस्थान/ स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968, पृष्ठ 357
51. रिचर्ड सिसनः द कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1972, पृष्ठ 238–239
52. लॉरेंस एल. श्रेडरः राजस्थान/ स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968, पृष्ठ 357
53. रिचर्ड सिसनः द कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1972, पृष्ठ 238–239
54. लॉरेंस एल. श्रेडरः राजस्थान/ स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968, पृष्ठ 357
55. टीकाराम पालीवालः इतवारी पत्रिका, 20 अक्टूबर, 1991
56. नवलकिशोर शर्माः दैनिक नवज्योति, 1 अगस्त, 2000
57. नवलकिशोर शर्माः मोहनलाल सुखाड़िया स्मृति ग्रंथ, पश्चिमी एवं राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन, जयपुर, पृष्ठ–33
58. नवलकिशोर शर्माः विधानसभा परिचय ग्रंथ के लिए प्रेषित विवरण, 16 जुलाई, 1968
59. भूरेलाल बयाः धुन के धनी, संपादक–सत्यदेव विद्यालंकार, मारवाड़ी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 406

60. लॉरेंस एल. श्रेडर: राजस्थान/स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968, पृष्ठ 359–360
61. चौधरी कुंभाराम आर्य स्मृति ग्रंथ, चौधरी कुंभाराम आर्य मेमोरियल ट्रस्ट, जयपुर, 1999, पृष्ठ, 84
62. वही, पृष्ठ, 83
63. लॉरेंस एल. श्रेडर: राजस्थान/स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968, पृष्ठ 363
64. विजय भंडारी: राजस्थान की राजनीति–सामंतवाद से जातिवाद के भंवर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 198
65. एस. निजलिंगप्पा: माय लाइफ एंड पॉलिटिक्स, विजन बुक्स, नई दिल्ली, 2000, पृष्ठ 92–93
66. चौधरी कुंभाराम आर्य स्मृति ग्रंथ, चौधरी कुंभाराम आर्य मेमोरियल ट्रस्ट, जयपुर, 1999, पृष्ठ, 86
67. लक्ष्मीचंद गुप्त: आधुनिक राजस्थान के शिल्पी मोहनलाल सुखाड़िया, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2014, पृष्ठ 84
68. डॉ. महेशचंद्र शर्मा: दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांगमय, खंड 13, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 83
69. कुलदीप नैय्यर: एक जिंदगी काफी नहीं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 210
70. वही, पृष्ठ 210
71. डी.पी. मिश्रा: द पोस्ट नेहरू एरा, हर आनंद पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ 25
72. वही
73. मोरारजी देसाई: मेरा जीवन वृत्तांत, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1972, पृष्ठ 245
74. डी.पी. मिश्रा: द पोस्ट नेहरू एरा, हर आनंद पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ 29–30
75. लक्ष्मीचंद गुप्त: आधुनिक राजस्थान के शिल्पी मोहनलाल सुखाड़िया, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2014, पृष्ठ 100–101
76. विजय भंडारी: राजस्थान की राजनीति–सामंतवाद से जातिवाद के भंवर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 198
77. लक्ष्मीचंद गुप्त: आधुनिक राजस्थान के शिल्पी मोहनलाल सुखाड़िया, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2014, पृष्ठ 340
78. वही, पृष्ठ 84
79. चौधरी कुंभाराम आर्य स्मृति ग्रंथ, चौधरी कुंभाराम आर्य मेमोरियल ट्रस्ट, जयपुर, 1999, पृष्ठ, 93
80. रिचर्ड सिसन: द कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली,

1972, पृष्ठ 249

81. लॉरेंस एल. श्रेडरः राजस्थान/ स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968, पृष्ठ 380
82. चौधरी कुंभाराम आर्य स्मृति ग्रंथ, चौधरी कुंभाराम आर्य मेमोरियल ट्रस्ट, जयपुर, 1999, पृष्ठ, 95
83. लॉरेंस एल. श्रेडरः राजस्थान/स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968, पृष्ठ 380
84. लॉरेंस एल. श्रेडरः राजस्थान/स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968, पृष्ठ 380
85. डेली रिपोर्ट, फॉरेन ब्रॉडकास्ट, इंडिया-सीलोन-नेपाल, 30 दिसम्बर, 1966, सीआईए, यूनाइटेड स्टेट्स, पृष्ठ 2
86. चौधरी कुंभाराम आर्य स्मृति ग्रंथ, चौधरी कुंभाराम आर्य मेमोरियल ट्रस्ट, जयपुर, 1999, पृष्ठ, 97
87. सद्दीक मोहम्मद, लालसोट मंडल कांग्रेस कमेटी के पूर्व अध्यक्ष का जयपुर जिला कांग्रेस कमेटी के पूर्व संयोजक बी.एन. जोशी को पत्र
88. विनोद बिहारी शर्मा, नवलकिशोर शर्मा के भतीजे के संस्मरण
89. चौधरी कुंभाराम आर्य स्मृति ग्रंथ, चौधरी कुंभाराम आर्य मेमोरियल ट्रस्ट, जयपुर, 1999, पृष्ठ, 98
90. शंकरसहाय सक्सेना: जो देश के लिए जिए, शिक्षा भारती प्रेस, बीकानेर, पृष्ठ 269
91. हिरण्मय कार्लेकर: द हार्वर्ड क्रिमसन, 11 मार्च, 1967
92. लॉरेंस एल. श्रेडरः राजस्थान/स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968, पृष्ठ 383
93. शंकरसहाय सक्सेना: जो देश के लिए जिए, शिक्षा भारती प्रेस, बीकानेर, पृष्ठ 261
94. गायत्री देवी: मेरी स्मृतियां, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1994, पृष्ठ 195
95. श्याम आचार्य: तेरा तुझको अर्पण, ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2015, पृष्ठ 44
96. गायत्री देवी: मेरी स्मृतियां, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1994, पृष्ठ 195-196
97. विनोद बिहारी शर्मा, नवलकिशोर शर्मा के भतीजे के संस्मरण
98. शंकरसहाय सक्सेना: जो देश के लिए जिए, शिक्षा भारती प्रेस, बीकानेर, पृष्ठ 263
99. वही, पृष्ठ 270
100. वेरिंदर ग्रोवर संपादक: पॉलिटिकल पार्टीज एंड पार्टी सिस्टम, दीप एंड दीप पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1997, पृष्ठ 553
101. चौधरी कुंभाराम आर्य स्मृति ग्रंथ, चौधरी कुंभाराम आर्य मेमोरियल ट्रस्ट, जयपुर, 1999,

पृष्ठ, 99

102. वही, पृष्ठ, 102

103. रिचर्ड सिसन: द कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1972, पृष्ठ 192

104. तारादत्त निर्विरोध: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा रामकरण जोशी, राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति, जयपुर, पृष्ठ 19

105. चौधरी कुंभाराम आर्य स्मृति ग्रंथ, चौधरी कुंभाराम आर्य मेमोरियल ट्रस्ट, जयपुर, 1999, पृष्ठ, 99-100

भाग: दो

राजशाही को लोकतांत्रिक चुनौती

राजनीति में राजपरिवार

प्रिवी पर्स के बारे में हमने राजाओं के साथ पवित्र करार और समझौते किए हैं। मैं नहीं मानता कि हम पूरी ईमानदारी से भावी सांसदों के हाथ में इन रकमों के साथ मनमाना व्यवहार करने की सत्ता सौंप सकते हैं। ये ऐसे प्रदत्त वचन हैं, जिन्हें मंत्रिमंडल की संपूर्ण स्वीकृति से भारत की जनता की ओर से राज्य के सर्वोच्च अधिकारी के हस्ताक्षरों द्वारा पवित्रता प्रदान की गई है। हमारा नैतिक कर्तव्य है कि हम इन वचनों के संपूर्ण पालन को वर्तमान और भविष्य में सुरक्षित कर दें।

–वल्लभभाई पटेल

जयपुर राज के विलय की भूमिका स्वतंत्रता के साथ ही बनने लगी। महाराजा मान सिंह द्वितीय के राज्यारोहण की रजत जयंती आखिरी औपचारिक समारोह बन गई। इसके लिए 12 दिसंबर, 1947 को ही लॉर्ड माउंटबेटन* सपरिवार जयपुर पहुंच गए। अनेक राजा-महाराजाओं की उपस्थिति में सजे-धजे भव्य मानसिंह ने बकरे की बलि देने के बाद लॉर्ड माउंटबेटन के हाथों दरबार में जी.सी.एस.आई. (ग्रेंड कमांडर ऑफ दि स्टार ऑफ इंडिया) सम्मान ग्रहण किया।[1] मान सिंह ने उन्हें 1585 में अफगान आक्रमण के दौरान मान सिंह प्रथम द्वारा कब्जे में ली गई बहुमूल्य कटार भेंट की। कटार के 'जेड' रत्न से निर्मित हत्थे पर माणिक और पन्ने जड़े हुए थे।[2] अनुमान लगाया जाता है कि माउंटबेटन ने ही मान सिंह को सलाह दी थी कि अपनी रियासत का भारत में विलय करें।[3] सरदार पटेल ने इसे सुनिश्चित किया।

लगभग सप्ताह भर चले इस समारोह के दौरान 17 दिसंबर को सरदार पटेल जयपुर पहुंचे। उनके साथ घनश्यामदास बिड़ला, वी.पी. मेनन (पत्नी सहित), मणिबेन भी थे। उस दिन वहां नवानगर (अब जामनगर) के महाराजा दिग्विजय सिंह और बड़ौदा (अब वडोदरा) की महारानी चिमना बाई द्वितीय भी उपस्थित थीं। चिमना बाई रिश्ते में महारानी गायत्री देवी की नानी लगती थीं। उस दिन सरदार पटेल ने साइंस कॉलेज और गुजराती स्कूल का शिलान्यास किया और प्रजामंडल के कार्यालय भी गए। उसी शाम सरदार पटेल ने मानसिंह द्वितीय के

---

*जयपुर के महाराजा मान सिंह द्वितीय और अंतिम गवर्नर जनरल लॉर्ड माउंटबेटन में गहरी मित्रता थी। उनकी मित्रता का बड़ा कारण दोनों का पोलो खिलाड़ी होना था। राजशाही विरासत भी दोनों को समान भाव पर लाती थी। मित्रता की शुरुआत तभी हो गई थी, जब माउंटबेटन इंग्लैंड में नौसेना के अफसर थे। गवर्नर जनरल नियुक्त होने के पहले भी उनका जयपुर आना हुआ था।

साथ रामनिवास बाग में विशाल जनसभा को संबोधित किया, जिसमें हजारों नागरिक मौजूद थे। अगले दिन पटेल वनस्थली भी गए, स्वाभाविक रूप से हीरालाल शास्त्री उनके साथ थे।[4]

भारतीय संघ में मिलने को लेकर मान सिंह का फैसला सोचा-समझा हुआ था। इसके सभी फायदे-नुकसानों का मूल्यांकन करने के बाद ही उन्होंने स्वीकृति दी। पटेल के हाथों राजस्थान का उद्घाटन होने से तीन दिन पहले मान सिंह ने वरिष्ठ अधिकारियों से चर्चा की। उनके उद्बोधन के लिए तैयार किए गए नोट में लिखा था, 'सभी पक्षों के विचार जानने के बाद मेरा मूल्यांकन था कि (अ) जयपुर रियासत की स्वाधीनता एक बड़े बलिदान और संभवतया रक्तपात के जरिए ही कायम रखी जा सकेगी तथा वह भी अस्थाई होगी। (ब) जयपुर को मिलने वाला स्थान फायदेमंद है.. व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंचेगा.. नई व्यवस्था में शामिल होने पर रियासत के लिए काफी कुछ किया जा सकता है। इससे मुझे जनता की सेवा करने का अवसर मिलेगा।'[5]

राजस्थान के निर्माण और लोकतांत्रिक सरकार के गठन के बाद भी राजे-महाराजाओं के लिए जनता के एक बड़े वर्ग में सम्मान और ताज के प्रति निष्ठा का भाव बना रहा। अगस्त, 1949 में मान सिंह अपने 39वें जन्मदिन पर भ्रमण के लिए निकले तो राजधानी 'महाराजा मान सिंह की जय' के नारों से गूंज उठी। उस दिन के समारोहों को याद करते हुए उन्होंने अपने उद्गार व्यक्त किए, 'यह उतना ही खुशनुमा और उल्लासपूर्ण था, जितना मेरे महाराजा रहते हुए होता था और सभी लोगों द्वारा दिखाए प्यार, निष्ठा और समर्पण ने मेरे मन को छू लिया।'[6] यह कांग्रेस के उन नेताओं को असहज करता था, जिनकी लोकप्रियता महाराजा के सामने फीकी पड़ जाती थी। हालांकि मान सिंह को राजप्रमुख बनाए जाने का फायदा भी नेताओं को ही मिला क्योंकि इस पद पर रहते हुए वे सक्रिय राजनीति से दूर रहने वाले थे।

सदाशयता भरे इस माहौल में विघ्न आया जब सितम्बर, 1953 में जवाहरलाल नेहरू ने राजाओं को पत्र लिखकर प्रिवी पर्स और राजप्रमुख के आजीवन पद के संबंध में आपत्तियां प्रकट कीं। मान सिंह को लिखे पत्र में उन्होंने सवाल उठाया, 'सार्वजनिक कोष से बड़ी राशि राजाओं को दिए जाने को हम कब तक अपनी जनता के आगे न्यायसंगत ठहरा पाएंगे, जबकि अधिकतर राजा तो कोई काम ही नहीं करते।'[7] मान सिंह ने जवाब में लिखा कि इन अधिकारों का संविधान में वर्णन है और इसे सत्तारूढ़ पार्टी की सुविधा के अनुसार बदला नहीं जाना चाहिए। नेहरू ने तब प्रस्ताव रखा कि प्रिवी पर्स की 15 प्रतिशत राशि राष्ट्रीय योजना ऋण में जाए ताकि उसका इस्तेमाल विकास के कार्यों में किया जा सके। मान सिंह का तर्क था कि जमींदारों और बड़े व्यवसायियों सहित किसी भी वर्ग को सार्वजनिक कोष में इस तरह योगदान करने के लिए नहीं कहा जाता है। यह पत्र व्यवहार 1955 तक चलता रहा और आखिरकार, मान सिंह ने गृहमंत्री गोविंदवल्लभ पंत को ऐसे किसी भी जल्दबाजी भरे कदम के प्रति सचेत किया, जिससे भारत की अंतरराष्ट्रीय छवि को नुकसान पहुंचे।[8]

प्रिवी पर्स को लेकर कांग्रेस का नजरिया अस्पष्ट बना रहा, लेकिन राजप्रमुख का पद आजीवन रखा जाना पिछड़े युग की बात लगने लगी। राज्यपाल और राष्ट्रपति का कार्यकाल

पांच वर्ष के लिए रखा गया था। अक्टूबर, 1956 में मान सिंह को नेहरू, पंत और राजेंद्र प्रसाद के पत्र मिले। तीनों पत्रों में एक ही संदेश था। 31 अक्टूबर से मान सिंह राजप्रमुख नहीं रहने वाले थे। इस बारे में उनसे पूर्व में कोई चर्चा नहीं की गई। मान सिंह ने नेहरू को पत्र में लिखा, 'सबसे दुखद यह है कि पिछले सात वर्षों में मेरी ओर से पूर्ण सहयोग और अदम्य निष्ठा प्रकट किए जाने के बावजूद प्रशासन से मेरा आधिकारिक संबंध इस तरह झटके में टूट जाए।'[9]

1957 में दूसरे आम चुनाव होने जा रहे थे। मान सिंह ने लोकसभा चुनाव लड़ने का मन बनाया। उन्होंने नेहरू को पत्र में लिखा, 'मेरी जनता चाहती है कि मैं एक निर्दलीय के रूप में चुनाव में खड़ा होऊं।' नेहरू ने जवाब दिया, 'क्या तुम भी मेरी पीठ में छुरा घोंपोगे?'[10] नेहरू से सहयोग नहीं मिलने के बाद उन्होंने अपनी पत्नी गायत्री देवी को कांग्रेस उम्मीदवार बनाने का विचार किया। सीधी चर्चा करने के बजाए उन्होंने मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया को यह प्रस्ताव गायत्री देवी के समक्ष रखने को कहा।[11] सुखाड़िया ने गायत्री देवी को कांग्रेस पार्टी के प्रत्याशी के रूप में जयपुर सीट से खड़े होने के लिए आग्रह किया।[12] गायत्री देवी कांग्रेस की नीतियों के विरुद्ध थीं। राजप्रमुख का पद समाप्त किए जाने को लेकर वे व्यक्तिगत रूप से क्षुब्ध थीं। उनके मन में ऐसी पार्टी की विश्वसनीयता को लेकर सवाल उठने लगे, जो संविधान के अंतर्गत किए गए अनुबंधों से इतनी सहजता से मुकर सकती थी। वे मानती थीं कि देश के भले के लिए जरूरी होने पर संविधान में बदलाव किया जा सकता है, लेकिन सभी दलों से चर्चा किए बिना ऐसा नहीं किया जाना चाहिए। वे सशक्त विपक्ष खड़ा करने को जरूरी मानती थीं, जो कांग्रेस की जवाबदेही सुनिश्चित करे।[13]

मान सिंह ने गायत्री देवी को कहा कि यदि वे कांग्रेस में शामिल हुईं तो जयपुर के लिए कुछ अच्छे कार्य कर सकेंगी। लेकिन गायत्री देवी का सोचना था कि जब कांग्रेस महात्मा गांधी के द्वारा चलाई जा रही थी तब महान थी और तब उसके अनुयायी आदर्शवादी थे, जो कि स्वतंत्रता के उद्देश्य से कार्य कर रहे थे। गायत्री देवी ने मान सिंह से कहा, 'कांग्रेस सत्ता हासिल करके एक संस्था बन गई और अपनी ओर उन्हीं लोगों को आकर्षित कर रही है, जो अवसरवादी और स्वार्थी जीवन से जुड़े हुए हैं। कांग्रेस के नेता देश के लिए कुछ अच्छा करने के लिए संयम और सादगी का पाठ नहीं पढ़ा रहे हैं। कांग्रेस के लोग अपने को विशेष समझते हैं और अधिकाधिक धनाढ्य हो रहे हैं। गांधी होते तो उन्हें कितना दु:ख होता!'[14] इस तरह, 1957 के चुनाव में जयपुर राजघराने से कोई चुनाव में खड़ा नहीं हुआ।

1959 में नेहरू की समाजवादी नीतियों के विरोधी हो चले चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने कांग्रेस से अलग होकर स्वतंत्र पार्टी की स्थापना की। इस दल ने कथित लाइसेंस-परमिट राज को खत्म करके मुक्त अर्थव्यवस्था की वकालत की। नवगठित स्वतंत्र पार्टी को गायत्री देवी ने सशक्त विपक्ष के सूत्रधार के रूप में देखा और उसमें शामिल होने का फैसला किया। मान सिंह पार्टी में शामिल होने के इच्छुक नहीं थे। वे तटस्थ रहना चाहते थे। लेकिन विभिन्न कारणों से पूर्व राजपरिवार की कांग्रेस से ठनती चली गई। ब्रिटेन की महारानी की जयपुर

यात्रा के कार्यक्रमों को लेकर प्रधानमंत्री और राजपरिवार में मतभेद और बढ़ गए। उसी दौरान गायत्री देवी और उनके सौतेले पुत्र पृथ्वीराज ने चुपचाप स्वतंत्र पार्टी की सदस्यता ले ली। मान सिंह भी गायत्री देवी की जल्दबाजी पर आश्चर्यचकित थे लेकिन अंततः सहमत हो गए।[15] हालांकि इस बात को तुरंत सार्वजनिक नहीं किया गया।

राजशाही स्वाभिमान ही कांग्रेस और जयपुर राजपरिवार के बीच दूरियां पैदा करने का कारण बना। महारानी एलिजाबेथ अपने पति प्रिंस फिलिप (ड्यूक ऑफ एडिनबर्ग) के साथ 23 जनवरी, 1961 को जयपुर आईं। मान सिंह ने उनके स्वागत में सिटी पैलेस में दरबार का आयोजन किया। दरबार एक राजशाही समारोह था, लेकिन यह इसलिए विवादास्पद हो गया क्योंकि मान सिंह ने दरबार के निमंत्रण पत्र पर लिख दिया कि समारोह में शामिल होने के लिए दरबारी पोशाक में आना अनिवार्य होगा। दरबारी पोशाक यानी अचकलन, साफा, तलवार आदि। ऐसे समारोह के आयोजन पर प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को आपत्ति थी। मान सिंह ने प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर खुलासा किया कि यह जयपुर की परंपरागत पोशाक है और राज्य के सभी दरबारी इसी वेशभूषा में दरबार में आते हैं। यहां तक कि मान सिंह ने मुख्यमंत्री सुखाड़िया और सार्वजनिक निर्माण मंत्री झालावाड़ के महाराजा हरिश्चंद्र को भी साफा पहनकर आने का निमंत्रण दिया था। लेकिन मुख्यमंत्री ने गांधी टोपी पहनकर आने की धमकी दे डाली। राज्यपाल गुरुमुख निहाल सिंह ने इस सारे मामले की रिपोर्ट भारत सरकार को भेजी। उन्होंने लिखा कि महाराजा राजशाही का प्रदर्शन करना चाहते हैं, राजस्थान में इससे सामंतशाही का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, जो आगामी चुनावों पर भी असर डाल सकता है। इसका प्रभाव भी हुआ। मान सिंह ने इस पर सभी मंत्रियों को बिना साफा पहने आने का दूसरा निमंत्रण पत्र भेजा, लेकिन वे साफा पहनकर आए। उन्हें अलग बैठाया गया और एलिजाबेथ से उनका परिचय तक नहीं करवाया।[16]

महारानी के जयपुर दौरे के बाद गायत्री देवी के स्वतंत्र पार्टी में शामिल होने की आधिकारिक घोषणा की गई। इसके साथ ही कांग्रेस में राजपरिवारों के चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध लगाने की चर्चा शुरू हो गई। सुखाड़िया ने विधानसभा में घोषणा कर दी कि राजनीति में उतरने वाले राजपरिवारों के प्रिवी पर्स समाप्त कर दिए जाएंगे। गायत्री देवी के सामने एक बड़ी चुनौती यह भी थी कि उन्हें हिंदी या कोई अन्य स्थानीय भाषा नहीं आती थी। राजस्थान के अन्य राजघरानों में उन्हें बाहरी के रूप में देखा जाता था और इस कारण स्वतंत्र पार्टी में शामिल होने के लिए राजाओं से की गई अपील प्रभावी सिद्ध नहीं हो रही थी। शुरुआती दौर में गायत्री देवी के पास उम्मीदवारों के प्रति समर्थन जुटाने और फंड इकट्ठा करने की जिम्मेदारी थी। 1961 के अंत में उन्हें अगले वर्ष होने वाले चुनाव में उम्मीदवार बनने के लिए औपचारिक रूप से आमंत्रित किया गया। उन्हें राजस्थान का प्रभार भी सौंपा गया, जहां चार लोकसभा सीटें और 40 विधानसभा सीटें जीतने का लक्ष्य रखा गया था।[17]

यह स्वतंत्र पार्टी की पहली चुनावी परीक्षा थी। लोकसभा के लिए जयपुर से गायत्री देवी और दौसा से पार्टी के राष्ट्रीय महामंत्री मीनू मसानी को चुनाव लड़वाए जाने का निश्चय

किया गया। लेकिन मीनू मसानी ने आखिरी क्षणों में यह कहते हुए चुनाव लड़ने से इनकार कर दिया कि पार्टी पहली बार चुनाव लड़ रही है, इसलिए वे पूरे देश में दौरा करके पार्टी उम्मीदवारों के पक्ष में चुनाव प्रचार करेंगे। चूंकि दौसा कछवाहा राजाओं की राजधानी रह चुकी थी, इसलिए वहां के लोगों ने मांग की कि दौसा से पूर्व राजपरिवार का ही कोई सदस्य चुनाव लड़ना चाहिए। इसके बाद मान सिंह दौसा आए और एक सभा बुलाकर लोगों से पूछा कि वे किसे उम्मीदवार के रूप में पसंद करेंगे। मान सिंह ने अपनी ओर से जनता के समक्ष कुछ नाम भी रखे। जनता की ओर से मान सिंह को खड़ा किए जाने की मांग होती रही; उनके चुनाव नहीं लड़ने की स्थिति में उनके ही परिवार के किसी सदस्य को प्रत्याशी बनाने का आग्रह हुआ। गायत्री देवी जयपुर से चुनाव लड़ रही थीं। मान सिंह के बड़े पुत्र भवानी सिंह सेना में थे। दूसरे पुत्र जय सिंह मालपुरा से विधानसभा का चुनाव लड़ना चाहते थे। इस स्थिति में तीसरे पुत्र पृथ्वीराज बचे, जो चुनाव लड़ने के लिए निर्धारित 25 वर्ष के हुए ही थे और कलकत्ता की एक फर्म में काम कर रहे थे। वे भी चुनाव लड़ने को तैयार नहीं थे। मान सिंह–गायत्री देवी के आग्रह पर वे नामांकन की अंतिम तारीख को अंतिम समय पर पहुंचकर नामांकन दाखिल कर पाए। नामांकन के बाद वे वापस कलकत्ता चले गए। उन्होंने सिर्फ चौदह दिनों तक चुनाव प्रचार में हिस्सा लिया।[18]

गायत्री देवी ने चुनावी अभियान में अपने को पूरी तरह झोंक दिया। सुबह दस बजे से आधी रात तक वे सक्रिय रहतीं। गांवों–ढाणियों में उनका उत्साहपूर्वक स्वागत किया जाता। वे विशेष रूप से महिलाओं से अपील करतीं, जो बांस के बाड़ों की ओट लेकर उनके भाषण सुन रही होती थीं। उनकी सभाओं में भारी भीड़ जुटती और उनके रवाना होने के बाद भी लोग काफिले की दिशा में देर तक टकटकी लगाए रहते। सभा के बाद पार्टी कार्यकर्ता भीड़ में स्वतंत्र पार्टी के प्लास्टिक से बने बैज फेंकते, जिन पर पार्टी का चुनाव चिन्ह सितारा अंकित होता था। बूढ़ों और नौजवानों में उन्हें लेने की होड़ लग जाती। वे उसे पहनकर गर्व से कहते कि यह महारानी की ओर से तोहफा है। चुनाव प्रचार की अंतिम रात को सिटी पैलेस के बाहर मान सिंह ने गायत्री देवी के समर्थन में विशाल जनसमूह को संबोधित किया। उन्होंने कहा, 'नई सरकार ने मुझसे मेरा राज्य ले लिया है, लेकिन जब तक मेरे पास विश्वास और स्नेह का यह बंधन है, सरकार मेरी सारी दौलत छीन ले तो भी मुझे परवाह नहीं है। वे मेरे ऊपर पत्नी और दो बेटों को चुनाव में खड़ा करने का आरोप लगाते हैं। वे कहते हैं कि अगर मेरे पास 176 बेटे होते तो मैं उन सबको भी चुनाव में उतार देता। लेकिन वे लोग यह नहीं जानते हैं कि मेरे पास 176 बेटों से कहीं ज्यादा है।'[19]

लोकसभा चुनाव में स्वतंत्र पार्टी का प्रदर्शन राजस्थान में अच्छा रहा। पार्टी ने 14 राज्यों में उम्मीदवार उतारे थे, इनमें से पांच राज्यों में ही उसका खाता खुल सका। कुल 173 में से 18 उम्मीदवार जीते। आंध्र प्रदेश के 28 उम्मीदवारों में से केवल एक को जीत मिली; वहीं, बिहार के 43 में से 7, गुजरात के 14 में से 4, उत्तर प्रदेश के 33 में से 3 और राजस्थान के 10 में से 3 उम्मीदवार विजयी हुए।[20] यह महज संयोग नहीं था कि राजस्थान के तीन विजयी

उम्मीदवारों में से दो जयपुर राजघराने से थे। गायत्री देवी के विरोधी उम्मीदवारों की जमानतें जब्त हो गईं। वे कांग्रेस की निकटतम प्रतिद्वंद्वी शारदा भार्गव से पौने दो लाख वोटों से विजयी हुईं। यह गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड में दर्ज हुआ।[21] दौसा में पृथ्वीराज को 63 प्रतिशत वोट मिले, जबकि दूसरे स्थान पर रहे कांग्रेस प्रत्याशी नारायण सिंह 26 प्रतिशत वोट ही प्राप्त कर सके। पृथ्वीराज लगभग 90 हजार वोटों से जीते।

विधानसभा चुनाव में भी राजस्थान के मतदाताओं का नवगठित स्वतंत्र पार्टी के प्रति आकर्षण दिखाई दिया। इस चुनाव की एक खासियत यह भी थी कि 1952 के 35.19 प्रतिशत और 1957 के 38.16 प्रतिशत के मुकाबले मतदान 52.33 प्रतिशत पर पहुंच गया।[22] स्वतंत्र पार्टी के 93 में से 36 उम्मीदवार विजयी हुए। कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत नहीं मिल सका। बहुमत के लिए जरूरी 89 सीटों की जरूरत थी और कांग्रेस 88 सीटें ही जीत सकी। मान सिंह के पुत्र जय सिंह ने मालपुरा सीट पर गृहमंत्री रहे कांग्रेस के प्रत्याशी दामोदरलाल व्यास को 8775 वोटों से पराजित किया। जयपुर जिले में स्वतंत्र पार्टी विशेष रूप से प्रभावी रही। आमेर, हवामहल, फुलेरा, जमवारामगढ़, चौमूं, बस्सी, दूदू, फागी, चाकसू, दौसा, सिकराय, बांदीकुई, लालसोट में स्वतंत्र पार्टी के उम्मीदवार बड़े अंतरों से जीते। रामकरण जोशी जैसे कद्दावर नेता भी स्वतंत्र पार्टी की लहर में नहीं टिक सके।[23]

1967 में जय सिंह विधायक होने के बावजूद मालपुरा से नहीं लड़े और न सांसद पृथ्वीराज दौसा से लोकसभा का चुनाव लड़ने को तैयार हुए। जनता में धारणा फैल रही थी कि ये 'राजा' लोग चुनाव जीतने के बाद चेहरा दिखाने भी नहीं आते। गायत्री देवी ने जयपुर लोकसभा सीट और मालपुरा विधानसभा सीट से दोहरी दावेदारी की। लोकसभा सीट वे आसानी से जीत गईं, लेकिन विधानसभा सीट पर कांग्रेस के दामोदरलाल व्यास ने उन्हें 10 हजार वोटों से हरा दिया। मान सिंह ने उन्हें व्यास की ताकत बताते हुए चेताया था, लेकिन वे चुनाव लड़ने के फैसले पर कायम रहीं। उस चुनाव में व्यास इतने बीमार थे कि चुनाव प्रचार में भी सक्रिय नहीं रह सके।[24]

संदर्भ सूची

1. पामेला माउंटबेटनः इंडिया रिमेम्बर्ड, पवेलियन बुक्स, लंदन, 2007, पृष्ठ 182
2. जॉन जुब्रिकीः द हाउस ऑफ जयपुर, जगरनॉट बुक्स, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 174
3. श्याम आचार्यः तेरा तुझको अर्पण, ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2015, पृष्ठ 246
4. मणिबेन पटेलः इनसाइड स्टोरी ऑफ सरदार पटेल, विजन बुक्स, नई दिल्ली, 2001, पृष्ठ 179
5. माइकल जोसेफः क्वेंटिन क्रूः द लास्ट महाराजा, लंदन, 1985, पृष्ठ 185
6. जॉन जुब्रिकीः द हाउस ऑफ जयपुर, जगरनॉट बुक्स, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 133
7. वही, पृष्ठ 142
8. वही, पृष्ठ 142–143
9. वही, पृष्ठ 143
10. गायत्री देवीः मेरी स्मृतियां, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1994, पृष्ठ 152
11. जॉन जुब्रिकीः द हाउस ऑफ जयपुर, जगरनॉट बुक्स, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 146
12. गायत्री देवीः मेरी स्मृतियां, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1994, पृष्ठ 152
13. जॉन जुब्रिकीः द हाउस ऑफ जयपुर, जगरनॉट बुक्स, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 147
14. गायत्री देवीः मेरी स्मृतियां, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1994, पृष्ठ 151
15. वही, पृष्ठ 163
16. श्याम आचार्यः तेरा तुझको अर्पण, ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2015, पृष्ठ 242
17. जॉन जुब्रिकीः द हाउस ऑफ जयपुर, जगरनॉट बुक्स, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 150–151
18. गायत्री देवीः मेरी स्मृतियां, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1994, पृष्ठ 168–169
19. जॉन जुब्रिकीः द हाउस ऑफ जयपुर, जगरनॉट बुक्स, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 152–153
20. चुनाव आयोग की रिपोर्ट
21. गायत्री देवीः मेरी स्मृतियां, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1994, पृष्ठ 174
22. चुनाव आयोग की रिपोर्टों का तुलनात्मक विश्लेषण
23. चुनाव आयोग की रिपोर्ट
24. जॉन जुब्रिकीः द हाउस ऑफ जयपुर, जगरनॉट बुक्स, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 159

दौसा से दिल्ली

1968 के दौसा लोकसभा उपचुनाव में नवलकिशोर शर्मा की जीत एक तरह से स्वतंत्र पार्टी के धराशायी होने की सूचना थी। दौसा की हार के बाद पार्टी की राजनीति में पकड़ ढीली पड़ने लगी और वह सिमटती गई। स्वतंत्र पार्टी के अवसान का लाभ जनसंघ को मिला और इस तरह राजाओं-जागीरदारों की सत्ता की राजनीति खत्म हुई।

– विजय भंडारी

नवलकिशोर शर्मा राजनीति में सक्रिय रहते हुए भी सत्ता के गलियारों से एक निश्चित दूरी बनाए हुए थे। राजस्थान के गठन के समय से ही वे राजनीतिक धड़ेबंदी, वैमनस्यता और पदलोलुपता के प्रभाव को दिनोंदिन बढ़ता महसूस कर रहे थे। लगभग दो दशक की अवधि से वे कांग्रेस के निष्ठावान कार्यकर्ता और जिला स्तर के नेता के रूप में जुटे हुए थे। इस दौरान उन्होंने अपनी भूमिका को एक ऐसे पेशेवर वकील के रूप में देखा, जिनके लिए राजनीति समाज में परिवर्तन लाने का माध्यम थी। घर चलाने के लिए वे राजनीति पर आश्रित नहीं रहना चाहते थे। मुख्यमंत्रियों से उनके निकट संबंध रहे, संगठनात्मक स्तर पर लोगों ने उनकी क्षमता का लोहा माना, ज्ञान और साहस ने उनके समर्थकों का बड़ा वर्ग तैयार किया; लेकिन नवलकिशोर ने इन सबके बदले कोई पुरस्कार नहीं चाहा। 40 पार की उम्र में वे अपने क्षेत्र के कामयाब वकील, समर्पित कांग्रेसी और कर्मठ समाजसेवी के रूप में लोकप्रिय थे। पल-पल बदलती राजनीति में उनके लिए बड़ी संभावनाओं के द्वार कब खुलेंगे, इसकी उन्हें चिंता नहीं थी।

इस राजनीतिक दौर में दो सीटों के उपचुनाव का अवसर आया.. दौसा लोकसभा सीट और चौमूं विधानसभा सीट*। दोनों जगह पिछले लगातार दो चुनावों में स्वतंत्र पार्टी को जीत मिली थी। 1967 में चौमूं विधानसभा सीट पर स्वतंत्र पार्टी के राजेश्वर सिंह कांग्रेस के पूर्व मंत्री रामकिशोर व्यास के मुकाबले 10 हजार से अधिक वोटों के अंतर से जीते थे। वहीं,

---

*चौमूं उपचुनाव में रामकिशोर व्यास दुबारा कांग्रेस के उम्मीदवार बनाए गए। इस बार उनके सामने स्वतंत्र पार्टी की ओर से पूर्व मुख्यमंत्री टीकाराम पालीवाल उतारे गए। व्यास ने पालीवाल को हरा दिया। कांग्रेस के लिए यह बड़ी जीत थी।

दौसा लोकसभा सीट से 1962 में जीते पृथ्वीराज का राजनीति से मोहभंग हो गया था और उन्होंने फिर से चुनाव लड़ने से इनकार कर दिया।[1] इसलिए 1967 में पृथ्वीराज की जगह बंबई के उद्योगपति चरणजीत राय* स्वतंत्र पार्टी के प्रत्याशी बनाए गए। राय ने कांग्रेस के एच.सी. रावत को 45 हजार वोटों से हराया था। चरणजीत की मृत्यु के कारण 1968 में उपचुनाव की स्थिति बनी।

दौसा में कांग्रेस ने राधेश्याम रामकुमार मोरारका को प्रत्याशी बनाया। राजस्थानी मूल के बंबई निवासी उद्योगपति मोरारका शुरुआती तीन लोकसभा चुनावों में कांग्रेस के टिकट पर झुंझुनूं से जीते थे। 1967 में उनके सामने स्वतंत्र पार्टी ने राधाकृष्ण बिड़ला को उतारा। बिड़ला भी राजस्थान के मूल निवासी और बंबई के उद्योग जगत के कद्दावर व्यक्तित्व थे। मोरारका को हार का सामना करना पड़ा। दौसा उपचुनाव के जरिए उनके लिए संसद में वापसी का रास्ता खुला और उनकी उम्मीदवारी से कांग्रेस की स्थिति भी मजबूत मानी जा रही थी। लेकिन प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष नाथूराम मिर्धा का मानना था कि किसी कार्यकर्ता को ही प्रत्याशी बनाना चाहिए। मिर्धा को आशंका थी कि स्वतंत्र पार्टी की ओर से पृथ्वीराज चुनाव लड़ सकते हैं और ऐसे में मोरारका मैदान छोड़ सकते हैं। वे खुद दौसा गए और वहां जिला कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलाई। उनका नरम दृष्टिकोण नवलकिशोर की तरफ दिखाई दिया। दौसा की स्थानीय राजनीति से परिचित होने के साथ-साथ नवलकिशोर की पार्टी के प्रति निष्ठा भी चर्चा का विषय थी। मिर्धा ने नवलकिशोर को जयपुर बुलाकर डमी प्रत्याशी के रूप में नामांकन भरने के लिए कहा। नवलकिशोर ने इसके लिए परिवार से मशविरा करने की इच्छा जताई तो मिर्धा ने कहा कि यह प्रदेश अध्यक्ष का आदेश है और उन्हें मानना ही पड़ेगा।[2]

दूसरी ओर, स्वतंत्र पार्टी और उससे ज्यादा जयपुर राजपरिवार के लिए दौसा सीट प्रतिष्ठा से जुड़ी थी। एक बार फिर पृथ्वीराज चुनावी मैदान में आ गए। मोरारका का मानस था कि यदि राजपरिवार का प्रत्याशी नहीं हुआ तो ही वे चुनाव लड़ेंगे। पृथ्वीराज के फॉर्म भरने पर उन्होंने चुनाव से नाम वापस ले लिया। सूचना यह भी है कि अखिल भारतीय कांग्रेस के कुछ सत्तारूढ़ शीर्षस्थ नेताओं ने उन्हें नाम वापस लेने का परामर्श दिया।[3] मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया टिकट वितरण और नामांकन की इस प्रक्रिया के दौरान असम गए हुए थे। जब कांग्रेस की तरफ से नवलकिशोर ही चुनाव मैदान में रह गए तो उन्होंने मिर्धा को अपनी मजबूरी बताई। उन्होंने बताया कि वे चुनाव में सिर्फ 15 हजार रुपए खर्च कर सकते हैं, इससे अधिक की व्यवस्था करना उनके बस में नहीं है। प्रदेश अध्यक्ष की इस बात ने उन्हें राहत दी कि वे अपनी क्षमता के अनुरूप खर्च करें, शेष व्यवस्था पार्टी करेगी। नवलकिशोर ने उतना ही किया, जितना वे कर सकते थे। शेष जरूरी धन पार्टी ने जुटाया।[4]

---

*चरणजीत राय उद्योगपति होने के साथ हॉकी के राष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ी और खेल प्रशासक थे। एक दुर्जेय फॉरवर्ड के रूप में वे 1933, 1940 और 1942 में ध्यानचंद और रूपसिंह जैसे हॉकी दिग्गजों के साथ खेलते हुए अखिल भारतीय हॉकी टीम के प्रमुख सदस्य थे। यदि द्वितीय विश्व युद्ध के कारण 1940 का ओलंपिक रद्द नहीं होता तो उनकी प्रतिभा विश्व स्तर पर महसूस की जाती। उस समय भारतीय टीम शीर्ष पर थी और 1928 से लगातार ओलंपिक स्वर्ण पदक जीतती आ रही थी।

उस समय दौसा लोकसभा क्षेत्र में दौसा, बांदीकुई, बस्सी, जमवारामगढ़, चौमूं, नीमकाथाना, कोटपूतली और बैराठ आते थे। इनमें से दौसा, बस्सी, जमवारामगढ़ और कोटपूतली से स्वतंत्र पार्टी के विधायक थे। उस क्षेत्र से जुड़े दो प्रमुख नेता कांग्रेस से अलग हो चुके थे। टीकाराम पालीवाल चौमूं विधानसभा उपचुनाव में स्वतंत्र पार्टी के प्रत्याशी बन गए और रामकरण जोशी क्रांति दल में जा चुके थे। लेकिन जब नवलकिशोर की उम्मीदवारी सामने आई तो रामकरण के साथ कांग्रेस छोड़कर गए शेष सभी कांग्रेसी नेता और कार्यकर्ता नवलकिशोर के पक्ष में आ जुटे। पुरानी कांग्रेस पार्टी वापस एकजुट हो गई। दौसा का बच्चा-बच्चा जैसे नवलकिशोर बन कर चुनाव लड़ रहा था। दौसा के लोग पूरे लोकसभा क्षेत्र में छा गए और दिन-रात नवलकिशोर के प्रचार में जुटे रहे। एक विधानसभा के हिसाब से दो या तीन जीपें चुनाव प्रचार के लिए थीं, लेकिन स्थानीय कार्यकर्ताओं ने जबरदस्त मेहनत की। वे बाहर से आए कार्यकर्ताओं के ठहरने और भोजन की व्यवस्था करते तथा उनका पूरा ध्यान रखते। दौसा की जनता की एकजुटता इस बात से समझी जा सकती थी कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्थानीय पदाधिकारी एडवोकेट रामकिशोर शर्मा ने नवलकिशोर के कार्यालय की पूरी व्यवस्था का संचालन किया। वे नवलकिशोर के सहयोगी वकील भी रह चुके थे। मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया ने खुद चुनाव का मोर्चा संभाला। मिर्धा शुरू से पूरी तरह नवलकिशोर के साथ थे। बृजसुंदर शर्मा, हीरालाल देवपुरा, चंदनमल बैद, बी.एन.जोशी, कैप्टन छुट्टन लाल, शिवचरण सिंह, रामकरण सिंह जैसे मंत्रियों और नेताओं ने एक-एक विधानसभा क्षेत्र की पूरी देखभाल की। उस समय चुनावी काफिला लेकर चलने की परंपरा नहीं थी, इसलिए अनुशासित और शांत चुनाव हुए।

दूसरी ओर, जयपुर राजपरिवार ने अपनी आन और शान के लिए पूरी ताकत झोंक दी। नई-नई गाड़ियां प्रचार में निकल पड़ीं; जगह-जगह लोगों को मुफ्त खाना खिलाने के लिए ढाबे खोल दिए गए। चुनाव जरूर पृथ्वीराज लड़ रहे थे, जिन्हें पहले भी दौसा से लोकसभा चुनाव लड़ने और जीतने का अनुभव था, लेकिन मुख्य रूप से महारानी गायत्री देवी के हाथों में कमान थी। पृथ्वीराज के प्रचार के लिए वे जगह-जगह गईं और जनता से वोट देने का आह्वान किया। राजपरिवार के लिए नवलकिशोर कोई गंभीर उम्मीदवार नहीं थे। उन्हें लग रहा था कि अगर मोरारका उम्मीदवार होते तो फिर भी मुकाबला कड़ा होता। वे मानते थे कि नवलकिशोर एक मच्छर है। नवलकिशोर के खिलाफ कोई आरोप लगाने को भी नहीं थे। चुनाव प्रचार के दौरान गायत्री देवी इतना ही जिक्र करतीं, 'नवलकिशोर एक अच्छा कार्यकर्ता है।'[5]

राजपरिवार के प्रतिनिधि चुनाव परिणाम तक नवलकिशोर को अपनी रियासत का एक साधारण जन ही माने हुए थे। उधर, नवलकिशोर को जनता और कार्यकर्ताओं का भरपूर साथ मिल रहा था। वे खुद भी हर विधानसभा क्षेत्र में दो-तीन बार गए। संसदीय अनुभव ले चुके रसूखदार महाराजकुमार के सामने पहली बार बड़ा चुनाव लड़ रहे नवलकिशोर कहीं से कमजोर मालूम नहीं पड़ते थे। एक मंझे हुए खिलाड़ी की तरह वे चुनाव अभियान को सघन करते जा

रहे थे। उन्होंने लोगों के बीच यह धारणा पुख्ता करने की मुहिम शुरू कर दी कि राजपरिवार के लोग चुनाव जीतने के बाद मुंह दिखाने भी नहीं आते हैं, जबकि एक स्थानीय आम व्यक्ति हर समय मतदाताओं की सेवा के लिए उपलब्ध रहेगा। उनके इस संदेश ने लोगों के मन में पैठ बना ली। गायत्री देवी की लोकप्रियता में सेंध लगती दिखाई देने लगी।[6]

दौसा में कांग्रेस को साधन भी ज्यादा नहीं लगाने पड़े। दौसा कस्बे में सुखाड़िया के अलावा मंत्रिमंडल के किसी सदस्य को जाना भी नहीं पड़ा। स्थानीय जनता ने उपचुनाव को देखते हुए कोई मांग भी नहीं की।[7] लेकिन सुखाड़िया ने व्यक्तिगत रूप से नवलकिशोर को चुनाव जिताने के लिए अथक परिश्रम किया। इस बात ने नवलकिशोर को और प्रभावित किया। नवलकिशोर के शब्दों में, 'सुखाड़िया द्वारा मेरे समर्थन में किया गया अथक परिश्रम दर्शनीय था। विश्वास नहीं होता था कि इस शरीर में इतनी शक्ति संभव है। वे प्रतिदिन मेरे साथ प्रातः 6–7 बजे से ही शाम तक चुनाव प्रचार में लगे रहते थे। उस समय उन्हें भोजन, विश्राम आदि की कोई चिंता ही नहीं रहती थी।'[8]

अपनी व्यक्तिगत साख और सुखाड़िया के पूर्ण समर्थन की बदौलत नवलकिशोर ने पृथ्वीराज को हरा दिया। पृथ्वीराज को मिले 89,944 वोटों के मुकाबले नवलकिशोर को 96,271 वोट प्राप्त हुए।[9] उस दौर में यह एक अविश्वसनीय घटना थी। इसकी चर्चा सर्वत्र हुई। उस समय की राजनीति को नजदीक से देख चुके वरिष्ठ पत्रकार विजय भंडारी के अनुसार, 'नवलकिशोर की जीत एक तरह से स्वतंत्र पार्टी के धराशायी होने की सूचना थी। दौसा की हार के बाद पार्टी की राजनीति में पकड़ ढीली पड़ने लगी और वह सिमटती गई। स्वतंत्र पार्टी के अवसान का लाभ जनसंघ को मिला और इस तरह राजाओं–जागीरदारों की सत्ता की राजनीति खत्म हुई।'[10]

लोकसभा उपचुनाव में जीतने के बाद नवलकिशोर किसी गुट से नहीं जुड़े। नवलकिशोर की निष्ठा व्यास में रही थी और वे रामकरण के अनुयायी थे। इसके बावजूद सुखाड़िया ने उनके प्रति सदाशयता बनाए रखी। नवलकिशोर जब मिलते तो सुखाड़िया का व्यवहार मित्रवत होता और संबंधित कार्य में सहायता करते। नवलकिशोर के लिए यह सुखाड़िया के हृदय की विशालता और सौम्यता थी।[11] वहीं, नवलकिशोर की पार्टी के प्रति निष्ठा और बेबाकी सुखाड़िया के लिए आकर्षक थी। नवलकिशोर उनसे बिना संकोच कहते, 'मेरे कांग्रेस नहीं छोड़ने का नतीजा यह हुआ कि दौसा–सिकराय में ज्यादा लोग कांग्रेस छोड़कर नहीं गए। दौसा सब डिवीजन में कांग्रेस को दो विधानसभा क्षेत्रों में सफलता मिली। सिकराय में कांग्रेस की जीत का कारण, यदि मैं कहूं कि मेरा कांग्रेस नहीं छोड़ना ही था, तो गलत नहीं होगा।'[12]

सक्रिय सांसद

नवलकिशोर एक सक्रिय और जागरूक सांसद थे। अपने क्षेत्र की स्थिति पर उनकी नजर हमेशा बनी रहती थी। आमजन की समस्याओं और मांगों के प्रति वे सचेत रहते। राशन डीलरों के घोटाले से लेकर शिक्षकों की कमी तक और पानी की समस्या से लेकर

सड़कों की बदहाली तक हर विषय उन्हें ध्यान में रहता और वे दिल्ली में हों या विदेश दौरे पर, स्थानीय अधिकारियों-मंत्रियों को पत्र लिखकर कार्रवाई करने के लिए स्मरण करवाते रहते। समस्याओं के निराकरण के उनके तरीके भी निराले थे। कभी प्रेम से तो कभी व्यंग्य का सहारा लेकर वे संबंधित अधिकारियों-मंत्रियों को उचित कदम उठाने के लिए प्रेरित करते। वे किसी विषय को छोटे स्तर का बताकर उसे टालते नहीं, खुद जरूरी पहल करके जानकारी लेते।

दौसा कस्बे में पीने के पानी की लंबे समय से समस्या चली आ रही थी। 1944 में जयपुर राज की ओर से 14 नल लगवाए गए और एक कुएं से पंप लगाकर पानी की व्यवस्था की गई। आबादी बढ़ने से पानी का अभाव बना रहा। नवलकिशोर ने पेयजल की कमी दूर करवाने के लिए काफी प्रयास किए। मंत्री स्तर पर सक्रियता नहीं दिखाई दी तो मुख्यमंत्री से हस्तक्षेप करवाकर काम आगे बढ़वाया।[13] जमवारामगढ़ बांध की नहर बंद हो जाने से अनेक किसानों की जमीनें बेकार हो गईं तो नवलकिशोर ने दौसा तहसील में भंडाना बंधा स्वीकृत करवाया।[14] छोटा महेसरा और चांदराना सिंचाई परियोजना का काम करवाया। जमवारामगढ़ की जलप्रदाय योजना भी उन्होंने इसी तरह आग्रह करके शुरू करवाई।[15]

राशन की सामग्री के उचित वितरण के प्रति भी नवलकिशोर पूरी तरह जागरूक रहते। राशन डीलरों की अनियमितताओं के प्रति अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करवाकर कार्रवाई करवाते। किसानों को रासायनिक खाद और बीजों के अभाव से काफी परेशानी हो रही थी। इनकी कमी नहीं थी, लेकिन पंचायत समिति के अधिकारियों और स्थानीय ग्राम सेवकों की मिलीभगत से किसानों को मिलने वाले परमिट दूसरों को दे दिए जाते। किसानों ने यह विषय नवलकिशोर के समक्ष उठाया।[16] नवलकिशोर ने समस्या का समाधान करवाया। बांदीकुई में 20 रेलवे मजदूरों को नियमों के विरुद्ध नौकरी से निकाले जाने की सूचना मिलते ही नवलकिशोर ने उचित संज्ञान किया। उन्होंने केंद्रीय रेल मंत्री ललितनारायण मिश्र को पत्र लिखकर पूरा मामला बताया और मजदूरों की शीघ्र पुनः बहाली सुनिश्चित करने का अनुरोध किया।[17]

नवलकिशोर दौसा हायर सैकंडरी स्कूल की छात्र संसद के उद्घाटन के लिए गए तो वहां उन्हें टाइपराइटर और फर्नीचर की कमी के बारे में बताया गया। स्थिति यह थी कि स्कूल के ब्वॉयज फंड में 30 हजार रुपए जमा थे, लेकिन उस राशि को खर्च करने के लिए शिक्षा विभाग की अनुमति की जरूरत पड़ती। इस स्वीकृति में अक्सर विलंब होता और वह फंड बिना उपयोग के पड़ा रहता। नवलकिशोर ने यह बात पता चलने पर शिक्षा विभाग के संयुक्त निदेशक को लिखा कि विभाग की ओर से आठ टाइपराइटर और फर्नीचर खरीद का प्रावधान किया जाए; और यदि यह संभव नहीं हो तो स्कूल ब्वॉयज फंड से आवश्यक राशि खर्च करने की अनुमति दी जाए।[18] इस तरह परोक्ष रूप से विभाग को उसकी कमी भी बता दी और आवश्यकता पूरी करने का आसान तरीका भी समझाया। उन्हीं दिनों भांडारेज की उच्च प्राथमिक शाला में अध्यापिकाओं की कमी चल रही थी। नवलकिशोर ने पत्र में लिखा कि अध्यापिकाओं की कमी

के कारण पढ़ाई ठीक से नहीं चलना स्वाभाविक है। अधिकारियों से अध्यापिकाओं की कमी को पूरा करवाने के लिए यह कटाक्ष पर्याप्त रहा। कोटपूतली के पुस्तकालय में कर्मचारियों की नियुक्ति करवाने के लिए उन्होंने पुस्तकालय के अच्छा काम करने को आधार बनाया।

हरिजनों को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए नवलकिशोर सतत प्रयासरत रहे। महात्मा गांधी के विचारों का उन पर गहरा प्रभाव था। जातिवाद और छुआछूत को वे समाज की सबसे बड़ी चुनौती मानते थे। हरिजनों से घनिष्ठता रखने के कारण उन्हें काफी समय तक बिरादरी से बाहर रहना पड़ा, लेकिन उन्होंने परवाह नहीं की और न ही झुके। हुआ यह कि दौसा के सांसद रहने के दौरान वे गांधी जयंती के अवसर पर जुलूस लेकर निकले। रास्ते में अनुसूचित जाति के लोगों की बस्ती आई। वहां कुछ लोगों ने चाय की पेशकश की। नवलकिशोर ने बड़े प्रेमभाव से चाय ग्रहण की और आगे बढ़ चले। यह बात जंगल में आग की तरह फैल गई कि ब्राह्मण होते हुए उन्होंने 'अछूतों' के हाथ से चाय पी ली। बिरादरी के लोगों ने उन्हें कहा कि वे माफी मांग लें, वरना उन्हें बिरादरी से बाहर कर दिया जाएगा। नवलकिशोर अड़ गए, 'मैंने कोई गुनाह नहीं किया, जिसके लिए माफी मांगूं।' परिणामस्वरूप, उन्हें बिरादरी से निकाल दिया गया।[19]

गरीबी में पले-बढ़े नवलकिशोर के लिए उच्च पदों पर पहुंचने के बावजूद एक-एक रुपए का महत्व था। वे अपने खर्च का हिसाब लिखकर रखते और छोटे-बड़े बिल सहेजकर रखते। एक बार जब उन्हें लगा कि उनके टेलीफोन का बिल इस्तेमाल से अधिक आया है तो उन्होंने केंद्रीय संचार मंत्री हेमवतीनंदन बहुगुणा को पत्र लिखकर जांच करने की मांग की। बहुगुणा ने उन्हें जवाब लिखा और उचित कार्यवाही का आश्वासन दिया।[20]

नवलकिशोर 'कांग्रेस सोशलिस्ट फोरम'* से जुड़े हुए थे। उस समय फोरम के सबसे लोकप्रिय नेता चंद्रशेखर थे। फोरम द्वारा सरकार के समक्ष उठाए जाने वाले मुद्दों में बैंकों का राष्ट्रीयकरण प्रमुख था। 24 अप्रेल, 1969 को नई दिल्ली में आयोजित कांग्रेसजनों के सम्मेलन में फोरम की ओर से बैंकों के राष्ट्रीयकरण की जरूरतों पर जोर देते हुए एक प्रस्ताव पारित किया गया। इसका प्रभाव जल्दी ही दिखाई देने लगा। उसी वर्ष जुलाई में कांग्रेस के बंगलोर अधिवेशन में इंदिरा गांधी ने कांग्रेस वर्किंग कमेटी को इस विषय पर अमल करने का सुझाव दिया। अधिवेशन से लौटने के बाद इंदिरा ने मोरारजी देसाई से वित्त मंत्रालय लेकर अपने पास रख लिया और राष्ट्रपति के अध्यादेश के जरिए बैंकों के राष्ट्रीयकरण की घोषणा कर दी। यह कांग्रेस सोशलिस्ट फोरम के लिए बड़ी सफलता थी। फोरम के नेताओं ने इस निर्णय के लिए सरकार की मुक्त कंठ से सराहना की। उस दौरान सिंडिकेट के प्रभावशाली नेता एस.के. पाटिल

---

*ब्रिटिश शासन के दौरान कांग्रेस के भीतर अनेक समूह सक्रिय थे और वे सभी स्वतंत्र दल होने का दावा भी करते थे। आजादी के बाद कांग्रेस सत्ता में आई और ये सभी समूह एक संगठन के तहत आ गए। लेकिन विचारधाराओं के आधार पर बड़े नेताओं में मतभेद बना रहा। 1955 में कांग्रेस के अवाडी अधिवेशन में समाजवादी संरचना से संबंधित प्रस्ताव पारित करवाने के बावजूद प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू इन नीतियों पर अमल नहीं कर सके तो उसके पीछे यही मतभेद कारण बने थे। इससे एक बार फिर गुटबाजी का दौर शुरू हुआ। समाजवाद को जरूरी मानने वाले नेताओं ने सरकार पर दबाव बनाने के लिए 1957 में कांग्रेस सोशलिस्ट फोरम की स्थापना की। (रामसिंह अवाना: प्रेशर पॉलिटिक्स इन कांग्रेस पार्टी, नॉर्दन बुक सेंटर, नई दिल्ली, 1988 पृष्ठ 2)

ने मोरारजी को हटाने के लिए इंदिरा की आलोचना की तो फोरम ने इस पर कड़ी प्रतिक्रिया दी। नवलकिशोर, कृष्णकांत, सी.एम. पाणिग्रही, शशिभूषण, ए.जी. कुलकर्णी सहित फोरम के 11 नेताओं ने पाटिल के बयान की निंदा की और इसे हैरान करने वाला बताया।[21]

सांसद रहने के दौरान नवलकिशोर दौसा लोअर कोर्ट में प्रैक्टिस करते रहे। राजस्थान हाईकोर्ट की जयपुर बेंच की पृष्ठभूमि* प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को समझाने के लिए भी नवलकिशोर आगे आए। जयपुर बार एसोसिएशन ने नवलकिशोर से आग्रह किया कि वे इंदिरा से मिलकर इस विषय में मदद प्राप्त करने की कोशिश करें। 30 अगस्त, 1969 को नवलकिशोर ने इंदिरा से मिलने की कोशिश की, लेकिन उनकी अन्य व्यस्तताओं के कारण मिलना संभव नहीं हुआ। उस दौरान इंदिरा दिल्ली से बाहर जाने वाली थीं और उनके लौटने तक नवलकिशोर दिल्ली नहीं रहते। इसलिए उन्होंने पत्र लिखकर इंदिरा को पूरा मामला बताया और कहा कि अगर आप सोचती हैं कि अग्रिम चर्चा की जरूरत नहीं है तो तदनुसार कार्यवाही आगे बढ़ाइए।[22] आगे जाकर जयपुर में राजस्थान हाईकोर्ट की बेंच खुली।

दिल्ली के दांवपेंच

विधानसभा चुनाव में बहुमत के अभाव के बावजूद सरकार के गठन और लगातार दो उपचुनावों में पूर्व मुख्यमंत्री तथा महाराजकुमार के खिलाफ पार्टी को मिली जीत ने मोहनलाल सुखाड़िया की नेतृत्व क्षमता का लोहा मनवाया, लेकिन लेकिन दिल्ली के दांवपेंच उनकी चिंता बढ़ा रहे थे। इंदिरा गांधी का मोरारजी देसाई से मतभेद बढ़ता जा रहा था। इंदिरा अपनी शक्ति बढ़ाना चाहती थीं। इसके कारण उनकी सिंडिकेट नेताओं के साथ खींचतान जारी रही। इन हालात में 1969 में राष्ट्रपति चुनाव आया। सिंडिकेट गुट ने इंदिरा द्वारा मनोनीत जगजीवन राम को राष्ट्रपति उम्मीदवार के रूप में स्वीकार करने से इनकार कर दिया। इससे पार्टी के विभाजन की जमीन तैयार हो गई। इसके बाद इंदिरा ने बगावती तेवर अपना लिए। उन्होंने सिंडिकेट द्वारा चुने गए पार्टी के अधिकृत उम्मीदवार नीलम संजीव रेड्डी के मुकाबले तत्कालीन उपराष्ट्रपति वी.वी. गिरि को खड़ा किया और उन्हें समर्थन दिलवाने के लिए 'अंतरात्मा की आवाज' पर वोट देने की अपील कर दी।

सुखाड़िया संगठन के समर्थक थे। वे पार्टी में इंदिरा विरोधी गुट के पक्षधर थे। कोषाध्यक्ष अतुल्य घोष उनके अच्छे मित्र थे। सुखाड़िया ने रेड्डी का पक्ष लिया और दावा किया कि राजस्थान के कांग्रेस विधायक उनका साथ देंगे। उन्होंने इंदिरा को स्पष्ट कहा कि वे कांग्रेस उम्मीदवार का पूरा समर्थन करेंगे। इसके साथ ही उन्होंने इंदिरा के प्रति विश्वास व्यक्त किया और कहा कि जहां तक उनके नेतृत्व का प्रश्न है, उसमें पूरी आस्था है।[23] सुखाड़िया के दोहरे

*राजस्थान के एकीकरण के बाद जोधपुर में हाईकोर्ट की स्थापना हुई। आगे चलकर जयपुर, उदयपुर, बीकानेर और कोटा में भी बेंच खोली गई। भारत का संविधान लागू होने के बाद 22 मई, 1950 को उदयपुर, बीकानेर और कोटा बेंच को निरस्त कर दिया गया, लेकिन जयपुर बेंच बरकरार रही। 1958 में इसे भी बंद कर दिया गया। पूर्वी राजस्थान में इस फैसले का व्यापक विरोध हुआ। लंबे इंतजार के बाद 1976 में जयपुर बेंच को स्थाई कर दिया गया।

रवैए को लेकर प्रदेश कांग्रेस कमेटी की डीडवाना बैठक में अलग विचार भी सामने आए। हरिदेव जोशी इस बात से सहमत नहीं थे कि राष्ट्रपति के लिए नीलम संजीव रेड्डी और प्रधानमंत्री के लिए इंदिरा गांधी का समर्थन किया जाए। उन्होंने ऐतराज किया, 'आप उस महिला का समर्थन करना चाहते हैं!'[24] हालांकि इस बैठक में सुखाड़िया ने इंदिरा के पक्ष में प्रस्ताव पारित करवाया। मुख्यमंत्री के फैसलों को साफ तौर पर जान लेने के बाद राजस्थान के कुछ विधायकों ने उनसे मतदान की छूट मांगी।[25]

इस दौरान ऐसी स्थिति बनी कि सुखाड़िया और मथुरादास माथुर से नवलकिशोर के मतभेद हो जाते, लेकिन नवलकिशोर ने सुखाड़िया को पत्र लिखकर और उसकी प्रतिलिपि माथुर को भेजकर स्पष्टीकरण दिया। यह विवाद कथित रूप से नवलकिशोर की जगन्नाथ पहाड़िया और शिवचरण सिंह से बातचीत से पैदा हुआ था। पहाड़िया और शिवचरण ने नवलकिशोर के हवाले से पत्रकारों को कुछ ऐसी संगठनात्मक बातें बताईं, जिनका वास्तविकता से कोई लेना-देना नहीं था। नवलकिशोर ने सुखाड़िया को लिखा:

> पिछले हफ्ते दिल्ली और जयपुर के कुछ समाचार पत्रों में मेरे नाम से एक समाचार छपा है। संभवतया आपने भी इस समाचार को पढ़ा होगा या इसके बारे में सुना होगा। मैं इसके बारे में आपसे मिलकर अपनी स्थिति स्पष्ट करना चाहता था क्योंकि यह समाचार राजस्थान के कांग्रेसजनों और खास तौर से आपके मन में मेरे बारे में शंका और रोष पैदा कर सकता है। इस समाचार के निकलने के बाद से आप लगातार दिल्ली रहे। मेरा विचार था कि मैं आपसे दिल्ली में मिलकर सारी स्थिति स्पष्ट कर दूंगा। लेकिन दिल्ली जब आया तो मालूम हुआ कि आप चले गए। कार्यसमिति के समय भी आप नहीं पधारे। इसलिए मैंने यह पत्र लिखकर आपको अपनी स्थिति समझाने का फैसला किया है। जो समाचार अखबारों में मेरे नाम से छपा है, वह दरअसल न मेरे विचार हैं और न ही मेरे द्वारा दिया गया है। वास्तविकता तो यह है कि मैं 15 जुलाई को सुबह करीब 11 बजे राजस्थान अपीलेट अधिकारी के यहां कुछ मुकदमों की पैरवी के लिए जा रहा था। मिर्जा इस्माइल रोड पर मुझे जगन्नाथ पहाड़िया और शिवचरण सिंह मिल गए और उन्होंने मुझे अपने साथ गाड़ी में बैठा लिया। मैं उनके साथ खासा कोठी चला गया। वहां कुछ पत्रकार पहले से ही बैठे थे। पहले तो वैसे ही बातचीत होती रही और बाद में एकाएक मेरी बिना सलाह या पूर्व जानकारी के उन्होंने पत्रकारों से वे बातें कहीं, जो मेरे नाम से छपी हैं। इसलिए जो कुछ मेरे नाम से छपा है, वे मेरे विचार नहीं हैं। यह सिंह और पहाड़िया के ही विचार हैं। उन्होंने अपने तरीके से ये बातें बताईं हैं। मैं अंत में आपको विश्वास दिला सकता हूं कि मैं किसी भी ऐसे कदम में शरीक नहीं होना चाहता, जिससे राजस्थान में कांग्रेस या उसके नेतृत्व को हानि पहुंचे।[26]

देश में कांग्रेस सांसदों-विधायकों का बहुमत होने के बावजूद रेड्डी चुनाव हार गए। राजस्थान में बरकतुल्ला खां, शिवचरण माथुर, पूनमचंद विश्नोई और लक्ष्मीकुमारी चूंडावत के अलावा सभी विधायकों ने सुखाड़िया के नेतृत्व में रेड्डी को वोट दिया*। सुखाड़िया एकाधिक बार यह स्पष्ट कर चुके थे कि वे भले ही कांग्रेस के अधिकृत प्रत्याशी रेड्डी के पक्ष में हैं, लेकिन प्रधानमंत्री के रूप में इंदिरा को ही चाहते हैं। लेकिन इंदिरा ने इस विरोध को अपने मन में बांध लिया। इसके बाद वे सुखाड़िया से कभी प्रसन्न नहीं रहीं। राष्ट्रपति चुनाव के बाद इंदिरा ने सिंडिकेट समर्थक चार जूनियर मंत्रियों को इस्तीफा देने को कहा, जिसमें राजस्थान के जगन्नाथ पहाड़िया शामिल थे।[27] 12 नवम्बर, 1969 को सिंडिकेट ने इंदिरा को कांग्रेस से निष्कासित कर दिया। वसंतराव नाइक, मोहनलाल सुखाड़िया आदि समझौते की कोशिश कर रहे थे। कार्यसमिति की बैठक में उपस्थित 11 सदस्यों ने सर्वसम्मति से प्रधानमंत्री को कांग्रेस की अध्यक्षता से हटाने का प्रस्ताव पारित किया।[28] इसके जवाब में इंदिरा ने अपने समर्थक सांसदों की सभा की। पार्टी के कुल चुने गए 705 सांसदों में से 441 उनके साथ थे।[29] इंदिरा ने अपनी अलग पार्टी बना ली। उसे कांग्रेस (आर) का नाम दिया गया, जो 'रूलिंग पार्टी' का प्रतीक था। सिंडिकेट नेताओं का धड़ा कांग्रेस (ओ) कहलाया, जो 'ऑर्गेनाइजेशन' से संबंधित था।

केंद्र में अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए इंदिरा ने बैंकों का राष्ट्रीकरण किया और राजाओं के प्रिवीपर्स, विशेषाधिकार उपाधियां, रियासतों के झंडे फहराने आदि अधिकारों को समाप्त करने जैसे महत्वपूर्ण कदम उठाए। इंदिरा के इन कदमों से उद्योगपति और राजा-महाराजा डर गए। उनकी राजनीतिक शक्ति कमजोर हो गई। प्रिवी पर्स समाप्ति के लिए संविधान संशोधन बिल लोकसभा में पारित हो गया, लेकिन राज्यसभा में उसे जरूरी दो-तिहाई बहुमत नहीं मिल सका। इसके बाद लोकसभा के मध्यावधि चुनाव 1971 में किए जाने की घोषणा हुई। यह पहला अवसर था, जब लोकसभा के चुनाव निर्धारित अवधि से पूरे एक वर्ष पहले हो रहे थे। इस चुनाव में कांग्रेस को 518 में से 352 सीटें प्राप्त हुईं। राजस्थान में सुखाड़िया के नेतृत्व में कांग्रेस ने चुनाव लड़ा और 23 में से 14 सीटों पर विजय प्राप्त की। स्वतंत्र पार्टी केवल 3 सीटें ही जीत सकी और जनसंघ ने 4 सीटें प्राप्त कीं। बीकानेर के महाराजा डॉ. करणी सिंह और जोधपुर की राजमाता कृष्णा कुमारी को निर्दलीय के रूप में जीत मिली। कांग्रेस को 1957 के बाद सर्वाधिक 50.35 प्रतिशत वोट मिले।[30]

देश भर में कांग्रेस को मिली सफलता का श्रेय इंदिरा को ही था। जनता उनमें एक सशक्त भविष्य की तस्वीर देख रही थी। इससे पहले 1952 से 1962 तक जनता ने कांग्रेस को लगातार अवसर दिया और उससे निराश होकर 1967 में कई राज्यों में दूसरे दलों को सत्ता सौंपी। लेकिन अन्य दलों की संविद सरकारों से भी जनता को निराशा ही मिली। एक ही साल में हरियाणा, दूसरे साल में उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल और पंजाब में मध्यावधि चुनाव हुए, फिर भी हालात नहीं बदले। इसी बीच इंदिरा ने कांग्रेस के ढांचे में उलटफेर का बीड़ा उठाया

*बरकतुल्ला खां और शिवचरण माथुर क्रमशः 1971 और 1981 में मुख्यमंत्री बने। पूनमचंद विश्नोई को 1980 में विधानसभा अध्यक्ष का पद दिया गया। लक्ष्मीकुमारी चूंडावत को 1971 में प्रदेश अध्यक्ष का पद और राज्यसभा की सदस्यता मिली।

और देश के मानस में यह बात पूरी तरह बैठा दी कि कांग्रेस के पुराने नेता आगे बढ़ने में बाधक हो गए हैं। इंदिरा अपनी समाजवादी नीति पर चलने के लिए जनता से जो आदेश चाहती थीं, वह उन्हें मिल गया। वे जिन ताकतों को अपने रास्ते में रोड़ा समझती थीं, उनका सफाया हो गया।

इंदिरा की छाया में भारत

पूर्ण प्रभुत्व के एक रहस्यमय, तेज और चमत्कृत करने वाले आवेगपूर्ण निश्चय में इंदिरा गांधी ने अपनी ही पार्टी के कई मुख्यमंत्रियों के कार्यकाल समाप्त कर दिए। वे मुख्यमंत्रीगण निकट भविष्य में होने वाले अपने राज्यों के विधानसभा चुनावों की योजनाएं बना रहे थे।[31] इसी क्रम में मोहनलाल सुखाड़िया को भी सत्ता छोड़नी पड़ी। 28 जून, 1971 को उन्होंने मंत्रियों और कांग्रेस विधायक दल कार्यकारिणी की बैठक में घोषणा की कि 17 वर्षों तक निर्विरोध सत्तारूढ़ रहने के बाद वे मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा देने जा रहे हैं। जब उन्होंने रूंधे गले से अपने साथियों से इस फैसले पर नाराज नहीं होने का अनुरोध किया तो उनके गालों पर आंसू लुढ़क आए। उन्होंने कहा, 'मुझे केवल पहले की तरह आपका प्यार और स्नेह चाहिए। मैं राजनीति से संन्यास नहीं लेने जा रहा हूं।'[32]

इस प्रसंग पर नवलकिशोर की टिप्पणी उल्लेखनीय है, 'जब सुखाड़िया को मुख्यमंत्री पद से हटाया जा रहा था, तब कांग्रेस विधायक दल में उनका पूर्ण बहुमत था। कोई उनके खिलाफ नहीं था। लगभग 105 विधायक इंदिरा के पास गए और कहा कि सुखाड़िया के मुख्यमंत्री नहीं रहने से राजस्थान कांग्रेस में अंधेरा हो जाएगा। इंदिरा का जवाब था, 'अंधेरे के बाद ही प्रकाश आता है।' सभी उनकी भावना को समझ गए और जयपुर लौट आए।'[33] लेकिन सुखाड़िया का कहना था कि उन्हें इंदिरा ने पद छोड़ने का संकेत नहीं किया। सुखाड़िया के अनुसार, '1971 के प्रारंभ में इंदिरा के नेतृत्व में लोकसभा के मध्यावधि चुनाव में कांग्रेस की स्थिति देश भर में काफी सुदृढ़ हो गई और राजस्थान में भी काफी अच्छा परिणाम आया तो मैंने इस अवसर को पद छोड़ने की दृष्टि से उपयुक्त समझा। समय बीतने के बाद 1972 के आम चुनाव पास में आ जाते। इसलिए मेरे दिमाग में यह बात थी कि आम चुनाव के सात-आठ महीने पहले ही पद छोड़ देना उपयुक्त होगा। इसलिए पद त्याग की इच्छा अप्रेल, 1971 में प्रधानमंत्री को बता दी।'[34]

4 जुलाई, 1971 को सुखाड़िया ने कांग्रेस अध्यक्ष के नाम पत्र लिखकर मुख्यमंत्री पद से मुक्त किए जाने के लिए संसदीय बोर्ड से अनुरोध किया। उन्होंने यह भी लिखा कि वे कांग्रेस को मजबूत बनाने के लिए पूरे मन से काम करते रहेंगे। संसदीय बोर्ड ने 5 जुलाई की बैठक में इस विषय पर विचार किया। बैठक में सुखाड़िया विशेष रूप से आमंत्रित किए गए थे। उन्होंने राजस्थान की राजनीतिक परिस्थितियों का मूल्यांकन किया और आशा जताई कि कांग्रेस विधायक दल अपने नए नेता का चुनाव सर्वसम्मति से कर सकेगा। संसदीय बोर्ड ने सुखाड़िया की सेवाओं की प्रशस्ति करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया और उन्हें नए नेता के

चुनाव में निर्देश देने के लिए भी अधिकृत कर दिया।[35] अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महासचिव शंकरदयाल शर्मा ने 6 जुलाई को सुखाड़िया की प्रशंसा का पत्र लिखा:

> प्रिय सुखाड़िया जी,
> आपके पत्र पर केंद्रीय संसदीय बोर्ड ने अपनी 5 जुलाई, 1971 की बैठक में विचार किया। इस संबंध में बोर्ड ने निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया है:
>
> 'संसदीय बोर्ड श्री मोहनलाल सुखाड़िया की राजस्थान के मुख्यमंत्री के रूप में 17 वर्षों से अधिक अवधि की सेवाओं के प्रति अपनी असीम सराहना को अभिलिखित करता है। उन्होंने ऐसे समय में राजस्थान का शासन संभाला, जब वहां सामंतों का वर्चस्व था और देश के सबसे पिछड़े राज्यों में उसकी गिनती होती थी। अपने जागरूक नेतृत्व और कांग्रेस पार्टी के आदर्शों के प्रति समर्पण के जरिए उन्होंने राज्य के एकीकरण में योगदान किया और उसे आर्थिक समृद्धि तथा सामाजिक पुनरुत्थान के पथ पर अग्रसर किया। संसदीय बोर्ड श्री सुखाड़िया के इस वक्तव्य का स्वागत करता है कि वे पूरी निष्ठा से हमारी पार्टी के सशक्तीकरण के लिए कार्य करते रहेंगे। संसदीय बोर्ड को विश्वास है कि वे अपने राजनीतिक अनुभव और प्रशासनिक क्षमता के माध्यम से जनकल्याण में योगदान करते रहेंगे।'[36]

8 जुलाई की शाम नवलकिशोर ने सुखाड़िया के बंगले पर जाकर उनसे व्यक्तिगत मुलाकात की कोशिश की, लेकिन परिस्थितिवश नहीं मिल सके। अगले दिन उन्होंने एक पत्र लिखकर सुखाड़िया के नेतृत्व की प्रशंसा की और व्यक्तिगत सहयोग के लिए आभार प्रकट किया। उन्होंने लिखा:

> मैं कल जयपुर था। शाम को बंगले पर पहुंचा था मगर किसी डिनर प्रोग्राम के कारण मिलना संभव न समझकर आपसे बिना मिले ही लौट आया। मैं आपके पास व्यक्तिगत तौर पर अपनी ओर से आपके द्वारा दिए गए सहयोग के लिए कृतज्ञता प्रकट करने गया था। क्योंकि व्यक्तिगत मिलना संभव नहीं हुआ, इसलिए इस पत्र के द्वारा आपके द्वारा 1968 के उपचुनाव से लेकर अब तक जो सहयोग सार्वजनिक कामों में और व्यक्तिगत तौर पर मुझे मिला है, उसके लिए मैं आपका बहुत आभारी हूं। सुखाड़िया जी, आपने राजस्थान को जहां एक सुदृढ़ शासन दिया, वहां राजस्थान की एक नई शानदार तस्वीर बनाई है; अपनी उदारता से मेरे जैसे अनेक आपके साधारण कार्यकर्ताओं का सम्मान बढ़ाया और स्थान बनाया। मुझे विश्वास है कि आपका एक्टिव मार्गदर्शन प्रांत और देश को सदैव ही मिलता रहेगा। मेरी मान्यता है मैं बराबर आपके प्रेम का भागीदार रह सकूंगा।[37]

17 वर्षों तक सत्तारूढ़ रहे सुखाड़िया को अपदस्थ किए जाने से अनेक नेताओं की महत्वाकांक्षा को बल मिला। नया मुख्यमंत्री चुने जाने की कवायद के बीच हरिदेव जोशी ने इंदिरा गांधी से मुलाकात करके मुख्यमंत्री बनने की इच्छा प्रकट की। इंदिरा ने जोशी से कहा कि वे चुनाव लड़ना चाहें तो लड़ सकते हैं। जोशी जयपुर लौटकर तैयारी में जुट गए।[38] दूसरी तरफ, इंदिरा ने सुखाड़िया का लोकप्रिय विकल्प खोजने की चिंता का भार विधायकों और कांग्रेस के नेताओं पर छोड़ा ही नहीं। उन्होंने ऐसे वरिष्ठ विधायक का चयन किया, जो तिजारा से पहले जोधपुर से तीन बार लगातार विधायक चुने जाने और मंत्री होने के साथ ही अपनी साफगोई, ईमानदारी, सादगी और मस्ती के लिए जाने जाते थे। इंदिरा के पति फिरोज गांधी के साथ पढ़ चुके ये नेता बरकतुल्ला खां थे। फिरोज से मित्रता के कारण निजी बातचीत में वे इंदिरा को भाभी संबोधित करते थे। मजेदार बात यह थी कि जब सुखाड़िया का इस्तीफा हुआ तो बरकतुल्ला भारत से बाहर गए हुए थे। उनके लिए भी यह खबर चौंकाने वाली थी। जब वे दिल्ली लौटे तो इंदिरा ने आदेश देते हुए कहा, 'तुमको मुख्यमंत्री बनना है। जयपुर जाओ और इसकी तैयारी करो।' जोशी के खेमे में इसका पता चलते ही उनके समर्थक दूर होते चले गए।[39] टीकाराम पालीवाल के अनुसार, 'वह राजस्थान के ऊपर मुख्यमंत्री थोपने का पहला अवसर था।'[40]

8 जुलाई, 1971 को विधायक दल की बैठक में बरकतुल्ला सर्वसम्मति से नेता चुन लिए गए। 9 जुलाई को राज्यपाल ने उन्हें और उनके मंत्रिमंडल को शपथ दिलवाई।[41] हरिदेव जोशी को मंत्रिमंडल में जगह दी गई। बरकतुल्ला राजस्थान की राजनीति में पैठ जमाने की कोशिश में जुटे। उस दौर में किसी भी मुख्यमंत्री के लिए यह बड़ी चुनौती होती। सुखाड़िया के सुदीर्घ कार्यकाल का राजस्थान पर गहरा प्रभाव रहा था। राज्य के गठन के बाद राजनीतिक उठापटक में पांच वर्ष में चार बार मुख्यमंत्री बदल गए और फिर सुखाड़िया आए तो डेढ़ दशक से अधिक समय तक लगातार शासन में बने रहे। वे पहले मुख्यमंत्री थे, जो जनोन्मुखी नीतियां बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने पर अपना ध्यान लगा सके। इस कारण से मुख्यमंत्री के रूप में जनता के मन में उन्हीं का चेहरा बना हुआ था। एक तरह से उनका नाम मुख्यमंत्री का पर्यायवाची हो गया। उनकी लोकप्रियता का आलम यह था कि जब बरकतुल्ला नए मुख्यमंत्री के रूप में एक गांव में गए तो उस समय लोग यह कहते सुने गए, 'या नयो सुखाड़िया आयो है'।[42]

नवलकिशोर इन गतिविधियों पर नजर बनाए हुए थे, लेकिन केंद्र की राजनीति उन्हें रास आ रही थी। राष्ट्रीय स्तर पर नवलकिशोर में व्यापक संभावनाएं महसूस की गईं। शुरुआती दौर से ही उन्हें प्रासंगिक महत्व के पद दिए गए। उन्हें रेलवे कन्वेंशन कमेटी (आरसीसी) का सदस्य मनोनीत किया गया। 1971 के मध्यावधि चुनाव के बाद लोकसभा का पुनर्गठन हुआ तो नवलकिशोर को नागरिक उड्डयन समिति में जगह दी गई। सीमित समयावधि में नवलकिशोर का कद इतना बढ़ गया था कि उन्हें यह अपने अनुकूल नहीं लगा। उन्होंने संसदीय मामलों के मंत्री राजबहादुर को पत्र लिखकर वित्त कमेटी या किसी अन्य वैधानिक कमेटी में नियुक्त नहीं किए जाने को लेकर असंतोष प्रकट किया। उन्होंने पत्र के अंत में

लिखा, 'मैं जानता हूं कि अब कुछ नहीं किया जा सकता। यह बस आपको बताने के लिए लिखा कि आपका सचिवालय किस तरह काम करता है क्योंकि परंपरा यह रही है कि पहले मनोनीत किए गए सदस्यों को दुबारा भी लिया जाता है।'[43]

1971 का लोकसभा चुनाव जीतने के बाद इंदिरा गांधी ने संगठनात्मक ढांचे पर विशेष ध्यान दिया। नवलकिशोर को कांग्रेस संसदीय दल का सर्वसम्मति से सचिव चुना गया। इंदिरा द्वारा राजनीतिक विरोध को दबाने के लिए समाजवादी-साम्यवादी पृष्ठभूमि के नेताओं को आगे किए जाने की तरफ यह कदम था। इंदिरा ने यह भी ध्यान रखा कि ऐसे नेता उनके व्यक्तिगत समर्थक हों और अतिमहत्वाकांक्षी न हों। उन्हें उसी दौरान आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री पद से हटाए गए पी.वी. नरसिंह राव का ध्यान आया, जिन्होंने भूमि सुधार लागू करके क्रांतिकारी छवि बनाई थी। उन्हें चार महामंत्रियों में से एक बनाया गया। कुछ ही समय बाद नवलकिशोर को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के संयुक्त महामंत्री की जिम्मेदारी दी गई। राजस्थान के किसी नेता के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में पदाधिकारी बनने का यह पहला मौका था। राजाओं के प्रिवी पर्स समाप्त करने के लिए प्रस्तावित 26वां संविधान संशोधन विधेयक राज्यसभा में पारित नहीं हो सका था, उसे 2 दिसम्बर, 1971 को इंदिरा ने लोकसभा में पुनः प्रस्तुत किया। विधेयक पर वाद-विवाद में हिस्सा लेने वाले 17 सांसदों में नवलकिशोर शामिल थे।[44] हिंदी-अंग्रेजी पर मजबूत पकड़ और राजनीतिक संदर्भों के विश्लेषण की योग्यता ने नवलकिशोर को लेखन-संपादन की भूमिका में आगे कर दिया। उन्हें 'सोशलिस्ट इंडिया' और 'सोशलिस्ट भारत' का संपादक बनाया गया*। कांग्रेस के पदाधिकारी रहते हुए तटस्थतापूर्वक आमजन की आवाज उठाने का यह अनूठा प्रयोग था।

राजस्थान में 1972 के विधानसभा चुनाव की तैयारियां चल ही रही थीं कि पाकिस्तान के साथ युद्ध छिड़ गया। भारत को मुकाबला करने के लिए मजबूर किया गया। 3 दिसम्बर, 1971 को पाकिस्तानी वायु सेना ने उत्तरी भारत के अमृतसर, पठानकोट, श्रीनगर, जोधपुर, अंबाला और आगरा शहरों और हवाई अड्डों पर अकारण व्यापक हमला कर दिया। उसी दिन शाम सात बजे रेडियो पाकिस्तान ने घोषणा की कि भारत ने पाकिस्तान के खिलाफ पश्चिमी क्षेत्र में जमीनी युद्ध छेड़ दिया है। हकीकत यह थी कि हवाई हमलों के बाद पाकिस्तान की ओर से सुलाई मानकी, खेमकरण, पुंछ और भारतीय सीमा चौकियों तथा अन्य सुरक्षा ठिकानों पर तोपखाने से भारी गोलाबारी की गई।[45] भारत इंदिरा गांधी के नेतृत्व में एकजुट हो गया। बांग्लादेश की नवगठित सरकार को मान्यता दे दी गई। भारत को जबर्दस्ती युद्ध में शामिल होना पड़ा। जब पाकिस्तानी सैनिकों ने बांग्लादेश में हत्याएं शुरू कीं और आतंक तथा विनाश का राज कायम कर दिया तो लाखों लोगों को मजबूरी में भारत भागना पड़ा। न केवल सामान्य लोगों को, बल्कि पाकिस्तान के खिलाफ विद्रोह करने वाले बंगाली सैनिकों और अर्धसैनिक बलों के लोगों को भी सीमा पार करने के लिए मजबूर होना पड़ा। लगभग एक करोड़

*'सोशलिस्ट इंडिया' और 'सोशलिस्ट भारत' अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा 1970 में शुरू किए गए अंग्रेजी साप्ताहिक थे।

बांग्लादेशी शरणार्थी भारत पहुंचे। शरणार्थियों का तब तक वापस जाना संभव नहीं था, जब तक बांग्लादेश की स्वतंत्रता मांगने वालों पर पाकिस्तानियों का अत्याचार रुक नहीं जाता।[46]

भारत युद्ध की शुरुआत से हावी रहा। तीन दिनों की लड़ाई में भारतीय थल, जल और नभ सेना ने बांग्लादेश में लड़ रही शत्रु की नरसंहारिणी सेना को करीब–करीब कैद कर लिया। उसकी वायु शक्ति समाप्त हो गई। भारतीय नौसेना ने ऐसा घेरा डाला और हमला किया कि बांग्लादेश के सभी छोटे–बड़े बंदरगाह दुनिया भर से कट गए। पाकिस्तानी सेना को न कहीं से कोई मदद मिल सकती थी और न वह वापस लौट सकती थी। भारतीय सेना और मुक्तिवाहिनी के सैनिक एक साथ कंधे से कंधा मिलाकर दुश्मन पर टूट पड़े।[47]

राजस्थान से जुड़ी सीमा पर जवानों ने अभूतपूर्व युद्ध कौशल का प्रदर्शन किया। जब राजस्थान के सीमा क्षेत्र पर सैनिक कार्यवाहियां पूरे जोर पर थीं, पाकिस्तान ने भारतीय सीमा में घुसपैठिए भेजे। उन्होंने जैसलमेर–रामगढ़ सीमा पर कुछ भारतीय गाड़ियां नष्ट कर दीं। भारतीय जवानों ने असीम साहस का परिचय देकर विजय प्राप्त की और सिनाउतर में तिरंगा फहराया। मिर्जेवाला, तमाचीवाला टोबा और अहमद खां टोबा में पाकिस्तानी सेना को काफी नुकसान पहुंचाया। युद्ध विराम के बाद पाकिस्तान ने मंडला और मेहराना की चौकियों पर कब्जे की कोशिश की। भारतीय जवानों ने सभी कठिनाइयों को पार करके शत्रु को संपूर्ण क्षेत्र से खदेड़ा।[48]

लोंगेवाला* पर सीमा का उल्लंघन करके जैसलमेर की तरफ बढ़ने की कोशिश में लगे पाकिस्तानी (टी–50 चीनी) टैंकों को भारतीय वायुसेना के हंटर विमानों ने हवाई हमलों में चुन–चुन कर निशाना बनाया और उन्हें किसी काम का नहीं छोड़ा।[49] इस्लामगढ़ के उत्तर में इस्लामगढ़–भागला–रहीमयार खां मार्ग पर भाईखांवाला खू है। इस चौकी पर पाकिस्तानी सेना और मुजाहिदों की प्लाटूनें थीं। सीमा सुरक्षा बल और राजपूताना राइफल्स के जवानों ने शौर्य, साहस और दृढ़ निश्चय से शत्रु के इस सुदृढ़ मोर्चे को अपने अधिकार में ले लिया।[50]

पाकिस्तान में सिंध के छाछरो में भारत की 10वीं पैरा बटालियन ने विजय पताका फहराई। इस जीत के नायक जयपुर के महाराजा भवानी सिंह थे। इसे विश्व के सफलतम कमांडो अभियानों में गिना जाता है। इस अभियान के लिए 6 महीने तक तैयारी चली। जिस तरह एक प्रशिक्षित चिकित्सक मरीज के अंगों को परत–दर–परत काटता है, उसी तरह भवानी सिंह की बटालियन एक के बाद एक शहर पर कब्जा करके सेना की नियमित टुकड़ियों को सौंपती गई।[51] एक मौके पर हमले के दौरान भवानी सिंह ने जीपों से साइलेंसर हटाकर हैडलाइट जलाकर कतार में चलने का निर्देश दिया। इंजन की तेज आवाज और दूर तक उठती रोशनी ने दुश्मन सेना में यह भ्रम हो गया कि भारत की तरफ से बड़े टैंक चले आ रहे हैं। इस डर

*लोंगेवाला थार के मरुस्थल में तनोट और लोहारू के मध्य स्थित है। यह जैसलमेर से 115 किलोमीटर उत्तर पश्चिम में अंतरराष्ट्रीय सीमा से 15 किलोमीटर भीतर स्थित है। लोंगेवाला की स्थापना लंगा राजपूतों ने की थी, जो 631 ई. में भाटी राजपूतों के राज्य की स्थापना से पूर्व इस क्षेत्र पर राज्य करते थे। लोंगेवाला पर 1971 में पाकिस्तान ने अपनी 51वीं ब्रिगेड के टैंक रेजिमेंट और मीडियम आर्टिलरी को साथ लेकर आक्रमण किया था। लेकिन भारतीय सेना के हाथों उन्हें करारी हार झेलनी पड़ी। रणक्षेत्र पाकिस्तान के टैंकों और सैनिकों का कब्रिस्तान बन गया।

के मारे वे लड़ाई छोड़कर पीछे चले गए।[52] अभियान की योजना, तैयारी और क्रियान्वयन में इतनी मुस्तैदी बरती गई थी कि बटालियन ने एक भी सैनिक गंवाए बिना छाछरो, विरावह, नगरपारकर, इस्लामकोट, लूनियो पर कब्जा कर लिया। पाकिस्तान के 36 सैनिक मारे गए और 22 को युद्धबंदी बना लिया गया।[53]

विजयी भाव से युद्ध में उतरी भारतीय सेना का पाकिस्तानी सैनिक सप्ताह भर भी मुकाबला नहीं कर सके। 11 दिसम्बर तक ही पाकिस्तानी सेना कुछ क्षेत्रों में आत्मसमर्पण करने लगी।[54] 16 दिसम्बर को शाम 4.31 बजे पाकिस्तान के कमांडर ए.ए.के. नियाजी ने ढाका में आत्मसमर्पण के दस्तावेज पर हस्ताक्षर कर दिए। नियाजी ने अपने बिल्ले उतारे और डोरी में बंधे .38 रिवाल्वर को अलग करके जनरल जगजीतसिंह अरोड़ा को सौंप दिया। नियाजी की आंखों में आंसू भरे थे। इस आत्मसमर्पण के साथ पाकिस्तान के ही 56,998 सैनिकों, 18,287 अर्ध सैनिकों और 16,293 नागरिकों ने आत्मसमर्पण किया। इन्हें युद्धबंदी बना लिया गया। ये भारत के लिए अत्यंत गौरवशाली क्षण थे।[55] बांग्लादेश मुक्त हो गया। विश्व राष्ट्रों में साढ़े सात करोड़ की जनसंख्या वाले आठवें बड़े राष्ट्र का ध्वज ढाका पर लहर उठा। नए राष्ट्र की नई आशाएं लिए स्वतंत्र, सार्वभौम और स्वाभिमानी जनता ने नया इतिहास रच दिया। भारत की सेना विजय वाहिनी के रूप में जानी गई। विश्व इतिहास में कभी किसी सेना ने साढ़े सात करोड़ लोगों के नए राष्ट्र के जन्म का सफल अभियान नहीं किया था। किया भी हो तो किसी देश को हड़पने के लिए किया हो, लेकिन किसी को न्याय और स्वतंत्रता दिलवाने के लिए नहीं किया। यह घटना काव्य और पुराण में ही घटी है, जब राम ने विभीषण को लंका का राज्य सौंपा था।[56]

भारत विजय की खुशी से झूम उठा। देशभक्ति की भावना ने सारे राष्ट्र को एकजुट कर दिया। घर-घर की दीवारों पर प्रधानमंत्री और भारतीय सेना के तीन अंगों के प्रमुखों के कैलेंडर चमकने लगे। राजस्थान में पाकिस्तान की सीमा से लगे क्षेत्र की जनता ने भारतीय सैनिकों के स्वागत और सम्मान में पलक-पांवड़े बिछा दिए। इंदिरा लहर चल पड़ी। 1972 में राजस्थान में विधानसभा चुनाव हुए। कांग्रेस एकमात्र पार्टी थी, जो पांच क्षेत्रों को छोड़कर सभी स्थानों पर चुनाव लड़ी। पांच क्षेत्र उसने माकपा उम्मीदवारों के लिए छोड़ दिए। संयुक्त समाजवादी पार्टी और भारतीय क्रांति दल के जो विधायक कांग्रेस में शामिल हो गए, उनमें कुछ को पार्टी का टिकट दे दिया गया। स्वतंत्र पार्टी और जनसंघ अलग-अलग चुनाव लड़े। चुनाव परिणामों ने राजस्थान के बीस सालों के लोकतांत्रिक इतिहास को पलटकर रख दिया। बरकतुल्ला खां 110 सीटों का दावा कर रहे थे, वे 145 सीटों पर विजय से आश्चर्यचकित रह गए। इससे पहले कांग्रेस को 1957 में स्पष्ट बहुमत मिला था और वह भी चुनाव से पूर्व एक साथ कांग्रेस में शामिल हुए संयुक्त विरोधी दल के भाग से मिला था।[57] कांग्रेस को 1967 के 41.41 प्रतिशत वोटों के मुकाबले लगभग दस प्रतिशत वोटों की बढ़ोतरी के साथ 51.14 प्रतिशत वोट मिले। स्वतंत्र पार्टी 11, जनसंघ 8 और समाजवादी-कम्युनिस्ट 4-4 सीटों पर ही जीत सके। बरकतुल्ला एक बार फिर कांग्रेस विधायक दल के नेता चुन लिए गए।

उप मुख्यमंत्री पद का प्रस्ताव

1972 से हरिदेव जोशी की स्थिति कमजोर होती चली गई। यहां तक कि उन्हें चुनाव में खुद का टिकट कटने का भी अंदेशा हो रहा था।[58] टिकट वितरण से जुड़े फैसलों में मुख्यमंत्री बरकतुल्ला खां और प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष लक्ष्मीकुमारी चूंडावत की चली, जो इंदिरा गांधी के काफी करीब थे। बरकतुल्ला ने राज्य में नया ब्राह्मण नेतृत्व खड़ा करने के लिए नवलकिशोर पर नजर डाली, जो उस समय लोकसभा के सदस्य थे। मंत्रिमंडल गठन के बारे में चर्चा के दौरान बरकतुल्ला ने इंदिरा से कहा कि वे नवलकिशोर को गृह विभाग के साथ उप मुख्यमंत्री पद देना चाहते हैं। इंदिरा ने जवाब दिया कि अगर नवलकिशोर सहमत हों तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। इसके बाद बरकतुल्ला ने नवलकिशोर को फोन करके कहा, 'नवल, मैं तुमसे मिलने आ रहा हूं।' नवलकिशोर नॉर्थ एवेन्यू में प्रथम तल पर रहते थे, जहां कोई लिफ्ट नहीं थी। बरकतुल्ला का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। नवलकिशोर ने कहा कि सीढ़ियां चढ़ने में दमा की शिकायत हो सकती है, इसलिए वे स्वयं उनके पास आएंगे। इसके बावजूद बरकतुल्ला बातचीत समाप्त होते ही रवाना होकर नॉर्थ एवेन्यू पहुंच गए। वहां अपनी भावना से अवगत करवाते हुए बताया कि उन्होंने मैडम (इंदिरा) से सहमति ले ली है। बरकतुल्ला का प्रस्ताव सुनते ही नवलकिशोर सहज भाव से हंसते हुए बोले, 'बरकत भाई, विधायकों की आदतें खराब हो रही हैं। वे बसों के परमिट, कृषि भूमि के आवंटन और परिजन को लाभ वाले कामों में अधिक रुचि लेते हैं। मैं उन्हें संतुष्ट नहीं कर सकूंगा। इसलिए क्षमा चाहता हूं। मैं यहां देश की दिग्गज विभूतियों के बीच रहता हूं, जिनसे जीवन में कुछ सीखने को मिलता है। वहां मुझे ऐसा क्या मिलेगा?'[59]

नवलकिशोर केंद्र की राजनीति में बने रहे। राष्ट्रीय महत्व के विषयों और नीति निर्धारण से जुड़े रहना उनके लिए अधिक रुचिकर था। प्रदेश के संकुचित दांवपेंचों में वे अपने को सहज नहीं पाते थे। विश्व संस्कृत सम्मेलन सार्वजनिक अभिनंदन समिति ने 28 मार्च, 1972 को दिल्ली के उपराज्यपाल विश्वेश्वर प्रसाद के सभापतित्व में संस्कृत के विद्वानों का अभिनंदन समारोह विज्ञान भवन में आयोजित किया। नवलकिशोर इसमें प्रमुख भूमिका में रहे। उन्हें दिल्ली प्रदेश संस्कृत सम्मेलन का अध्यक्ष बनाया गया।[60] संसद में स्वतंत्रता की रजत जयंती मनाने के लिए अगस्त, 1972 में राज्यसभा सदस्य बी.टी. कुलकर्णी की अध्यक्षता में 20 सदस्यीय कमेटी बनी। उमाशंकर दीक्षित, के.सी. पंत, बी. शंकरानंद, चंद्रशेखर आदि नेताओं के साथ नवलकिशोर को भी शामिल किया गया।[61] उसी दौरान कांग्रेस ने विभिन्न राज्यों में पर्यवेक्षकों को नियुक्त किया। इन पर्यवेक्षकों को संबंधित राज्यों में फर्जी सदस्यता की जांच करने और इस बारे में गंभीर शिकायतों की त्वरित पड़ताल करने की जिम्मेदारी सौंपी गई। साथ ही, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की ओर से अंतिम निर्णय लेने के लिए भी अधिकृत किया गया। प्रत्येक राज्य में एक-एक पर्यवेक्षक नियुक्त किया गया, लेकिन आबादी और निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या की दृष्टि से सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश के लिए तीन पर्यवेक्षक चुने गए, जिनमें सीताराम केसरी और सविता बहन के साथ नवलकिशोर का नाम

शामिल था।[62] 22 अक्टूबर, 1972 को कांग्रेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष शंकरदयाल शर्मा ने 26 प्रदेश कांग्रेस कमेटियों के लिए 20 प्रदेश रिटर्निंग ऑफिसर (पीआरओ) नियुक्त किए। उन्हें राज्यों में मतदान का पर्यवेक्षण करने की जिम्मेदारी दी गई। इनमें से 18 पीआरओ सांसदों में से चुने गए थे। नवलकिशोर भी चुने गए और उन्हें दिल्ली में नियुक्त किया गया।[63] 1973 में वे सार्वजनिक उपक्रमों पर संसद की समिति के अध्यक्ष* बना दिए गए।

बरकतुल्ला ने राजस्थान की कमान संभालने के दौरान नवलकिशोर से संपर्क बनाए रखा। सुखाड़िया के चमत्कारिक नेतृत्व के बिना बरकतुल्ला की अगुवाई में मिली सफलता ने उनकी स्थिति को और मजबूत कर दिया। इसी दौरान सुखाड़िया मैसूर (अब कर्नाटक) के राज्यपाल नियुक्त कर दिए गए। बरकतुल्ला ने छोटा मंत्रिमंडल बनाया और मंत्रियों की छवि का भी ध्यान रखा। वे अपने निर्णयों पर अटल रहे और सुदृढ़ प्रशासक की भूमिका निभाई। उनके शासनकाल में सरकारी और अर्धसरकारी कर्मचारियों के दो बड़े आंदोलन हुए। राज्य में सरकारी कर्मचारियों की चालीस दिनों लंबी हड़ताल हुई और राज्य पथ परिवहन निगम के कर्मचारियों ने बसों का परिचालन बंद कर दिया। बरकतुल्ला ने 'काम नहीं तो वेतन नहीं' नीति लागू करने की बात कही और आंदोलन हिंसक होने पर मुकदमे दर्ज करने के साथ गिरफ्तारियां की गईं। दोनों आंदोलन विफल हो गए। बरकतुल्ला सरकार के समय आबकारी नीति में परिवर्तन किया गया। शराब की दुकानों के लिए वर्षों से चली आ रही एकाधिकार की ठेकेदारी प्रथा खत्म कर दी गई। प्रत्येक दुकान का अलग ठेका नीलाम करने की व्यवस्था शुरू की गई, जिससे छोटे ठेकेदार भी भाग ले सकें। उनकी सुदृढ़ नीति से राज्य की आय में शराब की खपत बढ़े बिना असाधारण वृद्धि हो गई।[64]

बरकतुल्ला जाति-संप्रदाय से ऊपर पक्के राष्ट्रवादी थे और एक योग्य प्रशासक की भूमिका में दिखाई दे रहे थे। हालांकि उनके व्यक्तित्व का एक अन्य पहलू भी था। वे मौजी स्वभाव के थे.. ताश के शौकीन। कई बार कैबिनेट की बैठक होते हुए भी मैटिनी शो देखने चले जाते।[65] इन मानवीय वृत्तियों के बावजूद उनमें एक दूरदर्शी नेतृत्वकर्ता के गुण मौजूद थे। लेकिन वे केवल 27 महीने मुख्यमंत्री रह पाए। 11 अक्टूबर, 1973 को हृदयाघात से उनका देहावसान हो गया। उसी दिन मंत्रिमंडल के वरिष्ठतम सदस्य और उपनेता हरिदेव जोशी को मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलवाई गई। लेकिन यह कामचलाऊ व्यवस्था थी। इंदिरा ने सुखाड़िया से भी संपर्क साधा। जब वे बरकतुल्ला के अंतिम संस्कार में शामिल होने के लिए बंगलौर से जोधपुर पहुंचे तो इंदिरा ने उन्हें संदेश भिजवाया कि वापसी के दौरान दिल्ली ठहरें।[66] लेकिन बातचीत का विशेष परिणाम सामने नहीं आया। उधर, जोशी स्थाई रूप से मुख्यमंत्री बनने के लिए सक्रिय हो गए। वे सुखाड़िया के विश्वस्त, निकटस्थ और अग्रणी नेताओं में थे। इस राजनीतिक घटनाक्रम के बीच केंद्रीय गृह राज्यमंत्री रामनिवास मिर्धा जयपुर पहुंच गए, जो 1967 का चुनाव हारने के बाद राजस्थान की सक्रिय राजनीति से दूर राज्यसभा

*नवलकिशोर ने इस पद पर तीन अवधियों में काम किया – 14 मई, 1973 से 11 जुलाई, 1973; 9 मई, 1974 से 30 अप्रेल, 1975; 8 मई, 1975 से 30 अप्रेल, 1976।

में थे। माना गया कि कांग्रेस विधायक दल के नेता के लिए मिर्धा का नाम आना आलाकमान की भावना का प्रकटीकरण है। जोशी द्वारा उस चुनाव को चुनौती देना उस काल की अनहोनी राजनीतिक घटना थी।

हकीकत यह थी कि आलाकमान ने राजस्थान विधायक दल के चुनाव का मामला विधायकों पर छोड़ दिया। जोशी और मिर्धा दोनों इंदिरा गांधी और कांग्रेस अध्यक्ष शंकरदयाल शर्मा से मिलकर चुनाव मैदान में उतरे; दोनों को चुनाव लड़ने की अनुमति दे दी गई। मिर्धा को दिल्ली से यह भी कहा गया कि वे जयपुर के हालात का जायजा लें। वे विधायक दल में शामिल नहीं थे, इसलिए उन्हें आलाकमान से चुनाव लड़ने की अनुमति लेनी पड़ी। आलाकमान चाहता तो मिर्धा को पीछे समर्थन दे सकता था।[67] जोशी को उदयपुर के विधायकों का समर्थन प्राप्त था और मिर्धा दिल्ली की राजनीति में असर रखते थे। दोनों नेता अपने-अपने समर्थकों के बल पर एक-दूसरे से मजबूत दिखने की कोशिश करने लगे। उदयपुर संभाग के विधायकों की संख्या ज्यादा थी। राजनीतिक स्थिति ऐसी बनी कि इंदिरा ने विधायकों की राय जानने की अनुमति प्रदान कर दी। वे निष्पक्ष बनी रहीं और लोकतांत्रिक तरीके से जोशी और मिर्धा के बीच नेता पद के लिए चुनाव हुआ। नवलकिशोर के अनुसार, 'राजस्थान कांग्रेस के आंतरिक लोकतंत्र के अंतर्गत 23 अक्टूबर, 1973 को वह अंतिम चुनाव था।'[68]

इस चुनाव में खासी पाला-बदली हुई। मिर्धा के लिए परसराम मदेरणा असमंजस में थे। उन्हें लग रहा था कि मिर्धा के मुख्यमंत्री बनने से उन्हें कुछ हासिल नहीं होगा, लेकिन जोशी की सरकार बनी तो उनका मंत्री पद निश्चित है। मदेरणा गुट का साथ नहीं मिलने से मिर्धा पिछड़ गए। जोशी की रणनीति भारी साबित हुई और वे मिर्धा पर बाजी मार ले गए। अलग-अलग सूचनाओं के मुताबिक वे 13 या 5 वोट अधिक पाकर विधायक दल के नेता निर्वाचित हुए। उस समय जोशी के निकटवर्ती नेताओं में नवलकिशोर शामिल थे।[69] 25 अक्टूबर को जोशी ने अपने मंत्रिमंडल सहित शपथ ली। जोशी ने मुख्यमंत्री पद संभालने के तीन महीने बाद राज्यपाल द्वारा जयपुर जिले की समस्याओं के समाधान के लिए छह सदस्यीय स्टैंडिंग कमेटी बनाई। सिंचाई मंत्री हीरालाल देवपुरा की अध्यक्षता में बनी इस कमेटी में नवलकिशोर भी शामिल थे।[70] यह सर्वमान्य धारणा कही जा सकती है कि अगर नवलकिशोर ने राजस्थान में गृहमंत्री-उप मुख्यमंत्री बनने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया होता तो बरकतुल्ला के उत्तराधिकारी जोशी के बजाए वे होते। इस बारे में नवलकिशोर से चर्चा किए जाने पर वे सहज भाव से हंसते हुए बोले, 'हां, भूतपूर्व मुख्यमंत्रियों की सूची में एक नाम मेरा भी जुड़ जाता। इसके अलावा और क्या होता!'[71]

राष्ट्रीय स्तर पर संगठन में सक्रिय भागीदारी निभाने के साथ ही नवलकिशोर को गठबंधन से जुड़ी राजनीति का लाभ समझ में आया। यह अवसर उन्हें 1974 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में मिला। तब तक कांग्रेस का इतिहास था कि 1952 से 1971 तक विभाजन के बावजूद कांग्रेस ने कभी किसी से गठबंधन नहीं किया। 1974 में उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव के लिए पार्टी ने पहली बार भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से गठबंधन किया। गठबंधन के

अंतर्गत कांग्रेस ने 21 सीटें कम्युनिस्ट पार्टी के लिए छोड़ी। उत्तर प्रदेश के चुनाव में नवलकिशोर को लगाया गया। इस चुनाव से नवलकिशोर का कांग्रेस के तत्कालीन राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. शंकरदयाल शर्मा से सीधा जुड़ाव बना। उत्तर प्रदेश के चुनाव के संबंध में नवलकिशोर और उत्तर प्रदेश कांग्रेस संगठन के बीच राष्ट्रीय अध्यक्ष की भूमिका ने नवलकिशोर का कद बढ़ाया।[72]

उस चुनाव के दौरान नवलकिशोर ने वस्त्र शिल्प से जुड़े कोरी समाज को कांग्रेस से जोड़ा। आगरा, मेरठ और रूहेलखंड से संबंध रखने वाले कोरी समाज के लोग राजनीतिक प्रतिनिधित्व, आर्थिक और सामाजिक उन्नति के लिए लालायित थे। नवलकिशोर ने देश के तत्कालीन गृहमंत्री उमाशंकर दीक्षित से उन्हें मिलवाया। इसके बाद कोरी समाज के लोगों ने उत्तर प्रदेश में हो रहे चुनाव में कांग्रेस का साथ देने की प्रतिबद्धता प्रकट की।[73] इस चुनाव में कांग्रेस को बहुमत मिला। उसे 424 सीटों में से 215 सीटों पर जीत प्राप्त हुई। भारतीय क्रांतिदल, जनसंघ और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने अच्छा प्रदर्शन किया, लेकिन उनके बीच वोटों के बंटवारे से कांग्रेस को सरकार बनाने का मौका मिला। स्वाभाविक रूप से नवलकिशोर को इसका राजनीतिक लाभ मिला।

राजस्थान की गतिविधियों के प्रति भी नवलकिशोर जागरूक थे। पहली बार मुख्यमंत्री बने हरिदेव जोशी से उनके अच्छे संबंध थे। जोशी के सामने उस समय कोई बड़ी चुनौती नहीं थी। उनके कार्यकाल का पहला वर्ष राष्ट्रीय राजनीति में व्यापक हलचल का साक्षी रहा। दूसरी तरफ, पोकरण में पहली बार सफल परमाणु परीक्षण करके भारत विश्व का छठा परमाणु संपन्न देश बन गया और परीक्षण स्थल पर मौजूद इंदिरा गांधी की तस्वीरों ने जनमानस में गढ़ी गई 'दुर्गा' की छवि को एक बार फिर ताजा करने का काम किया। संजय गांधी की कांग्रेस में सक्रियता उसी दौरान बढ़ी। उन्होंने पहले युवक कांग्रेस में सक्रियता बढ़ाई और फिर कांग्रेस पर प्रभाव डालने लगे। कांग्रेस के बुजुर्ग नेता भी संजय के निकट जाने की कोशिशें करने लगे। जोशी को कहीं से पता चला कि उनसे मुख्यमंत्री पद छीना जा सकता है। वे चिंतित हो उठे। संजय से निकटता बढ़ाने के लिए उन्होंने जनार्दनसिंह गहलोत से मदद मांगी। जनार्दन शुरू से जोशी खेमे में थे और संजय की सक्रियता के दौरान प्रभावशाली भूमिका निभा रहे थे। वे युवक कांग्रेस के महासचिव के रूप में राजस्थान में संजय के सबसे नजदीक थे। उन्हीं की पहल पर युवक कांग्रेस की राष्ट्रीय परिषद की दो दिवसीय बैठक बीकानेर में हुई। संजय बीकानेर आए। जोशी दो दिनों तक वहीं रहे और सारी व्यवस्थाओं पर निगरानी रखे रहे। एक ऊंट सजाकर लाया गया, जिस पर बैठकर संजय घूमे। उस समय प्रचार हुआ कि जोशी ने संजय को ऊंट पर चढ़ाने के लिए कंधा लगाया। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ था। वास्तविकता यह थी कि संजय जब ऊंट पर चढ़ने को हुए तो पास खड़े जोशी ने अपना हाथ जरूर लगाया ताकि कहीं संजय गिर नहीं जाएं।[74] इसके बाद जोशी ने संजय को अपने गृह क्षेत्र बांसवाड़ा भी आमंत्रित किया।

संदर्भ सूची

1. गायत्री देवी: मेरी स्मृतियां, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1994, पृष्ठ 193
2. बृजकिशोर शर्मा, नवलकिशोर शर्मा के ज्येष्ठ पुत्र के संस्मरण
3. दिनमान, खंड 4, अंक 16, 1968, पृष्ठ 23
4. विनोदबिहारी शर्मा, नवलकिशोर शर्मा के भतीजे के संस्मरण
5. वही
6. प्रकाश भंडारी: टाइम्स ऑफ इंडिया वेब, 10 अक्टूबर, 2012
7. नवलकिशोर शर्मा का मोहनलाल सुखाड़िया को पत्र, 10 अप्रेल, 1969
8. नवलकिशोर शर्मा: मोहनलाल सुखाड़िया स्मृति ग्रंथ, पश्चिमी एवं राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन, जयपुर, पृष्ठ 33
9. इंडियावोट्स.कॉम
10. प्रकाश भंडारी: टाइम्स ऑफ इंडिया वेब, 10 अक्टूबर, 2012
11. नवलकिशोर शर्मा: मोहनलाल सुखाड़िया स्मृति ग्रंथ, पश्चिमी एवं राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन, जयपुर, पृष्ठ 32
12. नवलकिशोर शर्मा का मोहनलाल सुखाड़िया को पत्र, 10 फरवरी, 1969
13. नवलकिशोर शर्मा का मोहनलाल सुखाड़िया को पत्र, 10 अप्रेल, 1969
14. नवलकिशोर शर्मा का रामप्रसाद लड्ढा को पत्र, 3 अप्रेल, 1970
15. चंदनमल बैद का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, 14 फरवरी, 1974
16. नानगराम, भांडारेज मंडल कांग्रेस कमेटी का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, 26 नवम्बर, 1973
17. नवलकिशोर शर्मा का ललितनारायण मिश्र को पत्र
18. नवलकिशोर शर्मा का पत्र, 18 जनवरी, 1974
19. बृजकिशोर शर्मा, नवलकिशोर के ज्येष्ठ पुत्र के संस्मरण
20. हेमवतीनंदन बहुगुणा का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, 13 सितम्बर, 1973
21. रामसिंह अवाना: प्रेशर पॉलिटिक्स इन कांग्रेस पार्टी, नॉर्दन बुक सेंटर, नई दिल्ली, 1988 पृष्ठ 169
22. नवलकिशोर शर्मा का इंदिरा गांधी को पत्र, 30 अगस्त, 1969
23. कर्पूरचंद्र कुलिश: हस्ताक्षर, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, जयपुर 1996, पृष्ठ 1
24. सीताराम झालानी के संस्मरण, 9 दिसम्बर, 2021
25. कर्पूरचंद्र कुलिश: हस्ताक्षर, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, जयपुर 1996, पृष्ठ 2

26. नवलकिशोर शर्मा का मोहनलाल सुखाड़िया को पत्र, 22 जुलाई, 1969
27. कुलदीप नैय्यर: एक जिंदगी काफी नहीं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 228
28. मोरारजी देसाई: मेरा जीवन वृत्तांत, खंड 2, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1972, पृष्ठ 362
29. कुलदीप नैय्यर: एक जिंदगी काफी नहीं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 229
30. चुनाव आयोग की रिपोर्ट
31. पी.वी. नरसिंह राव: अंतर्गाथा, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 414
32. डेक्कन हेराल्ड, 28 जून, 1971
33. लक्ष्मीचंद गुप्त: आधुनिक राजस्थान के शिल्पी मोहनलाल सुखाड़िया, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2014, पृष्ठ 99-100
34. वही, पृष्ठ 101
35. रिपोर्ट ऑफ द जनरल सेक्रेटरीज जून 1970-सितम्बर 1971, ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी, नई दिल्ली 1971, पृष्ठ 23-24
36. लक्ष्मीचंद गुप्त: आधुनिक राजस्थान के शिल्पी मोहनलाल सुखाड़िया, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2014, पृष्ठ 341
37. नवलकिशोर शर्मा का हस्तलिखित पत्र, मूल प्रति
38. जनार्दन सिंह गहलोत: संघर्ष से शिखर तक, पृष्ठ 15
39. वही, पृष्ठ 15
40. इतवारी पत्रिका, 20 अक्टूबर, 1991
41. रिपोर्ट ऑफ द जनरल सेक्रेटरीज जून 1970-सितम्बर 1971, ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी, नई दिल्ली 1971, पृष्ठ 24
42. हीरालाल देवपुरा: दैनिक भास्कर, 1 अगस्त, 2000
43. नवलकिशोर शर्मा का राजबहादुर को पत्र, 26 अक्टूबर, 1971
44. संसदीय पत्रिका, खंड 18, अंक 1, जनवरी 1972, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 119
45. सलाम आजाद: बांग्लादेश के स्वतंत्रता संग्राम में भारत का योगदान, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ 211
46. वही, पृष्ठ 243
47. कर्पूरचंद्र कुलिश: हस्ताक्षर, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, 1996, पृष्ठ 13
48. जय सिंह: भारत-पाकिस्तान मरुस्थलीय युद्ध, योगीराज प्रेस, 1973, पृष्ठ 212

49. जसंवत सिंह: खतरे में भारत-सुरक्षा की नीतिगत भूलें व भ्रांतियां, राजपाल एंड संस, 2013, पृष्ठ 15
50. जय सिंह: भारत-पाकिस्तान मरुस्थलीय युद्ध, योगीराज प्रेस, 1973, पृष्ठ 189
51. सुमित वालिया: अनबैटल्ड फियर्स-रेकनिंग द नेशनल सिक्योरिटी, लांसर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2021, पृष्ठ 140
52. जॉन जुब्रिकी: द हाउस ऑफ जयपुर, जगरनॉट बुक्स, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 181
53. सुमित वालिया: अनबैटल्ड फियर्स-रेकनिंग द नेशनल सिक्योरिटी, लांसर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2021, पृष्ठ 140
54. सलाम आजाद: बांग्लादेश के स्वतंत्रता संग्राम में भारत का योगदान, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ 264
55. वही, पृष्ठ 271
56. कर्पूरचंद्र कुलिश: हस्ताक्षर, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, 1996, पृष्ठ 23
57. वही, पृष्ठ 28
58. जनार्दन सिंह गहलोत: संघर्ष से शिखर तक, पृष्ठ 16
59. सीताराम झालानी: राजस्थान पत्रिका, 5 जुलाई, 2021
60. निमंत्रण पत्र की प्रति
61. सोशलिस्ट इंडिया, 26 अगस्त, 1972
62. वही
63. वही
64. बी.एल. पानगड़िया और एन.सी. पहाड़िया: राजस्थान-पॉलिटी, इकानॉमी एंड सोसायटी, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, 1996, पृष्ठ 89
65. सीताराम झालानी के संस्मरण, 9 दिसम्बर, 2021
66. लिंक मैगजीन संग्रह, खंड 16, भाग 2, 1973, पृष्ठ 16
67. कर्पूरचंद्र कुलिश: हस्ताक्षर, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, 1996, पृष्ठ 42
68. विजय भंडारी: नवलकिशोर शर्मा से साक्षात्कार, 30 दिसम्बर, 2000
69. जनार्दन सिंह गहलोत: संघर्ष से शिखर तक, पृष्ठ 24
70. उपसचिव, राजस्थान सरकार का आदेश, 24 जनवरी, 1974
71. सीताराम झालानी: राजस्थान पत्रिका, 5 जुलाई, 2021
72. सालिगराम, उत्तर प्रदेश कांग्रेस चुनाव सेल के इंचार्ज का पत्र, 13 फरवरी, 1974
73. कोरी समाज का उमाशंकर दीक्षित को ज्ञापन, 15 फरवरी, 1974
74. जनार्दन सिंह गहलोत: संघर्ष से शिखर तक, 2020, पृष्ठ 32-34

▲ 1968 के लोकसभा उपचुनाव में प्रचार करते हुए नवलकिशोर शर्मा

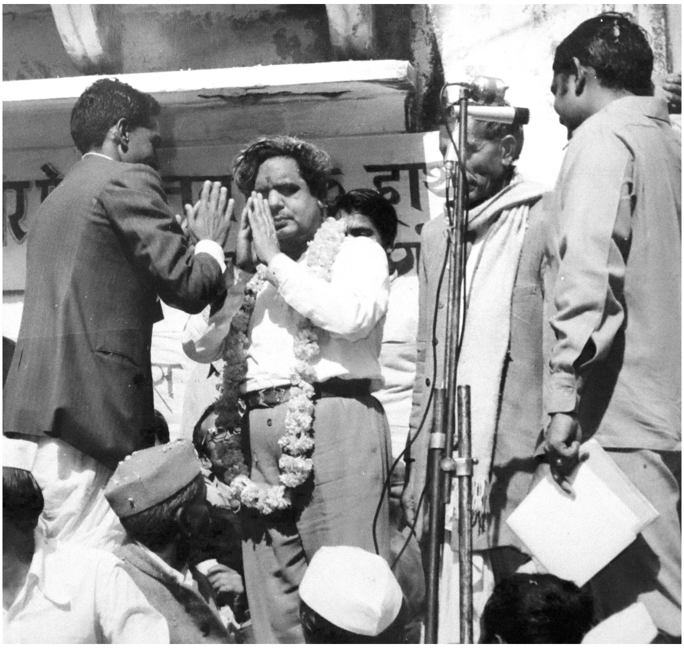

▲ युवावस्था में लोकप्रिय जननेता के रूप में उभरते नवलकिशोर शर्मा

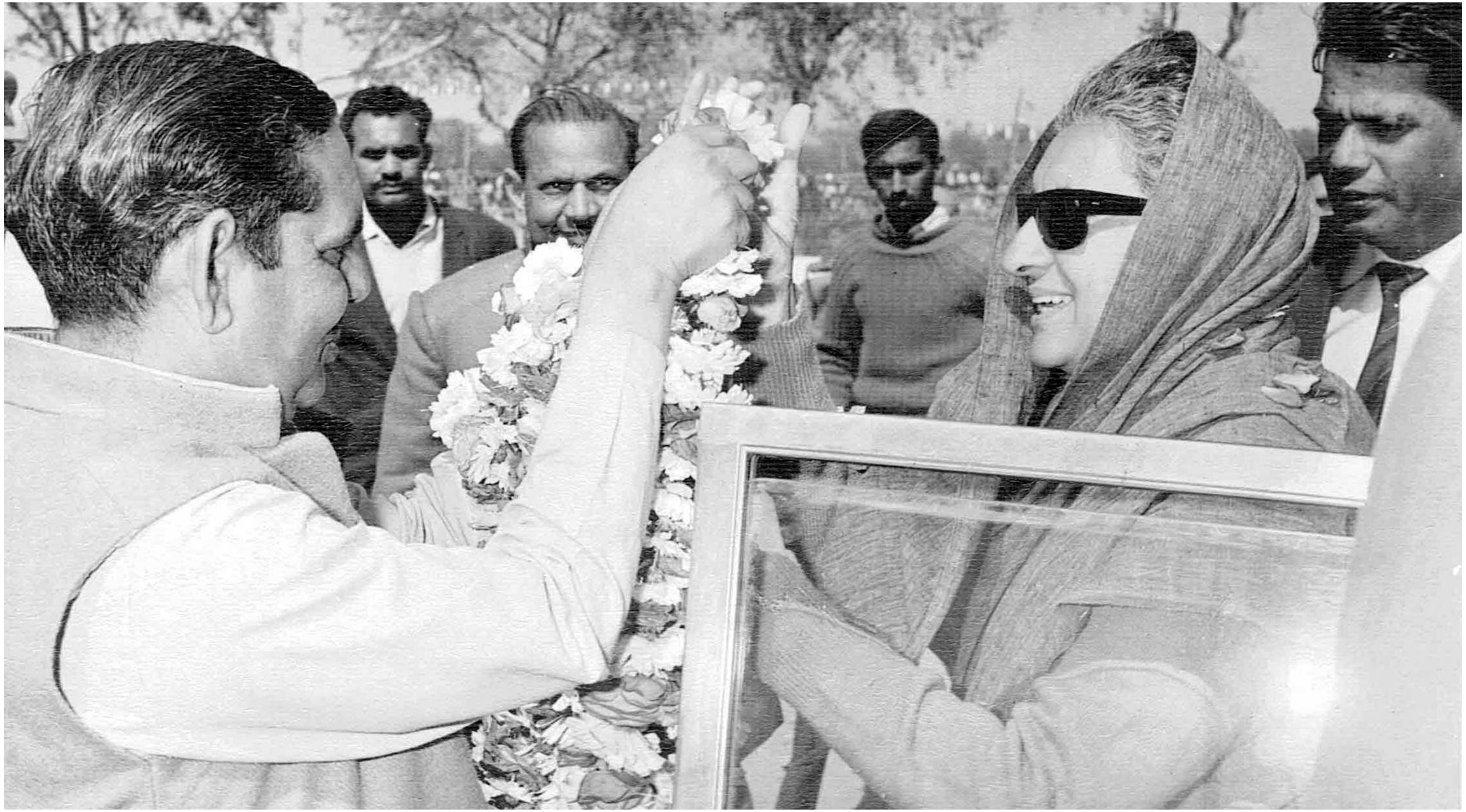

▲ प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का स्वागत: आदर और अपनत्व

▲ उमाशंकर दीक्षित और हरिदेव जोशी के साथ प्रफुल्ल मुद्रा में नवलकिशोर शर्मा

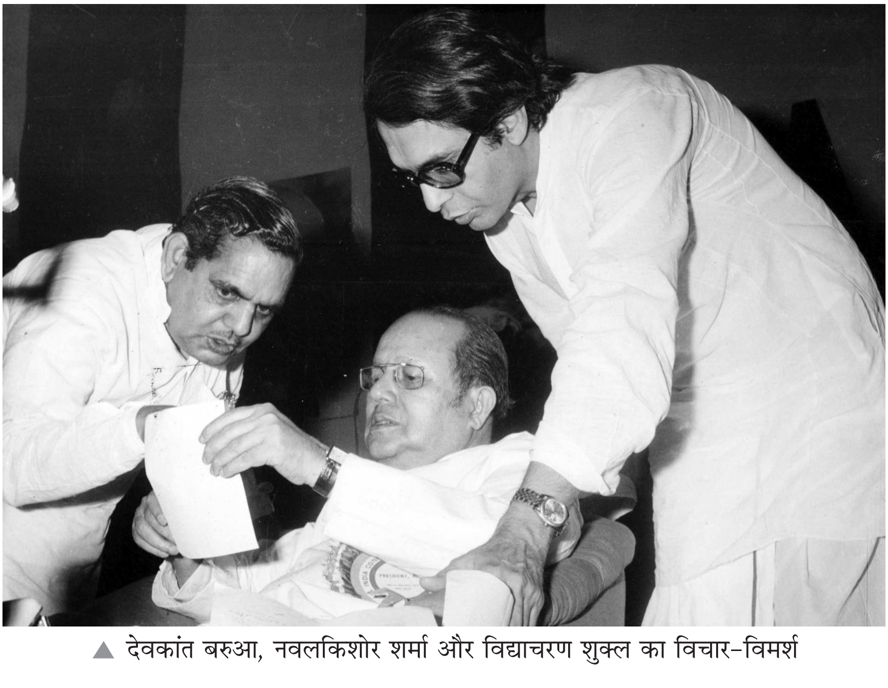

▲ देवकांत बरुआ, नवलकिशोर शर्मा और विद्याचरण शुक्ल का विचार–विमर्श

▲ कमलापति त्रिपाठी और नवलकिशोर शर्मा के साथ चंदनमल बैद, हरिदेव जोशी, रामनिवास मिर्धा, शिवचरण माथुर, लक्ष्मीकुमारी चूंडावत और अशोक गहलोत

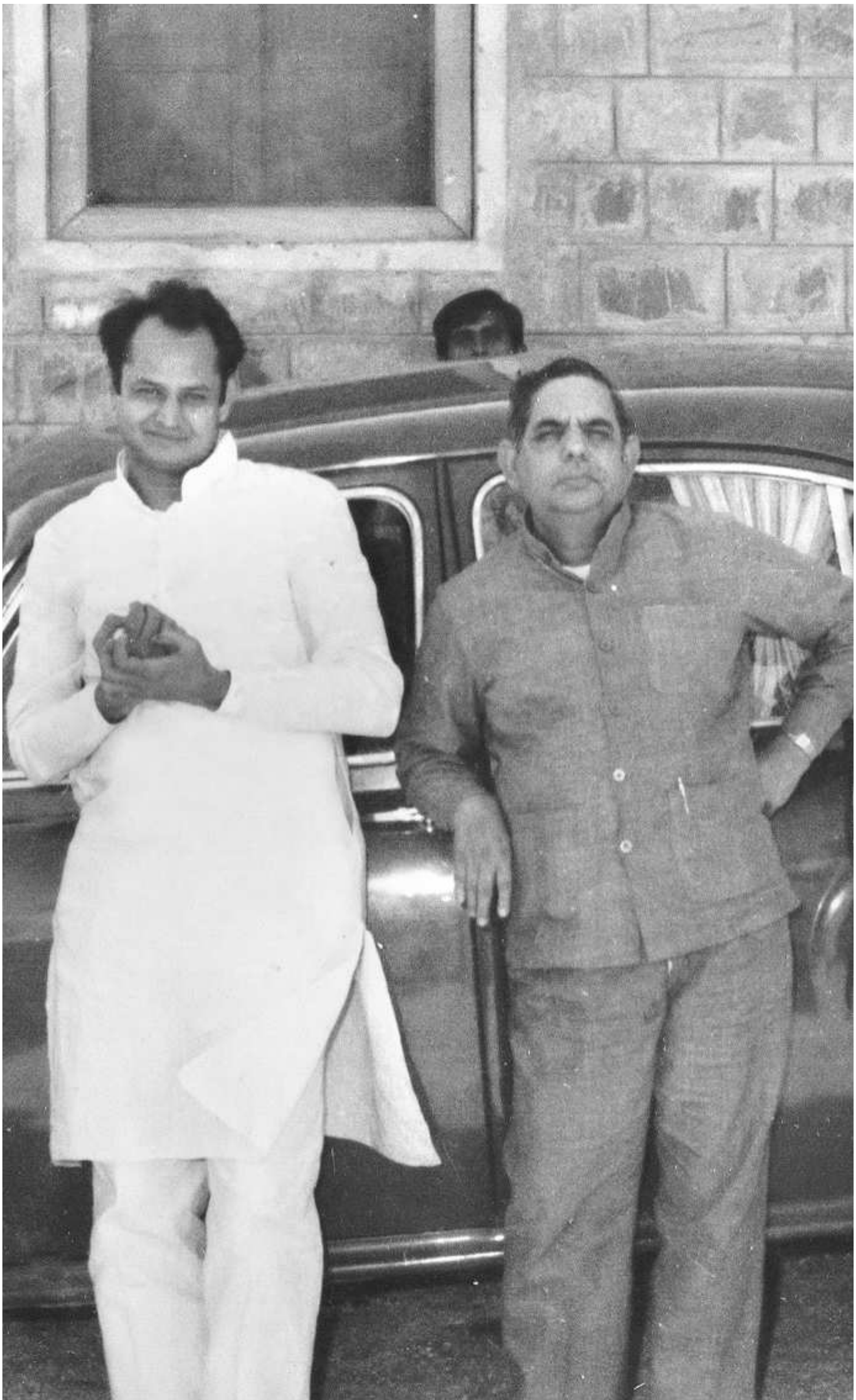

▲ अशोक गहलोत और नवलकिशोर शर्मा : दो पीढ़ियों की सोच

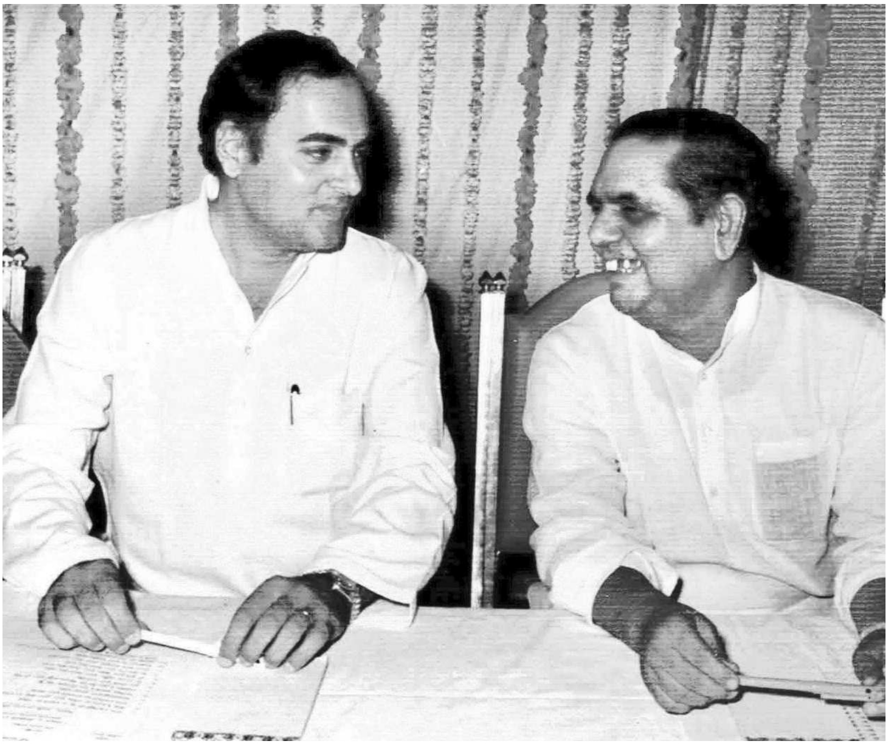

▲ प्रधानमंत्री राजीव गांधी और नवलकिशोर शर्मा : सद्भावनापूर्ण संबंधों के दौरान

▲ जयपुर के लक्ष्मीविलास होटल में असंतुष्टों का मिलन : परसराम मदेरणा, हीरालाल देवपुरा, नवलकिशोर शर्मा, रामसिंह विश्नोई और हरिदेव जोशी

Phones : 3793438
3019080

ALL INDIA CONGRESS COMMITTEE

24, AKBAR ROAD, NEW DELHI - 110 011

SONIA GANDHI
PRESIDENT

September 7, 1998

Dear Nawal Kishore ji,

The Pachmarhi Vichar Manthan was, by all accounts a memorable political event. This Shivir was a success because hundreds of dedicated individuals worked overtime for several months to ensure that Pachmarhi would become a landmark in our recent history. Having said that, I cannot but single you out for the outstanding effort you put in over several months to ensure that nothing was left to chance.

Under your inspired leadership we were able to accomplish much. From the first day it became evident that the participants were determined to ensure that the Shivir would be constructive, creative, meaningful and focused.

Could you please convey my appreciation to all your colleagues and co-workers for their cooperation and dedicated work? It was team work at its best.

We now have to start follow up action on the issues mentioned in the Pachmarhi Declarations.

with good wishes

Sonia Gandhi

Shri Nawal Kishore Sharma
Chairman, Pachmarhi Shivir Manthan Camp
New Delhi

10, JANPATH, NEW DELHI - 110 011 PH.: 3014481, 3015584

▲ सोनिया गांधी का नवलकिशोर शर्मा को पत्र : पचमढ़ी शिविर की सफलता का श्रेय

भाग: तीन

सीलन भरी सीढ़ियां

राष्ट्रीय चुनौतियों के बीच

इस समय हमारा दल (कांग्रेस) एक बहुत ढीला–ढाला सा दल है। उसमें अधिक अनुशासन नहीं है और उसमें स्फूर्ति नहीं दिखाई दे रही है। जिन लोगों को हमारे कार्यक्रमों में विश्वास है, वे भी जनता के बीच जाकर सभी बातें संतोषजनक रूप से नहीं समझा पाए हैं। मैं समझती हूं कि कांग्रेस अध्यक्ष पार्टी को सक्रिय बना रहे हैं और विभिन्न योजनाएं तैयार कर रहे हैं।

–इंदिरा गांधी

1971 के बाद राष्ट्रीय स्तर पर नित नई चुनौतियां खड़ी होती चली गईं। एक करोड़ बांग्लादेशी शरणार्थियों के आने से लेकर पाकिस्तान से युद्ध और अमेरिका की ओर से सहायता बंद कर दिए जाने के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था पहले ही चरमराई हुई थी। बारिश की कमी के कारण कृषि भी बुरी तरह प्रभावित हुई। उसी दौरान पेट्रोलियम उत्पादक देशों के संगठन ओपेक ने रातोंरात तेल की कीमत चार गुना कर दी। भारत का आयात खर्च अचानक एक बिलियन डॉलर बढ़ गया। इन सिलसिलेवार घटनाओं पर सरकार का कोई नियंत्रण नहीं था। परिणामस्वरूप महंगाई में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। 1973 में 23 प्रतिशत तक कीमतों में वृद्धि हुई और 1974 के मध्य तक लगभग 30 प्रतिशत तक पहुंच गई।[1] 1973 की सामान्य खरीफ फसल के बावजूद अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति की दर के कारण कीमतें कम नहीं हुईं। सरकार ने अनाज के थोक व्यापार के राष्ट्रीयकरण का प्रयास किया, जिसके असफल होने से भ्रम और भी गहरा हो गया। कोयले की खदानों जैसे क्षेत्रों में राष्ट्रीयकरण से कामकाजी के मन में विश्वास पैदा हुआ, लेकिन इन सभी कदमों ने भारतीय अर्थव्यवस्था पर अपने तरीके से प्रभाव डाला।[2] इसी दौरान गुजरात और बिहार में गुटबाजी से ग्रस्त कांग्रेस सरकारों के विरुद्ध दो जन आंदोलन हुए। इन आंदोलनों ने देश में छाए आर्थिक और राजनीतिक संकट को राजनीतिक तंत्र के वास्तविक संकट में बदल दिया। इन सरकारों में ऐसे लोगों का प्रभुत्व था, जिनकी जनता पर कोई पकड़ नहीं थी, यहां तक कि अपने अनुयायियों के बीच भी उनकी कोई साख नहीं थी।[3]

गुजरात की आम जनता महंगाई के चंगुल में बुरी तरह फंसती जा रही थी। जमाखोरों पर कोई अंकुश नहीं रहा। परिवार के प्रत्येक सदस्य को सुबह से शाम तक किसी–न–किसी लाइन में खड़े रहकर आवश्यक वस्तुओं की खरीदारी के लिए अपनी बारी आने का इंतजार करना पड़ता था और इसके बाद भी जरूरी चीज के मिलने का भरोसा नहीं था। दूसरी ओर, जनता के धन पर मौज उड़ाते नेता लोगों की आंखों में खटकने लगे। आंतरिक गुटबाजी के कारण गुजरात में कांग्रेस विधायक दल को अपना नेता बाहर से लाना पड़ा। मुख्यमंत्री घनश्याम ओझा के नेतृत्व को लेकर कांग्रेस के भीतर असंतोष और उभरा। सरकारी तंत्र पर ओझा का कोई नियंत्रण नहीं था। सत्तालोलुप कांग्रेसी गुटों में खींचतान शुरू हो गई। विधायकों की बोलियां लगने लगीं। कांग्रेस आलाकमान द्वारा मनोनीत ओझा स्थिति को संभाल नहीं सके और अंततः उनकी सरकार का पतन हुआ।[4] दांव–पेंच में कुशल और राजनीतिक बिसात बिछाने में अति सक्रिय नेता की छवि वाले चिमनभाई पटेल सरकार बनाने में कामयाब हो गए।

भयंकर सूखे और लगातार दो फसलों की बर्बादी के कारण 1973 में गुजरात में खाद्यान्नों और खाद्य तेलों की कीमतों में 150 प्रतिशत की वृद्धि हो गई। साथ ही, अभावग्रस्त राज्य में खाद्यान्नों के केंद्रीय कोटे में की गई 60 प्रतिशत की कमी के कारण 1973 के उत्तरार्ध में राशन की दुकानों और राशन कार्डधारकों तक पहुंचने वाले सामान में भारी गिरावट आई। जो खाद्यान्न वितरित किए गए, वे कम गुणवत्ता वाले और धूल तथा कंकड़ों से भरे थे। इसके साथ ही, अनिवार्य वस्तुएं बाजार से गायब होने लगीं। इन हालात ने विशेष रूप से छात्रों को आंदोलित किया, जिनका बिल सिर्फ दिसम्बर माह में ही 40 प्रतिशत तक बढ़ गया था। उन्होंने खराब भोजन के कारण मूल्य वृद्धि और आवश्यक वस्तुओं के अभाव के लिए व्यापारियों, कालाबाजारियों और सत्ताधारी राजनीतिज्ञों के गठबंधन को दोषी माना। विशेष रूप से मुख्यमंत्री चिमनभाई पर आरोप लगा कि उन्होंने मूंगफली व्यापारियों से कोई समझौता करके मूंगफली के तेल की कीमतें बढ़ा दीं और इसकी एवज में उन व्यापारियों ने पार्टी कोष में लाखों रुपयों का दान दिया।[5]

20 दिसम्बर, 1973 को अहमदाबाद के एल.डी. इंजीनियरिंग कॉलेज के छात्रों ने बढ़े हुए मेस बिल के मुद्दे पर हड़ताल की। 3 जनवरी, 1974 को उसी कॉलेज में वैसी ही स्थिति बनी, लेकिन इस बार पुलिस ने हस्तक्षेप किया और छात्रों तथा पुलिस के बीच संघर्ष हुआ। छात्रों की गिरफ्तारी ने पहले से ही सुलग रहे राजनीतिक माहौल को उकसाया और राज्य भर के छात्रों ने विरोध प्रदर्शन शुरू कर दिया। 10 जनवरी को बंद का आयोजन किया गया। इस दौरान फैक्ट्रियों में काम करने वाले कई मजदूर छात्रों के साथ जुड़ गए और राशन की दुकानें भीड़ के निशाने पर आने लगीं।

25 जनवरी को राज्यव्यापी बंद का आयोजन हुआ, जिसमें राज्य के 33 शहरों में पुलिस और छात्रों के बीच संघर्ष हुआ। प्रदर्शनकारियों की मांग चिमनभाई के इस्तीफे तक पहुंच गई। आंदोलन को दिशा देने के लिए शिक्षकों, वकीलों और अन्य ऐसे वर्गों ने छात्रों के साथ

मिलकर नवनिर्माण युवक समिति का गठन किया और इस संघर्ष को नवनिर्माण आंदोलन का नाम दिया गया।[6]

महीनों से सुलग रहा जनाक्रोश विस्फोटक रूप से शहरों और कस्बों में फैल गया। अंततः उसने एक संघर्षात्मक आंदोलन का रूप ग्रहण कर लिया। केंद्र सरकार को विवश होकर चिमनभाई सरकार से इस्तीफा मांगना पड़ा। 9 फरवरी, 1974 को चिमनभाई ने इस्तीफा दे दिया और राज्य में राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया। 11 फरवरी को जयप्रकाश नारायण अहमदाबाद गए और छात्रों की प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि वे उनके आंदोलन से प्रेरित हुए हैं और यह सफल आंदोलन देश के अन्य भागों के युवकों के लिए एक उदाहरण होना चाहिए।[7] चिमनभाई के इस्तीफे से संतुष्ट छात्रों ने कक्षाओं में लौटना शुरू कर दिया, लेकिन विपक्षी दल विधानसभा भंग किए जाने की मांग पर अड़ गए। उस समय 168 सदस्यों की विधानसभा में कांग्रेस के पास 140 विधायक थे। कांग्रेस विधायकों पर दबाव बनाने के लिए अन्य दलों के विधायक इस्तीफा देने लगे। कांग्रेस विधायकों को जनाक्रोश के कारण मजबूर होना पड़ा। मार्च की शुरुआत में 95 विधायक इस्तीफा दे चुके थे। 12 मार्च को विधानसभा भंग करने की मांग को लेकर मोरारजी देसाई आमरण अनशन पर बैठ गए। 16 मार्च को विधानसभा भंग कर दी गई। इसके बाद नवनिर्माण युवक समिति नए चुनाव की मांग करती रही और विपक्षी दल उनके साथ हो गए। 6 अप्रेल, 1975 को मोरारजी के दुबारा अनिश्चितकालीन अनशन पर बैठने के साथ मामले ने तूल पकड़ा। इंदिरा गांधी को फिर समर्पण करना पड़ा।[8] उन्होंने मोरारजी की मांग के अनुसार चुनाव जून की चरम गर्मी में करवाने की बात स्वीकार कर ली।[9]

नवनिर्माण आंदोलन के दौरान ही समान नीतियों और उद्देश्यों को लेकर बिहार में जन आंदोलन की शुरुआत हुई। बिहार की आर्थिक स्थिति अत्यंत पिछड़ी हुई थी और गुजरात की तुलना में सरकार भी राजनीतिक रूप से अधिक भ्रष्ट थी। आम लोगों के लिए कानून-व्यवस्था और सुरक्षा का कोई प्रबंध नहीं रह गया था। प्रशासन लड़ाई-झगड़े, अपराध और भ्रष्टाचार की अनदेखी कर रहा था। बढ़ती महंगाई, आम जरूरतों की चीजों की कमी, बढ़ती हुई बेरोजगारी और राजनीति तथा प्रशासन के पक्षपाती रवैए से लोग तंग आ चुके थे। पक्षपात और आंतरिक कलह सत्ताधारी कांग्रेस में व्याप्त थे। सात वर्षों के दौरान 11 सरकारें बदलीं और तीन बार राष्ट्रपति शासन रहा। आम जनता, छात्रों और नौजवानों ने महसूस किया कि उनके पास पहले जैसी सामान्य स्थिति लौटाने और मजबूती हासिल करने के लिए बंद, घेराव और हड़ताल के सिवाय कोई चारा नहीं है। सितम्बर 1973 के आरंभ में छात्र आंदोलन की एक नई लहर पटना में शुरू हो गई और फिर अन्य कस्बों में फैल गई। 21 जनवरी, 1974 को मूल्य वृद्धि में रोक को लेकर पूरे बिहार में गैर कांग्रेसी पार्टियों द्वारा बंद के आयोजन के बाद छात्रों ने आंदोलन को अपने हाथों में ले लिया। 18 फरवरी को बिहार छात्र संघर्ष समिति का गठन हुआ। इसमें समाजवादी युवजन सभा, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद, सर्वोदयी तरुण क्रांति सेना वगैरह छात्र संगठन शामिल थे। आंदोलन शीघ्र ही बिहार में फैल गया।

अप्रेल में बिहार में छात्र आंदोलन का नेतृत्व संभालने के लिए जयप्रकाश नारायण* द्वारा दी गई सहमति ने इसे एक नया आयाम और विश्वसनीयता प्रदान की।[10]

जयप्रकाश के रुचि लेने के बाद बिहार आंदोलन ने और व्यापक स्वरूप ग्रहण कर लिया। बिहार में आमूलचूल परिवर्तन, सरकारी भ्रष्टाचार का उन्मूलन, लोकजीवन में नैतिक पतन पर रोक, भ्रष्ट मंत्रियों और विधायकों के विरुद्ध जनचेतना, अधिनायकवादी प्रवृत्तियों से लोकतंत्र की रक्षा, स्वच्छ-स्वतंत्र-सस्ते चुनावों के लिए नए मूलभूत चुनावी संशोधन जैसे कार्यों में जनशक्ति निर्माण का उद्देश्य रखा गया। जयप्रकाश ने कहा, 'दोस्तो, यह एक क्रांति है, एक संपूर्ण क्रांति। यह विधानसभा को भंग करने के लिए चलाया जाने वाला एक आंदोलन भर नहीं है। हमें दूर जाना है, बहुत दूर।'[11]

बिहार सरकार को हर स्तर पर ठप कर देने के लिए जयप्रकाश ने विश्वविद्यालयों और कॉलेजों के साथ-साथ मेडिकल तथा इंजीनियरिंग कॉलेजों को एक वर्ष के लिए बंद कर देने, राज्य विधानसभा और सरकारी कार्यालयों के घेराव और पूरे राज्य में एक समानांतर सरकार की स्थापना के लिए छात्रों और जनता का आह्वान किया। उन्होंने शिक्षकों से नई क्रांतिकारी शिक्षा का कार्यक्रम बनाने के लिए एक वर्ष का अवकाश लेने का आग्रह किया। सरकार को ठप करने के उद्देश्य से जयप्रकाश ने जुलाई में जनता से मालगुजारी या कोई अन्य कर नहीं देने का आह्वान किया। आंदोलन इतना व्यापक था कि 5 जून, 1974 को जयप्रकाश के नेतृत्व में अब्दुल गफूर मंत्रिमंडल के त्यागपत्र की मांग को लेकर राजभवन मार्च हुआ तो उसमें पांच लाख लोग शामिल हुए।[12] इसके बाद छात्र प्रदर्शन, विधानसभा पर धरने, सचिवालय पर सत्याग्रह, बिहार बंद के आयोजन होते रहे। इंदिरा और जयप्रकाश के बीच 1 नवम्बर, 1974 को एक बैठक हुई। वहां इंदिरा इस शर्त पर बिहार विधानसभा भंग करने को राजी हो गईं कि जयप्रकाश कुछ और नहीं मांगेंगे। जयप्रकाश इस बात पर सहमत नहीं हुए।[13]

4 नवम्बर, 1974 को पटना में जयप्रकाश के नेतृत्व में विशाल रैली हुई। वहां पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर बल प्रयोग किया। भारतीय जनसंघ के वरिष्ठ नेता नानाजी देशमुख ने लाठियां झेलकर जयप्रकाश को बचाया। इसके बावजूद जयप्रकाश गंभीर रूप से घायल हुए। जयप्रकाश के अनुसार, 'लाठीचार्ज के बाद दर्जन भर से अधिक पत्रकारों ने मेरी हालत के बारे में जानने की कोशिश की। मैंने उन सभी से कहा कि मेरे बाएं कंधे पर जो लाठी का

---

*जयप्रकाश स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख नेता थे। महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू के साथ उनका करीबी रिश्ता रहा था। जयप्रकाश की पत्नी प्रभावती और कमला नेहरू में इतनी घनिष्ठता थी कि जयप्रकाश-प्रभावती के अमेरिका रहने के दौरान कमला ने प्रभावती को 39 पत्र लिखे थे। (एम. जी. देवसहायम: जयप्रकाश की आखिरी जेल-इमरजेंसी का कुचक्र, वितस्ता पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 59) इंदिरा के पहली बार प्रधानमंत्री बनने के तुरंत बाद 20 जनवरी, 1966 को जयप्रकाश ने लिखा था, 'तुम्हारी परीक्षा और तनाव की घड़ी में मैं तुम्हारे साथ हूं। मैं हर कीमत पर तुम्हें अपना पूरा समर्थन देता हूं। तुम इस देश की खुशहाली और शांति के लिए जो भी करोगी, मुझे हमेशा अपने साथ पाओगी।' (एम. जी. देवसहायम: जयप्रकाश की आखिरी जेल-इमरजेंसी का कुचक्र, वितस्ता पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 57) लेकिन राष्ट्रपति चुनाव में इंदिरा के कांग्रेस के आधिकारिक उम्मीदवार नीलम संजीव रेड्डी की जगह वी.वी. गिरि का समर्थन करने पर जयप्रकाश ने आलोचना की। इसके बारे में उनका पत्र पढ़कर इंदिरा नाराज हो गईं। उन्होंने पत्र लिखकर नाराजगी प्रकट की, 'मुझे पता चला कि आप मुझे कितना कम जानते हैं। यह मेरे भाग्य का सवाल नहीं था, बल्कि कांग्रेस पार्टी और देश का सवाल था।' जयप्रकाश ने भी कड़ा जवाब दिया। यहीं से इंदिरा और जयप्रकाश के बीच रिश्ते बिगड़ते गए। राजनीति से अवकाश लेकर जयप्रकाश बिहार में भूदान और स्वदेशी आंदोलनों में लगे हुए थे।

प्रहार हुआ, वह हल्का था क्योंकि उसका मुख्य वेग नानाजी देशमुख की बांह पर पड़ा, जिन्होंने मेरी ओर लाठी आती देखकर उसे हटाने का प्रयास किया था।'[14]

नरोरा शिविर में सक्रियता

देश भर में केंद्र सरकार और कांग्रेस के खिलाफ जनमत बनने लगा। कांग्रेस की छवि सुधारने के उद्देश्य से इंदिरा गांधी ने 1974 के उत्तरार्ध में पार्टी का पुनर्गठन किया। स्पष्ट रूप से वामपंथी या समाजवादी रुझान वाले कांग्रेसियों को वरिष्ठ पद दिए गए। आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री रहे पी.वी. नरसिंह राव को नई भूमिका दी गई। इसके पीछे उमाशंकर दीक्षित की रणनीति थी। दीक्षित ब्राह्मणों को आगे लाने के पैरोकार थे। मुख्यमंत्री के रूप में राव एक कट्टर समाजवादी थे। उस समय इंदिरा को ऐसे ही मुखौटे की जरूरत थी। इंदिरा ने राव को अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के चार महासचिवों में से एक नियुक्त कर दिया।[15] इसके बावजूद जयप्रकाश के आंदोलन में आती तीव्रता इंदिरा की चिंता बढ़ा रही थी। इन परिस्थितियों ने कांग्रेस नेताओं को सामूहिक रूप से चिंतन-मनन करके नए सिरे से नीतियां बनाने की जरूरत महसूस करवाई। इस दौरान नवलकिशोर शर्मा की भूमिका भी महत्वपूर्ण हुई।

10 अक्टूबर, 1974 को कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक में उत्तरप्रदेश के नरौरा में केंद्रीय प्रशिक्षण शिविर का आयोजन करने का निर्णय हुआ। शिविर से पहले विशेष रूप से बिहार के कार्यकर्ताओं में आत्मविश्वास का संचार करने के प्रयास तेज हुए। रांची और पटना में विशाल रैलियों का आयोजन किया गया। इसके बाद 22 से 24 नवम्बर के बीच नरौरा शिविर आयोजित हुआ।[16] नवलकिशोर इस शिविर में विशेष रूप से सक्रिय रहे। तीन दिवसीय शिविर में पहले और आखिरी दिन इंदिरा ने हिस्सा लिया। वहां पार्टी को सक्रिय बनाने और जनता को दिए गए आश्वासनों को पूरा करने के लिए 13 सूत्रीय कार्यक्रमों को स्वीकृति दी गई।[17]

नरौरा का 13 सूत्रीय कार्यक्रम

<u>अ. राजनीतिक</u>

1. 31 दिसम्बर, 1974 तक राज्य स्तर पर और 15 फरवरी, 1975 तक जिला स्तरीय प्रशिक्षण कैंप।
2. केंद्र, राज्य और जिला स्तर पर युवा कांग्रेस प्रशिक्षण और उसके बाद लोकतंत्र की रक्षा के लिए कांग्रेस अध्यक्ष द्वारा जारी निर्देशों के अंतर्गत युवा रैलियां।
3. सभी जिलों में कृषि संबंधी कार्यकर्ताओं का सम्मेलन।
4. पांच लाख प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं को जोड़ने के लक्ष्य के साथ कांग्रेस सेवा दल का पुनर्गठन और सशक्तीकरण।

ब. आर्थिक

5. 15 फरवरी, 1975 तक ग्रामीण क्षेत्रों के हरिजनों और भूमिहीन श्रमिकों को अहस्तांतरणीय आवासीय स्थल देने के लिए द्रुत कार्यक्रम। निर्धारित तारीखों पर मंत्रीगण, केंद्रीय नेतागण और अन्य महत्वपूर्ण कांग्रेसजन कार्यक्रम स्थलों पर उपस्थित रहेंगे और हरिजनों तथा भूमिहीन ग्रामीण मजदूरों को स्वत्वाधिकार विलेख (टाइटल डीड) सुपुर्द किए जाएंगे। (इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन की निगरानी स्वयं कांग्रेस अध्यक्ष करेंगे और क्रियान्वयन के लिए उठाए गए कदमों के संबंध में राज्यों को पाक्षिक रिपोर्ट भेजनी होगी।)
6. अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य ग्रामीण गरीब वर्गों को ऋण मुहैया करवाने के लिए एक अलग संस्था का गठन।
7. झुग्गियों से मुक्ति के लिए उठाए गए कदम के रूप में महत्वपूर्ण और चुनिंदा शहरी इलाकों में सस्ते आवासों का द्रुत कार्यक्रम।
8. निर्माण मजदूरों के लिए अस्थाई पूर्वनिर्मित आवास बनाने के कदमों के साथ और सरकारी भूमि पर अतिक्रमण तथा नई झुग्गियों के निर्माण पर निगरानी रखते हुए झुग्गियों की बेहतरी का सरकारी कार्यक्रम। साथ ही, कांग्रेस पार्टी और उसके सहयोगी दलों द्वारा स्वच्छता संबंधी तथा अन्य रचनात्मक गतिविधियां।
9. निश्चित आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति के लिए एक निर्धारित तारीख तक चिह्नित स्थानों और चिह्नित वर्गों के चरणबद्ध कार्यक्रम के अंतर्गत जनवितरण प्रणाली की स्थापना।
10. गरीब छात्रों के लिए छात्रवृत्ति का पुनरावलोकन।
11. ग्राहक संघर्ष का संगठन, गैर जमाखोरी अभियान, कालाबाजारी के विरुद्ध जागरूक आंदोलन आदि।
12. कृषि श्रमिकों और ग्रामीण गरीबों को संगठित करने में राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस (इंटक) की सहायता के लिए कांग्रेस, विशेष रूप से युवा कांग्रेस की सहभागिता।
13. विद्यालय सुधार कार्यक्रमों में कांग्रेस और सहयोगी संगठनों की भागीदारी। (विवरण तमिलनाडु से लिया जा सकता है।)

इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की निगरानी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा की जाएगी। इन कार्यक्रमों में कांग्रेस और सहयोगी संगठन सक्रियता से भाग लेंगे। उदाहरण के लिए, युवा कांग्रेस चिह्नित क्षेत्रों में जनवितरण प्रणाली सशक्त हो जाने के बाद फर्जी राशन कार्ड निरस्त करने के लिए अभियान चला सकती है।[18]

नरौरा शिविर के बाद देश के विभिन्न हिस्सों में कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के लिए शिविर आयोजित किए गए। दिसम्बर–जनवरी के महीनों में लगभग सभी राज्यों में ऐसे आयोजन हुए। ये शिविर आमतौर पर तीन दिनों तक चलते थे। पार्टी अध्यक्ष देवकांत बरुआ* प्रत्येक

शिविर में शामिल होते थे। इन शिविरों में कार्यकर्ताओं को संबोधित करने के लिए नवलकिशोर को भी चुना गया। उनके अलावा डी.पी. धर, चंद्रजीत यादव, उमाशंकर दीक्षित, रघुनाथ रेड्डी, बलिराम भगत, के.सी. पंत, शंकरदयाल शर्मा आदि नेता कार्यकर्ताओं को संबोधित करते थे।[19]

इंदिरा सोचती थीं कि इस तरह के प्रयासों से कार्यकर्ताओं को जनता तक पहुंचने का मौका मिलेगा। वे उस दौरान पार्टी को पर्याप्त सक्रिय नहीं पाती थीं। उन्होंने 26 जनवरी, 1975 को लिंक पत्रिका को दिए इंटरव्यू में कहा, 'हमारा दल एक बहुत ढीला-ढाला सा दल है। उसमें अधिक अनुशासन नहीं है और उसमें स्फूर्ति नहीं दिखाई दे रही है। जिन लोगों को हमारे कार्यक्रमों में विश्वास है, वे भी जनता के बीच जाकर सभी बातें संतोषजनक रूप से नहीं समझा पाए हैं। मैं समझती हूं कि कांग्रेस अध्यक्ष पार्टी को सक्रिय बना रहे हैं और विभिन्न योजनाएं तैयार कर रहे हैं।'[20] लेकिन तेजी से बढ़े राजनीतिक घटनाक्रम ने देश और लोकतंत्र को घेरे में ले लिया। नवलकिशोर, जिन्होंने नरोरा शिविर में प्रमुख भूमिका निभाई थी, के संगठनात्मक कार्यक्रमों में भी स्वाभाविक रूप से व्यवधान आया।

स्थिति यह हो गई कि इंदिरा पर तानाशाह होने का आरोप लगाते हुए जयप्रकाश सेना और पुलिस से सरकारी आदेश की अवमानना तथा विद्रोह का आह्वान करने लगे। नवलकिशोर ने इसका कड़ा विरोध किया। उन्होंने 6 अन्य सांसदों के साथ एक संयुक्त वक्तव्य जारी करके जयप्रकाश के इस कदम की भर्त्सना की। इस वक्तव्य में कहा गया:

> सेना का आह्वान किसी विदेशी आक्रमण के खिलाफ या फिर किसी तानाशाह शासक के विरुद्ध किया जाता है। भारत एकमात्र स्वतंत्र और लोकतांत्रिक राष्ट्र है, जहां जेपी जैसे व्यक्तियों को जो भी मन में आए, वह बोलने की लोकतांत्रिक स्वतंत्रता है। क्या ऐसी राजद्रोही गतिविधि का बचाव करने का नैतिक साहस किसी में होगा? स्पष्ट है कि अपनी संपूर्ण क्रांति के अवसान को सामने देखकर उपजी निराशा में जेपी अपना संतुलन और गंभीरता खो चुके हैं। किसी ने कभी सोचा नहीं था कि जेपी इतने गैर जिम्मेदार हो जाएंगे।[21]

राष्ट्रीय स्तर पर हो रही इंदिरा की राजनीतिक घेरेबंदी के बीच राजस्थान में भी खतरा बना हुआ था। गोकुलभाई भट्ट नशाबंदी के प्रश्न को लेकर अरसे से आंदोलन की धमकी दे रहे थे। एक बार उन्होंने अनशन किया, जो प्रधानमंत्री के आग्रह से छोड़ा। बाद में एक अनौपचारिक समिति राजबहादुर की अध्यक्षता में बनाई गई। राजबहादुर समिति की सिफारिशें व्यावहारिक थीं; उन पर कार्य करने से नशाबंदी की नीति में प्रगति होती। लेकिन राजस्थान

---

*असम से आने वाले और वामपंथी नीतियों के हिमायती देवकांत बरुआ ने इंदिरा गांधी की चापलूसी में सारी सीमाएं तोड़ दीं। उनका गढ़ा नारा 'इंदिरा इज इंडिया, इंडिया इज इंदिरा' (इंदिरा भारत है और भारत इंदिरा) आज भी उदाहरण के तौर पर उद्धृत किया जाता है। इनका एक और नारा तब चर्चित हुआ था, 'इंदिरा तेरी सुबह की जय, तेरी शाम की जय, तेरे नाम की जय, तेरे काम की जय।'

सरकार की अपनी कठिनाइयां थीं।[22] हरिदेव जोशी का कहना था कि यदि केंद्र से वित्तीय सहायता मिले तो वे नशाबंदी करने को तैयार हैं। इंदिरा ने कहा कि वे वित्त मंत्री से बात करेंगी। इंदिरा का मानना था कि यदि कुछ नहीं किया गया तो राजस्थान में भी आंदोलन आरंभ हो जाएगा और सर्वोदय के वे कार्यकर्ता भी, जो अभी तक उनका साथ दे रहे हैं, इस आंदोलन से अलग नहीं हो पाएंगे।[23]

राजस्थान में जोशी के प्रति असंतोष बढ़ रहा था। हालांकि इंदिरा इसको लेकर अधिक चिंतित नहीं थीं। उनका कहना था कि छोटी-मोटी बातें हमेशा चलती रहती हैं, लेकिन स्थिति विशेष गंभीर नहीं है; जोशी ठीक ही काम कर रहे हैं।[24] 5 फरवरी, 1975 को इंदिरा राजस्थान के दौरे पर आईं और रात को यहीं ठहरीं। खेतड़ी और जोशी के गृहक्षेत्र बांसवाड़ा में उनकी बड़ी जनसभाओं का आयोजन किया गया।[25] बरकतुल्ला खां की मृत्यु के बाद मुख्यमंत्री पद के दावेदार रहे रामनिवास मिर्धा भी विरोध में थे। फरवरी, 1975 के दूसरे सप्ताह मिर्धा की प्रधानमंत्री कार्यालय के एक वरिष्ठ अधिकारी से बात हुई। उस समय वे रक्षा उत्पादन राज्य मंत्री थे और राजस्थान के दौरे से लौट रहे थे। उनका कहना था कि जनता का विश्वास सरकार और कांग्रेस से उठ रहा है, भ्रष्टाचार बढ़ रहा है और हर जगह लोग यही पूछते हैं कि सरकार इसको रोकने के लिए कुछ क्यों नहीं करती।[26]

कांग्रेस के अंदरखाने में भी भ्रष्टाचार का विषय मुखर होने लगा। कांग्रेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष देवकांत बरुआ और बंबई प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष रजनी पटेल* पर आरोप लगने लगे। रामनिवास मिर्धा का कहना था, 'बरुआ और पटेल की काफी बदनामी हो रही है। ये लोग पार्टी के नाम पर काफी रुपया बना रहे हैं। पार्टी के वरिष्ठ और पुराने नेताओं को इस बात से काफी चिंता है, लेकिन प्रधानमंत्री से कुछ कहने का किसी में साहस नहीं होता।'[27] हालात ये थे कि बरुआ और पटेल कुछ प्रस्ताव लेकर प्रधानमंत्री के पास गए। कपड़ा मिलों पर कोई ड्यूटी लगाने पर विचार किया जा रहा था, उससे सरकार को 6 करोड़ रुपए मिलने थे। बरुआ और पटेल चाहते थे कि यह प्रस्ताव समाप्त कर दिया जाए, जिससे वे मिल मालिकों से पार्टी के लिए दो-तीन करोड़ रुपए ले लें। जब बरुआ और पटेल प्रधानमंत्री से मिल रहे थे, उसी समय वाणिज्य मंत्री डी.पी. चट्टोपाध्याय को बुलाया गया। वाणिज्य मंत्रालय ने यह प्रस्ताव समाप्त कर दिया।[28]

उसी दौरान मंत्रिपरिषद के विचारार्थ एयरबस खरीदने का एक प्रस्ताव आया। पहले इंदिरा बहुत नाराज हुईं और उस प्रस्ताव को स्थगित कर दिया। अप्रेल, 1975 के अंत में मंत्रिपरिषद की एक बैठक में प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। इसी तरह, अरब सागर और बंगाल की खाड़ी में 'ऑफशोर एक्सप्लोरेशन' के लिए अमेरिकी कंपनियों के एक समूह से अनुबंध हुआ। बाद में बंगाल की खाड़ी में तमिलनाडु-आंध्र प्रदेश के समीप उसी प्रकार के

*इंदिरा गांधी के आसपास वामपंथी रुझान वाली त्रिमूर्ति में सिद्धार्थशंकर राय और देवकांत बरुआ के साथ रजनी पटेल भी थे। वे महाराष्ट्र के एक मजबूत कांग्रेस पार्टी बॉस माने जाते थे। भारत की आर्थिक राजधानी मुंबई शहर में पार्टी की इकाई पर पूरी पकड़ रखने वाले पटेल पर स्वाभाविक ही कांग्रेस के लिए धन जुटाने की भी बड़ी जिम्मेदारी थी।

एक्सप्लोरेशन के लिए फिर कैनेडियन कंपनियों के समूह से वार्ता हुई। बरुआ ने इस सौदे में रुचि लेना शुरू कर दिया। अंत में बरुआ और पटेल ने इन कंपनियों से अच्छी रकम हथियाई।[29] इन गतिविधियों के कारण सरकार की काफी बदनामी हो रही थी। हालात ये थे कि प्रधानमंत्री कार्यालय से जुड़े वरिष्ठ अफसर भी विपक्ष द्वारा लगाए जा रहे भ्रष्टाचार के आरोपों का खंडन करने में असमर्थता महसूस कर रहे थे।[30] इन परिस्थितयों में राष्ट्रव्यापी स्वरूप ले चुके आंदोलन के कारण इंदिरा के लिए संकट लगातार बढ़ता जा रहा था।

आपातकाल का फैसला

गुजरात के चुनाव और चरम सीमा पर पहुंच चुके बिहार आंदोलन की दो बड़ी चुनौतियां इंदिरा सरकार के सामने खड़ी थीं। गुजरात में विधानसभा चुनाव हुए तो आजादी के बाद पहली बार द्विध्रुवीय चुनाव लड़े गए। कांग्रेस का मुकाबला कांग्रेस (संगठन), भारतीय जनसंघ, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी और भारतीय लोकदल को मिलाकर बने जनता मोर्चा से था। इसके गठन में जयप्रकाश और मोरारजी की प्रमुख भूमिका थी। 'गुजरात की बहू' इंदिरा के धुआंधार प्रचार और किसी भी तरह चुनाव जीतने की सभी कोशिशें विफल रहीं। 11 जून, 1975 को जनता मोर्चा को आश्चर्यजनक रूप से विजय प्राप्त हुई। जनता मोर्चा ने 182 सदस्यों वाले सदन में 87 सीटें जीतीं। 6 निर्दलीय मिलाकर उसे पूर्ण बहुमत मिला। कांग्रेस को केवल 74 सीटें मिलीं, जबकि 1972 के चुनाव में उसे 140 सीटें मिली थीं। चुनाव परिणाम घोषित हुए 24 घंटे भी नहीं बीते कि 12 जून, 1975 को इलाहाबाद हाईकोर्ट के न्यायाधीश जगमोहनलाल सिन्हा के फैसले ने नया इतिहास रच दिया। 1971 में रायबरेली में इंदिरा की जीत को चुनौती देने वाले राजनारायण के मुकदमे में इंदिरा को चुनाव में भ्रष्ट आचरण का दोषी घोषित किया गया। लोकसभा के लिए उनके चुनाव को अवैध मानते हुए उन्हें 6 साल के लिए किसी निर्वाचित पद पर बने रहने से वंचित कर दिया गया।

जयप्रकाश के आंदोलन, गुजरात के चुनाव परिणाम और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के आदेश के परिणामस्वरूप निर्णायक मोड़ पर राजस्थान की भूमिका अचानक बढ़ गई। आपातकाल की घोषणा से ठीक दो दिन पहले राजस्थान के मुख्य सचिव सुंदरलाल खुराना को केंद्र में गृह सचिव बनाया गया। 21 जून, 1975 को इंदिरा ने खुराना को दिल्ली बुलाया और 22 जून को मुलाकात की। पांच मिनट की बातचीत के बाद खुराना को संजय और आर.के. धवन से मिलने भेजा गया। दोनों ने खुराना से लगभग आधे घंटे बात की। इसके बाद धवन ने इंदिरा से कहा कि खुराना गृहसचिव के लिए उपयुक्त होंगे। अगले दिन खुराना को गृह सचिव बना दिया। तत्कालीन गृह सचिव निर्मल मुखर्जी को कहां भेजा जाना है, इसका तब तक फैसला तक नहीं हुआ था।[31] उसी दौरान संजय का जयपुर में स्वागत समारोह हुआ। बाजारों से होकर जुलूस निकला, संजय को देखने हजारों लोग उमड़ पड़े। रामनिवास बाग में विशाल जनसभा हुई। सभा के दौरान ही संजय के पास दिल्ली लौटने के लिए संदेश आ गया। वे सभा के तुरंत बाद अपने विमान से दिल्ली लौट गए। जोशी बांसवाड़ा चले गए।[32]

जिस रात आपातकाल लगा, उस दिन इंदिरा ने जोशी को दिल्ली पहुंचने के लिए कहा, लेकिन वे बांसवाड़ा में अपने छोटे पुत्र सुरेश के विवाह समारोह में व्यस्त थे। राजस्थान के कार्यवाहक मुख्य सचिव जी.के. भनोत ने प्रधानमंत्री कार्यालय फोन करके एयरफोर्स का विमान दिलवाने की मांग की। प्रधानमंत्री कार्यालय ने इसके बारे में गृह सचिव खुराना से बात करने को कहा। तब तक प्रधानमंत्री के व्यक्तिगत अफसरों को भी पता नहीं था कि राजस्थान के मुख्यमंत्री को अचानक दिल्ली बुलाने की आवश्यकता क्यों पड़ी*।[33] जोशी विवाहोत्सव में अतिथियों की आवभगत में व्यस्त थे कि अचानक मध्यप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री प्रकाशचंद सेठी विशेष विमान से तलवाड़ा हवाई पट्टी पर उतरे तो सभी हक्के-बक्के रह गए। वे इंदिरा से जोशी की बात करवाने के लिए उन्हें लेने आए थे। वे जोशी से मिलने बांसवाड़ा पहुंच गए। वहीं दोनों की बैठक** हुई, जिसमें सेठी ने बताया कि आपातकाल लागू होने वाला है और वे इसके लिए तैयारी कर लें।[34] जोशी बहुत पशोपेश में थे। आखिर यह रास्ता निकाला गया कि जोशी बारात लेकर दुल्हन के तोरण द्वार जाएं और फिर जयपुर जाकर तुरंत वापस लौट आएं। तोरण का कार्यक्रम पूरा करके जोशी जयपुर पहुंचे और इंदिरा से बात की।[35]

आपातकाल की घोषणा करने का कारण इंदिरा ने बताया, 'हिंसा और घृणा का ऐसा वातावरण बनाया गया, जिसके कारण एक कैबिनेट मंत्री की हत्या हुई और प्रधान न्यायाधीश को जान से मारने का प्रयास किया गया। सरकार को पूरी तरह पंगु बना देने के उद्देश्य से विपक्षी दलों ने देश भर में बंद, घेराव, आंदोलनों, तोड़फोड़ और औद्योगिक श्रमिकों, पुलिस तथा रक्षा सेनाओं को भड़काने का कार्यक्रम बनाया। उनमें से एक ने तो यहां तक कहा कि सशस्त्र सेनाओं को ऐसे आदेश नहीं मानने चाहिए, जिन्हें वे गलत समझते हों। यह कार्यक्रम 29 तारीख से लागू होना था। हमें कोई संदेह नहीं था कि इस कार्यक्रम से सार्वजनिक व्यवस्था के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न हो जाता और हमारी अर्थव्यवस्था को ऐसी क्षति होती, जिसको सुधारना असंभव हो जाता। इसे रोकना अनिवार्य था।'[36]

इंदिरा ने आंदोलनों से हो रहे आर्थिक नुकसान को भी कारण बताया। उन्होंने बिहार का उदाहरण देते हुए बताया कि 38 बड़ी हड़तालों से सार्वजनिक क्षेत्र में 8,00,353 जनदिवसों और निजी क्षेत्र में 7,24,642 जनदिवसों की हानि हुई। उनका आरोप था कि देश के विभिन्न भागों में 1973 और 1974 में रेल हड़ताल और अन्य छिटपुट आंदोलनों से लगभग 1 अरब 24 करोड़ रुपए की हानि हुई। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को हुई हानि इससे कम-से-कम दस गुना थी।[37] हालांकि बिहार आंदोलन की शुरुआत के पीछे इंदिरा ने राजनीति नहीं महसूस की। उनका कहना था कि शुरुआत छात्रों की कुछ समस्याओं को लेकर हुई, बाद में सभी

*उस रात विपक्ष के नेताओं को गिरफ्तारी किए जाने के बारे में प्रधानमंत्री कार्यालय तो क्या, केंद्रीय गृह सचिव तक को नहीं बताया गया था। प्रधानमंत्री की ओर से मुख्यमंत्रियों को सीधे निर्देश दिए जाने की पुष्टि हुई। (बिशन टंडन: आपातकाल-एक डायरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 396)

**अर्जुन सिंह के संस्मरणों से भी प्रकाशचंद सेठी के हरिदेव जोशी से मिलकर आपातकाल के संबंध में चर्चा करने की पुष्टि होती है। (अर्जुन सिंह और अशोक चोपड़ा: अ ग्रेन ऑफ सैंड इन द आवरग्लास ऑफ टाइम, हे हाउस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 122)

बहती गंगा में हाथ धोने के लिए आए। इंदिरा मानती थीं कि कांग्रेस में मतभेद होने के कारण उनके विरोधियों को फायदा मिला।[38] उन्होंने आक्रामक होकर कहा, 'विपक्षी दलों का उद्देश्य साफ था : सरकार को पंगु बना देना और समस्त राष्ट्रीय गतिविधियों को ही ठप कर देना और राष्ट्र की लाश को कुचलते हुए सत्ता हथिया लेना। स्थिति इतनी बिगड़ चुकी थी कि अगर उन्हें कुछ और कदम उठाने दिया जाता तो देश तहस-नहस हो जाता, जिससे हमारे लिए विदेशी खतरा भी पैदा हो जाता।'[39]

प्रेस पर पाबंदी को लेकर इंदिरा का तर्क था कि लोकतंत्र में अभिव्यक्ति और विचार-विमर्श की स्वतंत्रता तो है, लेकिन क्या लोकतंत्र के नाम पर निराधार चरित्र हनन को स्वीकार्य माना जा सकता है? इंदिरा का मानना था कि 1969 में उनके विरुद्ध घृणा और मिथ्याचरण का एक अभियान जोर-शोर से चलाया गया, लेकिन अधिकांश अखबारों ने उसका प्रतिवाद नहीं किया। इंदिरा ने आरोप लगाए, 'कुछ समाचार पत्रों ने सही वस्तुस्थिति की ओर ध्यान देना बिल्कुल बंद कर दिया था। वे स्वतंत्र आकलक की जगह विपक्षी मोर्चे का पूरी तरह साथ दे रहे थे और पराजय तथा ध्वंस की मानसिकता के पूर्ण प्रचारक बन गए थे।'[40]

आपातकाल के त्वरित परिणाम के रूप में सामने आया अनुशासन जल्दी ही ढीला पड़ने लगा। उस दौर की सबसे खतरनाक बात यह थी कि कानून के शासन की जगह संजय गांधी का शासन स्थापित हो रहा था। इंद्रकुमार गुजराल एकमात्र अपवाद थे। उन्हें विरोध प्रकट करने के 24 घंटों के भीतर एक कम महत्वपूर्ण मंत्रालय में भेज दिया गया और आखिरकार मॉस्को के लिए निर्वासित कर दिया गया। संजय के पास कोई आधिकारिक पद नहीं था; न तो सरकार में और न ही पार्टी में। उनके प्रभुत्व का एकमात्र आधार यह था कि वे अपनी मां के लाडले थे। उनके इस प्रभुत्व की भयावह कहानियां जनसंख्या नियंत्रण के बचकाने और दमनकारी तरीकों तक ही सीमित नहीं थीं। सभी प्रकार के व्यापारियों से सभी प्रकार की अनुमतियों के लिए पैसे ऐंठे जा रहे थे। केंद्रीय मंत्रियों के लिए सीधे आदेश जारी किए जा रहे थे, भले ही संवैधानिक न हों। हालात ये थे कि दिल्ली के उपराज्यपाल (एलजी) का सुबह उठते ही पहला काम प्रधानमंत्री आवास पहुंचकर आदेश प्राप्त करना होता था। कांग्रेस शासित राज्यों के मुख्यमंत्रियों को भी वहीं से आदेश पहुंचते थे। कई बार अपराध की श्रेणी में आने वाले इन आदेशों का बिना सवाल किए पालन करना होता था। किसी के पास इस्तीफा देने या विरोध प्रकट करने की हिम्मत नहीं थी।[41]

इसी दौर में संजय का राजस्थान से जुड़ाव बढ़ा। उस समय के उनके साथ जुड़े रोचक किस्से बाद तक चुटकियां लेकर सुनाए जाते रहे। एक बार वे अजमेर आना चाहते थे, लेकिन वहां एयरपोर्ट नहीं होने के कारण जयपुर आकर सड़क मार्ग से अजमेर जाने का विकल्प ही शेष था। संजय ने कहा कि अजमेर के मेयो कॉलेज के फुटबॉल मैदान के पोल हटवा दिए जाएं, वे वहां अपना प्लेन उतार देंगे। आखिर अजमेर के घूघरा क्षेत्र में हैलीपेड की पट्टी को लंबा बनाया गया। हवाई अड्डे के पास भी बिजली का ऊंचा पोल लगा दिया था, लेकिन संजय ने बड़ी सफाई से प्लेन उतार दिया।[42] एक बार संजय बांसवाड़ा में कांग्रेस की रैली को

संबोधित करने पहुंचे। संजय के विमान से उतरते ही जोशी उन्हें माला पहनाने के लिए आगे बढ़े। संजय ने तत्काल कहा, 'माला मुझे नहीं, मेरे जनरल सेक्रेटरी (जनार्दनसिंह गहलोत) को पहनाएं।' अपने समर्थक और शिष्य रहे गहलोत को माला पहनाने को लेकर जोशी दुविधा में पड़ गए। इसके बावजूद वे माला पहनाने आगे बढ़े, लेकिन गहलोत ने उनकी दुविधा भांप ली। उन्होंने आगे बढ़कर जोशी के हाथ से माला ली और उन्हें ही पहना दी।[43] इससे एक अपमानजनक स्थिति पैदा होने से रह गई।

संजय की सक्रियता ने नवलकिशोर पर लगाम लगाने का काम किया। केंद्र में नए नेताओं की चौकड़ी सक्रिय हो गई; राजस्थान में हरिदेव जोशी के होने के कारण कोई गुंजाइश नहीं थी, जो खुद संजय और उनके समर्थकों का दबाव महसूस कर रहे थे। उस दौरान जोशी पर मनमाने ढंग से लोगों को बंदी बनाने के आरोप लगे। कुछ लोगों ने दिल्ली तक यह खबर पहुंचाने का प्रयास किया कि जो लोग कांग्रेस और प्रधानमंत्री के प्रशंसक रहे हैं लेकिन जोशी की आलोचना करते हैं, उन्हें बंदी बनाया जा रहा है।[44]

आपातकाल के बाद कांग्रेस का पहला अधिवेशन दिसम्बर, 1975 में चंडीगढ़ में हुआ। इंदिरा, संजय और बरुआ के स्वागत के लिए व्यापक तैयारियां की गईं। मेनका का पहुंचना भी जनता के लिए आकर्षण का विषय था। अधिवेशन स्थल तक पहुंचने के रास्ते में कई किलोमीटर तक रंग-बिरंगे तोरणद्वार सजे थे और कांग्रेस के झंडे लहरा रहे थे। यह विशेष रूप से कांग्रेस के शक्ति प्रदर्शन और पार्टी को आधुनिक रूप देने का अवसर बन गया। वहां न केवल 25 हजार लोगों के बैठने की व्यवस्था थी, बल्कि कांग्रेस के इतिहास में पहली बार अधिवेशन के लिए सोफा-कुर्सी का इस्तेमाल हुआ और शौचालयों का निर्माण करवाया गया। चार बड़े किचन बनवाए गए, जिनमें एक साथ 20 हजार लोगों के भोजन का प्रबंध हो सकता था। यूथ कांग्रेस के कार्यक्रम अलग से हुए, जिसकी राष्ट्रीय अध्यक्ष अंबिका सोनी ने संजय को भारतीय युवाओं के नेता और मार्गदर्शक के रूप में संबोधित किया। अधिवेशन में पारित प्रस्ताव में फरवरी, 1976 में होने जा रहे चुनाव को एक वर्ष के लिए स्थगित करने, विध्वंसकारी शक्तियों पर पूरा काबू नहीं होने तक आपातकाल जारी रखने और संविधान संशोधन की आवश्यकता का अध्ययन करने जैसे निर्णय प्रमुख थे। इंदिरा का कहना था, 'चुनाव जरूरी है, लेकिन उससे भी ज्यादा देश की एकता और मजबूती जरूरी है।'[45]

उस दौरान नवलकिशोर की जिम्मेदारियां बढ़ती गईं। 1976 की शुरुआत में उन्हें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का संयुक्त महामंत्री बनाया गया। पद ग्रहण करने के बाद वे कोषाध्यक्ष प्रकाशचंद्र सेठी के साथ जयपुर आए। मुख्यमंत्री जोशी उनके स्वागत के लिए हवाई अड्डे पर पहुंचे। कृषि एवं खाद्य मंत्री शिवचरण माथुर और विधायक श्रीराम गोटेवाला भी साथ थे। जिला कांग्रेस कमेटी ने स्वागत समारोह आयोजित किया। इसमें मुख्यमंत्री, प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष गिरधारीलाल व्यास और जयपुर शहर जिला कांग्रेस अध्यक्ष जनार्दनसिंह गहलोत शामिल थे। दौसा, कोटपूतली, शाहपुरा, सैंथल, मनोहरपुर आदि स्थानों पर भी भव्य स्वागत किया गया। इस अवसर पर नवलकिशोर ने अपने संबोधन में कहा, 'मुझे कार्यकर्ताओं की

पंक्ति से अलग नहीं समझें।'[46] इसके कुछ दिनों बाद ही मॉरीशस सत्तारूढ़ पार्टी की चालीसवीं वर्षगांठ में भाग लेने के लिए भारत से 40 सदस्यीय दल भेजा गया तो उसमें नवलकिशोर भी शामिल थे।[47]

विपक्ष के सभी बड़े नेताओं और हजारों कार्यकर्ताओं को जेल में बंद कर दिए जाने से राजनीतिक हलचल नाम मात्र की रह गई। इसके बावजूद इंदिरा पूरी तरह निश्चिंत नहीं थीं। उन संशय भरे हालात में उन्हें मोहनलाल सुखाड़िया की भी जरूरत महसूस हुई, जिन्हें राजस्थान की राजनीति से दूर कर दिया गया था। इसी बीच विनोबा भावे ने घोषणा कर दी कि यदि भारत सरकार 11 सितम्बर, 1976 से पूर्व सारे देश में गोहत्या को रोकने के लिए कानून बनाने का निश्चय घोषित नहीं करती है तो वे आमरण अनशन करेंगे। इंदिरा ने विनोबा से वार्ता के लिए सुखाड़िया को दूत बनाकर भेजा, जो उस समय आंध्रप्रदेश के राज्यपाल थे। सुखाड़िया ने बताया कि अनेक राज्यों में गोहत्या बंदी को लेकर समस्या है, लेकिन इंदिरा संसद में वक्तव्य या किसी घोषणा के जरिए यह मामला तुरंत हल करना चाहती हैं। विनोबा की ओर से स्पष्ट कर दिया गया कि पूरे देश में गोहत्या बंदी होनी चाहिए।[48] सुखाड़िया लौटने लगे तो विनोबा ने कहा, 'दो अस्त्रों की टक्कर नहीं हो। बाबा (विनोबा) का है ब्रह्मास्त्र और इंदिराजी का है सेंसरास्त्र।' सुखाड़िया ने यह कहते हुए वहां से विदा ली, 'हम यही चाहते हैं कि आपके और उनके बीच संघर्ष न हो।'[49]

देश का राजनीतिक परिदृश्य अनिश्चितताओं से भरा हुआ था। आपातकाल की अवधि को लेकर सिर्फ कयास लगाए जा सकते थे। सरकार की ओर से इस विषय पर संगीन चुप्पी थी। लोकसभा चुनाव की तारीख दो बार स्थगित की जा चुकी थी। ऐसे में, 18 जनवरी, 1977 को इंदिरा ने लोकसभा चुनाव करवाने की घोषणा करके सबको चौंका दिया। विपक्ष के नेताओं को रिहा किया जाने लगा। प्रेस से पाबंदी हटा ली गई। मीसा का उपयोग आइंदा केवल असाधारण परिस्थितियों में किए जाने की घोषणा हुई। जनसभाएं आयोजित करने से भी प्रतिबंध हटा दिया गया। इसके साथ ही चुनाव अभियान तेज होने लगा। जेल से रिहा होने के दो दिन बाद मोरारजी देसाई ने भारतीय जनसंघ, सोशलिस्ट पार्टी, भारतीय लोक दल और कांग्रेस (ओ) को मिलाकर संयुक्त विपक्ष के रूप में जनता पार्टी का गठन करने का ऐलान किया। इसी बीच जगजीवन राम, हेमवतीनंदन बहुगुणा सहित कई वरिष्ठ नेताओं ने कांग्रेस छोड़ दी, जिससे कांग्रेस को गहरा झटका लगा।[50]

नवगठित जनता पार्टी को चुनाव आयोग ने चुनाव चिह्न देने से इनकार कर दिया। चारों पार्टियों ने मिलकर फैसला किया कि उन सबके उम्मीदवार हर जगह भारतीय लोक दल के चिह्न पर चुनाव लड़ेंगे; केवल तमिलनाडु में कांग्रेस (ओ) के चिह्न का इस्तेमाल किया जाएगा। उन्होंने 27 सदस्यीय राष्ट्रीय कार्यकारिणी का भी गठन किया और इस बात पर सहमति बनाई कि चुनाव के बाद कार्यकारिणी का औपचारिक उद्घाटन जनता पार्टी के नाम के साथ किया जाएगा। कांग्रेस से अलग हुए जगजीवन राम ने कांग्रेस फोर डेमोक्रेसी (सीएफडी) के नाम से पार्टी बनाई और भारतीय लोक दल के ही चिह्न पर उम्मीदवार खड़े किए।[51]

मार्च, 1977 में चुनाव होना निश्चित हुआ। जनता पार्टी ने आपातकाल में हुए अत्याचारों को चुनावी मुद्दा बनाया और यह दावा किया कि वह लोकतंत्र को फिर से स्थापित करने आई है। यह चुनाव भारतीय इतिहास की धारा को बदल देने वाला सिद्ध हुआ। लोकतंत्र की स्थापना के बाद से लगातार केंद्रीय सत्ता में बनी हुई कांग्रेस को जनता ने खारिज कर दिया। 34.5 प्रतिशत वोट पाकर भी वह 154 सीटों पर सिमट गई। भारतीय लोक दल के टिकट पर चुनावी मैदान में उतरे जनता पार्टी के 405 उम्मीदवारों में से 295 विजयी हुए; उन्हें 41.3 प्रतिशत वोट मिले। कांग्रेस (ओ) के चिह्न पर चुनाव लड़े 19 में से 3 उम्मीदवार विजयी हुए। राजस्थान की 25 में से 24 सीटें जनता पार्टी के खाते में गईं। कांग्रेस से केवल प्रदेश अध्यक्ष नाथूराम मिर्धा नागौर सीट पर कांटे के मुकाबले में जीते। नवलकिशोर को पहली बार चुनावी हार का सामना करना पड़ा। उन्हें नाथू सिंह ने डेढ़ लाख से अधिक* वोटों के अंतर से हराया।

मोरारजी देसाई के नेतृत्व में राष्ट्रीय स्तर पर पहली बार गैर-कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ। इंदिरा की शक्ति क्षीण होने लगी। उनके कई समर्थक भी पाला बदलकर जनता पार्टी के साथ चले गए। इंदिरा के आशीर्वाद से कांग्रेस अध्यक्ष पद पर पहुंचे के. ब्रह्मानंद रेड्डी उनके विरुद्ध हो गए। उसी वर्ष होने जा रहे राष्ट्रपति चुनाव के लिए इंदिरा से उम्मीदवार तक के बारे में बात नहीं की गई। जनता पार्टी ने नीलम संजीव रेड्डी का नाम सुझाया और ब्रह्मानंद-यशवंतराव चव्हाण ने उसे कांग्रेस की ओर से स्वीकृत कर दिया। गृह मंत्री चरण सिंह सहित जनता पार्टी के नेता काफी आक्रामक थे, लेकिन लोकसभा में 154 सदस्यों और राज्यसभा में दो तिहाई से अधिक सदस्यों वाली कांग्रेस ने ऐसे वक्तव्यों के लिए कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।[52] जनता पार्टी की सरकार में आपातकाल की करतूतों को उजागर करने की कवायद शुरू हुई। इसके लिए सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश जे.सी. शाह की अध्यक्षता में एक जांच आयोग का गठन हुआ। आयोग की जांच में प्रेस पर पाबंदी, जबरन नसबंदी, मानवाधिकार हनन, सरकारी मशीनरी के दुरुपयोग जैसे विषयों पर कई खुलासे हुए। इस प्रक्रिया में इंदिरा ने ऐसे लोगों को अपने विरुद्ध खड़ा पाया, जो कभी उनके मातहत थे। इस फेहरिस्त में एक नाम हरिदेव जोशी का भी था। उनके साथ राजस्थान के मुख्य सचिव मोहन मुखर्जी ने भी ऐसे बयान दिए, जिनसे इंदिरा की परेशानियां बढ़ने वाली थीं।

जोशी और मुखर्जी ने शाह आयोग को बताया कि आर.के. धवन का एक टेलीफोन भी प्रधानमंत्री की अनुमति और केंद्र सरकार के समर्थन का पर्याय माना जाता था। उन्होंने शाह आयोग द्वारा पूछताछ किए जाने पर स्वीकार किया कि अगर इंदिरा के समर्थन में रैली जुटाने के लिए राज्य सरकार के तंत्र का इस्तेमाल किया गया तो यह अनुचित था। उन्होंने कहा कि कुछ चीजें अति उत्साह में हो जाती हैं, लेकिन ये विसंगतियां उनकी जानकारी में नहीं लाई गई थीं।[53] एक आईएएस अधिकारी मंगल बिहारी को सितम्बर, 1974 में तीन वर्षों के लिए राजस्थान राज्य विद्युत बोर्ड का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। 30 जून, 1975 को उनका

*नाथू सिंह – 2,36,345 वोट; नवलकिशोर शर्मा – 72,942 वोट।

स्थानांतरण राजस्व विभाग में अजमेर कर दिया गया। मंगल बिहारी ने शाह आयोग के समक्ष गवाही में कहा कि उन्होंने प्रधानमंत्री सचिवालय की एक मांग से इनकार कर दिया था, इसलिए उनका स्थानांतरण किया गया। उन्हें 20 जून को इंदिरा गांधी के समर्थन में होने वाली रैली में सौ ट्रक और विद्युत बोर्ड के 10 हजार कर्मचारियों को भेजना था। जोशी का इस संदर्भ में कहना था, 'बिहारी को खुद को भाग्यशाली समझना चाहिए कि उन्हें मीसा के अंतर्गत गिरफ्तार नहीं किया।'[54]

संदर्भ सूची

1. पी.एन. धर: इंदिरा गांधी–इमरजेंसी एंड इंडियन डेमोक्रेसी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2000, पृष्ठ 233 1
2. बजट भाषण का भाग 'अ', 1974
3. बिपिन चंद्र: लोकतंत्र, आपातकाल और जयप्रकाश नारायण, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 44
4. नरेन्द्र मोदी: आपातकाल में गुजरात, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 15
5. बिपिन चंद्र: लोकतंत्र, आपातकाल और जयप्रकाश नारायण, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 44
6. वी. कृष्ण अनंत: इंडिया सिन्स इंडिपेंडेंस, पियर्सन एजुकेशन, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 118
7. भोला चटर्जी: कॉन्फ्लिक्ट इन जे.पी. पॉलिटिक्स, अंकुर पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1984, पृष्ठ 258
8. वी. कृष्ण अनंत: इंडिया सिन्स इंडिपेंडेंस, पियर्सन एजुकेशन, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 118–119
9. बिपिन चंद्र: लोकतंत्र, आपातकाल और जयप्रकाश नारायण, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 44
10. वही, पृष्ठ 50
11. एवरीमैन्स साप्ताहिक मैगजीन, 22 जून, 1976
12. बिपिन चंद्र: लोकतंत्र, आपातकाल और जयप्रकाश नारायण, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 55–56
13. कुलदीप नैयर: इमरजेंसी की इनसाइड स्टोरी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 24
14. अटलबिहारी वाजपेयी: फोर डिकेड्स इन पार्लियामेंट, 2011, शिप्रा पब्लिकेशंस, दिल्ली, 1996, पृष्ठ 704
15. विनय सीतापति: आधा शेर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2018, पृष्ठ 54–55
16. सोशलिस्ट इंडिया, 22 मार्च, 1975
17. बिशन टंडन: आपातकाल–एक डायरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 79
18. सोशलिस्ट इंडिया, 7 दिसम्बर, 1974
19. वही, 14 दिसम्बर, 1974
20. इंदिरा गांधी: चुने हुए भाषण और लेख 1972–1977, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1990,

पृष्ठ 114
21. सोशलिस्ट इंडिया, 5 अप्रैल, 1975
22. बिशन टंडन: आपातकाल-एक डायरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 229
23. वही, पृष्ठ 206
24. वही, पृष्ठ 311
25. वही, पृष्ठ 201-203
26. वही, पृष्ठ 209
27. वही, पृष्ठ 339
28. वही, पृष्ठ 345
29. वही, पृष्ठ 353
30. वही, पृष्ठ 361
31. वही, पृष्ठ 391
32. जनार्दन सिंह गहलोत: संघर्ष से शिखर तक, 2020, पृष्ठ 46-47
33. बिशन टंडन: आपातकाल-एक डायरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 395
34. जनार्दन सिंह गहलोत: संघर्ष से शिखर तक, 2020, पृष्ठ 47
35. विजय भंडारी: राजस्थान की राजनीति-सामंतवाद से जातिवाद के भंवर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 245
36. इंदिरा गांधी: आकाशवाणी से प्रसारण, 27 जून, 1975
37. इंदिरा गांधी: चुने हुए भाषण और लेख 1972-77, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1990, पृष्ठ 174
38. वही, पृष्ठ 118
39. वही, पृष्ठ 174
40. वही, पृष्ठ 175
41. बी.के. नेहरू: नाइस गाइज फिनिश सेकेंड, पेंगुइन रैंडम हाउस, गुड़गांव, 1997, पृष्ठ 624
42. जनार्दन सिंह गहलोत: संघर्ष से शिखर तक, 2020, पृष्ठ 49
43. श्याम आचार्य: तेरा तुझको अर्पण, ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2015, पृष्ठ 60
44. बिशन टंडन: आपातकाल-एक डायरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 418
45. आर. शशांकन: इंडिया टुडे, 15 जनवरी, 1976
46. साप्ताहिक निर्माण मजदूर, 2 मार्च, 1976
47. साप्ताहिक गौरव गरिमा, नागपुर, 15 मार्च, 1976
48. कुसुम देशपांडे: विनोबा-अंतिम पर्व, परमधाम प्रकाशन, पवनार, 2010, पृष्ठ 322

49. वही, पृष्ठ 326
50. मलीहा लोधी: पाकिस्तान हॉरिजॉन, खंड 30, सं. 2, पाकिस्तान इंस्टीट्यूट ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्स, पृष्ठ 13–14
51. क्साबा निकोलेई: माइनॉरिटी गवर्मेंट्स इन इंडिया, राउटलेज, न्यूयॉर्क, 2010, पृष्ठ 37–38
52. प्रणब मुखर्जी: द ड्रैमैटिक डिकेड, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ 146–147
53. डेटा इंडिया, 1977, प्रेस इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, पृष्ठ 715
54. क्रिस्टॉफ जेफ्रेलॉट और प्रतिनव अनिल: इंडियन फर्स्ट डिक्टेटरशिप, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 2020, पृष्ठ 50–51

दांवपेंच में दिखाया दम

जी.के. मूपनार, बूटा सिंह और सीताराम केसरी को पर्यवेक्षक बनाकर राजस्थान भेजा गया। इनमें से केवल मूपनार को यह जानकारी थी कि हाईकमान ने शिवचरण माथुर को चुना है। माथुर को भी निर्देश दिया गया था कि इस बारे में अपनी पत्नी तक से चर्चा नहीं करें। विधानसभा की बैठक में मतदान हुआ तो 148 विधायकों में से अधिकांश ने आलाकमान के निर्णय को स्वीकार करने की बात कही। 15 विधायकों ने गिरधारीलाल व्यास को और 2 विधायकों ने एक अन्य नेता को वोट दिया। माथुर को केवल एक वोट मिला था। जाहिर है कि यह वोट उन्होंने खुद को दिया होगा। उस बैठक में मोहनलाल सुखाड़िया भी मौजूद थे, जो मूपनार के करीबी मित्र थे। मूपनार ने सुखाड़िया के सामने ही दिल्ली टेलीफोन किया और इंदिरा की मर्जी के बारे में पूछा। वहां से माथुर को चुनने का निर्देश मिला। विधायक दल ने माथुर को नेता चुनने की औपचारिकता पूरी की और वे मुख्यमंत्री बन गए।

–माखनलाल फोतेदार

इंदिरा गांधी असमंजस में थीं। वे 24 जुलाई, 1977 को विनोबा भावे से मिलीं और तीन दिन उनके पवनार आश्रम में रहीं। उन्होंने विनोबा से कहा, 'कुछ लोग मेरे पीछे पड़े हैं। इसलिए सवाल यह है कि उनसे दब जाएं या उनका सामना करें?'[1] विनोबा के ब्रह्मानंद रेड्डी और यशवंतराव चव्हाण के संबंध में सामान्य कथन को लेकर उनका जवाब था, 'उन पर बहुत दिनों से सौंप दिया है। मार्च के चुनाव के बाद मैंने किसी चीज में दखल नहीं दिया।' इंदिरा ने बताया कि वे बहुत थकी हैं। न मालूम कितने वर्षों से एक दिन की भी छुट्टी नहीं मिली। उनका दर्द था, 'आज जैसी हालत है, उसमें कांग्रेस बच सकेगी या नहीं। मैं रहूं तो भी बचा सकूंगी या नहीं, पता नहीं। लेकिन मैं नहीं रहूं तो बचेगी या नहीं यह सवाल है।'[2] विभिन्न विषयों पर विचार-विमर्श के बाद लौटते समय इंदिरा ने विनोबा से कोई आदेश देने के बारे में पूछा। विनोबा ने उन्हें 'चरैवेति-चरैवेति' यानी चलते रहो-चलते रहो का मंत्र सुझाया।[3] यह वाक्य शीघ्र ही कांग्रेसियों के लिए युद्ध का नारा बन गया। 'इंदिरा गांधी आगे बढ़ो, हम तुम्हारे साथ हैं।'[4]

उस दौरान बेलछी के निर्मम नरसंहार ने इंदिरा के नेतृत्व को उभार पर लाने का काम किया। बेलछी के धनाढ्य कुर्मी किसानों ने अनुसूचित जाति के ग्यारह लोगों को जलाकर मार दिया था। इंदिरा खराब सड़क और कीचड़ से लथपथ पगडंडियों से होते हुए आखिरकार हाथी पर बैठकर बेलछी पहुंचीं। अनेक परेशानियों के बाद किए गए उस दौरे के बाद अनुसूचित जाति की रक्षक के रूप में इंदिरा की जय-जयकार होने लगी।[5]

3 अक्टूबर, 1977 को सीबीआई ने इंदिरा को उनके आवास 12, विलिंगडन क्रीसेंट से

बंदी बना लिया। इंदिरा ने बंदी बनने के बाद जाते समय रास्ते में भविष्यवाणी की कि बहुत जल्दी वर्तमान सरकार का पतन होगा। उन्होंने कहा, 'भयभीत करने वाली सरकार देश नहीं चला सकती।'[6] शांति निकेतनी थैला कंधे पर लिए इंदिरा को कोर्ट ले जाया गया, लेकिन कुछ ही मिनटों में जज आर. दयाल ने उन्हें बाइज्जत बरी कर दिया। इस घटना का पूरे देश पर असर पड़ा। कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने जगह-जगह प्रदर्शन किए, हजारों गिरफ्तारियां हुईं। इससे जनता पार्टी सरकार की साख में इजाफा होना तो दूर, भद पिटी। उन दिनों मजाक में कहा जाने लगा, 'देखो यह सरकार कितनी दमदार है! जिस महिला ने सैकड़ों नेताओं को उन्नीस महीनों तक जेल की हवा खिलाई, उसे ये उन्नीस घंटों के लिए भी सलाखों के पीछे नहीं रख सके।'[7]

चुनावी हार के बाद कांग्रेस में इंदिरा विरोधी माहौल बनने लगा। पार्टी का एक प्रभावशाली गुट उन्हें हटाने में जुट गया। उन्होंने दिल्ली में बाराखंभा रोड स्थित सप्रू हाउस में कांग्रेस के अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों का अधिवेशन बुलाया। इसमें इंदिरा को आमंत्रित नहीं किया गया था। इंदिरा विरोधियों में ब्रह्मानंद रेड्डी, पूरबी मुखर्जी, पी.वी. राजू, के.सी. पंत अग्रणी थे। अधिवेशन में इंदिरा समर्थकों ने हंगामा खड़ा कर दिया। इंदिरा के समर्थन में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के 500 में से 88 सदस्य ही थे, लेकिन इंदिरा के आकर भाषण देने के बाद ही हंगामा थमा। इस अधिवेशन में इंदिरा आईं जरूर, लेकिन उन्हें पार्टी में विरोधी माहौल बनने का अहसास हो गया। उन्होंने अपनी ओर से ही कांग्रेस के विघटन का फैसला किया।[8]

कांग्रेस नेतृत्व इंदिरा की स्थिति को सुदृढ़ बनाने के बजाए इस बात में अधिक रुचि रखता था कि उन्हें किस तरह हमेशा के लिए ओझल किया जा सकता है। इंदिरा को बंदी बनाए जाने के बाद उनके आसपास एक भावनात्मक घेरा तो बना, लेकिन कांग्रेस नेतृत्व ने अपनी ओर से कोई पहल नहीं करते हुए निर्णय किया कि वे अकेले अपनी लड़ाई लड़ें। इस स्थिति के मुकाबले और कांग्रेस नेतृत्व में परिवर्तन लाने के लिए इंदिरा की देखरेख में नए सिरे से सक्रियता शुरू हुई। इंदिरा के पक्ष में सक्रिय हुए नेताओं में कमलापति त्रिपाठी, ए.आर. अंतुले, भागवत झा आजाद, वसंत साठे, बी.पी. मौर्य, ए.पी. शर्मा, बूटा सिंह, कल्पनाथ राय और प्रणब मुखर्जी शामिल थे। इन्होंने विभिन्न राज्यों के नेताओं से बातचीत शुरू की। अधिकतम सहयोग उत्तर भारत से प्राप्त हुआ। इनमें विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश और राजस्थान शामिल थे। राजस्थान के इंदिरा समर्थक नेताओं में प्रभावी रूप से नवलकिशोर, जगन्नाथ पहाड़िया और गिरधारीलाल व्यास थे।[9]

अन्य राज्यों में नारायणदत्त तिवारी, मोहसिना किदवई, राजेंद्र कुमारी वाजपेयी, वीरेंद्र वर्मा, श्यामलाल यादव (उत्तर प्रदेश); केदार पांडे, जगन्नाथ मिश्र, प्रतिभा सिंह (बिहार); जानकीबल्लभ पटनायक और रामचंद्र रथ (उड़ीसा); एच.के.एल. भगत और राधारमण (दिल्ली); सुल्तान सिंह और दलबीर सिंह (हरियाणा); जैल सिंह और दरबारा सिंह (पंजाब); रामलाल (हिमाचल प्रदेश); कृष्णपाल सिंह (मध्य प्रदेश); सरोज खापर्डे

(महाराष्ट्र); एम. चंद्रशेखर, जी.के. मूपनार, नेदुमरन, राममूर्ति (तमिलनाडु); कर्नाटक के सभी नेता (के.एच. पाटिल ग्रुप के अलावा); पी.वी. नरसिंहराव, जी. वेंकटस्वामी और जनार्दन रेड्डी (आंध्र प्रदेश); अनवरा तैमूर और विष्णु प्रसाद (असम); अशोक भट्टाचार्य (त्रिपुरा); माधवसिंह सोलंकी, योगेंद्र मकवाना, रतुभाई अदानी, जीनाभाई दर्जी और सनत मेहता (गुजरात) और प्रणब मुखर्जी, ए.बी.ए. गनी खान चौधरी, अब्दुस सत्तार, नूर-उल-हसन, आनंद मोहन बिस्वास और गोबिंदचंद्र नस्कर (पश्चिम बंगाल) प्रमुख थे। इन कांग्रेस नेताओं ने इंदिरा को कांग्रेस अध्यक्ष बनाने के लिए अभियान चलाने का निश्चय किया। इसी मुहिम के दौरान 18 दिसम्बर, 1977 को इंदिरा ने कांग्रेस कार्यसमिति और कांग्रेस संसदीय बोर्ड से इस्तीफा दे दिया।

1-2 जनवरी, 1978 को नई दिल्ली के विट्ठलभाई पटेल भवन में इंदिरा के समर्थन में कांग्रेस का राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। पांच हजार से अधिक प्रतिभागियों की मौजूदगी में इंदिरा को सर्वसम्मति से कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। लेकिन पार्टी संविधान के अनुसार केवल खुले सत्र के प्रतिनिधि या अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य ही कांग्रेस का अध्यक्ष का चुनाव कर सकते थे। चुनाव आयोग ने यही बात उठाई और इस नई पार्टी को इंडियन नेशनल कांग्रेस का नाम और उसका चुनाव चिह्न 'गाय-बछड़ा' देने से इनकार कर दिया। इसलिए इंडियन नेशनल कांग्रेस में 'आई' जोड़ते हुए नया चुनाव निशान तलाशना पड़ा*। इस 'आई' शब्द का अर्थ था 'इंदिरा'।[10]

राजस्थान में सुखाड़िया के हटने के बाद से ही अंदरखाने में इंदिरा विरोधियों का मजबूत खेमा बना हुआ था। कांग्रेस के ज्यादातर बड़े नेताओं मोहनलाल सुखाड़िया, हरिदेव जोशी, परसराम मदेरणा, नाथूराम मिर्धा, मथुरादास माथुर आदि ने इंदिरा का साथ छोड़ दिया। दिल्ली में नवलकिशोर मजबूती से इंदिरा के साथ जुड़े थे। इंदिरा समर्थकों में आशा का संचार हुआ, जब हीरालाल देवपुरा खुलकर साथ आए और रामकिशोर व्यास कांग्रेस (इ) के प्रदेश अध्यक्ष बनने को तैयार हुए। इसके बाद शिवचरण माथुर, बृजसुंदर शर्मा, रामदेव सिंह महरिया भी इंदिरा समर्थकों में जुड़ गए। जगन्नाथ पहाड़िया शुरू से इंदिरा के साथ बने हुए थे, चंदनमल बैद भी कार्यकर्ताओं का रुख देखकर जुट गए। 15 जनवरी, 1978 को जयपुर के रामलीला मैदान में इंदिरा कांग्रेस का पहला प्रदेश अधिवेशन हुआ, इसमें इंदिरा शामिल हुईं।[11] सम्मेलन में नवलकिशोर के साथ रामकिशोर व्यास, बृजसुंदर शर्मा, शिवचरण माथुर, हीरालाल देवपुरा, गुलाबसिंह शक्तावत, जगन्नाथ पहाड़िया, जनार्दन सिंह गहलोत, श्रीराम गोटेवाला, मास्टर किशनलाल वगैरह नेता मौजूद थे।

1980 के लोकसभा चुनाव के दौरान कांग्रेस पर संजय गांधी का प्रभाव बढ़ता गया। युवक कांग्रेस के लोगों को ज्यादा से ज्यादा टिकट दिलवाने के प्रयास होने लगे। चुनाव के दौरान

*हालांकि 1980 के लोकसभा चुनावों के बाद चुनाव आयोग और सुप्रीम कोर्ट ने इस कांग्रेस को इंडियन नेशनल कांग्रेस के मूल नाम और चुनाव चिह्न को प्रयोग में लाने की अनुमति दे दी। कांग्रेस कार्यसमिति की एक बैठक में मूल नाम तो स्वीकार कर लिया गया, लेकिन चुनाव चिह्न हाथ के पंजे को बनाए रखा गया। (प्रणब मुखर्जी: द ड्रैमैटिक डिकेड, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ 163)

इंदिरा गांधी ने संजय सहित युवक कांग्रेस की अध्यक्ष अंबिका सोनी और महामंत्री जनार्दनसिंह गहलोत के साथ बैठक की। उन्होंने कहा, 'तुम लोग हर जगह टांग अड़ा रहे हो। जगजीवन राम नाराज हो रहे हैं कि तुम लोग बुजुर्ग नेताओं के टिकट कटवा रहे हो, उन्हें नजरअंदाज कर रहे हो। युवक कांग्रेस पार्टी का नुकसान कर रही है।' वे डांट-फटकार कर चली गईं तो संजय ने दोनों युवा नेताओं से कहा, 'कुछ नहीं होगा। इस बात पर ज्यादा दिमाग मत लगाओ।' 1980 के चुनाव में संजय न केवल प्रत्याशियों का चयन और प्रचार प्रबंधन देख रहे थे बल्कि धन के इंतजाम का जिम्मा भी संभाला हुआ था। भीलवाड़ा के प्रत्याशी गिरधारीलाल व्यास आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण चुनाव प्रचार को परवान नहीं चढ़ा पा रहे थे। इंदिरा चुनाव प्रचार के दौरान भीलवाड़ा आईं तो उनके सामने यह समस्या रखी गई और धन दिलवाने का आग्रह किया गया। इंदिरा ने जवाब दिया कि उन्हें तो पता ही नहीं है कि पैसा कहां से आ रहा है। वे संजय से बात करें। फिर संजय से बात करके व्यास को आर्थिक मदद दिलवाई गई।[12]

राजस्थान में कांग्रेस की सफलता का ग्राफ काफी संतोषजनक था। उसे 25 में से 18 सीटों पर विजय प्राप्त हुई। 42.64 प्रतिशत वोट लेकर उसने जनता पार्टी को 31.65 प्रतिशत पर काफी पीछे छोड़ दिया। जनता पार्टी और जनता पार्टी (एस) को मिलाकर 6 सीटें ही मिलीं। इंदिरा के कहने के बाद चुनाव लड़ने को तैयार हुए मोहनलाल सुखाड़िया* उदयपुर से चुनाव जीते। नवलकिशोर की दौसा से जीत ज्यादा विस्मयकारी थी। उम्मीद की जा रही थी कि ये दोनों मंत्रिमंडल में शामिल होंगे, लेकिन ये दोनों संजय की पसंद में शामिल नहीं थे। नवलकिशोर की योग्यता से इंदिरा परिचित थीं। उन्हें भारतीय राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ (नाफेड) का अध्यक्ष और राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस (इंटक) की राजस्थान इकाई का अध्यक्ष बनाया गया**।

मंत्रिमंडल की संभावित सूची में राजस्थान से बनाए जाने वाले मंत्री के रूप में सिर्फ जगन्नाथ पहाड़िया का नाम था। भरतपुर जिले के रहने वाले पहाड़िया बयाना सीट से जीतकर लोकसभा पहुंचे थे। वे उपमंत्री बनाए जाने वाले थे। राष्ट्रपति भवन सूची भेजी जा चुकी थी। उसी दौरान पहाड़िया के प्रयास रंग लाए; उनकी बेचारगी काम आई। संजय ने आर.के. धवन से सूची मंगवाकर पहाड़िया के नाम के आगे लिखे 'डिप्टी' को काटकर 'स्टेट' कर दिया। दुबारा सूची टाइप करवाकर राष्ट्रपति भवन भिजवा दी गई। इस बदलाव का इंदिरा को पता ही नहीं चला और पहाड़िया उपमंत्री के बजाए राज्य मंत्री बना दिए गए। आगे चलकर पहाड़िया ने दिल्ली में रहते हुए संजय से नजदीकियां बना लीं। वित्त राज्य मंत्री के रूप में

*लोकसभा चुनाव से पहले सुखाड़िया ने इंदिरा की व्यक्तिगत सहमति लेनी जरूरी समझी थी। इंदिरा ने उन्हें दिल्ली बुलाकर चुनाव लड़ने के लिए कहा। इसके बावजूद सुखाड़िया के प्रति उनका रोष खत्म नहीं हुआ था। लोगों को उम्मीद थी कि सुखाड़िया केंद्रीय मंत्रिमंडल में शामिल किए जाएंगे, लेकिन वैसा नहीं हुआ। नवलकिशोर भी इंदिरा के नजदीकी नेताओं में थे। उनको भी मंत्रिमंडल में लिए जाने के कयास थे, लेकिन आश्चर्यजनक रूप से जगन्नाथ पहाड़िया का चयन हुआ। परिवर्तित परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में सुखाड़िया का नवलकिशोर से जुड़ाव और बढ़ गया। दोनों में विचार-विमर्श का क्रम सुखाड़िया के जीवनकाल के आखिरी समय तक चलता रहा। (नवलकिशोर शर्मा: मोहनलाल सुखाड़िया स्मृति ग्रंथ, पश्चिमी एवं राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन, जयपुर, पृष्ठ 33)

**नवलकिशोर ने नाफेड के अध्यक्ष पद पर 1986 तक और इंटक के प्रदेश अध्यक्ष के पद पर 1982 तक कार्य किया।

वे विभाग से जुड़ा कोई भी निर्णय लेने से पहले संजय के पास जाते और कहते कि जैसा चाहें वैसा नोट फाइल पर आर.के. धवन से लिखवा दीजिए, वे उस पर हस्ताक्षर कर देंगे। इस तरीके से वे संजय के विश्वासपात्र बन गए।[13]

पहाड़िया का आगमन और पतन

राष्ट्रीय स्तर पर संजय गांधी का नियंत्रण लगातार बढ़ा। 1980 के विधानसभा चुनावों* में भी कमान उन्हीं के हाथों में थी। उन्होंने जगन्नाथ पहाड़िया और जनार्दनसिंह गहलोत को बुलाकर राजस्थान के प्रत्याशियों की सूची बनाने का काम सौंपा। ये दोनों उस समय राजस्थान के नेताओं में संजय के करीबी थे। पहाड़िया ने संजय के प्रति संपूर्ण निष्ठा प्रकट करके उनका विश्वास हासिल कर लिया था; वहीं, 1972 में भैरोंसिंह शेखावत को हराकर आलाकमान की नजर में आए जनार्दन युवक कांग्रेस में महत्वपूर्ण थे। विधानसभा प्रत्याशियों की सूची पहाड़िया के वित्त राज्य मंत्री कार्यालय में तैयार की गई। उस दौरान नामांकन दाखिल करने की आखिरी तारीख से दो दिन पहले जनार्दन अपना फार्म भरने करौली चले गए। इसके बाद पहाड़िया ने बूटा सिंह से मिलकर नए सिरे से सूची तैयार की और उस पर संजय से स्वीकृति प्राप्त कर ली। 200 सीटों के लिए हुए चुनाव में कांग्रेस को 133 सीटों पर जीत मिली। संजय ने पहाड़िया को मुख्यमंत्री बनाने का फैसला किया। उन्होंने दिल्ली में ही मुख्यमंत्री का नाम तय करने के निर्देश दिए और कांग्रेस के विधायकों को वहीं बुलवाया गया। दिल्ली के राजस्थान हाउस के लॉन में टेंट लगाकर विधायक दल की बैठक करवाई गई, जिसमें पहाड़िया को नेता निर्वाचित किया गया। 5 जून, 1980 को पहाड़िया को मुख्यमंत्री की शपथ दिलवाई गई। पहाड़िया के ऊपर संजय के वरदहस्त का इतना प्रभाव था कि उन्होंने कार्यकारी मुख्यमंत्री रहे हीरालाल देवपुरा और संजय के नजदीकी जनार्दन तक को मंत्रिमंडल में नहीं लिया।[14]

पहाड़िया के मुख्यमंत्री बनने के दिन से ही उनकी सरकार की धीमी गति सामने आने लग गई। तीन मंत्रियों और पांच उपमंत्रियों के संक्षिप्त मंत्रिमंडल का गठन करने में उन्हें दो सप्ताह लग गए। इस पर भी उन्होंने 25 विभाग अपने पास रख लिए और तीन मंत्रियों को कोई विभाग ही नहीं दिया।[15] मुख्यमंत्री बनने पर पहाड़िया ने राजनीतिक प्रतिशोध लेने की कोशिशें कीं। उन्होंने नवलकिशोर को भी निशाना बनाने के लिए शासन का उपयोग किया, लेकिन उनके खिलाफ कुछ पा नहीं सके।[16] पहाड़िया ने ठीक से कामकाज संभाला भी नहीं था कि लगभग पखवाड़े भर बाद ही विमान दुर्घटना में संजय का निधन हो गया। कांग्रेस में संजय

---

*मई–जून 1980 में राजस्थान सहित नौ राज्यों के चुनाव हुए। इनमें उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, ओड़िशा, तमिलनाडु और गुजरात शामिल थे। तमिलनाडु के अलावा सभी राज्यों में कांग्रेस सत्ता में आई। इन चुनावों में संजय ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और राष्ट्रव्यापी अभियान चलाया। संकट के समय इंदिरा का साथ देने वाले संजय के पसंदीदा नेताओं को मुख्यमंत्री बनाया गया। इनमें राजस्थान के जगन्नाथ पहाड़िया, बिहार के डॉ. जगन्नाथ मिश्र, पंजाब के दरबारा सिंह, महाराष्ट्र के ए.आर. अंतुले, ओडिशा के जानकीवल्लभ पटनायक और गुजरात के माधवसिंह सोलंकी शामिल थे। संयोग से ये सभी मुख्यमंत्री आगे चलकर या तो बीच में हटा दिए गए या विवादों में फंसे या राजनीतिक हादसे के शिकार हुए।

का स्थान राजीव ने लिया। लेकिन वे राजनीति में आने के लिए मुश्किल से तैयार हुए। उनकी पत्नी सोनिया भी नहीं चाहती थीं कि राजीव को राजनीति में जाना चाहिए। इंदिरा कुछ समय बाद राजीव को तैयार करने में सफल हो गईं, लेकिन सोनिया मानने को तैयार नहीं थीं। घर में काफी चर्चा हुई, इस दौरान तनावपूर्ण माहौल भी बना। अंततः राजीव महासचिव बनने को तैयार हुए। चूंकि वे राजनीति में नए थे, इसलिए अरुण नेहरू उनके सलाहकार बन गए। माखनलाल फोतेदार को भी राजीव के साथ लगा दिया गया।

संजय की मृत्यु के साथ ही पहाड़िया की स्थिति डांवाडोल होने लगी। उन्हें मुख्यमंत्री पद से हटाने की मुहिम शुरू हो गई। इसके पीछे परसराम मदेरणा और चंदनमल बैद के साथ नवलकिशोर प्रभावी रूप से शामिल थे। हीरालाल देवपुरा, गुलाबसिंह शक्तावत, शीशराम ओला, खेतसिंह राठौड़ वगैरह ने पहाड़िया के विरोध में बैठकें शुरू कर दीं। उन्होंने नवलकिशोर को अपना नेता बनाया। दिल्ली में पंत रोड स्थित नवलकिशोर का बंगला उनका ठिकाना बना। नवलकिशोर सांसद थे और दिल्ली की राजनीति के अच्छे जानकार थे। वे खुलकर मुहिम में शामिल नहीं हुए, लेकिन पर्दे के पीछे पूरी तरह सक्रिय थे। जब मामला गरमाने लगा तो फोतेदार ने इन नेताओं को राजीव से मिलवाया। राजीव ने सभी से अलग-अलग बात की। उन्होंने मदेरणा से कहा कि पहाड़िया को मुख्यमंत्री बने रहने दिया जाए और उन्हें मंत्री का दर्जा देकर किसी बोर्ड-निगम का चेरयमैन बना दिया जाएगा। बैद को कृषि उद्योग निगम का चेयरमैन बनाने की पेशकश की गई। देवपुरा को कुछ दिनों बाद मंत्री बनने को कहा गया। जनार्दन को भी अगले मंत्रिमंडल विस्तार में लेने की बात कही। इसके बाद ये चारों नेता नवलकिशोर के बंगले पर इकट्ठे हुए। सभी का मानना था कि यदि पद स्वीकार किए गए तो पहाड़िया मुख्यमंत्री बने रह जाएंगे और छोटे प्रलोभनों के चलते आंदोलन ठंडा पड़ जाएगा। इसलिए एक राय बनी कि वे लोग कोई पद स्वीकार नहीं करेंगे। साथ ही, राजीव से यह कहने का फैसला हुआ कि वे पार्टी के सिपाही के रूप में काम करते रहेंगे।[17]

नवलकिशोर ने इन नेताओं से कहा कि अभी फोतेदार को फोन करके यह फैसला बताया जाए और यह बात राजीव तक पहुंचाने के लिए कह दिया जाए। लेकिन देवपुरा ने इच्छा प्रकट की कि वे इनकार करने की वजह इंदिरा से मिलकर बताना पसंद करेंगे। देवपुरा की बात से सभी सहमत हो गए। लेकिन नवलकिशोर ने देवपुरा को सरल स्वभाव का मानते हुए जनार्दन को भी साथ जाने को कहा। अगले दिन सुबह वे दोनों इंदिरा के पास पहुंचे। उन्हें देखते ही इंदिरा ने पूछा, 'देवपुराजी, कैसे आना हुआ?' देवपुरा ने कहा, 'हमारे सभी साथी पद नहीं ले रहे हैं, तब मैं अकेला मंत्री बनकर क्या करूंगा? लिहाजा मुझे माफ करें।' इंदिरा ने जवाब दिया, 'ठीक है।' इसके बाद दोनों नेता वापस नवलकिशोर के यहां आ गए। वहां से सभी जयपुर लौट आए। पार्टी आलाकमान का पहाड़िया विरोधियों को शांत करने का प्रयास विफल हो चुका था।[18]

पहाड़िया दिल्ली में पदस्थापित यूनियन टेरीटरी कैडर के भारतीय प्रशासनिक सेवा के एक अधिकारी को अपना विशेषाधिकारी बनाकर जयपुर लाए। इन्हें बाद में दिल्ली में भ्रष्टाचार

के आरोप में गिरफ्तार किया गया। उन अधिकारी ने मुख्यमंत्री की पत्नी और एक अन्य आईएएस के साथ मिलकर एक ऐसी शक्तिशाली तिकड़ी का गठन कर लिया, जिसकी अनुमति के बिना राज्य प्रशासन में पत्ता भी नहीं हिल पाता था। पहाड़िया इस तिकड़ी के हाथों एक कठपुतली मात्र बनकर रह गए।[19] विधानसभा के शीत सत्र के दौरान खुले विद्रोह का प्रदर्शन हुआ। मुख्यमंत्री के भाषण के बीच में कांग्रेसी विधायक निरंतर व्यवधान डालते रहे और उन पर निकम्मेपन और भ्रष्टाचार के गंभीर आरोप लगाए। मुख्यमंत्री का बचाव करने के लिए एक भी सदस्य आगे नहीं आया और जब मुख्य सचेतक ने इसके लिए सदस्यों को फटकारने की कोशिश की तो विधायकों ने हो-हल्ला करके उन्हें चुप करा दिया।[20]

वैर विधानसभा सीट पर रिकॉर्ड अंतर* से उपचुनाव जीतने के बावजूद जगन्नाथ पहाड़िया की मुश्किलें खत्म होती नहीं दिख रही थीं। उनके साथ नियुक्त किए गए सभी कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों को अपनी पसंद का मंत्रिमंडल बनाने की छूट मिल गई थी, लेकिन पहाड़िया को इस अधिकार से वंचित रखा गया। वे महीनों तक केवल 10 मंत्रियों के साथ सरकार चलाते रहे। जनवरी, 1981 की शुरुआत में पहाड़िया ने दिल्ली का दौरा किया और अपनी पसंद के मंत्रियों को लेकर मंत्रिमंडल का विस्तार करने के लिए इंदिरा की अनुमति चाही। उनकी इस मांग को न केवल नकार दिया गया, बल्कि इंदिरा ने उनसे असंतुष्ट चल रहे विधायकों के पांच सदस्यीय दल को मिलने का समय दे दिया। असंतुष्टों ने पहाड़िया की हर मोर्चे पर विफलताओं से अवगत करवाते हुए इंदिरा को एक विस्तृत ज्ञापन सौंपा। इंदिरा की प्रतिक्रिया ने उनका उत्साह बढ़ाया।[21]

अप्रेल के महीने में मंत्रिमंडल के आधे सदस्य और बड़ी संख्या में कांग्रेस विधायक दिल्ली पहुंचे। जयपुर में ऐसा माहौल था मानो पूरा सचिवालय ही दिल्ली कूच करने वाला हो। 6 अप्रेल को पांच विधायकों के दल ने इंदिरा को एक ज्ञापन सौंपा, जिसमें लिखा गया था, 'मुख्यमंत्री द्वारा सरकारी मामलों में बरते गए अनाड़ीपन से राज्य में पार्टी की छवि बुरी तरह धूमिल हुई है।' वित्त प्रबंधन से लेकर ऊर्जा उत्पादन तक और महंगाई से लेकर कानून व्यवस्था तक के मुद्दों पर पहाड़िया के खिलाफ शिकायतों की झड़ी लगा दी गई। उन्हें शासन संभाले 313 दिन बीते थे और शिकायतों की संख्या उससे भी अधिक थी। अवसरवादी नेताओं को लुभाने की कोशिश और इंदिरा विरोधी नेताओं को मंत्री बनाने के आरोपों को असंतुष्टों ने सबसे बड़ा हथियार बनाया। इसके अलावा, आवंटित किए गए 300 करोड़ रुपए में से केवल 92 करोड़ खर्च करने, आंतरिक राजस्व वसूली में 12 प्रतिशत की गिरावट और रिजर्व बैंक से 108 करोड़ रुपए का देश का सर्वाधिक ओवरड्राफ्ट लेने की नौबत जैसे आंकड़े असंतोष को मजबूत आधार दे रहे थे। राजस्थान इकलौता राज्य था, जिसकी प्रति व्यक्ति आय में कांग्रेस शासन के दौरान गिरावट आई। असंतुष्टों ने राजीव से भी मुलाकात की और बताया कि

---

*अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित वैर विधानसभा सीट से जगन्नाथ पहाड़िया की पत्नी शांति पहाड़िया ने चुनाव जीता था। बाद में उन्होंने सीट खाली कर दी और पहाड़िया उपचुनाव जीतकर विधानसभा के सदस्य बने। उन्होंने अपने निकटतम प्रतिद्वंद्वी कांग्रेस (यू) के उम्मीदवार सत्यपाल जाटव को 58,800 से अधिक वोटों से हराया। (डेटा इंडिया, प्रेस इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया, 1980, पृष्ठ 568); पहाड़िया-61553 वोट, जाटव-2674 वोट (इलेक्शंस.इन)।

पहाड़िया काम को गंभीरता से नहीं लेते, जबकि उनके कार्यालय में 5 हजार से अधिक फाइलें आदेश के इंतजार में पड़ी हुई हैं। 50 से अधिक सिंचाई योजनाएं, भ्रष्ट अधिकारियों के खिलाफ 90 जांचें, एक दर्जन से अधिक नए प्रोजेक्ट धूल खा रहे थे। यहां तक कहा जा रहा था कि कितनी ही फाइलें गुम हो गईं क्योंकि उन्हें संबंधित विभागों को लौटाया नहीं गया।[22]

पहाड़िया ने स्थिति को संभालने की कोशिश की। मदेरणा को अलग-थलग रखते हुए बैद और देवपुरा को मंत्री तथा जनार्दन को लघु उद्योग विकास निगम का चेयरमैन बना दिया गया। लेकिन पहाड़िया द्वारा की गई नियुक्तियों के बावजूद उन्हें मुख्यमंत्री पद से हटाने की मुहिम जारी रही। पहाड़िया पर क्षेत्रीय और जातिगत आधार पर भेदभाव के भी आरोप थे। उनके मंत्रिमंडल में राज्य के 26 में से 12 जिलों का प्रतिनिधित्व नहीं था, लेकिन उनके गृह जिले बयाना से तीन मंत्री बनाए गए थे। इसी तरह, राजपूतों में से केवल एक विधायक को मंत्रिमंडल में शामिल किया गया था और उन्हें भी कैबिनेट मंत्री का दर्जा न देकर उपमंत्री बनाया गया था।[23] विद्रोह को रोकने के लिए पहाड़िया ने अपने मंत्रियों और उपमंत्रियों का वेतन बढ़ाया। अनिश्चितताओं से घिरे होने के कारण वे मंत्रियों के विभागों का बंटवारा तक नहीं कर सके और सरकारी धन फिजूल खर्च होता रहा। पांच माह के भीतर केवल उपमंत्रियों पर पौने चार लाख रुपए खर्च किए गए। हालात ये थे कि विभागहीन उपमंत्री वेतन के रूप में तो एक हजार रुपए मासिक पाते थे, लेकिन उनके द्वारा टेलीफोन, यात्रा भत्ते और अतिथि सत्कार आदि पर किया गया खर्च इससे कई गुना अधिक दर्शाया जाता था।[24]

इन हथकंडों से बात बनी नहीं। कांग्रेस आलाकमान ने केंद्रीय जहाजरानी और यातायात मंत्री बूटा सिंह को पर्यवेक्षक बनाकर भेजा। उन्होंने रिपोर्ट दी कि राजस्थान में संगठन नाम की कोई चीज नहीं है और प्रदेश कांग्रेस कार्यालय में पीने का पानी तक उपलब्ध नहीं है।[25] जब पहाड़िया को लगा कि उनका पद जाने वाला है तो जयपुर के विद्याधर के बाग में विधायकों को भोज पर बुलवाकर उन्हें मुख्यमंत्री बनाए रखने के पक्ष में हस्ताक्षर करवाने शुरू कर दिए। यह कवायद इंदिरा को और अखर गई। उन्हें लगा कि जब वे अपने स्तर पर असंतोष समाप्त करवाने का प्रयास कर रही हैं तो पहाड़िया अलग से शक्ति प्रदर्शन करके गलत कर रहे हैं। इसके बाद पहाड़िया की विदाई तय हो गई।[26] यह भी महसूस किया जाने लगा था कि पहाड़िया अगले चुनाव में अपनी सीट तो बचा सकते हैं, लेकिन पार्टी के लिए सीटें जीत सकने की स्थिति में नहीं हैं। इसके अलावा, अगर वे सरकार बनाने में सफल हो भी जाएं तो उन्हें अफसरों का सहयोग नहीं मिलेगा। यहां तक कि दलित होने के बावजूद पहाड़िया को दलित वर्ग का व्यापक समर्थन मिलता भी नहीं दिख रहा था।[27]

इंदिरा ने फोतेदार के जरिए पहाड़िया के विकल्प की तलाश शुरू की। उन्होंने बातों-बातों में फोतेदार को यह भी याद दिलवा दिया कि पहाड़िया को संजय ने चुना था।[28] पहाड़िया के विकल्प के रूप में अधिक नाम नहीं थे। राज्य स्तर के ज्यादातर नेता गुटों में बंटे हुए थे और उन्होंने संकट के समय इंदिरा के प्रति व्यक्तिनिष्ठा का परिचय नहीं दिया था। 1969 के राष्ट्रपति के चुनाव में केवल चार विधायक इंदिरा के साथ रह गए थे। इनमें बरकतुल्ला खां

का मुख्यमंत्री के रूप में देहावसान हो गया था। लक्ष्मीकुमारी चूंडावत को पहले ही प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष बनाया जा चुका था और वे राज्यसभा में भेजी जा चुकी थीं। पूनमचंद विश्नोई विधानसभा अध्यक्ष की जिम्मेदारी संभाले हुए थे। ऐसे में सिर्फ एक नाम शिवचरण माथुर का बचा।[29]

माथुर ने इंदिरा से मिलकर पहाड़िया के शासनकाल में कुप्रबंधन, लालफीताशाही, रिश्वतखोरी और जनता की नजरों में कांग्रेस की गिरती साख की शिकायत भी की थी। चूंकि पहाड़िया का चयन संजय ने किया था, इसलिए मुख्यमंत्री के बारे में नहीं कहकर उनके सचिव की शिकायतें की गईं।[30] माथुर में यह संभावना दिखी कि वे सुखाड़िया-जोशी के मेवाड़ के आधार में सेंध लगा सकते हैं। प्रथम संयुक्त राजस्थान के मुख्यमंत्री रहे स्वतंत्रता सेनानी माणिक्यलाल वर्मा का दामाद होना भी माथुर के पक्ष को मजबूत करता था। माथुर की पत्नी सुशीला ने भी 1942 की अगस्त क्रांति में भाग लिया था और 6 महीने तक जेल में रहीं। माथुर-सुशीला के विवाह में जवाहरलाल नेहरू शामिल हुए थे, जो देशी राज्य लोक परिषद के अधिवेशन में उदयपुर गए हुए थे।[31]

फोतेदार ने इंदिरा को बताया कि हालांकि माथुर के पास व्यापक समर्थन नहीं है, लेकिन वे संतोषजनक रूप से सरकार चला सकते हैं। इंदिरा ने पी.वी. नरसिंह राव से इस बारे में चर्चा की। माथुर के नाम पर सहमति बन गई। जून, 1981 में कुछ महत्वपूर्ण उपचुनावों के संपन्न होने का इंतजार किया गया। इसके बाद माथुर को पद पर लाने की प्रक्रिया शुरू हुई। जी.के. मूपनार, बूटा सिंह और सीताराम केसरी को पर्यवेक्षक बनाकर राजस्थान भेजा गया। इनमें से केवल मूपनार को यह जानकारी थी कि हाईकमान ने माथुर को चुना है। माथुर को भी निर्देश दिया गया था कि इस बारे में अपनी पत्नी तक से चर्चा नहीं करें। विधानसभा की बैठक में मतदान हुआ तो 148 विधायकों में से अधिकांश ने आलाकमान के निर्णय को स्वीकार करने की बात कही। 15 विधायकों ने गिरधारीलाल व्यास को और 2 विधायकों ने एक अन्य नेता को वोट दिया। माथुर को केवल एक वोट मिला था। जाहिर है कि यह वोट उन्होंने खुद को दिया होगा। उस बैठक में मोहनलाल सुखाड़िया भी मौजूद थे, जो मूपनार के करीबी मित्र थे। मूपनार ने सुखाड़िया के सामने ही दिल्ली टेलीफोन किया और इंदिरा की मर्जी के बारे में पूछा। वहां से माथुर को चुनने का निर्देश मिला। विधायक दल ने माथुर को नेता चुनने की औपचारिकता पूरी की और वे मुख्यमंत्री बन गए।[32]

माथुर की मुख्यमंत्री के रूप में नामजदगी के पीछे नवलकिशोर और राजीव के करीबी नरेंद्रसिंह भाटी का हाथ रहा।[33] वह एक अवसर था, जब नवलकिशोर को दिल्ली से भेजकर मुख्यमंत्री बनाया जा सकता था। माथुर का नाम आने से पहले विधायकों की बैठकों में जिन नामों पर चर्चा हो रही थी, उनमें नवलकिशोर भी शामिल थे। अन्य संभावित चेहरों में हरिदेव जोशी, परसराम मदेरणा, चंदनमल बैद, गिरधारीलाल व्यास और उस्मान आरिफ थे।[34] नवलकिशोर के इंदिरा और उनके सहयोगी फोतेदार से बेहतर संबंध थे, लेकिन वे राजीव की मंडली में शामिल नहीं थे। भाटी को माथुर ने राज्य मंत्री के रूप में इंदिरा नहर और पर्यटन

विभाग का स्वतंत्र प्रभार दिया, लेकिन कुछ ही दिनों में दोनों के बीच मनमुटाव हो गया। यह विवाद तब चरम पर पहुंच गया, जब भाटी के आवास में संदेहास्पद रूप से घूमते हुए पकड़े गए एक व्यक्ति ने बताया कि वह गुप्तचर विभाग का आदमी है और उसे भाटी तथा उनसे मिलने वालों पर निगाह रखने को कहा गया है।[35] आगे चलकर मंत्रिमंडल में फेरबदल के दौरान माथुर ने भाटी से दोनों विभाग छीन लिए और जेल जैसा महत्वहीन महकमा संभला दिया।[36]

प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष का दायित्व

शिवचरण माथुर को मुख्यमंत्री बनाए जाने के लगभग एक वर्ष बाद राजस्थान कांग्रेस में नेतृत्व परिवर्तन हुआ। तत्कालीन प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष रामनारायण चौधरी जाट नेता थे, लेकिन उनका प्रभाव उनके मंडावा विधानसभा क्षेत्र तक सीमित था। संबंधित झुंझुनूं जिले के प्रमुख कांग्रेस नेता शीशराम ओला थे और वे हरिदेव जोशी तथा नवलकिशोर से जुड़े हुए थे। 17 जुलाई, 1982 को चौधरी को हटाकर नवलकिशोर को प्रदेश कांग्रेस की कमान सौंपी गई।

इसके कुछ ही दिनों बाद नवलकिशोर के जीवन में एक दुखद मोड़ आया। 6 अगस्त, 1982 को उनके 30 वर्षीय पुत्र आनंद शर्मा का सड़क दुर्घटना में निधन हो गया। आनंद राजस्थान की राजनीति के उभरते सितारे के रूप में स्थापित हो रहे थे। युवक कांग्रेस में सक्रिय रहते हुए उनका देश-प्रदेश के नेताओं से संपर्क था। दौसा-जयपुर के लोग उनमें नवलकिशोर का प्रतिबिंब देखते.. विनम्र, मिलनसार और बेबाक। नवलकिशोर को भी उनमें अपना राजनीतिक वारिस नजर आता था। राजनीतिक मामलों में वे आनंद की सलाह को विशेष महत्व देते थे। आनंद के असामयिक देहांत ने नवलकिशोर को झकझोर कर रख दिया। वे इतने टूट चुके थे कि राजनीति से संन्यास लेने का मन बना लिया। लेकिन परिवार और पार्टी ने उन्हें कर्मयोगी की भूमिका का स्मरण करवाया। पुत्र के विछोह की पीड़ा को मन में रखकर उन्होंने अपने को फिर से तैयार करना शुरू किया।

प्रदेश अध्यक्ष के रूप में नवलकिशोर प्रभावी सिद्ध हुए। पद, प्रभाव और व्यापक संपर्क के कारण उनकी भूमिका अहम हो गई। पार्टी और सरकार के बीच बेहतर तालमेल की दृष्टि से उन्होंने प्रदेश कांग्रेस के पदाधिकारियों और मंत्रिमंडल के बीच नियमित संवाद का कार्यक्रम शुरू किया। पार्टी के केंद्रीय नेतृत्व ने भी इस कार्यक्रम की सराहना की और अन्य प्रदेश इकाइयों से भी कहा कि वे राजस्थान की भांति अपने-अपने प्रदेशों में सरकार और संगठन के बीच इस प्रकार के नियमित संवाद की व्यवस्था करें। लेकिन कुछ ही दिनों में माथुर न केवल इस कार्यक्रम, बल्कि नवलकिशोर के भी विरोधी हो गए। उनको लग रहा था कि इस कार्यक्रम का उद्देश्य उनके मंत्रिमंडल को परेशानी में डालने के अलावा कुछ नहीं है। माथुर का सोचना था कि नवलकिशोर मुख्यमंत्री के अधिकारों पर अतिक्रमण कर रहे हैं। माथुर के रवैये से पूरी प्रदेश कांग्रेस उनके खिलाफ होती चली गई। यहां तक कि नवलकिशोर की अनुपस्थिति में प्रदेश कांग्रेस कमेटी के बड़े पदाधिकारी माथुर विरोधी विधायकों की बैठक में शामिल होने लगे।[37]

पार्टी में फूट का स्पष्ट आभास 25 फरवरी, 1983 को हुआ, जब राज्यपाल के अभिभाषण पर चार दिन तक चली बहस का उत्तर देने माथुर खड़े हुए। उन्होंने भाषण शुरू किया, उस समय सदन में 147 में से मात्र 35 कांग्रेसी विधायक उपस्थित थे। 27 में से 19 मंत्री अनुपस्थित थे। एक विपक्षी सदस्य द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या सत्ता पक्ष ने मुख्यमंत्री के उत्तर का बहिष्कार कर दिया है, मुख्य सचेतक खेतसिंह राठौड़ और राजस्व मंत्री परसराम मदेरणा ने भागदौड़ की तथा बड़ी मशक्कत के बाद यह संख्या 47 तक पहुंचा पाए। जब मुख्यमंत्री भाषण समाप्त करने वाले थे, तब मात्र 63 कांग्रेसी विधायक सदन में उपस्थित थे।[38] इसके बावजूद, छिटपुट विरोध को छोड़कर माथुर को किन्हीं बड़ी चुनौतियों का सामना नहीं करना पड़ा। वे सरकार तक सीमित रहे। उनका किसी से टकराव नहीं हुआ और अन्य नेताओं ने भी उनसे टकराव मोल नहीं लिया।[39]

संदर्भ सूची

1. कुसुम देशपांडे: विनोबा–अंतिम पर्व, परमधाम प्रकाशन, पवनार, 2010, पृष्ठ 402
2. वही, पृष्ठ 405
3. वही, पृष्ठ 412
4. प्रणब मुखर्जी: द ड्रैमैटिक डिकेड, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ 147
5. वही, पृष्ठ 150
6. वही, पृष्ठ 136
7. वही, पृष्ठ 138
8. जनार्दन सिंह गहलोत: संघर्ष से शिखर तक, 2020, पृष्ठ 50
9. प्रणब मुखर्जी: द ड्रैमैटिक डिकेड, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ 140
10. वही, पृष्ठ 162–163
11. जनार्दन सिंह गहलोत: संघर्ष से शिखर तक, 2020, पृष्ठ 53
12. वही, पृष्ठ 65
13. वही, पृष्ठ 66–68
14. वही, पृष्ठ 68–70
15. मिलापचंद डंडिया: चेहरों का सच, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2021, पृष्ठ 122
16. सीताराम झालानी: नवलकिशोर शर्मा के संस्मरण
17. जनार्दन सिंह गहलोत: संघर्ष से शिखर तक, 2020, पृष्ठ 72–73
18. वही, पृष्ठ 73
19. मिलापचंद डंडिया: चेहरों का सच, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2021, पृष्ठ 103
20. वही, पृष्ठ 121
21. इंडिया टुडे, 15 जनवरी, 1981
22. दिनेश शर्मा और प्रभु चावला: इंडिया टुडे, 30 अप्रेल, 1981
23. वही
24. मिलापचंद डंडिया: चेहरों का सच, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2021, पृष्ठ 113
25. वही, पृष्ठ 120
26. जनार्दन सिंह गहलोत: संघर्ष से शिखर तक, 2020, पृष्ठ 75
27. माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिन्स पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 149

28. माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिन्स पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 149
29. जनार्दन सिंह गहलोत: संघर्ष से शिखर तक, 2020, पृष्ठ 75
30. विजय भंडारी: राजस्थान की राजनीति-सामंतवाद से जातिवाद के भंवर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 32
31. शंकरसहाय सक्सेना: जो देश के लिए जिए, शिक्षा भारती प्रेस, बीकानेर, पृष्ठ 328
32. माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिन्स पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 149-50
33. मिलापचंद डंडिया: चेहरों का सच, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2021, पृष्ठ 128
34. इंडियन एक्सप्रेस, 13 जुलाई, 1981
35. मिलापचंद डंडिया: चेहरों का सच, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2021, पृष्ठ 129
36. वही, पृष्ठ 134
37. वही, पृष्ठ 134
38. वही, पृष्ठ 131
39. जनार्दन सिंह गहलोत: संघर्ष से शिखर तक, 2020, पृष्ठ 79

प्रणब पर नवल लगाम

1985 के लोकसभा चुनाव में राजीव गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस को 400 से अधिक सीटें और 50 प्रतिशत से अधिक वोट प्राप्त हुए। यह ऐतिहासिक जीत थी। उस दौर में नवलकिशोर शर्मा ने सार्वजनिक रूप से प्रधानमंत्री राजीव गांधी को लोकतांत्रिक जिम्मेदारी का स्मरण करवाया। उन्होंने कहा कि सुशासन का अर्थ यह होता है कि हम उन 50 प्रतिशत लोगों का भी विश्वास जीतने के लिए प्रयासरत रहें, जिन्होंने हमें वोट नहीं दिए हैं।

–अरुण नेहरू

वह 31 अक्टूबर, 1984 की गुलाबी सर्दी लिए रक्तिम सुबह थी। विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की पहली महिला प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को उनके दो सिख अंगरक्षकों ने गोलियों से छलनी कर दिया। उनके एकमात्र जीवित पुत्र राजीव गांधी उस समय वित्त मंत्री प्रणब मुखर्जी के साथ पश्चिम बंगाल के दौरे पर थे। घटना की सूचना मिलते ही वे कार्यक्रम स्थगित करके दिल्ली रवाना हुए।[1] वीभत्स हमले के समय मौजूद इंदिरा गांधी के विश्वासपात्र निजी सचिव आर.के. धवन, राजनीतिक सचिव माखनलाल फोतेदार और गोलियों की आवाज सुनकर घर के भीतर से दौड़ी चली आईं सोनिया गांधी लहूलुहान इंदिरा को तुरंत कार से लेकर एम्स गए। पीछे की सीट पर सोनिया ने उनका सिर अपनी गोद में रखा; फोतेदार और धवन आगे की सीट पर थे। एम्स पहुंचने के बाद इंदिरा गांधी को आईसीयू में भर्ती किया गया। वहां मेडिकल सुप्रिंटेंडेंट ए.एन. सफाया ने फोतेदार को स्पष्ट रूप से बता दिया कि वे दम तोड़ चुकी हैं।[2] देश की एकता और अखंडता के नाम दर्ज हुए इंदिरा के बलिदान के विष बीज को जाने-अनजाने उनके परिवार के ही एक सदस्य* से पोषण मिला था। लेकिन वर्तमान नए भविष्य की इबारत गढ़ने में जुट गया।

---

*कुलदीप नैयर के मुताबिक संजय गांधी राजनीतिक तिकड़मों में बहुत सक्रिय थे और अकालियों के खिलाफ लगाने के लिए जैल सिंह ने उन्हें जिन दो संतों के बारे में सुझाया था, संजय ने उनमें से जरनैलसिंह भिंडरांवाले को ही चुना। दूसरा वाला उतना साहसी प्रतीत नहीं हो रहा था। यह बात संजय के मित्र सांसद कमलनाथ ने नैयर को बताई थी। 'ट्रेजेडी ऑफ पंजाब' पुस्तक के पृष्ठ 31 पर लिखा है कि संजय ने कहा, 'हम उसे (भिंडरांवाले को) समय-समय पर पैसे देते रहेंगे।' भिंडरांवाले ने कांग्रेस प्रत्याशियों गुरुदयालसिंह ढिल्लों, आर.एल. भाटिया और पंजाब के पुलिस आयुक्त की पत्नी को उनके चुनाव अभियान में मदद पहुंचाई। (खुशवंत सिंह: सिखों का इतिहास-2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 323)

राष्ट्रीय संकट की इन घड़ियों में पैदा हुई राजनीतिक रिक्तता को यथाशीघ्र भरना अनिवार्य था। इस विषय में अनुभवी फोतेदार ने कमान संभाली। उन्होंने इंदिरा के रिश्ते में भतीजे और सांसद अरुण नेहरू को संदेश भिजवाया। पर्दे के पीछे से सत्ता की चालों को नियंत्रित करने वाली अरुण और फोतेदार की जोड़ी* आपातकालीन स्थिति संभालने के लिए सक्रिय हो गई। फोतेदार का संदेश पाकर कुछ मिनटों में अरुण एम्स पहुंच गए। उन्हें वहां मोर्चा संभालने के लिए कहकर फोतेदार 1, अकबर रोड स्थित प्रधानमंत्री कार्यालय चले गए और आगे की योजना पर कार्रवाई शुरू की। उन्होंने वायुसेना प्रमुख और पश्चिम बंगाल के राज्यपाल से संपर्क करके राजीव की यथाशीघ्र दिल्ली वापसी का प्रबंध करने के लिए कहा। इसके बाद उन्होंने राजीव को कांग्रेस संसदीय दल का नेता चुने जाने के संबंध में एक संक्षिप्त प्रस्ताव तैयार करने का निर्देश दिया। आंध्र प्रदेश से तुरंत लौटे गृह मंत्री पी.वी. नरसिंह राव ने उनसे पूछा, 'फोतेदारजी, क्या यही करना है?' फोतेदार ने उन्हें तीखी नजर से देखते हुए कहा, 'और विकल्प ही क्या है!' अनुभवी राव को विषय समझते देर नहीं लगी। उन्होंने कांग्रेस संसदीय बोर्ड की बैठक बुलाई। अरुण बैठक में थोड़ी देर से पहुंचे। वहां यह तय हुआ कि राजीव को नेता चुने जाने का प्रस्ताव पारित करके राष्ट्रपति को सूचित किया जाए और पार्टी महासचिव तथा व्हिप प्रमुख की ओर से राष्ट्रपति को पत्र भेजकर राजीव को सरकार बनाने का निमंत्रण देने के लिए कहा जाए। प्रधानमंत्री बनने के बारे में राजीव की सहमति को लेकर भी चर्चा हुई। इस विषय में अरुण की भूमिका तय की गई। यह सोचा गया कि वे राजीव को लेने एयरपोर्ट जाएंगे और उन्हें संकटकाल में देश के प्रति कर्तव्यनिष्ठा का स्मरण दिलवाकर प्रधानमंत्री बनने के लिए राजी करेंगे। राजीव को एयरपोर्ट से एम्स लाने के दौरान अरुण ने उनसे योजनानुसार बात की।[3]

नए प्रधानमंत्री के चयन की प्रक्रिया को लेकर मतभेद सामने आने लगे। देश भर के वरिष्ठ कांग्रेसी नेतागण दिल्ली पहुंच रहे थे। फोतेदार की देखरेख में बन रही योजना का स्वरूप यह था कि अंतरिम प्रधानमंत्री चुनने की औपचारिकता के बजाए राजीव को यथाशीघ्र प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलवा देनी चाहिए। आंध्र प्रदेश के राज्यपाल डॉ. शंकरदयाल शर्मा इंदिरा समर्थक नारों के साथ जुलूस निकालते हुए राजीव को प्रधानमंत्री बनाने की बात कह रहे थे। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री वसंतदादा पाटील अपने राज्य लौटकर कानून व्यवस्था संभालने के निर्देश मिलने के बावजूद अड़े हुए थे कि वे राजीव के शपथ ग्रहण के बाद ही वापस जाएंगे।[4]

---

*1980 में इंदिरा की सत्ता में वापसी के बाद अरुण नेहरू और माखनलाल फोतेदार का कद बढ़ा और वे मिलकर काम कर रहे थे। इंदिरा सांगठनिक नीतियों में परिवर्तन से लेकर अपने उत्तराधिकारी तक की चर्चा के लिए फोतेदार को विश्वसनीय मानती थीं। वहीं, अरुण राजनीतिक जोड़-तोड़ में माहिर थे और काम निकालना जानते थे। संजय गांधी भी अरुण के जरिए ही राजनीतिक संदेश देते थे। (रामबहादुर राय: विश्वनाथ प्रताप सिंह-मंजिल से ज्यादा सफर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 106) 1982 में वियना गए वी.पी. सिंह को उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी का जिम्मा संभालने का संदेश अरुण के जरिए ही दिया गया था। जब वी.पी. इसके लिए लौटे तो एयरपोर्ट पर फोतेदार मौजूद थे। उसी वर्ष उत्तरप्रदेश के गढ़वाल उपचुनाव में पूर्व मुख्यमंत्री हेमवतीनंदन बहुगुणा को चुनाव नहीं जीतने देने की जिम्मेदारी अरुण और फोतेदार को ही सौंपी गई। (रामबहादुर राय: विश्वनाथ प्रताप सिंह-मंजिल से ज्यादा सफर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 121) तब कमलापति त्रिपाठी और हेमवतीनंदन बहुगुणा उत्तर प्रदेश की राजनीति में एकजुट दिखाई दे रहे थे। अरुण और फोतेदार के जरिए बिछाई गई बिसात पर दोनों नेता चित्त हो गए और उनका वापस मुख्यमंत्री बनने का सपना धरा रह गया।

वहीं, कैबिनेट सचिव सी.आर. कृष्णास्वामी राव साहिब जैसे लोग भी थे, जिनका मत था कि प्रणब मुखर्जी को अंतरिम प्रधानमंत्री की भूमिका निभानी चाहिए।[5] उस दौर में यह महसूस किया जा रहा था कि मंत्रिपरिषद में दूसरे सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति समझे जाने वाले इस नेता के मन में कांग्रेस सांसदों की बैठक से निर्णय होने तक कम-से-कम अंतरिम प्रधानमंत्री बनाए जाने की महत्वाकांक्षा पल रही थी*।[6]

एम्स के आठवें तल पर चल रही राजनीतिक मंत्रणा में अरुण ने भी त्वरित कार्रवाई का विचार प्रकट किया। उन्होंने कहा कि विदेश दौरे पर गए राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह** के दिल्ली पहुंचने से पहले ही राजीव को उपराष्ट्रपति से शपथ दिलवा दी जाए। उनका मानना था कि अगर जैल सिंह लौट आए तो वे प्रणब को अंतरिम प्रधानमंत्री बनाना चाहेंगे।[7] दो महीने पहले रक्षा मंत्री से उपराष्ट्रपति बनाए गए आर. वेंकटरमन भी इसके लिए तैयार थे कि राष्ट्रपति के देश से बाहर होने के कारण वे राजीव को शपथ दिलवा सकते हैं।[8] राजीव समर्थक कई नेता इसके पक्ष में थे। लेकिन इंदिरा के मुख्य सचिव पी.सी. अलेक्जेंडर ने उन्हें दूरगामी परिणामों के प्रति सचेत किया और कहा कि ऐसे समय में राष्ट्रपति की नाराजगी मोल लेना ठीक नहीं होगा। अलेक्जेंडर की सलाह पर ही कांग्रेस संसदीय बोर्ड द्वारा राजीव का नाम प्रस्तावित करने और बाद में कांग्रेस संसदीय दल द्वारा उसका अनुमोदन करवाए जाने की योजना बनी ताकि राष्ट्रपति आपत्ति नहीं कर सकें।[9]

तेजी से करवट लेते घटनाक्रम के बीच जैल सिंह के स्वदेश लौटने की सूचना मिली। उन्हें भी एयरपोर्ट से लाने की जिम्मेदारी अरुण को ही सौंपी गई। वे पहले उन्हें एम्स लेकर आए और फिर राष्ट्रपति भवन तक छोड़ने गए।[10] राष्ट्रपति भवन पहुंचते ही जैल सिंह नई सरकार के गठन की तैयारी में जुट गए। उन्हें कांग्रेस संसदीय बोर्ड के प्रस्ताव की एक प्रति के साथ राजीव को सरकार बनाने का निमंत्रण देने की बाबत पत्र मिला। इस संक्षिप्त पत्र का मसौदा प्रणब ने तैयार किया था और नरसिंह राव ने जरूरी संशोधन करके आर.के. धवन से

---

*इंदिरा पर हमले की खबर सुनकर राजीव दिल्ली के लिए रवाना हुए तो पश्चिम बंगाल के राज्यपाल उमाशंकर दीक्षित और उनकी पुत्रवधू शीला दीक्षित भी साथ थे। शीला के अनुसार, 'जैसे ही विमान ने उड़ान भरी, राजीव कॉकपिट में पायलट के पास चले गए थे। वहीं से वापस आने के बाद उन्होंने इस विमान के पिछले हिस्से में बुलाकर कहा कि इंदिराजी नहीं रहीं। फिर उन्होंने हमसे पूछा कि ऐसी स्थिति में क्या किया जाता है? प्रणब मुखर्जी ने जवाब दिया कि पहले से यह परंपरा रही है कि जो सबसे वरिष्ठ मंत्री होता है, उसे कार्यवाहक प्रधानमंत्री की शपथ दिलाई जाती है और बाद में प्रधानमंत्री का चुनाव होता है। लेकिन मेरे श्वसुर उमाशंकर दीक्षित ने कहा कि वे कार्यवाहक प्रधानमंत्री बनाने का जोखिम नहीं लेंगे और राजीव को ही प्रधानमंत्री बनाएंगे।' शीला के अनुसार यह प्रणब के खिलाफ गया क्योंकि जब राजीव जीतकर आए तो उन्होंने प्रणब को मंत्रिमंडल में नहीं लिया जबकि वे इंदिरा की कैबिनेट में नंबर दो हुआ करते थे। शीला का यह भी मानना था कि प्रणब ने अपनी उम्मीदवारी मजबूत करने के लिए वह बात नहीं कही थी; वे तो सिर्फ पुराने उदाहरण बता रहे थे, लेकिन उनके विरोधियों ने उसे बिल्कुल दूसरे रूप में राजीव के सामने पेश किया। (रेहान फजल: बीबीसी हिंदी, 19 फरवरी, 2020)

**संधवां, पंजाब में जन्मे जरनैल सिंह (5 मई, 1916- 25 दिसम्बर, 1994) जेल में रहने के कारण जैल सिंह के नाम से विख्यात हुए। सिख धर्म के विस्तृत अध्ययन के कारण उन्हें 'ज्ञानी' की उपाधि मिली। पटियाला एवं पूर्वी पंजाब राज्य संघ में मंत्री, पंजाब के मुख्यमंत्री और केंद्रीय गृहमंत्री रहे। वे इंदिरा गांधी के प्रबल समर्थक माने जाते थे और 1982 में राष्ट्रपति बने। ऑपरेशन ब्लू स्टार और उसके बाद हुए घटनाक्रम ने इंदिरा के साथ उनके संबंधों में कटुता पैदा कर दी। 22 अक्टूबर, 1984 को मॉरीशस रवाना होते समय उन्होंने एयरपोर्ट पर इंदिरा से नाराजगी भरे स्वर में कहा, 'अगर मैं जिंदा वापस लौटा तो मेरे पास आपसे कहने के लिए बहुत-सी बातें होंगी।' यह उन दोनों की आखिरी मुलाकात थी। (पी.सी. अलेक्जेंडर: माय ईयर्स विद इंदिरा गांधी, विजन बुक्स, नई दिल्ली, 1991, पृष्ठ 142-143)

टाइप करवाया। इसके बाद कांग्रेस वर्किंग कमेटी के प्रभारी महासचिव जी.के. मूपनार ने हस्ताक्षर करके राष्ट्रपति को भेजा। कांग्रेस संसदीय बोर्ड के प्रस्ताव की प्रति पर प्रणब और नरसिंह राव ने हस्ताक्षर किए। मूपनार की ओर से भेजे गए पत्र में लिखा था:

> *प्रिय राष्ट्रपति जी,*
> *अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के केंद्रीय संसदीय बोर्ड ने श्री राजीव गांधी को कांग्रेस संसदीय दल का नेता चुना है। अत: आपसे अनुरोध है कि श्री राजीव गांधी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करें।* [11]

इसके बाद जैल सिंह ने राजीव को कार्यकारी प्रधानमंत्री नियुक्त करने के संबंध में आदेश जारी कर दिया। यह सूचना मिलते ही फोतेदार ने जैल सिंह के सचिव को संदेश भिजवाया कि अगर राजीव को प्रधानमंत्री नहीं बनाया गया तो वे शपथ नहीं लेंगे। सात मिनट के भीतर जैल सिंह ने एक नया आदेश जारी करते हुए राजीव को प्रधानमंत्री बनाने की घोषणा कर दी।[12] शाम 6.45 बजे राजीव ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली। राजीव के लिखित अनुरोध पर राष्ट्रपति ने उनके साथ प्रणब मुखर्जी, पी.वी. नरसिंह राव, पी. शिवशंकर और बूटा सिंह को मंत्री पद की शपथ दिलवाई। राजीव के चार सदस्यीय मंत्रिमंडल की पहली बैठक भी राष्ट्रपति भवन में ही हुई, जिसमें इंदिरा को श्रद्धांजलि अर्पित की गई। इसके बाद इंदिरा की हत्या और राजीव के शपथ ग्रहण का समाचार एक साथ प्रसारित किया गया।[13]

इंदिरा की मृत देह को तीन दिनों तक त्रिमूर्ति भवन में रखा गया, जहां जवाहरलाल नेहरू अपने प्रधानमंत्रित्व कार्यकाल में रहते थे। 3 नवम्बर को राजघाट के पास बनाए गए 'शक्ति स्थल' पर उनकी अंत्येष्टि की गई। दिल्ली में व्याप्त भीषण सांप्रदायिक हिंसा के बावजूद कई लाख लोग शक्ति स्थल पर जमा हुए। 14 देशों के राष्ट्रपति और 2 देशों के प्रधानमंत्री सहित 100 देशों के राजनीतिक प्रतिनिधि अंत्येष्टि में मौजूद थे।[14]

राजीव को प्रधानमंत्री बनाने के फैसले का अनुमोदन करने के लिए 4 नवम्बर को शाम 5 बजे कांग्रेस संसदीय दल की बैठक बुलाई गई। राजीव के निर्देश पर धवन और फोतेदार सुबह उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री रह चुके वरिष्ठ नेता कमलापति त्रिपाठी से मिलने गए। बैठक शुरू होने से पहले फोतेदार एक बार फिर उनके घर पहुंचे। बूटा सिंह, मूपनार और सीताराम केसरी भी साथ गए। उन्हें देखते ही कमलापति के पुत्र लोकपति भड़क गए और कहने लगे कि राजीव को प्रधानमंत्री बनाने का फैसला लेने से पहले 10–12 दिन इंतजार करना चाहिए था। उनका मत था कि प्रणब को प्रधानमंत्री बनाया जाना चाहिए। पार्टी के फैसले को असंवैधानिक बताते हुए वे घर के भीतर गए और संविधान की प्रति लेकर आए। कमलापति ने अपने पुत्र की बौखलाहट को नजरअंदाज करते हुए चलने का निर्देश दिया। सभी नेता गाड़ी में बैठकर रवाना हो गए और लोकपति चीखते रहे। कमलापति की अध्यक्षता में कांग्रेस संसदीय दल की बैठक हुई। वहां प्रणब ने राजीव का नाम प्रस्तावित किया और मोहसिना

किदवई तथा दक्षिण भारत के एक अन्य नेता ने प्रस्ताव का समर्थन किया। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हो गया और इसकी एक प्रति राष्ट्रपति को भेजकर कांग्रेस संसदीय बोर्ड तथा कांग्रेस संसदीय दल के पूर्ववर्ती प्रस्ताव का अनुमोदन कर दिया गया।[15]

उसी दिन राजीव ने मंत्रिपरिषद का विस्तार किया और अपनी मां की बनाई मंत्रिपरिषद में परिवर्तन करते हुए पी.सी. सेठी, आर.सी. रथ और कल्पनाथ राय को बाहर कर दिया। उन्होंने शंकरराव चव्हाण को बिना विभाग के मंत्री से रक्षा मंत्री बनाया और राजस्थान के रामनिवास मिर्धा से सिंचाई मंत्रालय लेकर अपने अधीनस्थ विदेश मंत्रालय में राज्य मंत्री नियुक्त किया। नई मंत्रिपरिषद में केवल एक नया नाम जुड़ा और वह नाम नवलकिशोर शर्मा का था।[16] तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति में अरुण और फोतेदार से नजदीकियों ने नवलकिशोर को आगे कर दिया। उन्हें वित्त राज्य मंत्री का पद दिया गया। इसे वित्त मंत्री प्रणब के ऊपर लगाम के रूप में देखा गया।

राजीव ने जिस समय प्रधानमंत्री का पद संभाला, तत्कालीन लोकसभा का कार्यकाल अपनी समाप्ति की ओर बढ़ रहा था। पार्टी के भीतर लोकसभा चुनाव को लेकर चर्चा शुरू हुई। कुछ नेताओं का मत था कि लोकसभा की अवधि एक वर्ष के लिए बढ़ा दी जानी चाहिए। वहीं, अधिकतर नेताओं की राय यही थी कि जितनी जल्दी हो सके, चुनाव करवा लेने चाहिए। इंदिरा के जीवित रहते ही चुनाव की तैयारियां शुरू हो चुकी थीं। उन्होंने चुनाव की तारीख, प्रदेश चुनाव समितियों के गठन के निर्णय और 320 उम्मीदवारों की सूची तक को स्वीकृति दे रखी थी। 1983 के अंत में उन्होंने ऐसी सीटों की सूची बनवाना शुरू कर दिया था, जहां से किसी भी उम्मीदवार की जीत निश्चित मानी जा सके। उनके सहयोगियों ने ऐसी 40-50 सीटों के नाम सुझाए थे। इंदिरा ने यह विचार भी प्रकट कर दिया था कि वे पी.वी. नरसिंह राव और पी. शिवशंकर (दोनों आंध्र प्रदेश से) को अगले मंत्रिमंडल में लेना चाहती हैं, लेकिन चूंकि एन.टी. रामाराव उनकी जीत में रुकावट डाल सकते हैं, इसलिए उन्हें दो सीटों से लड़ने का विकल्प* दिया जाए। इन सभी निर्देशों और फैसलों को ध्यान में रखकर राजीव ने चुनाव की तैयारी शुरू की। कांग्रेस संसदीय बोर्ड का पुनर्गठन हुआ, जिसमें प्रणब को पुन: सदस्यता मिली। तय हो चुकी तारीखों को चुनाव आयोग की भी हरी झंडी मिल गई। राजीव ने देश भर में दौरे करके जनसभाओं को संबोधित करना शुरू कर दिया।[17]

दौसा में नवलकिशोर की स्थिति मजबूत थी। वे वहां से चार लोकसभा चुनाव लड़कर तीन बार जीते थे। केंद्रीय मंत्री और कांग्रेस का प्रदेश अध्यक्ष होना भी स्वाभाविक रूप से उनकी साख को बढ़ा रहा था। इस तरह, चुनाव परिणाम को लेकर नवलकिशोर पूरी तरह आश्वस्त थे। लेकिन उस दौरान अचानक यह स्थिति बनी कि उन्हें नई सीट चुनने के लिए

*राव ने आंध्र प्रदेश के हनमकोंडा और महाराष्ट्र के रामटेक से चुनाव लड़ा। हनमकोंडा में उन्हें भाजपा के चंदूपाटला जंगा रेड्डी ने हरा दिया, लेकिन रामटेक से वे जीत गए। शिवशंकर आंध्र प्रदेश के मेडक से लड़ना चाहते थे। उन्हें मध्यप्रदेश में एक अन्य सीट की पेशकश की गई और दोनों सीटों से लड़ने को कहा गया, लेकिन वे तैयार नहीं हुए। जैसा कि इंदिरा को अंदेशा था, वे चुनाव हार गए। (माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 201)

बाध्य होना पड़ा। दौसा से राजेश पायलट* को प्रत्याशी बना दिया गया, जो 1980 में भरतपुर से पहली बार चुनाव लड़कर विजयी हुए थे। उन्हें दौसा भेजने का एकमात्र कारण यह था कि विदेश सेवा के वरिष्ठ अधिकारी नटवर सिंह ने त्यागपत्र देकर अपने गृहक्षेत्र भरतपुर से चुनाव लड़ना चाहा।[18] इन हालात ने नवलकिशोर का रुख ऐसी सीट की तरफ करवा दिया, जहां 1968 के उपचुनाव के बाद उनकी राजनीतिक क्षमता की सबसे बड़ी परीक्षा होने जा रही थी। वह सीट थी जयपुर। 1951 के प्रथम चुनाव में दौलतमल भंडारी की जीत के बाद जयपुर सीट कभी कांग्रेस के हाथ नहीं आई थी। तीन चुनावों में महारानी गायत्री देवी का दबदबा रहा। आपातकाल के बाद लगातार दो चुनाव जीतकर सतीशचंद्र अग्रवाल सशक्त प्रतिनिधि बन गए। 1984 में अग्रवाल पहली बार चुनावी मैदान में उतरी भारतीय जनता पार्टी की ओर से प्रत्याशी बनाए गए। इन परिस्थितियों में जयपुर से कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़ना बड़ा जोखिम था।

दिसम्बर, 1984 में लोकसभा चुनाव हुए। देश भर में सहानुभूति लहर चल पड़ी। चुनाव परिणामों ने भारत के चुनावी इतिहास की धारा को नई दिशा दे दी। कांग्रेस को 49 प्रतिशत वोट मिलने के साथ ऐतिहासिक विजय मिली। हिंसात्मक गतिविधियों से जूझ रहे पंजाब और असम को छोड़कर शेष 510** सीटों पर चुनाव हुए, उनमें कांग्रेस को 404 सीटों पर जीत मिली। भारत के चुनावी इतिहास में यह एकमात्र अवसर था, जब किसी पार्टी को 400 से अधिक सीटें मिली हों। अटलबिहारी वाजपेयी, हेमवतीनंदन बहुगुणा, चंद्रशेखर जैसे दिग्गज नेता अपने सुरक्षित समझे जाने वाले क्षेत्रों में कांग्रेसी उम्मीदवारों से परास्त हो गए। चरण सिंह-जगजीवन राम तक बड़ी मुश्किल से जीते। राजस्थान की सभी 25 सीटें कांग्रेस के खाते में गईं। विपक्ष का गढ़ बन चुके जयपुर लोकसभा क्षेत्र में नवलकिशोर ने सतीशचंद्र अग्रवाल को 80 हजार से अधिक वोटों के अंतर से हरा दिया। नवलकिशोर को 55.81 प्रतिशत और अग्रवाल को 39.12 प्रतिशत वोट प्राप्त हुए। अन्य सभी उम्मीदवारों की जमानत जब्त हो गई।[19]

राजीव के नेतृत्व में नए मंत्रिमंडल का गठन हुआ। प्रणब अप्रत्याशित रूप से मंत्रिमंडल से बाहर कर दिए गए। यह आश्चर्यजनक घटना थी क्योंकि महज दो महीने पहले प्रधानमंत्री पद की शपथ लेते समय राजीव ने राष्ट्रपति को पत्र लिखकर जिन चार मंत्रियों को उनके साथ शपथ दिलवाने का अनुरोध किया था, उनमें प्रणब का नाम सबसे ऊपर था।[20] संसदीय दल की बैठक में राजीव को नेता चुना गया तो उसकी अध्यक्षता प्रणब ही कर रहे थे। इसके

---

*राजेश पायलट का असली नाम राजेश्वरप्रसाद सिंह बिधूड़ी था। वे वायुसेना में पायलट की नौकरी कर रहे थे। उनकी पत्नी रमा कांग्रेस में सक्रिय थीं। आपातकाल के दौरान वे युवक कांग्रेस की महासचिव बनाई गईं। जब राजेश्वर छुट्टी पर दिल्ली अपने घर आते तो रमा उन्हें इंदिरा गांधी से मिलवाने ले जातीं। राजेश्वर ने नौकरी छोड़कर 1980 का लोकसभा चुनाव तत्कालीन प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह के खिलाफ बागपत से लड़ना चाहा। बागपत से उनका चुनाव लड़ना मुश्किल था, वहां का फीडबैक रामचंद्र विकल के पक्ष में था। उसी दौरान संजय गांधी ने गुर्जर बहुल सीट के बारे में पूछताछ की तो भरतपुर का नाम सामने आया। जब राजेश्वर भरतपुर से नामांकन भरने पहुंचे तो संजय ने उन्हें दिल्ली से टेलीफोन पर कहा, 'तुरंत कोर्ट जाकर नोटरी के जरिए अपना नाम बदलिए। आज से आप राजेश्वर प्रसाद नहीं, राजेश पायलट हैं।' (रमा पायलट: राजेश पायलट-अ बायोग्राफी, रोली बुक्स, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 111)

**लगभग एक वर्ष बाद पंजाब की 19 और असम की 14 सीटों पर चुनाव हुए। कांग्रेस ने पंजाब में 6 और असम में 4 सीटें जीतीं। इस तरह, 543 सदस्यों के सदन में कांग्रेस के 414 सांसद हो गए।

बाद राजीव ने मीडिया को बताया कि शपथ ग्रहण समारोह दोपहर तीन बजे होगा। प्रणब उस समय भी राजीव के बगल में खड़े थे, लेकिन उन्हें तब तक मामले की भनक नहीं थी।[21] इंदिरा द्वारा उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष नियुक्त किए गए वी.पी. सिंह की मंत्रिमंडल में वापसी हुई और उन्हें वित्त मंत्रालय के साथ-साथ, अस्थाई रूप से वाणिज्य तथा आपूर्ति का अतिरिक्त प्रभार दिया गया। अरुण नेहरू ऊर्जा राज्य मंत्री बनाए गए।[22] इसके साथ ही नवलकिशोर के राजनीतिक इम्तेहान का नया दौर शुरू हुआ। इसमें उत्थान, संघर्ष और पराभव का मिला-जुला संदेश प्रतीक्षा कर रहा था। नए मंत्रिमंडल में प्रणब के नहीं रहने पर नवलकिशोर की भूमिका बदली। उन्हें पेट्रोलियम राज्य मंत्री का स्वतंत्र प्रभार दिया गया।

मंत्री रहने के दौरान नवलकिशोर का व्यवहार दलीय राजनीति से ऊपर रहा। उस समय गैस के कनेक्शन मिलने काफी महत्वपूर्ण होते थे। सांसद का कोटा होता था। संबंधित विभाग के मंत्री होने के कारण नवलकिशोर के विशेष अधिकार भी थे। उन्होंने अनेक जरूरतमंदों को गैस की सुविधा दिलवाई। कई मौकों पर उन्हें उलाहना दिया जाता कि उनकी सहायता का लाभ भाजपा वालों को मिल रहा है। नवलकिशोर तत्काल टोकते, 'भाजपा वालों के परिवार नहीं हैं क्या, उन्हें रोटी नहीं खानी क्या?' इस तरह का समान व्यवहार उन्होंने बनाए रखा।[23]

नवलकिशोर के पास संगठन का व्यापक अनुभव था और इंदिरा के दौर में उनकी विभिन्न मोर्चों पर सक्रियता रही थी। अनेक अवसरों पर इंदिरा ने उन्हें राष्ट्रीय और प्रादेशिक स्तर पर एक साथ जिम्मेदारियां सौंपीं और वे खरे उतरे। इंदिरा की गैर मौजूदगी में राजनीतिक नवागंतुक के रूप में राजीव के लिए नवलकिशोर एक योग्य परामर्शदाता की भूमिका में थे। उस दौर में 400 से अधिक सीटें मिलने से कांग्रेस के अनेक नेता विजेता की निश्चिंत मुद्रा में आ गए थे, लेकिन नवलकिशोर का नजरिया अलग था। उन्होंने बैठक में राजीव को सार्वजनिक रूप से कहा कि कांग्रेस को भले ही 50 प्रतिशत वोट मिले हैं, लेकिन सुशासन का अर्थ यह होगा कि हम उन 50 प्रतिशत लोगों का भी विश्वास जीतने के लिए प्रयासरत रहें, जिन्होंने हमें वोट नहीं दिए हैं।[24] ऐतिहासिक जीत के नायक को यह लोकतांत्रिक सीख देना दरबारी राजनीति के युग की एक बड़ी घटना थी। इसे राष्ट्रीय स्तर पर महसूस किया गया।

संदर्भ सूची

1. प्रणब मुखर्जी: द टर्बुलेंट ईयर्स, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 68
2. माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 193-194
3. वही, पृष्ठ 196-198
4. वही, पृष्ठ 197
5. प्रणब मुखर्जी: द टर्बुलेंट ईयर्स, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 71
6. वसंत साठे: मेमॉयर्स ऑफ अ रैशनलिस्ट, ओम बुक्स इंटरनेशनल, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 236
7. पी.सी.अलेक्जेंडर: माय ईयर्स विद इंदिरा गांधी, विजन बुक्स, नई दिल्ली, 1991, पृष्ठ 153
8. माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 197
9. पी.सी.अलेक्जेंडर: माय ईयर्स विद इंदिरा गांधी, विजन बुक्स, नई दिल्ली, 1991, पृष्ठ 152-153
10. माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 198
11. प्रणब मुखर्जी: द टर्बुलेंट ईयर्स, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 73
12. माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 198-199
13. प्रणब मुखर्जी: द टर्बुलेंट ईयर्स, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 75-76
14. वाशिंगटन पोस्ट, 4 नवम्बर, 1984
15. माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 199-200
16. प्रपत्र सं. 55/1/1/84-कैब, क्र.सं. 49I, मंत्रिमंडल सचिवालय, भारत सरकार, 11 सितम्बर, 1984 और प्रपत्र सं. 55/1/1/84-कैब, क्र.सं. 80I, मंत्रिमंडल सचिवालय, भारत सरकार, 13 नवम्बर, 1984 का तुलनात्मक विश्लेषण
17. माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 200-201
18. रमा पायलट: राजेश पायलट-अ बायोग्राफी, रोली बुक्स, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 111
19. चुनाव आयोग की रिपोर्ट
20. प्रणब मुखर्जी: द टर्बुलेंट ईयर्स, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 75
21. वही, पृष्ठ 87

22. प्रपत्र सं. 55/1/1/85-कैब, क्र.सं. 13, मंत्रिमंडल सचिवालय, भारत सरकार, 3 जनवरी, 1985
23. सीताराम झालानी: नवलकिशोर शर्मा के संस्मरण
24. अरुण नेहरू: इंडियन एक्सप्रेस, 23 अप्रेल, 2013

मुख्यमंत्री पद बनाम राष्ट्रीय राजनीति

वह धुलंडी का दिन था.. 7 मार्च। नवलकिशोर शर्मा दिल्ली से जयपुर आए हुए थे। फोतेदार ने उन्हें तुरंत वापस दिल्ली बुलवाया। स्टेट प्लेन से हरिदेव जोशी, चंदनमल बैद और परसराम मदेरणा को भी दिल्ली बुला लिया गया। पहले नवलकिशोर को कहा गया कि वे मुख्यमंत्री पद या राष्ट्रीय राजनीति में से एक को चुन लें। नवलकिशोर ने राष्ट्रीय राजनीति में बने रहने को प्राथमिकता दी। विकल्प के रूप में उन्होंने जोशी का नाम आगे किया।

–विष्णु मोदी

राजस्थान में विधानसभा चुनाव फरवरी–मार्च, 1985 में होने वाले थे। यह तय लग रहा था कि टिकट वितरण में नवलकिशोर शर्मा की ही मुख्य भूमिका रहेगी। मुख्यमंत्री शिवचरण माथुर समर्थक कई सक्रिय मंत्रियों को मिलाकर 17 मंत्रियों और विधायकों के नाम काट दिए गए। उनकी जगह नवलकिशोर ने अपने हिसाब से कुछ सामान्य लोगों को भी चुनाव में उतारकर उपकृत किया।[1] इसी बीच चुनाव प्रचार के दौरान भरतपुर राजघराने से जुड़े निर्दलीय विधायक राजा मान सिंह की हत्या ने राजस्थान की राजनीति में हलचल पैदा कर दी। वे भरतपुर रियासत में मंत्री भी रहे थे। 1952 में वे डीग से विधायक चुने गए; तब से लगातार निर्दलीय विधायक रहे। यह दुखद घटनाक्रम इस तरह शुरू हुआ कि 20 फरवरी, 1985 को कांग्रेस उम्मीदवार बृजेंद्र सिंह के समर्थन में मुख्यमंत्री माथुर के आगमन के जोश में कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने मान सिंह के बैनर–झंडे उखाड़ डाले। साथ ही, मान सिंह को उनके किले पर लगा हनुमान अंकित ध्वज उतारकर जला दिए जाने का पता चला तो वे हैलीपैड जा पहुंचे और अपनी जीप से टक्कर मारकर मुख्यमंत्री के हेलीकॉप्टर को क्षतिग्रस्त कर दिया। घटना के दूसरे दिन समर्थकों के साथ प्रचार कर रहे मान सिंह को पुलिस ने गोलियों से भून दिया। इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। मान सिंह की अंत्येष्टि में 25 हजार से ज्यादा लोग शामिल हुए।[2]

22 फरवरी की आधी रात को माथुर को इस घटना के कारण इस्तीफा देना पड़ा। माथुर के अनुसार, 'रात साढ़े दस बजे जयपुर के पास सांगानेर से लौट रहा था। तभी माखनलाल फोतेदार का फोन आया कि डीग की दुर्घटना से भरतपुर और मथुरा जिले के जाटों में गलत प्रचार होगा, इसलिए आप पद छोड़ दीजिए।'[3] माथुर ने रात एक बजे पत्रकारों को बुलाकर

इस्तीफे की घोषणा की। वे चाहते थे कि खबर अगले दिन छपे और उन्हें 24 घंटे की मोहलत मिल जाए। लेकिन यह कोई साधारण विषय नहीं था। सारे अखबारों ने अगली सुबह के ही अंक में समाचार छाप दिया।[4] माथुर के इस्तीफे के बाद उनके मंत्रिमंडल के वरिष्ठ सदस्य हीरालाल देवपुरा को मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलवाई गई।

मान सिंह की हत्या से उपजे रोष ने विपक्षी दलों को एकजुट कर दिया। जाटों के बीच उभरती कांग्रेस विरोधी भावना को भांपकर चुनावी गठबंधनों का दौर शुरू हुआ। उस दौर में राजस्थान देश का पहला राज्य बना, जहां प्रमुख विपक्षी पार्टियों के बीच सीटों को लेकर समझौते हो रहे थे। भाजपा, जनता पार्टी और दलित मजदूर किसान पार्टी ने 200 विधानसभा सीटों में से 185 सीटों पर कोई एक ही उम्मीदवार उतारने पर सहमति बना ली। महज तीन महीने पहले हुए लोकसभा चुनाव में हालात एकदम अलग थे। 25 में से 16 लोकसभा सीटों पर दो प्रमुख विपक्षी दलों के उम्मीदवार मुकाबला कर रहे थे; वहीं, 7 सीटें ऐसी थीं जिन पर तीनों प्रमुख विपक्षी पार्टियों ने दावेदारी की थी। यह आश्चर्यजनक नहीं था कि उन्होंने एक-दूसरे को नुकसान पहुंचाया और कांग्रेस को सभी 25 सीटों पर जीत मिली।[5]

विधानसभा चुनाव परिणामों पर मान सिंह की हत्या के प्रभाव को लेकर विभिन्न कयास लगाए जा रहे थे। विपक्ष इसे भुनाने को लेकर आश्वस्त लग रहा था, लेकिन कांग्रेस के लिए यह गौण विषय था। माथुर से तुरंत इस्तीफा दिलवा देने से भी अच्छा संदेश गया था। चुनावी सभाओं में कांग्रेस नेता या तो इस विषय से बचकर निकल रहे थे या फिर पार्टी की नई अनुशासन परंपरा के बारे में संक्षिप्त टिप्पणी करके आगे बढ़ जाते। कांग्रेस का नजरिया यह था कि डीग के आसपास के तीन विधानसभा क्षेत्रों को छोड़कर इसका असर कहीं नहीं दिखेगा। नवलकिशोर का मानना था, 'मान सिंह की हत्या से निश्चित ही एक वर्ग की भावनाएं आहत हुई हैं, लेकिन सामान्य परिस्थितियों में भी पुलिस की कार्रवाई से रोष उत्पन्न होता है। इसलिए यह अप्रत्याशित नहीं है। लेकिन प्रतिक्रिया कुल मिलाकर नाम मात्र की है।'[6]

मान सिंह का विषय चुनाव परिणाम के लिहाज से भले गौण रह गया हो, लेकिन विपक्ष की एकजुटता ने असर दिखाया। कांग्रेस को उम्मीद से अधिक झटका लगा, हालांकि बहुमत पाने में वह सफल रही। 1980 में कांग्रेस को 133 सीटें मिली थीं; 1985 में 113 सीटें ही आईं।

वह धुलंडी का दिन था.. 7 मार्च। नवलकिशोर दिल्ली से जयपुर आए हुए थे। फोतेदार ने उन्हें तुरंत वापस दिल्ली बुलवाया। स्टेट प्लेन से हरिदेव जोशी, चंदनमल बैद और परसराम मदेरणा को भी दिल्ली बुला लिया गया। पहले नवलकिशोर को कहा गया कि वे मुख्यमंत्री पद या राष्ट्रीय राजनीति में से एक को चुन लें। नवलकिशोर ने राष्ट्रीय राजनीति में बने रहने को प्राथमिकता दी। विकल्प के रूप में उन्होंने जोशी का नाम आगे किया। कांग्रेस विधायकों में भी जोशी सबसे वरिष्ठ थे और उनके समर्थकों की खासी संख्या थी। राजीव गांधी होली की छुट्टियां मनाने गए हुए थे। फोतेदार को उनसे बात करके सहमति लेने में दो घंटे लग गए। अजमेर के सांसद विष्णु मोदी इस दौरान नवलकिशोर के साथ ही दिल्ली गए थे। उन्होंने ही जोधपुर हाउस में ठहरे जोशी को सबसे पहले मुख्यमंत्री बनने की सूचना और बधाई दी।[7]

विधायक दल की बैठक में जोशी को नेता चुना गया। पत्रकारों को यह सूचना नवलकिशोर ने दी। उन्होंने कहा कि यह प्रसन्नता की बात है कि जोशी सर्वसम्मति से विधायक दल के नेता चुन लिए गए हैं। उन्होंने यह भी बताया कि विधायक दल की बैठक में जब किसी और का नाम प्रस्तावित करने को कहा गया तो कोई नाम नहीं सुझाया गया, यह जोशी की योग्यता का परिचायक ही माना जाएगा।[8]

जोशी का मुख्यमंत्री पद के लिए चयन आश्चर्यजनक था। आपातकाल के बाद जनता पार्टी सरकार के दौरान वे इंदिरा के विरोधी थे। उन्होंने शाह आयोग को इंदिरा के खिलाफ सबूत भी दिया था।[9] वे पिछले आठ वर्षों से शासन की राजनीति से दूर थे और संगठन में भी उनके पास कोई महत्वपूर्ण पद नहीं रह गया था, लेकिन अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी उन्हें राज्यों की स्थिति का आकलन करने का दायित्व सौंपती रहती थी। उस दौरान उनके आकलन सही पाए गए। जोशी ने पंजाब में सैकड़ों लोगों से भेंट करके एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट दी थी। इसमें सिखों में खालिस्तान की मांग के जोर पकड़ने और उनमें जबर्दस्त रोष होने की बात कही गई थी। बाद में के.जी.बी. की रिपोर्ट में पंजाब में फैले अलगाववाद की बात कही गई तो जोशी की रिपोर्ट का महत्व बढ़ गया क्योंकि उसमें पहले से ही यह चेतावनी दी गई थी।[10] 1985 के विधानसभा चुनाव से ठीक पहले जोशी को राजस्थान की राजनीति से बाहर करने के बारे में भी सोचा गया था। पहले पंजाब के राज्यपाल के लिए अर्जुन सिंह के साथ सिर्फ जोशी का नाम ही विचाराधीन था। जोशी में सिख नेताओं के साथ मधुर संबंध बनाए रखने समेत सभी आवश्यक योग्यताएं मानी गईं। लेकिन राजस्थान का पंजाब के साथ कुछ जल विवाद विचाराधीन होने से जोशी पर अर्जुन को वरीयता मिली।[11] सिर्फ जोशी ऐसे कांग्रेसी नेता थे, जिन्होंने आंध्र प्रदेश के विधानसभा चुनावों के दौरान आलाकमान के सामने कांग्रेस के हारने और एन.टी. रामाराव के जीतने की भविष्यवाणी की। जोशी ने श्रीकाकुलम से तेलंगाना तक लगभग सभी जिलों का दौरा करके आकलन किया था कि रामाराव पूर्ण बहुमत से सरकार बनाएंगे।[12] उत्तर प्रदेश के बारे में भी जोशी ने कुछ इसी तरह की महत्वपूर्ण रिपोर्ट दी। जोशी को वरिष्ठ पत्रकार आर.के. मिश्र के दिल्ली होने का भी लाभ मिला। वे वहां उनकी लॉबिंग करने में लगे थे।[13]

उधर, नवलकिशोर को मंत्री के रूप में दिल्ली में सक्रिय रखने के लिए राजस्थान की जिम्मेदारी से मुक्त करने की जरूरत महसूस की जा रही थी। लेकिन योग्य विकल्प नहीं मिलने के कारण वे प्रदेश अध्यक्ष के पद पर बने रहे। राष्ट्रीय स्तर पर नवलकिशोर का महत्व बढ़ते जाने के साथ ही राजस्थान में अशोक गहलोत को खास तौर पर सक्रिय कर दिया गया। 18 सितम्बर, 1985 को नवलकिशोर की जगह गहलोत प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष बना दिए गए। ठीक सप्ताह भर बाद गहलोत से केंद्रीय पर्यटन और नागरिक उड्डयन मंत्रालय के राज्य मंत्री की जिम्मेदारी वापस ले ली गई और उन्हें पूरी तरह राजस्थान भेज दिया गया। वह राजीव की राज्यों में राजनीतिक सक्रियता का दौर था और वे कांग्रेस में संगठनात्मक स्तर पर व्यापक परिवर्तन कर रहे थे। लोकसभा चुनाव जीतने के बाद उन्होंने 10 महीनों में 10 राज्यों के

अध्यक्ष बदले। उनकी रणनीति प्रदेशों में युवा नेतृत्व तैयार करने की थी। मध्य प्रदेश में दिग्विजय सिंह, पश्चिम बंगाल में प्रियरंजनदास मुंशी, हरियाणा में वीरेंद्र सिंह जैसे युवा नेताओं को प्रदेश अध्यक्ष बनाए जाने के पीछे यही सोच थी। उस दौर में 34 वर्षीय गहलोत सबसे युवा प्रदेश अध्यक्ष थे।[14]

संदर्भ सूची

1. जनार्दन सिंह गहलोत: संघर्ष से शिखर तक, 2020, पृष्ठ 79–80
2. ओमप्रकाश थानवी: इतवारी पत्रिका, 3 मई, 1985
3. विजय भंडारी: राजस्थान की राजनीति–सामंतवाद से जातिवाद के भंवर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 329
4. मिलापचंद डंडिया: चेहरों का सच, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2021, पृष्ठ 158
5. श्रीकांत खांडेकर: इंडिया टुडे, 15 मार्च, 1985
6. वही
7. विष्णु मोदी, पूर्व सांसद के संस्मरण
8. डॉ. सरस्वती माथुर: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा हरिदेव जोशी, राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति, जयपुर, पृष्ठ 56–57
9. आर. वेंकटरमन: जब मैं राष्ट्रपति था, वाणी पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 108
10. विजय भंडारी: राजस्थान की राजनीति–सामंतवाद से जातिवाद के भंवर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 235
11. माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 210
12. वही, पृष्ठ 163
13. सीताराम झालानी के संस्मरण, 9 दिसम्बर, 2021
14. प्रभु चावला: इंडिया टुडे, 15 नवम्बर, 1985

क्वात्रोच्चि को पहली चुनौती

यह महत्वपूर्ण है कि नवलकिशोर शर्मा ने बोफोर्स मामले में सीएजी पर किए जा रहे आक्रमण की निंदा करते हुए चेतावनी दी कि देश की महत्वपूर्ण संस्थाओं को कमजोर किया जा रहा है, यह देश के लिए नुकसानदेह होगा। उन्होंने कहा कि सीएजी की रिपोर्ट से देश में परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई है।

–चंद्रशेखर

प्रधानमंत्री बनने के साथ ही राजीव गांधी का नेतृत्व एक नई राजनीतिक कार्यशैली का सूत्रपात कर रहा था। वे अपनी मां को सलाह देने वाले उम्रदराज दरबारियों को दूर करके सलाहकारों की युवा पीढ़ी को आगे लाने की कोशिश कर रहे थे। उन्होंने खुद को अरुण सिंह और मणिशंकर अय्यर जैसे अंग्रेजीदां दोस्तों से घेर रखा था, जो उनकी तरह दून स्कूल और ऑक्सब्रिज में पढ़े थे। इंडियन एयरलाइंस के जमाने से राजीव के पायलट मित्र सतीश शर्मा भी उनके नजदीकी लोगों में शामिल थे। शर्मा की पत्नी बेल्जियम से थीं। इन सब लोगों का दिल्ली के जाने–माने घरों की बैठकों में मिलना–जुलना होता था।[1] राजीव से उम्र में बीसियों साल बड़े धोती–कुर्ता के देसी रहन–सहन वाले नेताओं के लिए इस खांचे में बैठना मुश्किल था। नए मंत्रिमंडल में प्रणब मुखर्जी की अनुपस्थिति और पी.वी. नरसिंह राव की अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण भूमिका को इसी नजरिए से देखा गया। ये दोनों नेता इंदिरा गांधी के लिए महत्वपूर्ण रहे थे। 1980 में सत्ता में लौटने के बाद इंदिरा ने माखनलाल फोतेदार से पूछा था कि आपातकालीन परिस्थितियों में देश संभालने में इन दोनों में से कौन अधिक सक्षम हो सकता है। हालांकि फोतेदार ने दोनों की कमजोर कड़ियों का उल्लेख करते हुए निष्कर्ष दिया कि पायलट की नौकरी कर रहे राजीव को राजनीति में सक्रिय करना ही सर्वश्रेष्ठ विकल्प होगा।[2] उन्हीं राजीव ने आपातकालीन परिस्थिति में सत्ता संभालने के बाद पुराने विकल्पों को दरकिनार करने के संकेत देने शुरू कर दिए। इस बदलते परिदृश्य ने कई नए नेताओं को राष्ट्रीय नेतृत्व की अग्रिम पंक्ति में ला खड़ा किया।

प्रधानमंत्री के रूप में राजीव के शुरुआती वर्ष उपलब्धियों से भरे हुए थे। उन्होंने राजनीतिक, प्रशासनिक और आर्थिक क्षेत्र में अनेक नीतिगत निर्णय किए। उन्होंने दल बदल विरोधी कानून बनाया और कांग्रेस में मौजूद बिचौलियों को चेतावनी दी। उन्होंने सत्ता के दलालों की नई परिभाषा तैयार की और पहली बार खुलकर स्वीकार किया कि योजनाओं में खर्च की जाने वाली राशि का 15 प्रतिशत धन ही वास्तविक हाथों में पहुंच पाता है। यह राजीव की राजनीतिक शैली का सुथरापन ही था कि उन्होंने उन लोगों को अपने से दूर रखा, जो संजय गांधी के कारण सत्ता के गलियारे तक पहुंच गए थे और जिनकी छवि विवादास्पद थी।[3] पंजाब, मिजोरम और असम में व्याप्त संकट को नियंत्रित करने में भी उन्होंने उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। उन्होंने मौजूदा मंत्रालयों को नए सिरे से व्यवस्थित किया और कई नए मंत्रालय बनाकर प्रशासनिक मशीनरी में सुधार किया। आमजन की समस्याओं को सुलझाने के लिए उन्होंने चार तकनीकी मिशन की स्थापना की और औद्योगिक क्षेत्र के उदारीकरण के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए। नई शिक्षा नीति लागू करना, पर्यावरण संबंधी समस्याओं पर उचित ध्यान देना और 21वीं सदी के भारत की परिकल्पना रखना उनके राजनीतिक जीवन को सराहनीय शुरुआत देने वाले कदम थे। लेकिन इसके साथ ही उनके सामने नई चुनौतियां भी प्रकट होने लगीं। राजनीतिक क्षितिज पर संकट के बादल उभरने लगे और समय के साथ वे घने होते चले गए।[4]

राजीव मन के साफ, तत्पर और काम करने के उत्सुक थे, लेकिन उनके भीतर अपने छोटे भाई जैसी निष्ठुर राजनीतिक धार नहीं थी। उनके पास सीखने का समय भी नहीं था। उनकी मां ने अपने पिता के साथ करीब बीस साल राजनीति के गुर सीखे थे। संजय को इंदिरा ने लगभग एक दशक तक सबक सिखाए। लेकिन कालचक्र ने राजीव को बिना चेतावनी दिए गहरे पानी में पटक दिया। उन्हें भारतीय राजनीति की पेचीदगियों से निपटने के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ा; फिर भी वे यह समझ नहीं पा रहे थे कि कांग्रेस में मौजूद चाटुकारिता की संस्कृति से कैसे निपटें। इसका एक उदाहरण आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री टी. अंजैया से संबंधित है। राजीव ने अंजैया को मसखरा तक कह डाला था क्योंकि उन्होंने 1982 में हवाईअड्डे पर राजीव के शानदार स्वागत का इंतजाम किया था। इस घटना को विपक्ष ने तेलुगु अस्मिता के अपमान से जोड़ दिया, जिसकी इतनी जबर्दस्त प्रतिक्रिया हुई कि कुछ ही महीनों में तेलुगु फिल्मी सितारे नंदमूरि तारक रामाराव (एन.टी.आर) बड़ी तेजी से प्रदेश के राजनीतिक पटल पर छा गए।[5]

अपने कार्यकाल के पहले वर्ष में राजीव ने कैबिनेट सचिवालय को उसी पद्धति से चलने दिया, जो इंदिरा गांधी के दौर में निर्धारित हुई थी। प्रधानमंत्री कार्यालय प्रभावशाली भूमिका में था, जो अक्सर कैबिनेट सचिवालय पर हावी रहता था। अरुण नेहरू कुछ समय तक महत्वपूर्ण व्यक्ति थे, जब तक कि उन्हें रक्षा मंत्रालय में नहीं भेज दिया गया। गृह राज्य मंत्री के रूप में उनका गहरा प्रभाव था। प्रधानमंत्री आवास भी अति सक्रिय था, जहां माखनलाल फोतेदार और सतीश शर्मा कमान संभाले हुए थे। शुरुआत में राजीव अपने मित्रों, चुनिंदा अफसरों और घनिष्ठ राजनीतिक सहयोगियों के छोटे-से घेरे में सहज महसूस कर रहे थे।

समय के साथ वे धीरे-धीरे इस घेरे से बाहर निकलने की कोशिश करने लगे।[6]

राजनीति में नए होने के कारण राजीव का अफसरों से सीमित परिचय था, लेकिन उनके पास बहुत-से नए विचार थे। वे एक ऐसी आधुनिक नौकरशाही चाहते थे, जो सक्षम, कर्तव्यनिष्ठ और गैर-राजनीतिक हो। आधुनिक तकनीकी यंत्रों के इस्तेमाल से दिए गए प्रेजेंटेशन उन्हें प्रभावित करते थे। वे अक्सर उन पुराने तौर-तरीकों वाले अफसरों के साथ धैर्य खो देते थे, जो स्पष्ट सलाह देने और परिणाम लाकर दिखाने में कहीं से उन्नीस नहीं थे। इन अफसरों ने भारत को मुश्किल समय से गुजरते देखा था और इसे उपनिवेश से आधुनिक राष्ट्र बनाने में भूमिका निभाई थी। राजीव उन सलाहकारों और अफसरों की तरफ अधिक आकर्षित होते थे, जो पब्लिक स्कूल से पढ़े हुए थे, अच्छी अंग्रेजी बोल-पढ़ सकते थे और साज-सज्जा पर ध्यान देते थे। तात्कालिक परिणाम राजीव को प्रभावित करते थे, जबकि दूरगामी और धीमी गति की रणनीति समझाने वाले अफसरों को सुनने का उनमें धैर्य नहीं था। अनेक वरिष्ठ अफसरों ने इस बात को भांपकर राजीव के मन मुताबिक ढलना शुरू कर दिया और उनके चहेते बन गए। धीरे-धीरे जब राजीव का राजनीतिक अनुभव बढ़ा तो उन्हें अच्छे अफसर और दिखावटी अफसर का भेद समझ आने लगा। लेकिन यह समझ आने तक वे कुछ गलतियां कर बैठे।[7]

एचबीजे पाइपलाइन का विवाद

राजीव के कार्यकाल की शुरुआत में हजीरा-बिजयपुर-जगदीशपुर (एचबीजे) पाइपलाइन प्रोजेक्ट के रूप में एक महत्वाकांक्षी योजना के क्रियान्वयन की रूपरेखा तैयार हुई। उस समय दुनिया का यह सबसे अधिक मूल्य वाला पाइपलाइन प्रोजेक्ट था। इसकी लागत 1700 करोड़ रुपए होने का अनुमान लगाया गया था। गुजरात के हजीरा से मध्य प्रदेश के बिजयपुर होते हुए उत्तर प्रदेश के जगदीशपुर तक जाने वाली 1730 किमी लंबी यह पाइपलाइन भारत की पहली बहुराज्यीय गैस पाइपलाइन होने वाली थी। इसका उद्देश्य पश्चिमी तट से गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के खाद उत्पादक संयंत्रों तक प्राकृतिक गैस की आपूर्ति करना था। कृषि प्रधान देश के रूप में भारत के लिए यह एक महत्वपूर्ण परियोजना साबित होने वाली थी। उस दौर में भारत प्रतिवर्ष 1400 करोड़ रुपए की खाद का आयात करता था। गैस की आपूर्ति सुनिश्चित होना खाद उत्पादन में आत्मनिर्भरता की ओर बड़ा कदम था। इस पाइपलाइन के जरिए प्रतिदिन 1.82 करोड़ घन मीटर गैस की आपूर्ति का लक्ष्य रखा गया था।[8]

एचबीजे पाइपलाइन में आने वाली गैस का इस्तेमाल तीन पावर प्लांट और तीन खाद उत्पादक फैक्ट्रियों में किया जाना था। इस काम के लिए 36 इंच, 24 इंच और 18 इंच के पाइप का इस्तेमाल किया जाना था। शुरुआत में यह तय किया गया कि पाइप की आपूर्ति सेल (स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड) द्वारा की जाएगी। लेकिन सेल के पाइप की गुणवत्ता संतोषजनक नहीं पाए जाने के कारण अंतरराष्ट्रीय कंपनियों को आमंत्रित किया गया। ओएनजीसी (ऑयल एंड नेचुरल गैस कार्पोरेशन) ने इस काम के लिए एक टेंडर निकाला,

जिसका मूल्य 300 करोड़ रूपए से अधिक था। लगभग एक वर्ष की चयन प्रक्रिया के बाद पश्चिमी जर्मनी की जीएमबीएच, ब्राजील की इंटरब्रास पेट्रोबास और जापान के सुमितोमो कार्पोरेशन को अलग-अलग आकार के पाइप की आपूर्ति का काम सौंपा गया।[9] कम चौड़ाई वाले पाइप की खरीद उड़ीसा (अब ओड़िशा) के राउरकेला स्टील प्लांट से करने का फैसला किया गया। पाइप की कोटिंग का पूरा काम भारत में ही किया जाना था। पाइपलाइन निर्माण की प्रक्रिया में सबसे बड़ा काम वेल्डिंग, कोटिंग और पाइप बिछाने का था। गैस के तेज दबाव को सहने लायक बनाने के लिए उच्च गुणवत्ता वाली वेल्डिंग की जरूरत थी। इसके अलावा कई जगहों पर कम्प्रेशर और सिग्नल उपकरण लगाए जाने थे।[10]

1985 की पहली तिमाही में वित्त मंत्री वी.पी. सिंह के कार्यालय में एक बैठक हुई, जिसमें वित्त सचिव एस. वेंकटरमणन, पेट्रोलियम सचिव जी.वी. रामकृष्ण, प्रधानमंत्री के अतिरिक्त सचिव गोपी अरोड़ा आदि मौजूद थे। बैठक में इस विषय पर चर्चा हुई कि इस काम के लिए अलग-अलग कंपनियों को ठेका दिया जाना चाहिए या किसी एक को पूरा काम सौंपा जाना चाहिए। आखिर यह तय हुआ कि किसी एक अनुभवी कंपनी को सारा काम करने की जिम्मेदारी देना सुविधाजनक होगा। इंजीनियर्स इंडिया लिमिटेड (ईआईएल) द्वारा रिकॉर्ड समय में निविदा दस्तावेज तैयार कर लिए गए। इसमें ठेका लेने वाली कंपनी के लिए विस्तृत शर्तें तय की गईं। ईआईएल के परियोजना निदेशक के नेतृत्व में एक प्रोजेक्ट टीम का गठन किया गया और उसे प्रोजेक्ट पूरा होने तक सभी पहलुओं पर नजर रखने की जिम्मेदारी दी गई।[11] उन्हीं दिनों नवलकिशोर का कद बढ़ाते हुए उनके पेट्रोलियम मंत्रालय में प्राकृतिक गैस मंत्रालय को भी मिला दिया गया।

प्रोजेक्ट के लिए बोली लगाने वालों में अनुभव और ट्रैक रिकॉर्ड के आधार पर खरी उतरने वाली फर्में थीं - (1) स्नैम प्रोगेती (इटली), (2) स्पी कैपेग (फ्रांस), टोयो इंजीनियरिंग और एनकेके (जापान) का समूह, (3) कनाडा की एक कंपनी। सबसे महंगी बोली लगाने वाली कनाडा की कंपनी ने प्रतिस्पर्धा से बाहर होने का फैसला किया। फ्रेंच-जापानी समूह ने न्यूनतम बोली लगाई, जिसके कारण उसे ठेका दिया जाना तय हुआ। स्नैम प्रोगेती की बोली उससे 120 करोड़ रुपए अधिक थी। इतना ही नहीं, स्नैम प्रोगेती ने अपनी बोली समय सीमा खत्म होने के एक महीने से भी अधिक समय बाद पेश की थी।[12] स्नैम प्रोगेती का प्रतिनिधि ओतावियो क्वात्रोच्चि* था, जिसकी पहुंच के कारण स्नैम प्रोगेती को पूर्व में कई सरकारी प्रोजेक्ट मिले थे। राजीव के प्रधानमंत्री बनने के बाद क्वात्रोच्चि का प्रभाव और बढ़ गया।[13]

*पेशे से चार्टर्ड अकाउंटेंट ओतावियो क्वात्रोच्चि 1964 में भारत आया और उसने चेन्नई में अपना दफ्तर खोला। 1966 से 1968 के बीच वह भारत से बाहर रहा। राजीव और सोनिया के विवाह के साढ़े तीन महीने बाद वह भारत लौटा और इटली सरकार के स्वामित्व वाले एमी ग्रुप की कंपनी स्नैम प्रोगेती के प्रतिनिधि के रूप में दिल्ली रहने लगा। अगले 25 साल क्वात्रोच्चि स्थाई रूप से भारत में ही रहा। इंदिरा गांधी के कार्यकाल में सरकारी गलियारों में उसका गहरा प्रभाव बना, जो राजीव के प्रधानमंत्री बनने के बाद बढ़ता गया। मंत्रियों-अफसरों को क्वात्रोच्चि के मन मुताबिक काम नहीं करने का खमियाजा निलंबन या स्थानांतरण के रूप में भुगतना पड़ता था। 1986 के बोफोर्स सौदे में 64 करोड़ रुपए की रिश्वत दिए जाने के मामले में क्वात्रोच्चि को अभियुक्त बनाया गया, लेकिन चार्जशीट दाखिल होने के छह वर्ष पहले ही वह भारत से फरार हो चुका था।

क्वात्रोच्चि ने बोली में मात खाने के बावजूद एचबीजे पाइपलाइन का ठेका स्नैम प्रोगेती को दिलवाने के लिए सरकारी प्रभाव का इस्तेमाल शुरू किया। उसने प्रधानमंत्री कार्यालय से मंत्रालय पर दबाव बनवाया, लेकिन नवलकिशोर प्रभावित नहीं हुए। नवलकिशोर की दृढ़ता देखकर क्वात्रोच्चि ने मंत्रालय के अधिकारियों के जरिए काम निकालने की कोशिश की। उसने पेट्रोलियम सचिव जी.वी. रामकृष्ण से कई मुलाकातें कीं और कंपनी के प्रमुख को भी उनसे मिलवाया। रामकृष्ण ने हर बार स्पष्ट रूप से कहा कि नियमानुसार स्नैम प्रोगेती को ठेका नहीं दिया जा सकता और इतनी बड़ी कंपनी को एक प्रोजेक्ट गंवाने पर इतनी हाय-तौबा नहीं मचानी चाहिए।[14]

सिद्धांत की राजनीति

उसी दौरान नवलकिशोर के साथ नाफेड में निजी सचिव के रूप में काम कर चुके कथित ओमप्रकाश अग्रवाल के आपराधिक मामले और फर्जी नाम रखने का विषय सीबीआई के सामने आया। सीबीआई के उपमहानिरीक्षक ने 1 नवम्बर, 1985 को ओमप्रकाश से पूछताछ करना तय किया, लेकिन नवलकिशोर ने मामले की सूचना मिलते ही राजीव को पत्र लिखकर इस्तीफे की पेशकश कर दी। उन्होंने लिखा:

> मैं आपका आभारी हूं कि आपने इस महान देश के प्रधानमंत्री बनने के तुरंत बाद वित्त राज्य मंत्री के रूप में मुझे मंत्रिमंडल में शामिल किया। मुझे पता है कि यह मुझे दिया गया एक असाधारण सम्मान था क्योंकि मैं एकमात्र नया चेहरा था, जिसे शामिल किया गया था। मैं इस बात से अभिभूत था कि आप मेरे बारे में इतने बड़े दुख और संकट के समय में सोच सकते हैं, जो देश पर और विशेष रूप से आप पर पड़ा था।
>
> मैं आपका आभारी हूं कि आम चुनाव के बाद नेता चुने जाने और दूसरी बार इस महान देश के प्रधानमंत्री के रूप में शपथ लेने के बाद आपने मंत्रिमंडल में मुझे फिर से शामिल किया। मैं कैसे भूल सकता हूं कि मुझे इस बार स्वतंत्र प्रभार के साथ पेट्रोलियम राज्य मंत्री बनाया गया था। यह दयालुता का एक और कार्य था, जिसे मैं नहीं भूलूंगा। मैं आपको आश्वस्त कर सकता हूं कि एक मंत्री के रूप में पिछले लगभग 12 महीनों के कार्यकाल के दौरान मैंने ईमानदारी, समर्पण और सत्यनिष्ठा की उच्चतम भावना के साथ अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया है। मैं उस दौरान हमेशा सचेत रहता था कि जाने-अनजाने में कुछ भी ऐसा न कर जाऊं, जो इस देश के लोगों को आपकी ओर से एक बुरे विकल्प के रूप में दिखाई दे।
>
> हालांकि, इन सबके बावजूद नियति ने शायद कुछ और ही तय किया है। चौथी लोकसभा का सदस्य बनने के बाद से मैं दिल्ली में अकेला रह रहा हूं। पारिवारिक परिस्थितियों के कारण मैं अपने परिवार को दिल्ली में नहीं रख सका। मैं 1977 में

छठी लोकसभा के चुनाव में हार गया था और मुझे अपना सांसद का फ्लैट खाली करना पड़ा था। मैं जब भी राजनीतिक उद्देश्य से या अन्य काम से दिल्ली आता था तो राजस्थान के एक राज्यसभा (कांग्रेस) सदस्य मास्टर किशनलाल शर्मा के साथ रहा करता था। आमतौर पर राजस्थान के सभी नेता उनके साथ रहते थे। एक पूर्व सांसद श्रीकिशन मोदी, जो सांसद विष्णु मोदी के पिता हैं, भी वहां रहते थे। जनता पार्टी के राज में एक मंत्री द्वारा मोदी को व्यक्तिगत और राजनीतिक प्रतिशोध के कारण काफी परेशान और पीड़ित किया गया था; इतना कि शायद ही कोई दिन ऐसा हो, जब मोदी दर-दर की ठोकरें न खा रहे हों। अपने मुकदमों और अन्य विविध कार्यों को देखने के लिए उन्होंने ओमप्रकाश अग्रवाल की सेवाएं लीं। उस समय अग्रवाल अविवाहित था और सांसद मास्टर किशनलाल के साथ रहता था।

1980 के चुनाव के बाद मैं कुछ समय के लिए राजस्थान भवन में रहा। 1978-79 और 1980 के दौरान मैं अग्रवाल के संपर्क में आया। 1980 में मास्टर किशनलाल को दुबारा राज्यसभा में मनोनीत नहीं किया गया और अग्रवाल ने व्यक्तिगत परिचय के कारण 10, पंडित पंत मार्ग पर मुझे आवंटित किए गए आवास में रहने की इच्छा जाहिर की। क्योंकि यह एक 'बंगला' था और ऊपर वर्णित कारणों से मैंने अग्रवाल के अनुरोध पर सहमति व्यक्त कर दी और वह 10, पंडित पंत मार्ग पर मेरे बंगले में रहने लगा।

शायद 1982 की शुरुआत में अग्रवाल की शादी हुई। उसने मेरे साथ रहना जारी रखा। अप्रेल, 1983 में मुझे नाफेड का अध्यक्ष चुना गया। अध्यक्ष को अपनी पसंद का एक निजी सचिव चुनने की अनुमति दी गई थी। मैंने अग्रवाल को चुना और उसने मेरे निजी सचिव के रूप में काम किया। हालांकि अग्रवाल मेरा निजी सचिव बनने के बाद भी मेरे साथ ही रहा। चूंकि मैं अकेला रहता था और वास्तव में मुझे एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो मेरी गैर-मौजूदगी में भी मेरे घर की और बड़ी संख्या में वहां आने और रहने वाले आगंतुकों और मेहमानों की देखभाल कर सके, इसलिए मुझे लगा कि अग्रवाल को अपने साथ रखना उचित होगा। चूंकि 10, पंडित पंत मार्ग में कोई कार्यालय परिसर नहीं था और गुरुद्वारा के पास होने के कारण सुरक्षा कारणों से मुझे अपने नए घर 3, कृष्णा मेनन मार्ग में जाने की सलाह दी गई। अग्रवाल भी मेरे साथ इस नए घर में चला गया। इस स्वाभाविक कारण से कि मैं अकेला रह रहा था, मैंने अग्रवाल को साथ रहने की अनुमति दी। इस महीने की 29 तारीख को सीबीआई उप महानिरीक्षक दिवाकर प्रसाद मुझसे मिलने मेरे कार्यालय में आए। उन्होंने मुझे सूचित किया कि अग्रवाल के खिलाफ आपराधिक मामला दर्ज है, जिसके लिए वह अदालत के सामने पेश नहीं हुआ और कई सालों से फरार है। उसका असली नाम महेशचंद्र अग्रवाल है। उस पर सरकारी कोष से लगभग 2000 रुपए के गबन का आरोप है। ये सभी आरोप उस अवधि

> के हैं, जब वह राजस्थान राज्य की सेवा में था। अग्रवाल शाहपुरा (जिला भीलवाड़ा, राजस्थान) का रहने वाला है। पिछले पांच वर्षों के दौरान अग्रवाल के कई दोस्त-रिश्तेदार और यहां तक कि उसके गृहनगर से भी लोग मेरे पास आए, लेकिन किसी ने मुझे जरा भी भनक नहीं लगने दी और इसलिए मुझे इसके बारे में कुछ पता नहीं चला। मैं आपको आश्वस्त कर सकता हूं कि मुझे किसी भी आपराधिक मामले में अग्रवाल की संलिप्तता के बारे में कोई संदेह नहीं था। मुझे लगता है, उपरोक्त परिस्थितियों में किसी भी व्यक्ति को यह संदेह नहीं हो सकता था।
>
> उप महानिरीक्षक दिवाकर प्रसाद 1 नवम्बर, 1985 को उसे पूछताछ के लिए ले जा रहे हैं। कानून अपना काम करेगा और अग्रवाल को गिरफ्तार होकर मुकदमे का सामना करना होगा। हालांकि अब मेरा अग्रवाल से कोई संबंध नहीं है और न ही वह मंत्रालय में मेरा निजी कर्मचारी है, लेकिन चूंकि वह मेरे साथ घर में रहा, इसलिए मैं नैतिक रूप से दोषी महसूस करता हूं। मैं नहीं चाहता कि आपको और सरकार को मेरी गलतियों के कारण शर्मिंदगी का सामना करना पड़े। इसलिए मुझे लगता है कि मुझे जिम्मेदारी लेनी चाहिए और 'मिस्टर क्लीन' के नेतृत्व वाली सरकार में नहीं रहना चाहिए।
>
> अत: मैं मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे रहा हूं। मैं आपको आश्वस्त करता हूं और आपके प्रति अपनी पूरी ईमानदारी और निष्ठा की प्रतिज्ञा करता हूं।[15]

राजीव ने नवलकिशोर का इस्तीफा स्वीकार नहीं किया। वे मंत्री के रूप में अपनी जिम्मेदारियां संभालते रहे। दूसरी ओर, क्वात्रोच्चि के पक्ष में फैसला देने के लिए उन पर दबाव जारी रहा।

1986 की सर्दियों की एक सुबह नवलकिशोर के आवास पर रामकृष्ण को प्रोजेक्ट की फाइल लेकर भेजा गया। नवलकिशोर ने उन्हें बैठकर कॉफी पीने के लिए कहा और खुद फाइल लेकर ऊर्जा राज्य मंत्री अरुण नेहरू से मिलने चले गए। लगभग आधे घंटे बाद वे लौटे। उन्होंने एक पर्चा निकाला और उसमें देखते हुए कुछ लिखकर फाइल रामकृष्ण को सौंप दी। उनके चेहरे पर बेबसी छिपाने की कोशिश करती हुई मुस्कान थी। उनके द्वारा लिखा हुआ निर्देश यह था कि प्रोजेक्ट से संबंधित निर्णयों की समीक्षा कैबिनेट सचिव के नेतृत्व में गठित एक कमेटी द्वारा की जाएगी। उस समय कैबिनेट सचिव पी.के. कौल थे। उनके नेतृत्व में बनी रिव्यू कमेटी में रामकृष्ण के अलावा रक्षा सलाहकार वी.एस. अरुणाचलम और व्यय सचिव आर. गणपति को सदस्य बनाया गया। कमेटी के सचिव वित्त मंत्रालय में नियुक्त आईएफएस अधिकारी कमलेश शर्मा थे, जो बाद में इंग्लैंड में भारत के उच्चायुक्त बने। प्रोजेक्ट का पूरा अध्ययन करने के बाद कमेटी ने यह निष्कर्ष लिखा कि मंत्रालय द्वारा की गई कार्रवाई एकदम दुरुस्त और संतोषजनक है। इस दौरान भी क्वात्रोच्चि ने जापानी कंपनी को अनुभव के आधार पर खारिज करवाने की कोशिश की, लेकिन उसके दावे गलत साबित

हुए। इसके बाद नवलकिशोर ने कागजी कार्रवाई को आगे बढ़ाते हुए प्रोजेक्ट के दस्तावेज वित्त मंत्रालय को भेज दिए।[16] तब तक बिना किसी रुकावट के मुंह-मांगे प्रोजेक्ट पाने वाले क्वात्रोच्चि को पहली बार चुनौती मिली। यह प्रोजेक्ट हासिल करना उसके लिए पैसे के साथ प्रतिष्ठा का सवाल भी बन गया। उसने अपनी कोशिशें जारी रखीं।

मंत्री से महासचिव

नवलकिशोर के हाथ से मामला निकला तो वी.पी. सिंह आड़े आ गए। वी.पी. के अनुसार, 'स्नैम प्रोगेती पाइपलाइन के प्रोजेक्ट में भारत सरकार का इस्तेमाल करना चाहता था।'[17] राजीव ने वी.पी. को फोन करके कहा कि क्वात्रोच्चि को मिलने का समय दे दीजिए। वी.पी. ने क्वात्रोच्चि को बुलवाया। क्वात्रोच्चि ने वी.पी. को ज्ञापन दिया, जिसका संबंध एचबीजे पाइपलाइन से था। वी.पी. ने प्रकरण की जांच करवाई तो फ्रेंच कंपनी को बेहतर पाया। उन्होंने इस रिपोर्ट को मंजूर कर लिया। राजीव को इस पर आपत्ति थी। उन्होंने आरोप लगाया कि वित्त मंत्रालय में लॉबियां काम कर रही हैं। वी.पी. ने जवाब दिया, 'अगर आपको लग रहा है कि मैं लॉबी से प्रभावित हो रहा हूं तो मुझे वहां से हटा दीजिए। मैं किसी लॉबी के दबाव में काम करने को तैयार नहीं हूं।'[18] राजीव ने कुछ बिंदुओं के आधार पर इस मामले की दुबारा छानबीन करने को कहा, जो क्वात्रोच्चि के ज्ञापन में थे। दुबारा छानबीन हुई तो भी वित्त मंत्रालय अपनी राय पर कायम रहा। राजीव को फाइल भेज दी गई और इसके बाद उस पर उनके दस्तखत होकर आ गए।[19]

इस घटनाक्रम का खमियाजा नवलकिशोर ने भुगता। उन्हें मंत्री पद से हटा दिया गया। कौल को भी कैबिनेट सचिव के पद से राजदूत बनकर अमेरिका जाना पड़ा। नवलकिशोर इस घटना से बेहद व्यथित हुए। जाते समय उन्होंने रामकृष्ण से कहा, 'मैं तो अब जा रहा हूं। पता नहीं, आप यहां कब तक रहेंगे!'[20] इस बदलाव को अरुण और राजीव के बिगड़ते संबंधों के स्पष्ट संकेत के रूप में देखा गया। कौल को अन्य वरिष्ठ अफसरों पर तरजीह देकर कैबिनेट सचिव बनवाने में अरुण की विशेष भूमिका रही थी। यह महसूस किया गया कि अरुण से बढ़ती दूरी के कारण राजीव उनके परामर्श पर चुने गए लोगों को हटा रहे हैं।[21]

बिहार के चंद्रशेखर सिंह नए पेट्रोलियम मंत्री बनाए गए। इस दौरान भी यह कोशिश की गई कि ठेका दो हिस्सों में बांटकर आधा काम क्वात्रोच्चि की कंपनी को दे दिया जाए, लेकिन नवलकिशोर के कार्यकाल में तय की गई नीति के कारण यह संभव नहीं हुआ। प्रधानमंत्री कार्यालय की ओर से प्रोजेक्ट की कागजी कार्रवाई पर कई सवालिया निशान लगाने की कोशिशें होती रहीं, लेकिन नवलकिशोर जाते-जाते इतना पुख्ता काम कर गए थे कि उसमें दोष निकालने की कोई जगह नहीं मिल रही थी। यह विडंबना ही थी कि जिस प्रोजेक्ट में प्रधानमंत्री कार्यालय द्वारा मीन-मेख निकालने की लगातार कोशिश की जा रही थी, उसमें बरती गई पारदर्शिता के लिए विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की वार्षिक बैठक में भारत सरकार को वाहवाही मिली।[22]

नवलकिशोर की जिन योग्यताओं के कारण राजीव ने उन्हें अपनी मां के बनाए मंत्रिमंडल में इकलौते नए सदस्य के रूप में जोड़ा था, उन्हें नजरअंदाज करना मुश्किल था। मंत्री पद से हटाए जाने के कुछ ही समय बाद नवलकिशोर को पार्टी का राष्ट्रीय महासचिव नियुक्त कर दिया गया। नवलकिशोर ने भी अपने मन में किसी तरह की गांठ नहीं रखी। मई, 1986 में राजीव ने मंत्रिमंडल में बदलाव किया। उनके 16 महीनों के कार्यकाल में यह दूसरा बड़ा पुनर्गठन था। लेकिन ऐसा लग रहा था कि यह पूरी प्रक्रिया समर्थकों को पुरस्कृत करने के लिए अपनाई गई थी और सरकार के मूल रूप में इससे कोई बड़ा परिवर्तन नहीं आएगा। यह जरूर था कि इसके जरिए क्षेत्रीय संतुलन बनाने और जातियों-संप्रदायों के नेताओं को लुभाने की कोशिश की गई थी। हफ्तों से लगाए जा रहे व्यापक बदलाव के कयासों के विपरीत राजीव ने केवल एक कैबिनेट मंत्री बलिराम भगत को हटाया। भगत लगभग पांच महीने पहले विदेश मंत्री बनाए गए थे। दो नए कैबिनेट मंत्री, नौ राज्य मंत्री और एक उपमंत्री को जोड़कर मंत्रिपरिषद के सदस्यों की संख्या 58 की गई। महासचिव के रूप में नवलकिशोर का कहना था, 'राजीव ने एक ऐसी टीम बनाई है, जिसमें अनुभव और नए खून दोनों का समावेश है।'[23]

मंत्रिमंडल के पुनर्गठन के पीछे मुख्य रूप से दो नजरिए काम कर रहे थे। एक, राजीव के लिए व्यक्तिगत समर्थकों का जमावड़ा जरूरी था; दूसरे, बुजुर्ग नेताओं की शिकायतों का भी निपटारा करना था। गुरुदयाल सिंह ढिल्लों और मुफ्ती मोहम्मद सईद जैसे जनाधारविहीन नेताओं को कैबिनेट मंत्री बनाया जाना, बूटा सिंह को पदोन्नति देकर गृह मंत्री बनाया जाना, के.के. तिवारी, संतोष मोहन देव, शीला दीक्षित जैसे परम समर्थकों को राज्य मंत्री का पद दिया जाना पहले समीकरण के तहत था। वहीं, बलिराम भगत को हटाकर वरिष्ठ नेता कमलापति त्रिपाठी की शिकायत को दूर किया गया। त्रिपाठी यह कहते हुए विद्रोह का संकेत दे रहे थे कि पार्टी में इंदिरा के समर्थकों की अनदेखी की जा रही है। उन्होंने राजीव को पत्र लिखकर भगत की शिकायत की थी और कहा कि वे अतीत में इंदिरा की आलोचना करते रहे हैं। नए मंत्रियों में अधिकतर इंदिरा के समर्थक माने जाने वाले शामिल थे। त्रिपाठी के विरोध के कारण राजीव को कुछ लोगों को मंत्री बनाने का फैसला टालना पड़ा। इनमें प्रियरंजनदास मुंशी शामिल थे। इसी समीकरण के चलते एच.के.एल. भगत, मोहसिना किदवई, ए.बी.ए. गनी खान चौधरी और बी. शंकरानंद जैसे इंदिरा समर्थकों की कुर्सी बच गई, जिन्हें हटाए जाने की चर्चा जोरों पर थी।[24]

राजीव 22 अक्टूबर, 1986 को एक बार फिर मंत्रिमंडल का पुनर्गठन करना चाहते थे। इस काम में माखनलाल फोतेदार उनका सहयोग करते थे। मंत्रियों और उन्हें दिए गए जाने वाले मंत्रालयों की सूची बनाना उनका काम था। फोतेदार की दी हुई सूची पर राजीव ने 22 अक्टूबर की सुबह तक कोई जवाब नहीं दिया। 11:30 बजे उन्होंने फोतेदार को टेलीफोन करके रूखे स्वर में पूछा, 'अरुण नेहरू कहां हैं?' फोतेदार ने पिछली रात ही राजीव को संदेश भेजा था कि अरुण केंद्रीय पर्यटन मंत्री मुफ्ती मोहम्मद सईद की बेटी की शादी में शामिल होने के लिए श्रीनगर जाना चाहते हैं। उन्होंने यह बात टेलीफोन पर दोहराई। राजीव ने उन्हें

अरुण को वापस बुलाने के लिए कहकर फोन काट दिया। कुछ ही सेकंड में उन्होंने दोबारा फोन किया। इस बार उनका स्वर बदला हुआ था। उन्होंने कहा, 'उन्हें फोन मत कीजिए। वे दिल्ली में ही हैं। मैं उनसे संपर्क कर रहा हूं।'[25]

उसी दिन दोपहर 1:15 बजे राजीव अपने आवास पर पहुंचे। उन्होंने फोतेदार को मंत्रियों की संशोधित सूची दिखाकर पूछा कि क्या यह ठीक है? फोतेदार ने कुछ मामूली बदलावों का उल्लेख किया तो राजीव बोले, 'आपने ठीक से सूची नहीं देखी। मैंने अरुण नेहरू को हटा दिया है।' फोतेदार ने कहा, 'ठीक है। यह आपका फैसला है। प्रधानमंत्री को अपनी पसंद का मंत्रिमंडल रखने का विशेषाधिकार है।' राजीव ने पूछा, 'आप बताइए, क्या ऐसा करना चाहिए? आपकी क्या राय है?' फोतेदार ने कहा, 'कम-से-कम राष्ट्रपति चुनाव (जुलाई 1987) तक रुक जाइए।' राजीव कुछ देर सोचने के बाद बोले, 'मैंने उन्हें बुला लिया है। वे विजिटर्स रूम में होंगे।' फोतेदार ने कहा, 'आप उन्हें कह सकते हैं कि आप उनका मंत्रालय बदल रहे हैं।' राजीव ने कहा, 'मैंने फैसला कर लिया है। इसे बदलने के लिए मुझ पर दबाव मत बनाइए।' इस पर फोतेदार बोले, 'मैं जिद नहीं कर रहा हूं। आपने मेरी राय पूछी थी।' राजीव ने फोतेदार को सूची टाइप करवाने के लिए कहा। 5 मिनट बाद उन्होंने फोतेदार को दोबारा बुलवाया और कहा, 'मैंने अरुण नेहरू को कह दिया है कि इस्तीफा आपको सौंप दें।' फोतेदार अपने कक्ष में लौटे तो अरुण वहां इंतजार करते दिखे। फोतेदार ने उनका इस्तीफा लेकर उन्हें विदा किया।[26]

अरुण के इस्तीफे के बाद राजीव और फोतेदार राष्ट्रपति भवन के लिए निकले। रास्ते में फोतेदार ने राजीव से पूछा कि अरुण को उन्होंने क्या कहा? राजीव का कहना था, 'मैंने कहा कि उनके खिलाफ भ्रष्टाचार की कई शिकायतें मिली हैं, इसलिए मैंने उन्हें अपने मंत्रिमंडल से हटाने का फैसला किया है।' फोतेदार को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने चौंककर राजीव से अपनी बात दोहराने के लिए कहा। राजीव के जवाब पर वे कुछ देर विचारमग्न रहे और फिर बोले, 'उन्हें बहुत-सी बातें पता हैं। हमें जवाबी कार्रवाई के लिए तैयार रहना चाहिए।' यह सुनकर राजीव तनाव में आ गए। उनके हाव-भाव बदल गए। राष्ट्रपति भवन में मंत्रियों के शपथ ग्रहण समारोह के दौरान वे पूरे समय परेशान और उलझे हुए नजर आ रहे थे। राष्ट्रपति भवन से लौटते समय फोतेदार प्रधानमंत्री आवास तक राजीव के साथ गए। वहां पहुंचकर उन्होंने देखा कि प्रफुल्लित सोनिया गांधी और कैप्टन सतीश शर्मा राजीव के इंतजार में खड़े थे। फोतेदार को पूरे घटनाक्रम का कारण समझते देर नहीं लगी।[27]

मंत्रिमंडल से अरुण को हटाए जाने के बाद फोतेदार मुख्य राजनीतिक सलाहकार की भूमिका में रहे। बाद में उन्हें भी मंत्री पद दे दिया गया और राजीव की नई सलाहकार मंडली में बूटा सिंह, राजेश पायलट और गुलाम नबी आजाद आ गए। आगे चलकर आर.के. धवन भी इस मंडली में शामिल हुए। शीला दीक्षित को प्रधानमंत्री कार्यालय में राज्य मंत्री बनाकर राजनीतिक पक्ष को संभालने की जिम्मेदारी दी गई। उनके पास आर्थिक संस्थानों और सार्वजनिक उपक्रमों के निदेशक मंडल में अनौपचारिक नियुक्तियों से संबंधित फाइलें भेजी

जाती थीं। मोहसिना किदवई की भी भूमिका महत्वपूर्ण थी। 1987 में मेरठ के दंगों के दौरान राज्य सरकार के खिलाफ फैले रोष के बीच मोहसिना को वहां भेजा गया, लेकिन कोई सख्त कार्रवाई नहीं की गई। तत्कालीन मुख्यमंत्री पर कोई आंच नहीं आने दी गई और राजीव इस बात से बहुत असहज थे।[28]

नवलकिशोर राष्ट्रीय महासचिव के रूप में सांगठनिक कार्यों में जुट गए। दूसरी ओर, प्रधानमंत्री कार्यालय अंतिम समय तक क्वात्रोच्चि को प्रोजेक्ट दिलवाने की नाकाम कोशिश में लगा रहा। प्रोजेक्ट को हर स्तर पर क्लीन चिट मिल जाने के बाद फ्रांस-जापान वाले समूह के साथ कॉन्ट्रैक्ट पर हस्ताक्षर करने के लिए शानदार समारोह का आयोजन हुआ। 21वीं सदी की आहट के बीच वैश्विक शक्ति के रूप में उभर रहे भारत की तस्वीर दुनिया तक पहुंचाने के लिए प्रेस को आमंत्रित किया गया। सभागार में देश-विदेश की चर्चाओं और राजनीतिक गहमागहमी के बीच कूटनीतिक मुलाकातों का दौर चल रहा था। यह घोषणा की जा रही थी कि आगंतुक हस्ताक्षर होने के बाद जलपान के लिए आमंत्रित हैं। कॉन्ट्रैक्ट पर हस्ताक्षर किए जाने में कुछ ही समय बाकी था। ऐसे निर्णायक मोड़ पर प्रोजेक्ट फाइल प्रधानमंत्री कार्यालय में मंगवा ली गई और कार्यक्रम रद्द करना पड़ा। इस घटना से सरकार की बहुत किरकिरी हुई। प्रोजेक्ट को क्वात्रोच्चि के पक्ष में करने की कोई भी चाल कारगर साबित नहीं हो पा रही थी। आखिरकार, प्रधानमंत्री कार्यालय ने फाइल लौटा दी और हस्ताक्षर की प्रक्रिया पूरी की गई।[29]

क्वात्रोच्चि की कोशिशें इसके बाद भी बंद नहीं हुईं। उसने यह शिकायत की कि कॉन्ट्रैक्ट की कार्रवाई अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुसार नहीं हो रही है। लेकिन पेट्रोलियम मंत्रालय द्वारा इस विषय की देखरेख के लिए स्वतंत्र डच सलाहकारों को नियुक्त किया गया था। प्रधानमंत्री ने कहा कि वे स्वयं इस विषय की समीक्षा करेंगे। मंत्रालय द्वारा उन्हें प्रेजेंटेशन देने के लिए आठ बार कार्यक्रम तय किया गया, लेकिन हर बार अंतिम समय में प्रधानमंत्री द्वारा कार्यक्रम रद्द कर दिया गया।[30] नवलकिशोर को पद से हटाने के बावजूद उनके द्वारा किए गए फैसलों में बदलाव नहीं किया जा सका।

नवलकिशोर के मन में मंत्री पद छिन जाने का मलाल नहीं था। उन्हें संतोष था कि वे अनियमिततापूर्ण गतिविधियों में हिस्सेदार नहीं रहे। पार्टी और नेता के प्रति पूर्ण समर्पित होकर भी ऐसे मामलों में खुद को अलग कर लेना उनका स्वभाव था और यही बात उन्हें समर्थक तथा विरोधी की सीमाओं से अलग करती थी। इस प्रसंग के लगभग दो दशक बाद मैंने नवलकिशोर से जानना चाहा कि वे क्वात्रोच्चि प्रकरण में अडिग कैसे रह पाए। उनका कहना था, 'जिंदा मक्खी कैसे निगली जा सकती थी!'[31]

नवलकिशोर ईमानदारी की सजा भुगतने को मजबूर थे। आने वाले घटनाक्रम ने उन्हें सियासती गलियारों की भूल-भुलैया में उलझाकर रख दिया। वे क्वात्रोच्चि के जाल से तो बच निकले, लेकिन बोफोर्स प्रकरण की काली घटाएं बढ़ी चली आ रही थीं। हालांकि बोफोर्स प्रकरण भी ऐसी रहस्यमय गुत्थी थी, जिसके सभी सिरे एक साथ नहीं जुड़ पा रहे थे। 1970 के दशक के अंतिम वर्षों में ही भारतीय सेना ने केंद्र सरकार को जानकारी दी थी कि उसे

लंबी मारक रेंज वाली मध्यम आकार की तोपों की सख्त जरूरत है। इन तोपों की आपूर्ति के लिए चार हथियार निर्माता कंपनियां प्रतिस्पर्धा कर रही थीं। सेना ने शुरुआती दौर में फ्रांस की कंपनी सोफमा की तोप को सबसे उपयुक्त बताया। यह इकलौती तोप थी, जो सेना की गुणात्मक आवश्यकताओं (जीएसक्यूआर) के अधिकतर मापदंडों पर खरी उतर रही थी। इसकी रेंज 29 किमी की थी और सेना को इसी रेंज की जरूरत थी। इंदिरा के कार्यकाल में तोपों के तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया चलती रही। राजीव के प्रधानमंत्री बन जाने के बाद फरवरी, 1986 में स्वीडन की हथियार निर्माता कंपनी बोफोर्स इस सौदे के लिए मुख्य दावेदार के रूप में उभरी। सोफमा की तोप सेना की आवश्यकताओं से 84 प्रतिशत मेल खाती थी, जबकि बोफोर्स की तोप से केवल 64 प्रतिशत आवश्यकताओं की पूर्ति होती। इस कारण से बोफोर्स को उपयुक्त दिखाने के लिए जीएसक्यूआर में बदलाव किए गए। मार्च, 1986 में जल्दबाजी में प्रक्रिया पूरी कर दी गई। बोफोर्स को भारतीय सेना को 400 हॉवित्जर तोपों की आपूर्ति करने का ठेका मिल गया। राजीव उस दौरान रक्षा मंत्रालय अपने पास रखे हुए थे। बोफोर्स को ठेका देने के संबंध में स्वीडन के प्रधानमंत्री ओलोफ पामे से मुलाकात करके लौटने के तुरंत बाद उन्होंने नरसिंह राव से रक्षा मंत्रालय का कार्यभार ले लिया था।[32]

इसी दौरान वित्त मंत्री वी.पी. सिंह ने टैक्स से बचने वाले उद्योगपतियों के खिलाफ मुहिम शुरू की। यह चर्चा होने लगी कि रिलायंस इंडस्ट्री पर ईडी की नजर लगी हुई है। सिंह को औद्योगिक घरानों के आर्थिक लेनदेन की जांच के लिए एक अमेरिकी एजेंसी को नियुक्त करने की सलाह दी गई। पहले वे इसके लिए तैयार नहीं थे, लेकिन बाद में उन्होंने फेयरफैक्स नामक एजेंसी को नियुक्त करने के लिए मौखिक सहमति दे दी। इसके कुछ दिन बाद 24 जनवरी, 1987 को उनसे वित्त मंत्रालय लेकर रक्षा मंत्रालय सौंप दिया गया। 11 मार्च को प्रधानमंत्री के साथ हुई बैठक में सीबीआई के निदेशक मोहन गणेश कात्रे ने फेयरफैक्स के एक कर्मचारी का पत्र दिखाया, जिसमें बच्चन परिवार की स्विट्जरलैंड की संपत्ति के बारे में पड़ताल किए जाने का उल्लेख था। राजीव यह सुनकर उत्तेजित दिखाई देने लगे। उन्होंने तुरंत ईडी के निदेशक भूरे लाल के ट्रांसफर के आदेश दे दिए और ईडी को राजस्व विभाग से आर्थिक मामलों के विभाग में स्थानांतरित कर दिया। फेयरफैक्स की नियुक्ति के मामले की जांच के लिए ठक्कर-नटराजन आयोग का गठन किया गया।[33]

रक्षा मंत्री का पद संभालने के बाद वी.पी. सिंह को एक पनडुब्बी सौदे में बिचौलियों द्वारा रिश्वतखोरी की सूचना मिली। उन्होंने राजीव से मिलकर इस मामले की जांच का विषय उठाया। राजीव इस प्रस्ताव पर असहज थे। उन्होंने पूछा कि इस तरह की सूचना पर भरोसा कैसे किया जा सकता है? सिंह का कहना था कि बिना जांच करवाए इसे झूठ करार दे देना भी उचित नहीं होगा। बातचीत के दौरान राजीव की अनिच्छा को देखते हुए सिंह ने इस्तीफा देने का मन बना लिया।[34] 11 अप्रेल की रात वे इस्तीफा लेकर प्रधानमंत्री आवास पहुंचे। राजीव उस समय कहीं बाहर गए हुए थे। सिंह ने वहां मौजूद फोतेदार को इस्तीफा सौंपा। फोतेदार ने उसे खोलकर पढ़ा तो चौंक गए। सिंह ने उनसे कहा कि प्रधानमंत्री के आने पर

इस्तीफा उन्हें दे दें। अगले दिन राजीव ने सिंह को संदेश भिजवाया कि उनका इस्तीफा मंजूर हो गया है।[35]

इसके बाद वी.पी. सिंह की छवि भ्रष्टाचार के खिलाफ सख्त कदम उठाने वाले नेता की बन गई थी। उनके इस्तीफे से राजीव सरकार पर सवाल उठने लगे। सरकार इस झटके से संभल पाती, इससे पहले ही 17 अप्रेल को स्वीडिश रेडियो ने यह सनसनीखेज खबर दी कि बोफोर्स ने तोप सौदा हासिल करने के लिए स्विस बैंक खातों के जरिए भारत के नेताओं और प्रमुख सेनाधिकारियों को रिश्वत दी है। भारत के अखबारों ने इस खबर को प्रमुखता से छापा। 20 अप्रेल को संसद में बहस हुई, जहां विपक्ष ने इस मामले की संसदीय जांच कराए जाने की मांग की। सरकार ने इस मांग को खारिज कर दिया। सरकार का कहना था कि बोफोर्स तोपों का चयन ध्यानपूर्वक तुलनात्मक विधि से किया गया है और सभी कंपनियों को रक्षा सौदों में एजेंट नहीं रखने की सरकारी नीति के बारे में स्पष्ट रूप से बताया गया था।[36]

22 अप्रेल को स्वीडन के प्रतिष्ठित अखबार 'डैगेंस नाइहीटर' ने बोफोर्स के उच्च सूत्रों के हवाले से रिपोर्ट दी कि उद्योगपति हिंदुजा बंधुओं को सौदे में कमीशन मिला है। हिंदुजा बंधुओं का कहना था कि यह उनके परिवार को बदनाम करने की स्पष्ट साजिश है।[37] कमीशन लेने वालों का नाम पूछे जाने पर गोपी हिंदुजा ने कहा कि अगर कभी ये नाम उजागर हुए तो राजीव सरकार को भारी शर्मिंदगी उठानी पड़ेगी।[38] इस घटनाक्रम से राजीव की 'मिस्टर क्लीन' की छवि को गहरा झटका लगा। 28 अप्रेल को उन्होंने लोकसभा में कहा, 'हम स्वीडन सरकार से मिलने वाली सूचना का इंतजार कर रहे हैं। जैसे ही हमें सूचना मिलेगी, हम कार्रवाई करेंगे और यह दिखाएंगे कि हमने कार्रवाई की है।'[39] 30 अप्रेल को राष्ट्रपति जैल सिंह ने राजीव को पत्र लिखकर संविधान के अनुच्छेद 78 के तहत बोफोर्स सौदे के संबंध में सूचना मांगी। लेकिन उन्हें कहा गया कि रक्षा मंत्री के.सी. पंत ने उन्हें पर्याप्त जानकारी दे रखी है। इस विषय पर राजनीतिक मामलों की कैबिनेट कमेटी (सीसीपीए) में व्यापक चर्चा हुई। वहां कहा गया कि राष्ट्रपति द्वारा सूचना की मांग असंवैधानिक विचारों से प्रेरित है।[40]

बोफोर्स विवाद के बीच 16 मई, 1987 को दिल्ली के बोट क्लब पर राजीव ने बड़ी रैली की। रैली की दो खास बातें थीं; एक तो रैली में मौजूद वी.पी. सिंह एक पेड़ की छाया में बेंच पर बैठकर भाषण सुन रहे थे।[41] दूसरी खासियत यह थी कि नवलकिशोर महत्वपूर्ण भूमिका में थे। वे कांग्रेस के महासचिव थे और राजीव के बाद सबसे ज्यादा महत्व उन्हें ही मिला हुआ था। राजीव के भाषण के दौरान मंच पर लगातार वे पीछे खड़े रहे और रैली पर निगाह रखते रहे। राजीव ने चेतावनी दी, 'मैंने कहा था कि हम बहुत नरमी से काम कर रहे हैं, लेकिन लोगों में कोई गलतफहमी नहीं होनी चाहिए कि नरम दस्ताने में एक लोहे का हाथ है और अगर कभी दस्ताने के साथ ग्रिप नहीं मिलती है तो वह दस्ताना उतारना पड़ता है।'[42]

राजीव परोक्ष रूप से अपने राजनीतिक विरोधियों पर निशाना साध रहे थे। उन्होंने कहा, 'हमें याद रखना है कैसे हमारे बीच से मीर जाफर उठे थे, राजा जयचंद उठे थे; भारत को बेचने के लिए, भारत को कमजोर करने के लिए। हमें पहचानना है कि कौन इस तरीके से

भारत को कमजोर कर रहा है, कौन विदेशी शक्तियों का साथ भारत के अंदर से दे रहा है, भारत को कमजोर करने के लिए कौन भारत को धोखा दे रहा है, कौन अपने व्यक्तिगत फायदे के लिए भारत की इज्जत बेच रहा है। हमें देखना है कि हम उन बहसों में न पड़ें, जो देश को कमजोर करती हैं।'[43] रैली के बाद अनुमान लगाया गया कि राजीव ने वी.पी. सिंह को 'जयचंद' कहा है। इस बारे में सिंह ने जवाब दिया, 'मीर जाफर और जयचंद वे हैं, जो देश का पैसा विदेश में रखे हुए हैं। राजीव ने उन्हीं लोगों के लिए वह कहा होगा।'[44]

कांग्रेस नहीं छोड़ूंगा

स्वीडिश ऑडिट ब्यूरो के हस्तक्षेप के बाद परिदृश्य तेजी से बदला। ब्यूरो ने 7 मई को छानबीन शुरू की और 1 जून को रिपोर्ट सुपुर्द की। स्वीडन सरकार ने 4 जून को यह रिपोर्ट भारत भेजने का फैसला किया, लेकिन व्यावसायिक गोपनीयता का हवाला देकर महत्वपूर्ण हिस्सों को अलग कर दिया। रिपोर्ट में सीधे तौर पर कमीशन लेने वालों की जानकारी नहीं थी, लेकिन कमीशन दिए जाने और कमीशन लेने वालों में बोफोर्स के पूर्ववर्ती भारतीय एजेंट के शामिल होने की पुष्टि की गई। इस रिपोर्ट ने स्वीडिश नेशनल रेडियो द्वारा किए गए दावों पर मुहर लगा दी, जो बिना सबूतों के पेश किए जाने के कारण आलोचना का विषय बने हुए थे। स्वीडन से रिपोर्ट आते ही राजीव ने तेजी से फैसले किए। सबसे पहले उन्होंने राजनीतिक मामलों की कैबिनेट कमेटी की आपातकालीन बैठक बुलाई। फिर वे रिपोर्ट की प्रति लेकर राष्ट्रपति जैल सिंह से मिलने गए। इसके बाद उन्होंने वित्त मंत्रालय को भारत में बोफोर्स के एजेंट विन चड्ढा के आवास और दफ्तर में छापा मारने का निर्देश दिया। उस समय तक विन चड्ढा देश छोड़कर जा चुका था और छापेमारी से कोई महत्वपूर्ण सूचना हाथ नहीं लगी।[45]

उन हालात में कुछ बड़े फैसलों की जरूरत महसूस की जाने लगी। शुरू में खास सहयोगी बने हुए अरुण नेहरू समस्या के रूप में नजर आने लगे। राजीव की अनुभवहीनता ने उन्हें शुरुआती दौर में अरुण के जाल में फंसा दिया, जो न केवल शातिर राजनेता बन चुके थे, बल्कि उनकी चाल राजीव को कठपुतली प्रधानमंत्री बनाए रखने की थी। अरुण उसी राह पर चल पड़े थे, जिस पर संजय गांधी चले थे; मुख्यमंत्रियों को डांट देना, केंद्रीय मंत्रियों से हाजिरी लगवाना उनके स्वभाव में आ गया था।[46]

अमिताभ बच्चन के कारण भी परेशानियां पैदा होने लगी थीं। राजीव को बहुत से महत्वपूर्ण नेताओं से अमिताभ के प्रशासनिक मामलों में हस्तक्षेप करने की शिकायतें मिलीं। इलाहाबाद शिक्षाविदों, बुद्धिजीवियों, जजों और वकीलों का स्थान है; जबकि अमिताभ ने वहां का चार्ज एक ऐसे व्यक्ति को सौंप दिया, जिसे लोग गंभीरता से नहीं लेते थे। अमिताभ उत्तर प्रदेश और उसके अलावा मध्य प्रदेश, राजस्थान और महाराष्ट्र के मामलों में भी हस्तक्षेप करने लगे। एक बार राजीव ने फोतेदार से कहा कि अमिताभ राजस्थान की महिला विंग की अध्यक्ष के लिए फलां को चाहते हैं। फोतेदार ने राजस्थान के मुख्यमंत्री हरिदेव जोशी के सामने यह विषय रखा। जोशी ने उन महिला को नियुक्त करने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा, 'उसके

अलावा कोई भी हो।' वी.पी. सिंह ने भी अमिताभ की तीन-चार बार शिकायतें कीं। सिंह उनके खिलाफ काफी बातें कहते थे।[47]

जुलाई, 1987 में राजीव ने एक सप्ताह के भीतर अरुण और वी.पी. को कांग्रेस से निकाल दिया; अमिताभ को इस्तीफा देने पर मजबूर कर दिया; उनके भाई अजिताभ की संपत्ति की जांच के लिए वित्त मंत्रालय को आदेश दिया; फोतेदार को सलाहकार से मंत्री बना दिया; अरुण सिंह और मुफ्ती मोहम्मद सईद का मंत्री पद से इस्तीफा स्वीकार कर लिया। इसके साथ ही, राजीव सरकार के खिलाफ व्यापक विद्रोह की शुरुआत हुई। वी.पी., अरुण और आरिफ मोहम्मद खान की तिकड़ी सक्रिय हो गई। वी.पी. राष्ट्रनायक के रूप में सामने आए और जनता उनके जरिए भ्रष्टाचार मुक्त समाज का सपना देखने लगी। वे सभाओं में कहते कि उनका अपराध सिर्फ इतना है कि उन्होंने सरकार में व्याप्त भ्रष्टाचार की सूचना जनता को दे दी। यह सुनकर जनसमूह 'राजा नहीं फकीर है, भारत की तकदीर है', 'वी.पी. सिंह संघर्ष करो, हम तुम्हारे साथ हैं' और 'तख्त बदल दो ताज बदल दो, बेइमानों का राज बदल दो' जैसे नारे लगाने लगता।[48]

नवलकिशोर की अरुण से निकटता थी। गाहे-बगाहे दोनों में सलाह-मशविरा होता। कांग्रेस से अलग होने के बाद अरुण इलाज के लिए श्रीनगर गए तो नवलकिशोर अपने साथ सांसद विष्णु मोदी को लेकर उनसे मिलने गए। अरुण ने नवलकिशोर पर कांग्रेस छोड़ने के लिए काफी दबाव डाला, लेकिन नवलकिशोर कांग्रेस छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुए।[49]

राजीव को बोफोर्स मामले की जांच के लिए संयुक्त संसदीय कमेटी (जेपीसी) नियुक्त करने का परामर्श दिया जाने लगा। सबसे पहले गृह मंत्री बूटा सिंह ने यह प्रस्ताव रखा। कैबिनेट सचिव देशमुख इसके पक्ष में नहीं थे। उनका कहना था कि सरकार संसद में विपक्ष की इसी मांग को खारिज कर चुकी है। इसके अलावा, संसद में कांग्रेस के बहुमत के कारण जेपीसी में कांग्रेस के सदस्यों की बहुलता रहेगी और उसकी विश्वसनीयता पर सवाल उठेंगे। देशमुख का सुझाव था कि जेपीसी के अध्यक्ष के पास जांच की प्रक्रिया और रिपोर्ट की सामग्री तय करने का अधिकार होगा, इसलिए यह जिम्मेदारी विपक्ष को सौंपी जाए। उन्होंने यह भी कहा कि सुप्रीम कोर्ट के एक जज को लेकर जांच कमीशन गठित करना बेहतर विकल्प होगा क्योंकि इससे जांच के परिणामों की विश्वसनीयता बढ़ेगी। राजीव और उनके साथी इससे सहमत नहीं हुए और जेपीसी का प्रस्ताव रखने का फैसला हो गया।[50]

बोफोर्स का बवाल

नवलकिशोर उस समय महासचिव के पद पर थे। उन्होंने एक अन्य महासचिव ए.के. एंटनी और पूर्व मंत्री वी.एन. गाडगिल के साथ एक हस्ताक्षरयुक्त विस्तृत बयान जारी करते हुए कहा, 'हम संसदीय कमेटी से अनुरोध करते हैं कि वह सभी उपलब्ध साधनों का प्रयोग करके कमीशन लेने वालों की निशानदेही करे और कानून का उल्लंघन करने वालों को कड़ा दंड देने की सिफारिश करे।'[51] 12 अगस्त, 1987 को सिंचाई और ऊर्जा मंत्री बी. शंकरानंद

की अध्यक्षता में जेपीसी का गठन हुआ। सितम्बर के महीने में राजीव ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में व्यापक फेरबदल किया। महासचिव जी.के. मूपनार और कोषाध्यक्ष सीताराम केसरी को छोड़कर सभी पदाधिकारियों की भूमिका बदल दी गई। पांच नए राष्ट्रीय महासचिव और तीन नए प्रदेश अध्यक्ष लाए गए। इसी प्रक्रिया में नवलकिशोर को महासचिव के पद से हटा दिया गया।[52]

बोफोर्स की टीम भारत आकर जेपीसी के समक्ष प्रस्तुत हुई। टीम ने जेपीसी को कमीशन लेने वालों के नाम नहीं बताए, लेकिन कहा कि उसने यह जानकारी रक्षा मंत्रालय और प्रधानमंत्री कार्यालय को दे दी है। जेपीसी की प्रक्रिया को लेकर शंकरानंद आलोचना के घेरे में रहे। उन्होंने एक भी गैर–कांग्रेसी सदस्य को असहमति प्रकट करने का मौका नहीं दिया।[53] सरकार की कार्रवाई विपक्षी दलों और आमजन की नजर में संतोषजनक नहीं थी। इसे महज एक औपचारिकता के रूप में देखा जा रहा था। सेना से जुड़ा मामला होने के कारण भारतीय जनभावना उद्वेलित थी और राजीव की विश्वसनीयता पर सवालिया निशान लग गए थे। विपक्ष ने यह मांग रखी कि सरकार विन चड्ढा के खिलाफ मुकदमा चलाए और स्विट्जरलैंड की सरकार से उसके बैंक खाते का विवरण देने के लिए अनुरोध करे; कमीशन के रूप में विभिन्न एजेंटों को दिए गए धन की भरपाई की जाए; कमीशन लेने वाले सभी सरकारी और गैर–सरकारी व्यक्तियों की पहचान उजागर करने के लिए बोफोर्स पर दबाव बनाया जाए; सपरिवार देश छोड़कर जा चुके विन चड्ढा के प्रत्यर्पण की प्रक्रिया शुरू की जाए।[54]

दूसरी ओर, वी.पी. को मिल रहा वैचारिक समर्थन तेजी से बढ़ने लगा और वे खुलकर सरकार के विरोध में आ गए। वी.पी. की साख तब और बढ़ी, जब राजीव को राजनीतिक दबाव के कारण स्विट्जरलैंड में भारतीयों के गोपनीय खातों की जांच के लिए वित्तीय विशेषज्ञों का चार सदस्यीय दल भेजना पड़ा। उन्होंने सरकार से मांग की कि वह स्वीडन सरकार पर कमीशन लेने वालों की स्पष्ट जानकारी और बोफोर्स का संपूर्ण ऑडिट मुहैया करवाने के लिए दबाव बनाए। इस मांग के बाद विपक्षी दल भी वी.पी. के साथ सुर मिलाने लगे। सीपीआई(एम) ने एक प्रस्ताव पारित करते हुए कहा कि पूरी जांच करवाए जाने पर ही लोगों को संतुष्टि मिलेगी। भाजपा अध्यक्ष लालकृष्ण आडवाणी ने कहा, 'अगर सरकार निर्दोष है तो उसे दोषियों का नाम उजागर करने में संकोच नहीं करना चाहिए। अगर बोफोर्स इस विषय में सहयोग करने से इनकार कर दे तो सरकार का उसके साथ सौदा रद्द करने का विचार न्यायसंगत होगा।'[55]

विपक्ष के दबाव और जनता के बढ़ते असंतोष के बीच राजीव जेपीसी की रिपोर्ट का इंतजार करने की बात दोहरा रहे थे। उनका कहना था कि वे सारी कार्रवाई संसद के जरिए करेंगे। वे स्वीकार कर रहे थे कि स्वीडिश ऑडिट ब्यूरो की रिपोर्ट में उल्लिखित धनराशि बहुत बड़ी है, लेकिन उनका जोर इस बात पर अधिक था कि रिपोर्ट से सरकार को क्लीन चिट मिल गई है। उनके टालमटोल वाले बयानों के कारण सरकार की मंशा को लेकर संशय बना हुआ था। मुख्य चुनाव आयुक्त रहे एस.एल. शकधर का कहना था कि जेपीसी से विदेशी

सरकारों और कंपनियों से संबंधित जांच करने की उम्मीद नहीं लगाई जा सकती। लोकदल के अध्यक्ष हेमवतीनंदन बहुगुणा का मानना था कि विभिन्न सरकारी एजेंसियां इस काम के लिए जेपीसी से अधिक उपयुक्त हैं।[56]

इसी दौरान राजीव ने लोकसभा में बयान दिया कि उन्हें या उनके परिवार के किसी सदस्य को रक्षा सौदों में कोई लाभ नहीं मिला है। यह अफवाह फैली कि राष्ट्रपति ने राजीव से इस्तीफा मांगा है, लेकिन इसमें सच्चाई नहीं थी।[57] राजीव के बयान से सदन आश्चर्यचकित रह गया और देश के सबसे ऊंचे मंच से प्रधानमंत्री के स्पष्ट बयान पर किसी प्रतिक्रिया के लिए विपक्ष को थोड़ी देर सोचना पड़ा। लेकिन हालात ये थे कि उन्हीं दिनों देश के प्रमुख उद्योगपति जे.आर.डी. टाटा ने एक औपचारिक मुलाकात के दौरान राष्ट्रपति आर. वेंकटरमन के समक्ष राजीव के बयान पर गंभीर टिप्पणी की। वेंकटरमन ने अपनी आत्मकथा *जब मैं राष्ट्रपति था* में इस मुलाकात का विवरण दिया है। टाटा का मानना था कि राजीव और उनका परिवार भले इस मामले से अलग हो, लेकिन पार्टी पर गहरे सवालिया निशान लगे हैं।[58]

राजीव की चिंताएं बढ़ती जा रही थीं। उन्होंने अपने घोर समर्थकों को ढाल बनाकर विरोधियों पर खुला प्रहार करने की नीति पर अमल शुरू किया। अप्रेल, 1988 में तमिलनाडु के मरईमलई में होने जा रहा कांग्रेस अधिवेशन उपयुक्त अवसर था। 34 वर्षों के बाद तमिलनाडु में कांग्रेस का अधिवेशन होने जा रहा था। राजीव को पार्टी के एकमेव नेता के रूप में प्रदर्शित करने के लिए पूरा तंत्र सक्रिय हो गया। उस समय तमिलनाडु में राष्ट्रपति शासन लगा हुआ था। 36 हजार की आबादी वाले मरईमलई में राज्य सरकार ने लगभग 500 कर्मचारियों को सुबह से शाम तक की ड्यूटी के साथ स्थाई रूप से नियुक्त कर दिया। मुख्य सचिव और राज्यपाल के प्रधान सलाहकार अधिवेशन की तैयारियों पर नियमित नजर रखे हुए थे। वरिष्ठ अधिकारियों को अधिवेशन स्थल के ग्रामीण क्षेत्र के सौंदर्यीकरण का काम सौंप दिया गया। डीएमके अध्यक्ष एम. करुणानिधि आरोप लगा रहे थे, 'जब राजभवन ही कांग्रेस का प्रचार कार्यालय बन गया है तो और क्या उम्मीद की जा सकती है!'[59]

तकनीक से राजीव के खास लगाव को ध्यान में रखकर नेताओं ने उन्हें खुश करने के लिए कई प्रबंध किए। पूरे कार्यक्रम को कंप्यूटरों की मदद से अंजाम दिया गया। पुराने ढंग के टेलीफोन पर निर्भरता खत्म की गई। पार्टी के पदाधिकारीगण वॉकी-टॉकी के जरिए नेताओं और स्थानीय प्रशासन से संपर्क साधते नजर आ रहे थे। प्रदेश इकाई ने कांग्रेस समर्थक युवाओं की स्थानीय तकनीकी कंपनी की सेवाएं ले रखी थीं। उन युवाओं ने न केवल आगामी विधानसभा चुनाव के प्रबंधन के लिए सॉफ्टवेयर तैयार किया, बल्कि मिनी ऑफसेट प्रिंटिंग मशीनें भी लेकर पहुंचे। मरईमलई में एक कंप्यूटर सेंटर स्थापित किया गया, जहां से प्रस्ताव और पत्र प्रिंट किए जाने थे। जब राजीव ने अपने भाषण की 200 प्रतियां 40 मिनट के भीतर तैयार करने को कहा तो इन प्रबंधों के कारण काम आसान था।[60]

दो दिवसीय अधिवेशन में स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस पूरी तरह राजीव की पार्टी है। पार्टी की छवि और राजीव के नेतृत्व को नए कलेवर के रूप में जनता के सामने पेश करना ही इस

अधिवेशन का उद्देश्य था। लगभग 5 हजार कार्यकर्ताओं की मौजूदगी में हुए अधिवेशन में मतभेद या असहमति का नामोनिशान नहीं था। पार्टी के वरिष्ठतम लोग 'राजीव युग' के नारे लगा रहे थे। अधिवेशन में पारित राजनीतिक प्रस्ताव में राजीव के तीन वर्षों के कार्यकाल को एक ऐसे मिशन के रूप में परिभाषित किया गया, जिसमें भारत की प्राचीन धरोहर को संजोने और आम आदमी की सेवा के लिए तकनीक का उपयोग करने जैसे काम हुए; साथ ही, जनता के सुदृढ़ समर्थन से एक अभूतपूर्व राजनीतिक स्थिरता परिलक्षित हुई। नेताओं के बीच मानो राजीव की सबसे बढ़-चढ़कर तारीफ करने की होड़ लगी हुई थी। पूर्व अभिनेत्री वैजयंती माला ने पूरी ताकत के साथ राजीव जिंदाबाद के नारे लगाए। मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री अर्जुन सिंह ने राजीव को भारत के हर क्षेत्र में विकास की एकमात्र कुंजी घोषित कर दिया। पार्टी कोषाध्यक्ष सीताराम केसरी ने एक कदम आगे बढ़ते हुए ऐलान किया, 'राजीव से देश की समृद्धि जुड़ी हुई है। अगर उनका मनोबल तोड़ा जाता है तो देश का मनोबल टूटता है। हमें उन सभी को बेदखल करना होगा, जो हमारे युवा प्रधानमंत्री पर लांछन लगाने का दुस्साहस करते हैं।'[61]

परंपरागत रूप से विपक्ष की आलोचना करने के बजाए पार्टी से निष्कासित किए गए लोगों पर हमला बोला गया। विशेष रूप से वी.पी. और पूर्व राष्ट्रपति जैल सिंह निशाने पर थे। इस हमले की अगुवाई केंद्रीय गृह मंत्री बूटा सिंह और अर्जुन सिंह कर रहे थे। बूटा सिंह ने यहां तक कह दिया कि राष्ट्रपति भवन विदेशी मुद्रा का हेरफेर करने वालों, तस्करों और कानून द्वारा तलाशे जा रहे लोगों का अड्डा बन गया था। गृह राज्य मंत्री पी. चिंदबरम ने जैल सिंह की राजीव से सूचना प्राप्त करने के अधिकार की बात पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए कहा, 'राजीव गांधी देश के प्रधानमंत्री हैं, राष्ट्रपति के सूचना अधिकारी नहीं।' वी.पी. के खिलाफ बयानों को अधिक आक्रामक बनाने के लिए राजनीतिक प्रस्ताव में कई बार संशोधन किए गए। उन्हें 'झूठ का पैगंबर' बताया गया। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री वीरबहादुर सिंह ने कहा, 'वी.पी. से बड़ा बेईमान इस देश में नहीं हुआ। वो बहुत बड़े धोखेबाज हैं और हमें उनसे देश को बचाना है।' केंद्रीय स्टील और खनन मंत्री माखनलाल फोतेदार ने कहा, 'वी.पी. सिंह ने भारत का मानचित्र भले देखा होगा, लेकिन उन्हें देश की नब्ज का पता नही है।'[62]

राजीव खुद भी नए रूप में सामने आए। तीन वर्ष पहले बंबई अधिवेशन में सत्ता के दलालों को चुनौती देकर और कांग्रेस में बढ़ती अनैतिकता पर हमला बोलकर उन्होंने जो 'मिस्टर क्लीन' की छवि पाई थी, उसमें बदलाव होता साफ दिखाई दे रहा था। राजीव का स्वर बदला हुआ था। उन्होंने कहा, 'कांग्रेस इकलौती पार्टी है, जो गरीब और शोषित से जुड़ाव रखती है; जो वंचितों और दलितों के अधिकारों के लिए लड़ती है। कांग्रेस सिद्धांतों वाली एकमात्र पार्टी है।'[63]

अधिवेशन में सबसे अधिक सक्रिय दिखाई दे रहे चेहरे पार्टी के अंदरूनी संघर्ष की कहानी कह रहे थे। सभी महत्वपूर्ण विषयों पर कार्यकर्तागण महासचिवों की नई तिकड़ी से परामर्श कर रहे थे, जिसमें सीताराम केसरी, गुलाम नबी आजाद और वसुदेव पणिक्कर थे। ऑस्कर

फर्नांडीज से भी राय ली जा रही थी, लेकिन अन्य तीनों की तुलना में कुछ कम। युवा पीढ़ी की भागीदारी भी बढ़ी हुई थी। दो वर्ष पहले महासचिवों की औसत उम्र 50 वर्ष से कहीं अधिक होती थी, जबकि मरईमलई में आधे महासचिव 50 वर्ष से कम के थे। तारिक अनवर, अशोक गहलोत, अहमद पटेल सरीखे उदीयमान राज्यस्तरीय नेताओं ने पूरे समय नीति निर्धारण में मोर्चा संभाल रखा था। जे. वेंगलराव, के.सी. पंत और वसंत साठे जैसे वरिष्ठ केंद्रीय मंत्रियों को केवल मंच पर बैठे रहना था, जबकि संतोषमोहन देव, पी. चिदंबरम और नटवर सिंह राज्य मंत्री होते हुए भी न केवल महत्वपूर्ण प्रस्तावों पर बोलने के लिए चुने गए, बल्कि अति आवश्यक विषयों पर उनसे परामर्श लिया जा रहा था। इन सबके बीच नवलकिशोर, रघुनंदनलाल भाटिया और नजमा हेपतुल्ला साधारण कार्यकर्ताओं के लिए निर्धारित स्थान पर दरकिनार बैठे थे।[64]

सीएजी रिपोर्ट पर साहसिक भूमिका

नवलकिशोर ने बोफोर्स मामले में स्पष्ट रुख अपनाया। भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (सीएजी) टी.एन. चतुर्वेदी ने अप्रेल, 1989 में अपनी वार्षिक रिपोर्ट सुपुर्द की। इस रिपोर्ट में एक अध्याय बोफोर्स सौदे के संबंध में था। उस समय बजट सत्र चल रहा था। आमतौर पर उस दौरान सीएजी की रिपोर्ट संसद के समक्ष रखी जाती है और फिर उसे सार्वजनिक लेखा समिति (पीएसी) को भेजा जाता है, लेकिन बोफोर्स का उल्लेख होने के कारण पहले इसे अंदरूनी तौर पर देखने का फैसला हुआ। उसी दौरान राष्ट्रपति आर. वेंकटरमन ने गृह मंत्री बूटा सिंह, संसदीय मामलों की मंत्री शीला दीक्षित और राजीव को यह सलाह दी कि बोफोर्स मामले में सीएजी की रिपोर्ट सदन के पटल पर रखें। राष्ट्रपति ने यह भी कहा कि लोकसभा के चालू सत्र का कार्यकाल खत्म होने का इंतजार करने के बजाए मानसून सत्र को छोड़कर अक्टूबर-नवम्बर में आम चुनाव करवा सकते हैं। लेकिन बजट सत्र खत्म होने तक सीएजी की रिपोर्ट नहीं रखी गई।[65] राजीव को उनके सहयोगियों ने सुझाव दिया कि रिपोर्ट को मानसून सत्र के पहले दिन संसद में पेश किया जाए।[66]

संसद में पेश किए जाने से पहले ही यह रिपोर्ट मीडिया के हाथ लग गई। रिपोर्ट में सरकार को प्रक्रियागत गलतियों का दोषी पाया गया और यह भी कहा गया कि कमीशन एजेंट रखे गए थे और उन्हें भुगतान हुआ था।[67] सीएजी ने इस बात को रेखांकित किया था कि 1982 से 1985 के बीच सेना मुख्यालय ने छह अवसरों पर सोफमा तोप के बेहतर होने का संकेत दिया था, लेकिन फरवरी, 1986 में उसने बोफोर्स की सिफारिश की और इस बदलाव का कारण स्पष्ट नहीं है। रिपोर्ट में यह भी कहा गया कि 24 मार्च, 1986 को प्रधानमंत्री कार्यालय ने सूचना दी थी कि प्रधानमंत्री ने तुलनात्मक अध्ययन के संबंध में नए निर्देश दिए हैं और उन्हें अलग से प्रेषित किया जाएगा, लेकिन इन निर्देशों का इंतजार किए बिना उसी दिन सौदे पर हस्ताक्षर कर दिए गए। तत्कालीन रक्षा सचिव एस.के. भटनागर ने 22 मार्च को एयरपोर्ट पर अरुण सिंह से सौदे पर हस्ताक्षर किए जाने के बारे में बात की थी। सीएजी ने भटनागर

के संस्मरण को रिपोर्ट में उद्धृत किया, जिसमें उन्होंने लिखा था कि अरुण सिंह ने उन्हें 'अपना आशीर्वाद दे दिया'।[68]

रिपोर्ट को लेकर संसद के दोनों सदनों में हंगामा हुआ और विपक्ष ने प्रधानमंत्री से इस्तीफे की मांग की। सीएजी की रिपोर्ट के मामले में सामान्य प्रक्रिया यह चली आ रही थी कि उसे सदन में पेश किए जाने के बाद मान लिया जाता और लोक लेखा समिति को भेज दिया जाता। समिति की जांच और उसकी रिपोर्ट आने के बाद सरकार उसकी सिफारिशों की अनुपालना करती। इस पर सदन में चर्चा नहीं होती, लेकिन सदस्य सीएजी द्वारा बताई गई गलतियों पर धीरज के साथ चर्चा कर सकते थे। इसलिए जब विपक्ष ने मांग की तो सरकार ने रिपोर्ट पर चर्चा की बात मान ली। लेकिन दोनों पक्ष सही प्रक्रिया अपनाने में नाकाम रहे। 18 से 21 जुलाई, 1989 तक विपक्ष ने लोकसभा की कार्यवाही नहीं चलने दी। इसके बाद लोकसभा के 106 सदस्यों का नाटकीय इस्तीफा आ गया। इससे कुछ नए सदस्यों को पेंशन और कार्यकाल की शेष अवधि की परिलब्धियों का नुकसान भी हुआ। इसके बावजूद उन सांसदों ने अपना विरोध दर्ज करवाने के लिए इनकी बलि चढ़ा दी।[69]

इससे भी बुरा यह हुआ कि सत्ता पक्ष के लोगों ने सीएजी पर हमला किया और उनके लिए ऐसे शब्दों का इस्तेमाल किया, जिनका संसद में कहा जाना अशोभनीय है। उन्हें वी.पी. का मित्र बताया जाने लगा और कहा गया कि कार्यकाल विस्तार नहीं मिलने के कारण उन्होंने सरकार की आलोचना की। ऐसे ही आरोप तत्कालीन सेनाध्यक्ष जनरल कृष्णास्वामी सुंदरजी पर भी लगाए गए। केंद्रीय उद्योग मंत्री वेंगल राव ने इस मुहिम की शुरुआत की, जिसके बाद यहां तक कहा गया कि सुंदरजी राज्यपाल पद नहीं मिलने के कारण सरकार को कठघरे में खड़ा करने की कोशिश कर रहे हैं।[70]

उस माहौल में सिर्फ नवलकिशोर ने खुलकर कहा कि सीएजी के खिलाफ इस तरह की बयानबाजी उचित नहीं है। उन्होंने कहा कि सीएजी की रिपोर्ट ने न सिर्फ एक राष्ट्रीय विस्फोट किया है, बल्कि इसका प्रमाण भी दिया है कि अभी भी कुछ असैनिक अधिकारी हैं, जो अपने कर्तव्य का पालन ईमानदारी से और निर्भय होकर करने में सक्षम हैं। उन्होंने चेतावनी दी कि देश की महत्वपूर्ण संस्थाओं को कमजोर किया जा रहा है, जो देश के लिए नुकसानदेह होगा। उनका कहना था कि सीएजी की रिपोर्ट से देश में परिवर्तन की एक प्रक्रिया शुरू हो गई है। वरिष्ठ नेता चंद्रशेखर तक ने संपादकीय लिखकर नवलकिशोर के इस वक्तव्य की प्रशंसा की*।[71]

---

*चंद्रशेखर आगे भी नवलकिशोर के प्रशंसक बने रहे। 13 मई, 1999 को वे पानीपत में खादी-ग्रामोद्योग से जुड़े एक कार्यक्रम में शामिल हुए, जिसकी अध्यक्षता नवलकिशोर कर रहे थे। अपने संबोधन के दौरान चंद्रशेखर ने नवलकिशोर के प्रति आत्मीय भाव दिखाया। वे नवलकिशोर की तरफ देखते हुए बोले, 'नवलजी, आप और हम उस लोकसभा के सदस्य थे, जिसने कहा कि विदेशियो आओ और हमें बचाओ। अगर विश्व बैंक और आईएमएफ मदद नहीं करेंगे तो हम डूब जाएंगे। गांधीजी ने कहा था कि विदेशियो यहां से जाओ, भारत के लोग खुद अपना देश बना लेंगे। गांधीजी को लोगों की शक्ति पर विश्वास था, विदेशी कंपनियों और पूंजीपतियों पर नहीं। हमें इस देश के लोगों की शक्ति और मेधा पर भरोसा नहीं है। हम अपने लोगों के आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता को तोड़ रहे हैं। इससे जो भारत बन रहा है, वह स्वतंत्रता सेनानियों के सपनों और उनकी त्याग-तपस्या के साथ धोखा है।' (प्रभाष जोशी: जीने के बहाने, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 355-356)

राष्ट्रपति ने भी राजीव से कहा कि सत्ता पक्ष द्वारा सीएजी पर हमला दुर्भाग्यपूर्ण है और लोकतंत्र के हित में सरकार को इस उच्च पद की मर्यादा की रक्षा करनी चाहिए थी। राजीव भी पार्टी सदस्यों की भाषा से खुश नहीं थे, लेकिन उनका मानना था कि सीएजी की रिपोर्ट पर चर्चा करने के लिए राजी होकर उन्होंने विशेष कार्य किया है, जबकि ऐसी परंपरा नहीं थी। राजीव ने राष्ट्रपति से कहा कि शांतिपूर्ण चर्चा में वे कैसी भी निंदा का सामना करने को तैयार हैं। उनका कहना था कि विपक्ष ने कार्रवाई में बाधा डालने की रणनीति राजनीतिक और चुनावी लाभ पाने के लिए अपनाई है। उन्होंने विश्वास के साथ कहा कि आम चुनाव में वे चुनौती का सामना करने में सक्षम हैं।[72]

उसी दौरान पंचायती राज को सुधारने की योजना के साथ ही स्थानीय शासन की नगरपालिकाओं के लिए भी संविधान में संशोधन का निर्णय केंद्र सरकार ने लिया। इसलिए संसद में संविधान के 64वें और 65वें संशोधन के रूप में दो विधेयक प्रस्तुत किए गए। जुलाई, 1989 में लोकसभा में प्रस्तुत संविधान संशोधन विधेयक (64वां संशोधन) में पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक स्थिति देने की व्यवस्था की गई थी। लेकिन 64वां संशोधन विधेयक राज्यसभा में अपेक्षित बहुमत के अभाव में पारित नहीं हो पाया। राज्यसभा में विधेयक पारित नहीं होने के बाद से राजीव विपक्ष पर बरस पड़े। उन्हें चुनावी मुद्दा मिल गया लगता था। विपक्ष बोफोर्स के मुद्दे पर राजीव को आरोपों के कटघरे में खड़े किए हुए था। उम्मीदवारों के चुनाव और मतदान की तैयारियों के लिए बहुत कम समय बचा था; राष्ट्रपति ने भी इसे लेकर शंकाएं व्यक्त की। लेकिन राजीव आश्वस्त थे।[73]

1989 के लोकसभा चुनाव में राजीव की मिस्टर क्लीन की छवि धूल धूसरित हो गई। विपक्ष उनके बार-बार कहे जाने वाले वाक्यों 'देख रहे हैं, देखेंगे' का मजाक उड़ाने लगा। हालांकि राजीव पर दलाली का आरोप लगाने वाले राजनेता तब तक अपना आरोप साबित नहीं कर सके थे, लेकिन जनता ने उन्हें लगभग दोषी माना। विपक्ष की राजनीति का केंद्रबिंदु बने वी.पी. जहां भी गए, जनता ने उनका भव्य स्वागत किया और उनके लिए पलक-पांवड़े बिछा दिए। उन्होंने कभी जनता को दिवास्वप्नों के बीच नहीं तैराया; न कभी उन्हें महल मुहैया कराने या गरीबी दूर कर देने जैसे सवालों में भटकाने की कोशिश की, लेकिन इतना जरूर कहा, 'रक्षा सौदों में दलाली मुझसे देखी नहीं गई। मैं यह सब कैसे चलने देता? मैंने सोचा कि जब मेरा शरीर जलकर राख हो जाएगा और इस राख को जमीन में बिखरा दिया जाएगा तो मैं अपनी मातृभूमि को क्या जवाब दूंगा.. कि मैं नमकहराम था?' राजीव पर व्यंग्य करते हुए वे हर सभा में कहते, 'भारत पर इतनी मुसीबत है, लेकिन राजीव हर समय टेलीविजन पर मुस्कुराते हैं.. अपनी चाल पर, हमारे हाल पर या स्विट्जरलैंड के माल पर?' लोग ये बातें सुनकर वी.पी. समर्थक नारों से आसमान गुंजाने लगते।[74]

रामजन्मभूमि मुक्ति का आंदोलन अलग से जोर पकड़ रहा था। देश के बहुसंख्यक हिंदू समाज के दिमाग में यह बात उतरती जा रही थी कि रामजन्मभूमि पर बने मंदिर को तोड़कर मस्जिद बनाई गई थी, इसलिए अगर वहां मंदिर बनाने की मांग हो रही है तो गलत नहीं है।

रामजन्मभूमि मुक्ति के नाम पर आयोजित यात्राओं का देश भर में व्यापक स्तर पर स्वागत हुआ। रामजन्मभूमि मुक्ति का संकल्प लेने के लिए बार-बार जनता उमड़ पड़ती। इस मिले-जुले माहौल ने कांग्रेस की हार चुनाव परिणामों के पहले ही लिख दी थी। राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस 197 सीटों पर सिमट गई। 1984 के मुकाबले उसे आधी से भी कम सीटें मिलीं। दूसरी ओर, जनता दल को 143 सीटों पर जीत प्राप्त हुई। जो भाजपा पांच साल पहले सिर्फ दो सीटों तक सीमित थी, उसे 85 सीटें मिली। दोनों कम्युनिस्ट पार्टियों ने 45 सीटें जीत लीं। इस तरह कांग्रेस के किसी भी तरह सत्ता में आने का रास्ता नहीं बचा।

संदर्भ सूची

1. विनय सीतापतिः आधा शेर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ 149
2. माखनलाल फोतेदारः द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 140–141
3. गोपाल शर्मा; आजादी के बाद, प्रकाशन, जयपुर, 1996, पृष्ठ 175
4. बी.जी. देशमुखः अ कैबिनेट सेक्रेटरी लुक्स बैक, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 141–142
5. सागरिका घोषः इंदिरा, जगरनॉट बुक्स, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 288
6. बी.जी. देशमुखः अ कैबिनेट सेक्रेटरी लुक्स बैक, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 142
7. वही, पृष्ठ 143–144
8. इंडिया टुडे, 31 मार्च, 1985
9. प्रभु चावलाः इंडिया टुडे, 31 अगस्त, 1988
10. जी.वी. रामकृष्णः टू स्कोर एंड टेन, एकेडमिक फाउंडेशन, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 85–86
11. वही, पृष्ठ 86–87
12. इंडिया टुडे, 31 मार्च, 1985
13. एसपीजी अधिकारी नरेशचंद्र गोसाईं और क्वात्रोच्चि के ड्राइवर शशिधरन के सीबीआई जांच में बयान/ इंडिया टुडे, 17 जनवरी, 2011
14. जी.वी. रामकृष्णः टू स्कोर एंड टेन, एकेडमिक फाउंडेशन, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 87–88
15. राजीव गांधी को भेजे गए इस्तीफे की प्रति, 30 अक्टूबर, 1985
16. जी.वी. रामकृष्णः टू स्कोर एंड टेन, एकेडमिक फाउंडेशन, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 88–89
17. रामबहादुर रायः विश्वनाथ प्रताप सिंह–मंजिल से ज्यादा सफर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 191
18. वही, पृष्ठ 191
19. रामबहादुर रायः विश्वनाथ प्रताप सिंह–मंजिल से ज्यादा सफर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 191
20. जी.वी. रामकृष्णः टू स्कोर एंड टेन, एकेडमिक फाउंडेशन, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 90

21. बी.जी. देशमुखः अ कैबिनेट सेक्रेटरी लुक्स बैक, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 142
22. जी.वी. रामकृष्णः टू स्कोर एंड टेन, एकेडमिक फाउंडेशन, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 91
23. प्रभु चावलाः इंडिया टुडे, 31 मई, 1986
24. वही
25. माखनलाल फोतेदार; द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 226
26. वही, पृष्ठ 227
27. वही, पृष्ठ 227
28. बी.जी. देशमुखः अ कैबिनेट सेक्रेटरी लुक्स बैक, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 177
29. जी.वी. रामकृष्णः टू स्कोर एंड टेन, एकेडमिक फाउंडेशन, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 91–92
30. वही, पृष्ठ 94
31. गोपाल शर्माः जयपुर महानगर टाइम्स, 5 जुलाई, 2014
32. टीएफआई पोस्ट, 8 जनवरी, 2020
33. बी.जी. देशमुखः अ कैबिनेट सेक्रेटरी लुक्स बैक, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 200
34. रामबहादुर रायः मंजिल से ज्यादा सफर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 224–225
35. वही, पृष्ठ 227
36. बी.जी. देशमुखः अ कैबिनेट सेक्रेटरी लुक्स बैक, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 220
37. फ्रंटलाइन, 28 अक्टूबर, 2000
38. बी.जी. देशमुखः अ कैबिनेट सेक्रेटरी लुक्स बैक, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 223
39. रमेश चंद्रन और प्रभु चावलाः इंडिया टुडे, 30 जून, 1987
40. बी.जी. देशमुखः अ कैबिनेट सेक्रेटरी लुक्स बैक, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 220
41. रामबहादुर रायः मंजिल से ज्यादा सफर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 230
42. राजीव गांधीः भाषण का मूल पाठ, 16 मई 1987
43. वही
44. रामबहादुर रायः मंजिल से ज्यादा सफर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 230

45. रमेश चंद्रन और प्रभु चावला: इंडिया टुडे, 30 जून, 1987
46. गोपाल शर्मा; आजादी के बाद, प्रकाशन, जयपुर, 1996, पृष्ठ 175
47. माखनलाल फोतेदार; द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 228
48. इंद्रजीत बढ़वार और प्रभु चावला: इंडिया टुडे, 15 अगस्त, 1987
49. विष्णु मोदी, पूर्व सांसद के संस्मरण
50. रमेश चंद्रन और प्रभु चावला: इंडिया टुडे, 30 जून, 1987
51. वही
52. प्रभु चावला: इंडिया टुडे, 30 सितम्बर, 1987
53. बी.जी. देशमुख: अ कैबिनेट सेक्रेटरी लुक्स बैक, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 220-222
54. रमेश चंद्रन और प्रभु चावला: इंडिया टुडे, 30 जून, 1987
55. वही
56. वही
57. आर. वेंकटरमन: जब मैं राष्ट्रपति था, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 68
58. वही, पृष्ठ 47
59. एस.एच. वेंकटरमण: इंडिया टुडे, 30 अप्रेल, 1988
60. एस.एच. वेंकटरमण और प्रभु चावला: इंडिया टुडे, 15 मई, 1988
61. वही
62. वही
63. वही
64. वही
65. आर. वेंकटरमन: जब मैं राष्ट्रपति था, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 242
66. बी.जी. देशमुख: अ कैबिनेट सेक्रेटरी लुक्स बैक, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 223
67. आर. वेंकटरमन: जब मैं राष्ट्रपति था, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 242
68. रमिंदर सिंह और परंजय गुहा ठाकुरटा: इंडिया टुडे, 15 अगस्त, 1989
69. आर. वेंकटरमन: जब मैं राष्ट्रपति था, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 243
70. चंद्रशेखर: यंग इंडियन, 19 सितम्बर, 1989/ दलीय घेरे के बाहर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 163
71. वही, पृष्ठ 164
72. आर. वेंकटरमन: जब मैं राष्ट्रपति था, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 243

73. वही, पृष्ठ 255
74. गोपाल शर्मा: आजादी के बाद, प्रज्ञा प्रकाशन, जयपुर, 1997, पृष्ठ 146–147

असंतुष्टों का नेतृत्व

हम चाहते थे कि हरिदेव जोशी राजस्थान में ही रहकर हमारा मार्गदर्शन करते, राजस्थान को उनकी आवश्यकता है। मुझे प्रसन्नता नहीं है कि उन्हें राज्यपाल बनाया गया। संभवत: जोशी भी मानसिक रूप से इसके लिए तैयार नहीं थे कि उन्हें रिटायरमेंट का जीवन मिले। लेकिन वे अनुशासनप्रिय व्यक्ति हैं और उन्होंने नेता के आदेश का पालन किया है।

–नवलकिशोर शर्मा

नवलकिशोर शर्मा ने जयपुर लौटकर राजस्थान की राजनीति में फिर से रुचि लेना शुरू किया, जहां हरिदेव जोशी को मुख्यमंत्री पद से हटाने की मुहिम जोर पकड़ रही थी। यह आश्चर्यजनक था कि राजीव गांधी भी इस विषय को महत्व दे रहे थे। अरुण नेहरू, आरिफ मोहम्मद खान और विद्याचरण शुक्ल को कांग्रेस से निकालने, अमिताभ बच्चन को प्रधानमंत्री आवास बुलाकर अचानक लोकसभा से इस्तीफा लेने, वी.पी. सिंह को निष्कासित करने जैसे महत्वपूर्ण फैसलों के बीच भी उनकी निगाह राजस्थान की असंतुष्ट गतिविधियों पर बनी हुई थी। उस दौरान उन्होंने केंद्रीय मंत्री रामनिवास मिर्धा और प्रदेश अध्यक्ष अशोक गहलोत के नेतृत्व में राजस्थान के असंतुष्ट सांसदों–विधायकों से मुलाकात की। इनमें सी.पी. जोशी, बी.डी. कल्ला, भंवरलाल पंवार, नरेन्द्र बुढ़ानिया, राजेंद्र चौधरी, अयूब खान, अश्क अली टांक, भुवनेश चतुर्वेदी, दीनबंधु वर्मा, मदन महाराजा, खेमराज कटारा, चंद्रशेखर शर्मा, माधवसिंह दीवान, लक्ष्मण सिंह, जयनारायण बैरवा और बाबूलाल बैरवा शामिल थे। इन नेताओं ने जोशी सरकार के प्रति असंतोष प्रकट किया। राजीव ने इन नेताओं को ध्यान से सुना और हंसते हुए ग्रुप फोटो भी खिंचवाई।[1]

दूसरी ओर, जोशी अपनी कुर्सी बचाने के प्रयासों में जुटे रहे। 17 जुलाई, 1987 को उन्होंने अपने शासन की उपलब्धियां बताने के लिए एक 15 पृष्ठ की पुस्तिका जारी की, जिसका नाम था: 'हमारे विनम्र प्रयास'। इस पुस्तिका में सातवीं पंचवर्षीय योजना के प्रथम तीन वर्षों की उपलब्धियों की तुलना छठी पंचवर्षीय योजना से भी की गई थी, जिन पांच वर्षों में जगन्नाथ पहाड़िया और शिवचरण माथुर मुख्यमंत्री थे। पुस्तिका में बताया गया कि जून, 1981 में 7

लाख 35 हजार मजदूर काम पर लगाए गए जबकि जून, 1987 में 14 लाख 52 हजार मजदूरों को काम मिला हुआ था। माथुर ने कहा कि जोशी जानबूझकर पूर्ववर्ती कांग्रेसी सरकारों को बदनाम कर रहे हैं। साथ ही, माथुर इस बात पर भी नाराज थे कि आतंकवादी मोहन इंदर सिंह का बयान मुख्यमंत्री के दफ्तर से बांटा गया, जिसमें इस आतंकवादी ने माथुर के पुत्र प्रदीप माथुर द्वारा 2 जीप हथियारों से भरकर स्वर्ण मंदिर भेजने की बात कही थी। माथुर ने यह भी आरोप लगाया कि यह बात मोहन इंदर सिंह ने नहीं कही है, बल्कि एक पुलिस अधिकारी ने अपनी चालबाजी से इस बात को बयानों में शामिल किया है।[2]

जोशी से माथुर और पहाड़िया नाराज तो चल रहे थे, लेकिन इन दोनों के व्यक्तिगत समर्थक विधायकों की संख्या 5–7 से ज्यादा नहीं हो पाने की वजह से खुद को असहाय पा रहे थे। उस समय तक इनकी कोशिश मुख्यमंत्री बदलने की नहीं, बल्कि अपने समर्थकों के काम करवाते रहने की थी। इसी बीच, प्रदेश अध्यक्ष गहलोत ने मंत्रियों तक को निर्देश देने जारी कर दिए। एक प्रधान की बर्खास्तगी का मामला आया तो उन्होंने उपाध्याय और माथुर को कारण बताओ नोटिस जारी कर दिया। हालांकि यह मामला बाद में रफा–दफा कर दिया गया, लेकिन गहलोत ने शक्ति केंद्र बनने की मुहिम जारी रखी। गहलोत और जोशी में लगातार टकराव शुरू हुआ। प्रदेश से जुड़े केंद्रीय नेताओं में रामनिवास मिर्धा इसलिए नाराज रहे क्योंकि नागौर में उनसे ज्यादा नाथूराम मिर्धा और कल्याणसिंह कालवी की चलती रही।[3]

राजीव की जोशी के प्रति पहली बार नाराजगी तब हुई, जब जोशी ने उन्हें टेलेक्स भेजकर मांग की कि रावी–व्यास जल विवाद के निपटारे के लिए बनाए जा रहे पंचाट के क्षेत्र में राजस्थान को शामिल नहीं किया जाए क्योंकि रावी–व्यास जल विवाद सिर्फ हरियाणा और पंजाब के बीच की समस्या है। राजीव को जोशी की यह हिम्मत बर्दाश्त नहीं हुई और उन्होंने तत्काल बी. शंकरानंद को जयपुर भेजा। शंकरानंद ने सांगानेर हवाई अड्डे पर जोशी को राजीव की नाराजगी की बात बताई और उन्हें इस विषय में चुप रहने का निर्देश दिया। राजीव के मन में यह बात भी गहरे तक भरी गई थी कि जोशी अरुण नेहरू के ज्यादा नजदीक हैं और मौका पड़ने पर उनके साथ जा सकते हैं।[4]

नाराजगी का दूसरा अवसर था, जब 1986 में नव वर्ष पर राजीव रणथंभौर आए। मुख्यमंत्री जोशी उनकी आवभगत करना चाहते थे। जोशी मंत्रिमंडल के सदस्य नरेन्द्रसिंह भाटी संजय गांधी के समय से गांधी परिवार से जुड़े हुए थे। जोशी ने राजीव के स्वागत के संदर्भ में भाटी से मशविरा किया तो भाटी ने उन्हें यह कहकर रोक दिया कि राजीव ऐसा नहीं चाहते हैं। लेकिन फरवरी, 1986 में जब जोशी दिल्ली गए तो राजीव ने अपनी अप्रसन्नता व्यक्त की कि एक मुख्यमंत्री को प्रधानमंत्री का अपने राज्य में औपचारिक सम्मान तो करना ही चाहिए था। जोशी ने प्रधानमंत्री को भाटी की भूमिका की पूरी जानकारी दी। इस पर राजीव ने भाटी को तुरंत पदमुक्त करने को कहा।[5]

सितम्बर, 1987 में रूपकंवर सती प्रकरण के दौरान उजागर हुई राजनीतिक शिथिलता से जोशी सरकार कठघरे में खड़ी हो गई। संसद में इस विषय पर व्यापक बहस हुई और कार्रवाई

नहीं करने के लिए राज्य सरकार की आलोचना हुई। कांग्रेस के अनेक राष्ट्रीय नेताओं का मानना था कि राजस्थान में कांग्रेस की सरकार होने के कारण इस मामले को सावधानी से सुलझाया जाना चाहिए ताकि मुख्यमंत्री और पार्टी को शर्मिंदगी नहीं उठानी पड़े। महिला एवं बाल विकास मंत्री मार्गरेट अल्वा ने संसद में राजस्थान सरकार का बचाव किया। साथ ही, उन्होंने स्पष्ट किया कि यह विषय महिला के खिलाफ हिंसा से जुड़ा हुआ है और धार्मिक-सांस्कृतिक मान्यता प्राप्त होने के बावजूद सती प्रथा स्वीकार्य नहीं हो सकती। उन्होंने सदन को आश्वासन दिया कि दोषियों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई की जाएगी। जोशी ने भी आलाकमान को आश्वस्त किया था कि सती स्थल की घेरेबंदी की जा रही है और वहां कोई भी पारंपरिक समारोह नहीं होने दिया जाएगा। इसके बावजूद सती के 13वें दिन आयोजित चूंदड़ी महोत्सव में कई लाख लोग जमा हुए; मेले का आयोजन हुआ और टी.वी. पर प्रसारण किया गया।[6] अल्वा इससे बहुत नाराज हुईं। वे राजीव के पास गईं और अपना इस्तीफा सौंपते हुए कहा, 'मैं इस मामले का और बचाव नहीं कर सकती।' इस पर राजीव ने कहा, 'आप क्यों इस्तीफा दे रही हैं? आप जिम्मेदार नहीं हैं। इस्तीफा वह व्यक्ति दे, जिसकी जिम्मेदारी है।' अल्वा के अनुसार, राजीव ने जोशी को टेलीफोन किया और सीधे शब्दों में कह दिया, 'आपने मुझे शर्मिंदा किया है। राज्यपाल के पास जाइए और अपना इस्तीफा सौंपिए।'[7] हालांकि अल्वा के संस्मरण घटनाओं से मेल नहीं खाते। सती प्रकरण और जोशी के इस्तीफे के संबंध में अल्वा के कथन के बारे में पूछे जाने पर गहलोत का कहना था, 'जोशी के इस्तीफे के पीछे वह कारण नहीं था।' इसके आगे वे कुछ नहीं बोले।[8]

निर्णायक घटना सरिस्का टाइगर रिजर्व में केंद्रीय मंत्रिमंडल की 18-19 दिसम्बर, 1987 को संपन्न बैठक की थी। राजीव का निर्देश था कि इस बैठक के समय अन्य कोई कार्यक्रम नहीं रखा जाए और स्वागत-सम्मान में कोई खर्चा नहीं हो। पूर्ण सादगी के साथ सभी सुरक्षा व्यवस्था की जाए। सभी व्यवस्थाएं उसी प्रकार आयोजित की गईं। प्रधानमंत्री स्वयं अपनी गाड़ी चलाते हुए आए। उनके आगे पायलट की गाड़ी भी नहीं थी। अचानक राजीव सरिस्का से पहले एक मोड़ पर मुड़ गए। वह आरक्षित गैराज था। कई ड्राइवर खड़े थे। उन्होंने प्रधानमंत्री को देखकर हंसी-ठिठौली करना शुरू कर दिया, जो राजीव ने सुन लिया। सड़क पर मार्क के लिए चूने की पट्टी बनाई गई थी, जिसके लिए जोशी विरोधियों ने राजीव से शिकायत की कि उनके निर्देश के बावजूद सड़क को सफेद पेंट किया गया है और लाखों रुपया खर्च कर दिया।[9]

जब सरिस्का में जोशी राजीव को माला पहनाने लगे तो राजीव ने उनका हाथ झटक दिया और कहा, 'रहने दीजिए माला।' जोशी का चेहरा उतर गया। वे 'टाइगर डेन' के कमरे में बंद होकर बैठ गए। बाद में राजीव ने उन्हें बुलवाया। जोशी को उनके निकट सहयोगियों ने कहा कि उनके अपमान को देखते हुए उन्हें इस्तीफा दे देना चाहिए। जोशी ने तुरंत कहा, 'बंधु, नेहरू परिवार में सबको गुस्सा आता है। इंदिराजी को भी आता था। कोई खास बात नहीं है। सब ठीक हो जाएगा।'[10]

उस दौरान राष्ट्रीय स्तर पर राजीव की राजनीतिक कठिनाइयां बढ़ती जा रही थीं। दूसरी तरफ, राजस्थान के असंतुष्ट उनसे जोशी के बारे में फैसला लेने का आग्रह कर रहे थे। माथुर का कहना था, 'सती प्रकरण में शुरू से ध्यान दिया जाता तो इतनी बड़ी समस्या नहीं आती। ..लेकिन मुख्यमंत्री में नैतिक बल होना चाहिए। स्वामी अग्निवेश की पदयात्रा रोके जाने के बजाए उन्हें संरक्षण देना चाहिए था। धारा 144 लगी है और लोग हथियार लेकर सिविल लाइंस में घुस जाएं.. विधानसभा में पहुंच जाएं! उन्हें रोका जाना चाहिए था।' विधायक अश्क अली टांक ने कहा, 'मैंने फतेहपुर से चुनाव लड़ा, जहां मैं चुनाव से पहले गया भी नहीं था। राजीव गांधी के नाम पर मैं चुनाव जीतकर आया। उस समय 39 विधायक ऐसे चुनकर आए, जिनकी उम्र 40 वर्ष से कम थी। मतदाताओं में भी 62 प्रतिशत संख्या उन लोगों की है, जिनका जन्म आजादी के बाद हुआ। राजस्थान के संदर्भ में मेरा मानना है कि जिन मतदाताओं ने हमें चुनकर भेजा है, उन्हें संतुष्ट नहीं किया जा सका है। हम लोग 62 प्रतिशत युवाओं की बात पूरी तरह सरकार से नहीं मनवा पाए हैं।' विधायक राजेंद्र चौधरी और मुखर थे, 'हम सोचते थे कि हमारी सरकार चलेगी, लेकिन धीरे-धीरे हमने महसूस किया कि जोशी सरकार कांग्रेस और राजीव गांधी की भावनाओं के माफिक होने में सफल नहीं हो पा रही है। हमारी सरकार जितनी संवेदनशील होनी चाहिए, उतनी नहीं है।' एक अन्य विधायक जयनारायण बैरवा का आरोप था, 'प्रदेश में भैरोंसिंह शेखावत और नाथूराम मिर्धा की चलती है। हरिदेव जोशी के शासन में कांग्रेस का आम कार्यकर्ता निराश है। अकाल में घोषणाएं ज्यादा हो रही हैं, काम कम हो रहे हैं। आम आदमी को जो राहत मिलनी चाहिए थी, वह नहीं मिल रही है। इसलिए हम जोशी से असंतुष्ट हैं।'[11]

जोशी पर राजनीतिक हलके में भेदभाव करने के आरोप लगाए गए। असंतुष्टों का आरोप था कि राजीव ने कांग्रेस महासचिव रहने के दौरान जोधपुर की सभा में आश्वासन दिया था कि इंदिरा गांधी नहर से जोधपुर को पानी दिलवाया जाएगा, लेकिन जोशी ने मुख्यमंत्री बनते ही यह योजना रद्द करके दूसरी योजना पर काम चालू कर दिया। अमिताभ बच्चन भी जोशी से गहरी खुंदक खाए हुए थे। बच्चन ने लोकसभा से इस्तीफा दिया तो अकेले जोशी ऐसे वरिष्ठ कांग्रेस नेता थे, जिन्होंने अमिताभ के इस कदम का स्वागत किया और कहा कि अमिताभ को यह फैसला पहले ही ले लेना चाहिए था। जोशी ने यह भी कहा कि जो लोग पार्टी और नेताओं की छवि को नुकसान पहुंचा रहे हैं, उनका अलग होना जरूरी है। बूटा सिंह भी जोशी से नाराज थे। अधीनस्थ डी.एस.पी. की पत्नी से बलात्कार करने की कोशिश के आरोप में निलंबित पुलिस अधीक्षक को बहाल किए जाने के लिए बूटा सिंह ने कई बार जोशी को कहा था, लेकिन जोशी ने बहाल नहीं किया।[12]

इन सबको जोशी ने नाखुश किया ही; अपने प्रतिद्वंद्वी बन सकने वाले माथुर और पहाड़िया को भी खुश रखने की परवाह नहीं की। पहाड़िया की सांसद पत्नी शांति पहाड़िया ने जोशी के कार्यकाल में कई बार आरोप लगाया था कि उन लोगों को जानबूझकर सरकार द्वारा परेशान किया जा रहा है और उनके निकटवर्ती रिश्तेदारों को डकैत बताकर गिरफ्तार करने की

कोशिश हो रही है। माथुर को पहली शिकायत यह हुई कि उनसे सरकार द्वारा आवंटित बंगला खाली करवाने की कोशिश की जा रही है, जिसमें वे सामाजिक नीति शोध संस्थान का दफ्तर चलाते हैं। दूसरी तरफ, जोशी का कहना था कि माथुर को सरकारी बंगला रहने के लिए दिया हुआ है और वे अपने बनवाए हुए मकान में रहते हैं, इसलिए उन्हें सरकारी बंगला खाली कर देना चाहिए। इस घटना के बाद ही माथुर और उनके कतिपय समर्थक विधायकों ने दिल्ली के चक्कर लगाने शुरू किए। माथुर ने आरोप लगाया कि राज्य सरकार अकाल राहत कार्यों के क्रियान्वयन में भेदभाव बरत रही है। उन्होंने अपने क्षेत्र में पुलिस अत्याचार, रिश्वतखोरी, चिकित्सा अव्यवस्था इत्यादि की अनेक शिकायतों का जिक्र करते हुए कहा कि सरकार की यही चाल रही तो स्थिति बेकाबू हो जाएगी।[13]

इस तरह, जोशी के खिलाफ माथुर, गहलोत, पहाड़िया, मिर्धा और बूटा सिंह थे, लेकिन ये सब मिलकर भी विधायकों का बहुमत अपनी ओर जुटाने में सक्षम नहीं हो पा रहे थे। इसी बात का महत्वपूर्ण पहलू यह भी था कि ये सब लोग जोशी विरोधी होते हुए भी आपस में एक नहीं थे। इनके एक होने की भूमिका तब तैयार हुई, जब माथुर के पक्ष में गहलोत ने आवाज बुलंद की। इन लोगों ने दोहरी रणनीति तैयार की; कुछ ऐसे विधायक तैयार किए, जो खुलेआम जोशी सरकार की आलोचना कर सकें और साथ ही, राजीव को भी तैयार कर सकें। असली काम राजीव को तैयार करने का ही था। जोशी विरोधियों को पहली सफलता तब मिली, जब राजीव ने बूटा सिंह से कहा कि वे राजस्थान सरकार पर एक रिपोर्ट बनाकर दें और इसके बाद माथुर–गहलोत समर्थकों ने अपनी मुहिम तेज कर दी। रोज जिलेवार प्रतिनिधिमंडल दिल्ली जाने लगे, जो राजीव सहित दूसरे नेताओं को बताते कि जोशी सरकार में विपक्षी दलों की बात ज्यादा मानी जा रही है; राहत कार्यों में ढिलाई बरती जा रही है, कांग्रेस कार्यकर्ताओं की अवमानना हो रही है और सती समर्थकों को छूट दी जा रही है। 24 नवम्बर से 12 दिसम्बर तक यह सघन अभियान चलाकर असंतुष्ट जयपुर लौट आए। उन्हें अहसास हो गया था कि जोशी सरकार के दिन पूरे हो रहे हैं। कांग्रेस महासचिव नरेशचंद्र चतुर्वेदी ने राजस्थान प्रदेश कांग्रेस कार्यालय में कहा, 'यदि आलाकमान चाहता है तो कोई पापी भी मुख्यमंत्री बना रहेगा और आलाकमान चाहेगा तो किसी धर्मात्मा को भी गद्दी छोड़नी होगी।'[14]

जोशी ने असंतुष्टों का मुकाबला करना नहीं छोड़ा। उन्होंने राष्ट्रपति आर. वेंकटरमन से मुलाकात की और बहुत घुमा–फिराकर परोक्ष रूप से उनका समर्थन मांगा।[15] जोशी के समर्थकों ने भी तार–चिट्ठियां भेजकर और व्यक्तिगत रूप से आलाकमान के नेताओं को बताने की कोशिश की कि जोशी ही एकमात्र नेता हैं, जो प्रदेश के विपक्ष को काबू में रख सकते हैं। सती प्रकरण में भी जोशी के विवेक की तारीफ की गई, जिन्होंने कितने उग्र लोगों को कई बार काबू में कर दिखाया। जोशी समर्थक विधायकों में वन मंत्री शीशराम ओला का कहना था, 'गांव–गांव तक पीने का पानी पहुंचाया गया है। कानून और व्यवस्था की दृष्टि से राजस्थान का शासन कई राज्यों से बेहतर है।' विधायक के.सी. विश्नोई का कहना था,

'राष्ट्रपति चुनावों में निश्चित संख्या से ज्यादा वोट वेंकटरमन को मिले। राज्यसभा के चुनाव हुए तो दो कांग्रेसी उम्मीदवारों की जीत ही सुनिश्चित दिखाई देती थी, लेकिन जोशी की वजह से तीन उम्मीदवारों को सफलता हाथ लगी।'[16]

हरिदेव जोशी का इस्तीफा

जयपुर में हरिदेव जोशी अपने समर्थक विधायकों की संख्या के बल पर खुश हो रहे थे, लेकिन बूटा सिंह ने असंतुष्टों को कह रखा था कि प्रधानमंत्री लक्षद्वीप से नववर्ष की छुट्टियां मनाकर लौटते ही जोशी को हटा देंगे। 15 जनवरी, 1988 को जोशी दिल्ली में बूटा सिंह से मिले। बूटा सिंह ने उनसे कहा कि अगर राजस्थान की स्थिति उनसे नहीं संभल रही है तो उन्हें इस्तीफा दे देना चाहिए। जोशी ने इस संदर्भ में प्रधानमंत्री से बात करने के बाद ही कोई फैसला लेने की बात कही। जोशी जयपुर लौटते, इससे पहले ही उनके इस्तीफे की अफवाह जयपुर आ गई थी। मुख्यमंत्री निवास में संवाददाताओं ने इस विषय में जोशी से पूछा तो उन्होंने इस्तीफा देने की बात से इनकार किया। नवलकिशोर से जानकारी लेने के लिए भी पत्रकार उत्सुक थे क्योंकि वे राजस्थान के नेताओं में आलाकमान के सबसे अधिक जानकार माने जाते थे। नवलकिशोर स्पष्ट रूप से जोशी के इस्तीफे की अटकलों को खारिज कर रहे थे। उनका कहना था कि यह उसी तरह की गप्प है, जैसे कभी 'त्रिपोलिया गजट' की गप्प मशहूर थी और जिसमें जरा भी दम नहीं हुआ करता था।[17]

17 जनवरी को जोशी ने सामान्य प्रशासन उपमंत्री बीना काक को प्रधानमंत्री सचिवालय भेजा। जोशी नाराज चल रहे राजीव को यह संदेश देना चाहते थे कि उनके विरोधी सरकार के अल्पमत में आने की झूठी खबर फैला रहे हैं। काक ने राजीव के सहयोगी विन्सेंट जॉर्ज को 90 जोशी समर्थक विधायकों की सूची सौंपी और कहा कि जोशी को हटाने की मांग करने वाले विधायकों की संख्या 15 से अधिक नहीं है। काक ने नवलकिशोर से भी मुलाकात की। नवलकिशोर ने आलाकमान के सामने जोशी का पक्ष भी लिया, लेकिन बूटा सिंह, गहलोत, मूपनार और पायलट ने राजीव से कहा कि जोशी समर्थन खो चुके हैं और उन्हें मुख्यमंत्री बनाए रखने से पार्टी में अस्थिरता पैदा हो जाएगी।[18] बूटा सिंह ने जोशी को अपनी तरफ से ही इस्तीफा देने की राय नहीं दी थी; उन्होंने इसके लिए राजीव से पहले ही हरी झंडी ली हुई थी। इसलिए बूटा सिंह ने राजीव को जब बताया कि जोशी की मंशा इस्तीफा देने की नहीं है तो इसे आलाकमान ने गंभीरता से लिया। जोशी को तुरंत दिल्ली बुलवाया गया। दिल्ली पहुंचते ही उन्हें मूपनार ने बताया कि प्रधानमंत्री चाहते हैं कि वे इस्तीफा दे दें। जोशी इस्तीफा देने को तैयार थे, लेकिन वे एक बार राजीव से इस विषय पर बात करना चाहते थे। जोशी और राजीव के बीच 18 जनवरी की शाम चार बजे लगभग 20 मिनट बातचीत हुई। इस बातचीत के दौरान बूटा सिंह और मूपनार भी मौजूद थे। उसी शाम जोशी ने जयपुर लौटकर कार्यवाहक राज्यपाल जगदीशशरण वर्मा को इस्तीफा सौंप दिया।[19]

जोशी के इस्तीफे के बाद राजनीतिक घटनाचक्र तेजी से घूमा। 19 जनवरी को जोशी के

मंत्रियों सहित अन्य कांग्रेसी विधायकों ने गृह मंत्री गुलाबसिंह शक्तावत के आवास पर बैठक करके फैसला किया कि वे आलाकमान की पसंद का मुख्यमंत्री नहीं बनने देंगे और मतदान की मांग करेंगे। नए मुख्यमंत्री के चयन के लिए बी. शंकरानंद, रघुनंदनलाल भाटिया, मूपनार और नरेशचंद्र चतुर्वेदी को पर्यवेक्षक बनाकर जयपुर भेजा गया। उन्हें जब जोशी समर्थक विधायकों की योजना का पता चला तो मूपनार और शंकरानंद ने कहा कि मतदान की जिद करने से पार्टी विभाजित हो सकती है। कांग्रेस के कुल 115 विधायकों में से 109 विधायक जयपुर में मौजूद थे। पर्यवेक्षकों ने 19-20 जनवरी की रात तीन बजे तक विधायकों से बातचीत की। 101 विधायकों से बात करने के बाद उन्हें समझ आ गया कि राजनीतिक लहर हरिदेव जोशी के पक्ष में थी। 65 विधायकों ने जोशी के विकल्प के रूप में देवपुरा का नाम सुझाया, जो जोशी के समर्थक माने जाते थे। अन्य विधायक माथुर, पहाड़िया और पायलट के नामों पर बंटे हुए थे।[20]

20 जनवरी को सुबह 6 बजे से ही जयपुर के प्रदेश कांग्रेस कार्यालय में काफी गहमागहमी थी। विधायक इकट्ठे होने शुरू हो गए थे। साथ ही, कांग्रेस कार्यकर्ता, पत्रकार और इस विषय में रुचि रखने वाले कुछ दूसरे लोग भी थे। कुल मिलाकर 1000-1200 लोग जमा हुए थे। घंटे-डेढ़ घंटे बाद जोशी, माथुर, देवपुरा और पहाड़िया का खासा कोठी से बुलावा आया, जहां केंद्रीय पर्यवेक्षक ठहरे हुए थे। गहलोत भी उस समय खासा कोठी में ही थे। इन नेताओं ने बंद कमरे में बातचीत की। दिल्ली से आए नेताओं का कहना था कि आलाकमान माथुर को चाहता है, जबकि जोशी-देवपुरा का मत था कि बहुमत देवपुरा के साथ है। पर्यवेक्षकों ने उनसे दिल्ली बात कर लेने को कहा, लेकिन बातचीत की नौबत नहीं आई। साढ़े आठ बजे ये नेता बंद कमरे से बाहर निकले तो देवपुरा का मुंह लटका हुआ था और माथुर के चेहरे पर प्रफुल्लता नजर आ रही थी। सभी नेता खासा कोठी से प्रदेश कांग्रेस कार्यालय पहुंचे। वहां विधायकों की बैठक में जोशी ने मुख्यमंत्री पद के लिए माथुर का नाम प्रस्तावित किया और देवपुरा तथा पहाड़िया ने समर्थन किया। माथुर ने उसी समय विधायकों को संबोधित करते हुए कहा, 'जनता आपको और हमें नहीं जानती; वह सिर्फ राजीव गांधी को जानती है और उनके नाम पर ही हम-आप जीत कर आते हैं। किसी को कोई और भ्रम हो तो निकाल देना चाहिए।'[21]

गहलोत की खिलाफत

शिवचरण माथुर के मुख्यमंत्री बनने के बाद जोशी के तेवर तीखे हुए और उन्होंने असंतुष्टों की अगुवाई मंजूर कर ली। अकाल की बिगड़ती स्थिति में राहत कार्यों की कमी के नाम पर सदन में चर्चा होने से पहले कांग्रेस विधायक दल की बैठक बुलाने की मांग की गई। यहां तक स्थिति आई कि असंतुष्ट कांग्रेसियों ने राजीव को तार भी दे डाला कि 28 मार्च, 1988 से पहले उन्हें मिलने का समय दिया जाए। 28 मार्च को राज्यसभा के चुनाव होने वाले थे, इसलिए जोशी को हटाए जाने के बदले असंतुष्टों ने पासा फेंका। फोतेदार जयपुर भेजे गए

और उन्होंने आकर जोशी को समझाया; फिर भी जोशी चुनाव मैदान से एक उद्योगपति को हटवाने में सफल रहे। फोतेदार के जरिए ही जोशी ने अपने मन की बात राजीव तक पहुंचाने की कोशिश की। मार्च में दोनों की मुलाकात भी हुई, लेकिन परिणाम नहीं निकला। आलाकमान के प्रतिनिधियों ने जोशी से साफ कह दिया कि माथुर को मुख्यमंत्री पद से नहीं हटाया जा सकता। हालांकि उन्होंने यह आश्वासन जरूर दे डाला कि गहलोत को प्रदेश अध्यक्ष पद से हटा दिया जाएगा और मंत्रिमंडल को समन्वित कर लिया जाएगा।[22]

असंतुष्ट गतिविधियों से लगातार जुड़े एक कांग्रेसी सांसद के अनुसार, गहलोत को हटाए जाने की स्थिति में जोशी प्रदेश अध्यक्ष होते; जोशी ना-नुकुर के बाद इस बात को मान गए थे। यह बात शीला दीक्षित और गुलाम नबी आजाद के स्तर तक तय भी हो गई थी, लेकिन कहीं-न-कहीं पेंच उलझा रहा। मुख्यमंत्री पद से हटाए जाने के बाद यह जोशी की दूसरी शिकस्त थी। वे तिलमिला उठे। शीला दीक्षित को लिखे जोशी के एक गोपनीय पत्र से इसका आभास मिला। इसमें जोशी ने स्पष्ट लिखा कि सामान्य दिखने वाला विचार भेद बढ़ गया है। पत्र में जोशी की दीक्षित और आजाद से हुई मुलाकातों का भी जिक्र था, जिसमें इस नतीजे पर पहुंचा जा चुका था कि गहलोत को अध्यक्ष पद से हटाकर किसी अन्य को जोड़ा जाएगा और केवल एक गुट की सरकार में फेरबदल करके ऐसा वातावरण बनाया जाएगा, जिससे यह लगे कि सरकार प्रदेश में कांग्रेसजनों का प्रतिनिधित्व कर रही है। इस पत्र में जोशी ने यहां तक लिख डाला, 'बिल्ली को एक कोने में खदेड़ दो तो वह प्रहार करती है।' यह इशारा राजीव गांधी तक पहुंचा या नहीं, लेकिन जोशी प्रहार के मूड में आ गए।[23]

5 अप्रेल, 1988 को गुलाबसिंह शक्तावत की अगुवाई में 23 कांग्रेसी विधायकों ने पहली बार गहलोत पर अनेक आरोप लगाते हुए राजीव को तीन पृष्ठ लंबा पत्र लिखकर स्पष्ट रूप से असंतोष जाहिर किया। इसके बाद से रुष्ट कांग्रेसियों की मुहिम और तेज होती गई। शक्तावत जरूर खेमा बदलकर माथुर-गहलोत के साथ हो गए, लेकिन जोशी, नवलकिशोर और देवपुरा के नेतृत्व में दामोदरदास आचार्य, रामसिंह विश्नोई, विष्णु मोदी वगैरह ने विरोध बरकरार रखा। एक मौका तो ऐसा आया, जब कांग्रेस के इतिहास में पहली बार आधे से अधिक कांग्रेसी विधायकों ने विधानसभा का दलगत विरोध के चलते बहिष्कार किया और अपनी पार्टी की सरकार द्वारा प्रस्तुत बजट पास होने में रुकावट डाली।[24]

राजनीतिक घटनाक्रम तेजी से घूम रहा था। कांग्रेस प्रदेश से लेकर देश के स्तर पर धड़ों में विभाजित थी और विपक्षी दल लामबंद हो रहे थे। रक्षा मंत्री पद से इस्तीफा देने के ठीक एक वर्ष बाद 11 अप्रेल, 1988 को वी.पी. सिंह जयपुर आए। शाम को रामनिवास बाग में उनकी सभा हुई। हजारों की भीड़ चुपचाप लेकिन उद्विग्न भाव से उनका भाषण सुन रही थी। वी.पी. ने सभा में कहा कि उन्हें साल भर पहले इतनी उम्मीद नहीं थी कि उनकी लड़ाई जनसंघर्ष में बदल जाएगी। उन्होंने जनता से कुशासन के खिलाफ संघर्ष की इजाजत चाही तो किसी को मंच से नारा नहीं लगवाना पड़ा, बल्कि लोग खुद चिल्ला पड़े, 'वी.पी. तुम संघर्ष करो, हम तुम्हारे साथ हैं।'

राजीव सरकार के विरुद्ध विपक्ष को एकजुट करने की कोशिशों में लगे वी.पी. के लिए यह जनसभा एक मायने में अभूतपूर्व थी। वहां अटलबिहारी वाजपेयी भी मौजूद थे। उनके साथ भैरोंसिंह शेखावत, नाथूराम मिर्धा, कल्याणसिंह कालवी, दौलतराम सारण जैसे राजस्थान के प्रमुख विपक्षी नेताओं की उपस्थिति इस बात का अहसास करवा रही थी कि भले राष्ट्रीय स्तर पर विपक्षी दल एक साथ खड़े होने का मन नहीं बना पाए हों, लेकिन राजस्थान के प्रमुख दलों ने मिलकर सत्तारूढ़ कांग्रेस को चुनौती दे दी है। वी.पी. से पहले बोलते हुए विपक्ष के नेता शेखावत ने साफ–साफ कहा, 'सत्ता सौगात में नहीं मिलती, इसे संघर्ष करके हासिल करना पड़ता है। भीषण अकाल से जूझ रहे राजस्थान के किसान–मजदूरों के कर्जे माफ करवाने के लिए और जनसमस्याओं के समाधान के लिए मिलकर सामूहिक संघर्ष किया गया तो इस सरकार को जाना ही होगा।' जनसभा के बाद राजस्थान के प्रमुख विपक्षी नेताओं के साथ वी.पी., अरुण नेहरू, संजय सिंह वगैरह शेखावत के आवास पर इकट्ठे हुए। तब फिर यह बात सामने आई कि किस तरह विपक्षी दल एक होकर संघर्ष करें ताकि कांग्रेस का विकल्प तैयार हो सके। इस बैठक की महत्वपूर्ण बात यह रही कि विपक्षी एकता या न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर संघर्ष करने की आवश्यकता नेताओं ने राष्ट्रीय स्तर पर ही महसूस की; राजस्थान के भाजपा, लोकदल व जनता पार्टी के प्रमुख नेता इस विषय पर एकमत थे कि राजस्थान में विपक्षी दल पहले की तरह एक होकर रहेंगे और जब भी चुनाव होंगे, कांग्रेस सत्ताच्युत हो जाएगी।[25]

राजस्थान में सक्रियता का दौर

इस दौरान नवलकिशोर पूरी तरह से राजस्थान में सक्रिय हो गए। गहलोत–माथुर के प्रति विरोध बढ़ रहा था। उन्हीं दिनों पंचायत चुनाव हुए, जिनमें कांग्रेस का प्रदर्शन संतोषजनक नहीं रहा। चुनाव के पहले रणनीति के संबंध में चर्चा नहीं किए जाने को भी असंतुष्टों ने मुद्दा बनाया। अगस्त, 1988 के अंतिम सप्ताह में होने जा रही प्रदेश कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक का असंतुष्टों ने बहिष्कार किया। नवलकिशोर, चंदनमल बैद, हीरालाल देवपुरा और लक्ष्मीकुमारी चूंडावत ने गहलोत को पत्र में लिखा:

> बहुत दिनों के बाद आपने प्रदेश कांग्रेस की कार्यसमिति की बैठक का आयोजन करने का निर्णय लिया है, लेकिन यह कार्यसमिति की बैठक न होकर एक तरह का कांग्रेसजनों का सम्मेलन है। ..हम यह महसूस करते हैं कि राजस्थान प्रदेश कांग्रेस कमेटी और राजस्थान सरकार एक योजनाबद्ध तरीके से कुछ लोगों की उपेक्षा कर रही है तथा कांग्रेस को कांग्रेस न रखकर एक गुट विशेष कांग्रेस रखने पर तुली हुई है। वरना यह बात समझ में नहीं आती कि जब पंचायत चुनाव से पहले कार्यसमिति के जिम्मेदार सदस्यों ने आपको पत्र लिखकर प्रदेश कांग्रेस कमेटी की बैठक आहूत करने की मांग की थी तो आपने बैठक ही नहीं बुलाई,

> बल्कि उस पत्र की प्राप्ति के बारे में और बैठक न बुलाने के कारण के बारे में कोई पत्र भी लिखना मुनासिब नहीं समझा। ..चुनाव के नतीजे कैसे रहे, इस पर तो हम जाना नहीं चाहते; लेकिन चुनाव के नतीजों ने कांग्रेस को सड़क पर लाकर खड़ा कर दिया है और चुनाव के बाद 15–20 दिन तक अखबारों में जिम्मेदार कांग्रेसजन एक–दूसरे पर आरोप–प्रत्यारोप लगाते रहे। अनुशासनहीनता का नंगा नाच हुआ है। आश्चर्य है कि इस विषय पर कोई गंभीरता की पहल नजर नहीं आ रही है। ..इन सब बातों को देखते हुए हम यह समझते हैं कि हम कार्यसमिति की बैठक का बहिष्कार करें ताकि आप अपने स्तर पर स्वतंत्र निर्णय ले सकें।[26]

27 नवम्बर, 1988 को भी प्रदेश कार्यसमिति की बैठक हुई तो अधिकांश असंतुष्ट शामिल नहीं हुए। जोशी, नवलकिशोर, मदेरणा, बैद सहित 10 बड़े नेताओं ने गहलोत को पत्र लिखकर बैठक में हुई कार्रवाई की आलोचना की। इन नेताओं ने कांग्रेस संगठनों से जुड़े लोगों द्वारा बड़े नेताओं को अपमानित करने की घटनाओं को निंदनीय बताया। साथ ही, चेतावनी दी कि अगर इन घटनाओं को नहीं रोका गया तो उन्हें प्रदेश कांग्रेस के कार्यक्रमों में शामिल होने के बारे में सोचना पड़ेगा।[27]

1988 के बीतते असंतोष मुखर होने लगा। दिसम्बर में वित्तमंत्री शंकरराव चव्हाण ने जयपुर में कांग्रेस नेताओं के बीच भाव–विह्वल होकर कहा, 'सब्र की सीमा आ चुकी है। हम गरीब को दबाएंगे तो वे दबेंगे नहीं। उस आदमी को हमारे महल और माल से दुश्मनी नहीं है, लेकिन उसे छोटी झोपड़ी तो मिलनी ही चाहिए। इसलिए एक करोड़ों का मालिक हो और दूसरा पेट भी नहीं पाल पाता, यह स्थिति चलने वाली नहीं है।' उन्होंने मुख्यमंत्री माथुर को इंगित करते हुए पूछा, 'आप तो कुर्सी पर बैठने के लिए इतना करते थे, अब कुछ करते क्यों नहीं?' उनका कहना था, 'संविधान में सबको जीवित रहने का अधिकार है। प्रत्येक व्यक्ति को काम देना, दवा देना, शिक्षा की व्यवस्था करना हमारा दायित्व है। अगर हम ऐसा नहीं कर सकते तो हमें सत्ता में बने रहने का कोई अधिकार नहीं है।'[28]

माथुर विरोधी विधायकों ने विधानसभा का भी बहिष्कार किया। उन्होंने घोषित किया कि जब तक माथुर और गहलोत को नहीं हटाया जाता है, तब तक वे विधानसभा की कार्यवाही में शामिल नहीं होंगे। पार्टी व्हिप के बावजूद वे अपने संकल्प पर अडिग रहे, जबकि इससे उनकी विधायकी छिन सकती थी। 16 जनवरी, 1989 को विपक्ष के नेता भैरोंसिंह शेखावत ने विधानसभा में माथुर सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव रखा तो सदन में विपक्ष के 58 विधायकों के मुकाबले कांग्रेस के केवल 38 विधायक उपस्थित थे। जल्दबाजी में सदन की कार्रवाई स्थगित कर दिए जाने के कारण माथुर सरकार बच गई।[29]

माथुर–गहलोत सामूहिक नेतृत्व के हिसाब से सरकार–संगठन चलाने लगे, लेकिन सत्ता की चाबी मुख्य रूप से गहलोत के हाथों में थी। असंतुष्टों ने गहलोत को निशाने पर लिया।

रुष्ट कांग्रेसियों की इस मुहिम को शांत करने के लिए जोशी को राज्यपाल बनाने का फैसला किया गया, गहलोत की जगह देवपुरा प्रदेश अध्यक्ष बने और मंत्रिमंडल में व्यापक फेरबदल हुआ। माथुर और गहलोत ने सामूहिक रूप से आलाकमान को आश्वस्त किया कि इस फेरबदल से असंतुष्टों की शिकायत दूर हो जाएगी और अगले चुनाव में कांग्रेस मजबूती के साथ विपक्ष का मुकाबला कर सकेगी। प्रदेश की भावी राजनीति को ध्यान में रखते हुए ही गहलोत को भी मंत्रिमंडल में शामिल किए जाने की जरूरत महसूस की गई। दिल्ली की कांग्रेस राजनीति का एक प्रभावशाली तबका इस फिराक में था कि किस तरह जोशी को राजस्थान की सक्रिय राजनीति से अलग किया जाए। एक ओर, जहां राजस्थान में माथुर-गहलोत की जोड़ी जोशी से नाखुश थी; वहीं दूसरी ओर, दिल्ली में बूटा सिंह और राजेश पायलट बखूबी महसूस कर चुके थे कि जोशी के रहते हुए वे लोग राजस्थान की राजनीति में मनमाफिक घुसपैठ नहीं कर सकेंगे।

जोशी को राजस्थान में रखकर कोई महत्वपूर्ण पद दिए बिना रुष्ट कांग्रेसियों की मुहिम बंद नहीं की जा सकती थी और जोशी को पद देना आलाकमान की हार का ही परिचायक था। यह भी बात सोची गई कि अगर जोशी को बिहार-मध्य प्रदेश जैसे प्रांत का राज्यपाल बनाया गया तो वे कांग्रेस में ही एक गुट की नुमाइंदगी कर सकते हैं। इसीलिए उन्हें दूरदराज और विपक्षी सरकार वाले असम का राज्यपाल बनाने की बात तय हुई। जोशी नहीं चाहते थे कि वे राज्यपाल बनाए जाएं; खासतौर पर असम जैसे दूरदराज वाले राज्य में। उन्होंने जयपुर में पत्रकारों को कहा भी कि उन्हें यह पद दिया जाना है तो किसी हिंदी प्रदेश में ही दिया जाए ताकि न तो भाषा की कठिनाई आड़े आए और न ही वृद्ध मां को छोड़कर कहीं दूर जाना पड़े। उन्होंने भावविह्वल होकर बताया कि दिल्ली से जयपुर लौटते समय उन्होंने एक गांव में रुककर पानी पिया तो पानी पिलाने वाली महिला ने दुखी स्वर में पूछा कि बाबूजी, क्यों आप हम लोगों को छोड़कर जा रहे हैं? यानी, जोशी न तो राज्यपाल बनने का मोह त्याग पा रहे थे और न ही राजस्थान से किनारा करना चाह रहे थे।[30]

इसके बाद जयपुर में रुष्ट कांग्रेसियों ने खुला विद्रोह किया। 2 फरवरी, 1989 को जोशी के नेतृत्व में 35 विधायक, 5 सांसद और डेढ़ दर्जन से ऊपर पूर्व मंत्री या जिला स्तरीय नेता इकट्ठे हुए। उन्होंने तय किया कि गहलोत को हटाए बिना और राज्य मंत्रिमंडल में असंतुष्ट विधायकों को प्रतिनिधित्व दिए बिना कोई समझौता नहीं किया जाएगा। बैठक में इस बात पर भी आम सहमति थी कि अगर समझौता करना पड़ा तो बिहार जैसी स्थिति बना दी जाएगी। यानी, विधानसभा में शक्ति परीक्षण किया जा सकता है। यह राजस्थान के रुष्ट कांग्रेसियों का दुस्साहस ही था कि वे विधानसभा सत्र में बिहार से भी एक कदम आगे बढ़ गए। उन्होंने जता दिया कि कांग्रेस विधायक दल में असंतुष्टों का बहुमत बरकरार है। उस समय विधानसभा अध्यक्ष ने चाहा होता तो कांग्रेस की सरकार गिर भी सकती थी। इन सब बातों से आलाकमान को जोशी का वजूद महसूस हो गया। साथ ही, राजीव के सलाहकार इस बात को महसूस कर चुके थे कि राजस्थान में जोशी का रहना कभी भी घाटे का सौदा

हो सकता है।[31]

6-8 फरवरी के बीच राजीव ने राजस्थान का तीन दिवसीय दौरा किया। गहलोत इसे राजस्थान की तकदीर बदलने वाली यात्रा बता रहे थे। माथुर ने भी केंद्रीय सहायता प्राप्त करने के लिए कई ताने-बाने तैयार किए थे। उस समय राजस्थान के सभी पांच लाख सरकारी कर्मचारी महीने भर से हड़ताल पर थे। राजीव की यात्रा के दौरान जगह-जगह उन्होंने विरोध-प्रदर्शन करने का फैसला किया। सवाईमाधोपुर सीमेंट कारखाने के पांच हजार कर्मचारी कारखाना चालू करवाने की मांग को लेकर जयपुर में जुटे हुए थे। राज्य के दिग्गज रुष्ट कांग्रेसी पहले ही बैठक करके तय कर चुके थे कि राजीव को जगह-जगह ज्ञापन दिए जाएं। खास बात यह थी कि तमिलनाडु चुनाव में कांग्रेस की करारी हार के बाद आम कांग्रेसी कार्यकर्ता का उत्साह ठंडा पड़ा हुआ था। जयपुर पहुंचकर राजीव सिर्फ पांच मिनट ही सांगानेर हवाई अड्डे पर रुकने वाले थे, लेकिन उन्हें पंद्रह मिनट रुकना पड़ा। विपक्ष के नेता भैरोंसिंह शेखावत के नेतृत्व में सैकड़ों लोग विभिन्न मांगों को लेकर सांगानेर में जमा थे। विपक्ष के तीन विधायकों ने राजीव को सवाईमाधोपुर सीमेंट कारखाने, कर्मचारियों की हड़ताल और प्रदेश की चार ताप बिजली परियोजनाओं की स्वीकृति के विषय में अलग-अलग ज्ञापन दिए। अन्य कई स्थानों पर कर्मचारियों ने नारेबाजी की और राजीव को काले झंडे दिखाए। बूंदी में सभा के दौरान ऐसा हंगामा हुआ कि राजीव भाषण ही पूरा नहीं कर सके। उनकी उपस्थिति में पुलिस ने बल प्रयोग किया, जिसमें कई घायल हुए। उदयपुर में भी पुलिस को लाठीचार्ज करना पड़ा। चित्तौड़गढ़ में राजीव बोलने के लिए खड़े हुए तो अधिकांश लोग उठकर चले गए। भीलवाड़ा जिले में जहां उनका भव्य स्वागत हुआ, वहां भी कर्मचारियों ने कई जगह काले झंडे दिखाए और नारेबाजी की।

राजीव ने कोई दर्जन भर से ऊपर स्थानों पर जनता को संबोधित किया। वहीं, यह भी तथ्य था कि केकड़ी, टोंक, अजमेर, चंदेरिया, सलावटिया, बूंदी, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, मांडलगढ़, बिगोद, भीलवाड़ा इत्यादि स्थानों पर हुई जनसभाओं में भारी संख्या में जनता इकट्ठी हुई। सभी जगह जनता राजीव को देखने को लालायित नजर आई। कई स्थानों पर उनका घंटों इंतजार हुआ। लेकिन जनता का आक्रोश और कांग्रेसियों का असंतोष सब जगह बरकरार था। अजमेर में सांसद विष्णु मोदी भाषण देने खड़े हुए तो उन्हें कांग्रेसियों के एक वर्ग ने ही बोलने नहीं दिया। फिर मुख्यमंत्री माथुर खड़े हुए तो उन्हें दूसरे वर्ग ने नहीं बोलने दिया। राजीव जहां-जहां गए, उन्हें रुष्ट कांग्रेसियों की शिकायतें सुनने को मिलीं। उन्होंने सबको तरजीह दी; असंतुष्टों को यह आश्वासन भी मिला कि वे उनकी बातों को ध्यान से देखेंगे।[32]

अप्रेल, 1989 में वीरबहादुर सिंह, एल.पी. साही और शीला कौल को पर्यवेक्षक बनाकर जयपुर भेजा गया। वे एक सप्ताह तक जयपुर रहे और विधायकों से मिलकर स्थिति को संभालने की कोशिश की। उस दौरान माथुर समर्थक और विरोधी गुट के बीच तनाव इस हद तक बढ़ गया कि वे पर्यवेक्षकों के सामने ही आपस में उलझ पड़े और मारपीट पर उतारू

हो गए। दिल्ली लौटने पर वीरबहादुर ने कहा, 'हमारा परिवार इतना बड़ा है, छोटे-मोटे झगड़े तो चलते ही रहेंगे।'[33]

आखिर, आलाकमान झुका। विधानसभा का बहिष्कार करने वाले रामसिंह विश्नोई, दामोदरदास आचार्य, महेन्द्र कुमार परमार, हीरालाल इंदौरा, ऋषिकेश मीणा और धनराज मीणा मंत्रिपरिषद में शामिल हुए और जोशी के बाद रुष्ट विधायकों का नेतृत्व कर रहे देवपुरा कांग्रेस अध्यक्ष बना दिए गए। इसके बावजूद असंतुष्टों में रोष की लहर कम नहीं हुई। एक तरफ, इस बात का गुस्सा था कि गहलोत अध्यक्ष पद से हटकर मंत्रिमंडल में इससे अधिक रुतबे के साथ शामिल हुए; दूसरी तरफ, इस बात पर भी कम आक्रोश नहीं था कि वीरबहादुर को और बाद में आर.के. धवन को जिन 13 विधायकों (दामोदरदास आचार्य, रामसिंह विश्नोई, जकिया इनाम, छोगाराम बाकोलिया, रामदेव सिंह महरिया, रामपाल उपाध्याय, हीरालाल इंदौरा, मूलचंद मीणा, महेंद्र परमार, माणक डाणी, के.सी. विश्नोई, राजेश शर्मा और नीलिमा शर्मा) की सूची दी गई थी, उनमें से विश्नोई, आचार्य, परमार और इंदौरा ही मंत्री बनाए गए। कैबिनेट मंत्री सिर्फ विश्नोई को बनाया गया; वहीं, रामकिशन, अश्कअली टांक, चंद्रशेखर शर्मा, राजेंद्र चौधरी और खेमराज कटारा को मंत्रिपरिषद में बने रहने दिया गया, जिनको हटाने की असंतुष्ट काफी समय से मांग करते रहे थे।

असंतुष्टों को नाराजगी थी कि असंतुष्ट गतिविधियों से जुड़े हुए 63 विधायकों में से केवल 6 मंत्रिपरिषद में शामिल किए गए, जबकि संतुष्ट 41 विधायकों में 26 मंत्रिपरिषद में, 3 संसदीय सचिव और एक मुख्य सचेतक बने बैठे थे। इस गुटबाजी के कारण 32 सदस्यों की मंत्रिपरिषद में नौ जिलों-भरतपुर, धौलपुर, चूरू, बांसवाड़ा, टोंक, बूंदी, सिरोही, बाड़मेर और जैसलमेर का, यानी एक तिहाई से अधिक प्रदेश का कोई प्रतिनिधित्व नहीं था। जोधपुर में कांग्रेस के नौ उम्मीदवारों में से पांच विधायक निर्वाचित हुए थे, जिनमें से तीन कैबिनेट मंत्री (अशोक गहलोत, रामसिंह विश्नोई और नरपतराम बरबड़) थे और राजेंद्र चौधरी राज्यमंत्री थे। जालोर से तीन विधायक थे और तीनों (रघुनाथ विश्नोई कैबिनेट मंत्री और सूरजपाल सिंह-मांगीलाल आर्य राज्यमंत्री) मंत्रिपरिषद में थे। दूसरी ओर, सिरोही जिले में सभी तीन सीटें कांग्रेस को हासिल हुई थीं, लेकिन वहां का एक मंत्री भी नहीं बनाया गया। पांच जिले ऐसे थे, जहां दस से ऊपर विधायक चुने गए थे; उनमें श्रीगंगानगर, अलवर और नागौर से कोई कैबिनेट मंत्री नहीं बनाया गया। यह इसी मंत्रिपरिषद की विशेषता थी कि 62 विधायकों वाले उदयपुर और जोधपुर संभाग से 16 मंत्री थे तथा 138 विधायक भेजने वाले जयपुर, बीकानेर, अजमेर और कोटा संभाग के भी 16 मंत्री ही थे। 22 विधायक भेजने वाले बीकानेर संभाग से बुलाकीदास कल्ला कैबिनेट मंत्री और हीरालाल इंदौरा राज्यमंत्री तो 9 विधायक भेजने वाले जोधपुर जिले से 4 मंत्री, 5 विधानसभा क्षेत्रों वाले जालोर से 3 मंत्री थे। 27 विधानसभा क्षेत्रों वाले कोटा और 32 विधानसभा क्षेत्रों वाले अजमेर संभाग का हाल भी ऐसा ही था, जहां के चार-चार मंत्री ही थे। यह हास्यास्पद स्थिति थी कि 57 सीटों वाले जयपुर संभाग के 6 और 32 सीटों वाले जोधपुर संभाग के 9 मंत्री थे।[34]

नाराज नवलकिशोर

नवलकिशोर के आवास पर कांग्रेसी विधायकों के एक गुट ने बैठक की। वहां सभी ने गंभीरता से इस बात को महसूस किया कि उनकी जीत अभी अधूरी है, लेकिन जीतने का सिलसिला शुरू हो गया है। कहा गया कि देवपुरा का अध्यक्ष बनना ही पर्याप्त नहीं है, अभी वे लोग भ्रष्ट मंत्रियों को हटाने की मुहिम जारी रखेंगे। सभी विधायकों ने इस बात पर गुस्सा प्रकट किया कि मंत्रिपरिषद में रामसिंह विश्नोई और दामोदरदास आचार्य के अलावा एक भी ऐसे विधायक को मंत्री नहीं बनाया गया, जिसका नाम प्रमुखता से बताया गया था। आचार्य मंत्री पद की शपथ लें, इसका भी निश्चय हुआ। गहलोत के मंत्री बनने पर तो सब नाखुश थे ही, लेकिन इस बैठक में राजीव के प्रति पुरजोर शब्दों में आस्था दोहराई गई।[35]

देवपुरा का राजनीतिक पुनर्वास जरूर हो गया; चुनावी साल में प्रदेश अध्यक्ष बनना खास मायने रखता था। लेकिन इसके बावजूद देवपुरा लगभग अकेले पड़ गए थे। इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता था कि मंत्रियों की शपथ ग्रहण के बाद वे नितांत अकेले दिखाई दिए। मंत्रिपरिषद के पुनर्गठन से पूर्व उनसे सलाह-मशविरा भी नहीं किया गया था। उन्हें नवनियुक्त मंत्रियों की सूची का तभी पता चल सका, जब अखबारों को गहलोत के प्रतिनिधि मंत्रियों ने जानकारी दी। देवपुरा से बेहतर हाल माथुर का नहीं था। वे मुख्यमंत्री थे, लेकिन उनसे ज्यादा भीड़ गहलोत के आवास पर हो रही थी। हालांकि दोनों ओर के लोग कह रहे थे कि माथुर-गहलोत को अलग नहीं समझना चाहिए और आगामी चुनाव इन दोनों के नेतृत्व में ही लड़ा जाएगा। लेकिन इसमें संदेह नहीं था कि दर्जनभर मंत्रियों की एकांतिक निष्ठा गहलोत के साथ थी। ये गहलोत समर्थक मंत्री माथुर-गहलोत का गुणगान करते-करते यह कहने से भी नहीं चूकते, 'अब माथुर को पता चलेगा।'[36]

इसी बीच, आखिरकार जोशी को असम का राज्यपाल बनकर राजस्थान छोड़ना पड़ा। इस फैसले पर नवलकिशोर ने अपनी नाराजगी नहीं छिपाई। जोशी के राजस्थान से विदाई लेने के अवसर पर उन्होंने कहा, 'हम चाहते थे कि जोशी राजस्थान में ही रहकर हमारा मार्गदर्शन करते, अभी राजस्थान को उनकी आवश्यकता है। मुझे प्रसन्नता नहीं है कि उन्हें राज्यपाल का पद मिला।' उन्होंने यह भी कहा, 'संभवतः जोशी भी मानसिक रूप से इसके लिए तैयार नहीं थे कि उन्हें रिटायरमेंट का जीवन मिले। लेकिन वे अनुशासनप्रिय व्यक्ति हैं और देश की जरूरत को समझते हुए उन्होंने नेता के आदेश का पालन किया है।' इन बातों से जोशी भी भावविह्वल हो गए। उन्होंने कहा, 'मैं नवलकिशोर शर्मा की बात को समझने की कोशिश कर रहा हूं। हालांकि वे उम्र में मुझसे छोटे हैं, लेकिन मैंने उन्हें बड़े भाई का दर्जा दिया है। लेकिन वे जो करेंगे, मेरे प्रति पक्षपाती ही रहेंगे।' जोशी ने जोर देकर कहा, 'नवलजी के मन में प्रतिक्रिया का रूप अलग है, लेकिन मैं स्वयं की प्रतिक्रिया पी गया हूं।'[37]

अक्टूबर में लोकसभा चुनाव की घोषणा हुई। उस समय तक यह आम धारणा बन चुकी थी कि राजीव की सत्ता में वापसी संभव नहीं है। बोफोर्स प्रकरण ने उनकी प्रतिष्ठा को गहरा

झटका दिया था। 5 अक्टूबर, 1989 को राजस्थान के एकदिवसीय व्यस्त दौरे में राजीव ने अहसास करवाया कि वे चुनावी दौरे पर आए हैं। इस दौरान उन्होंने सिद्धमुख सिंचाई परियोजना की आधारशिला रखी, कोटा-चित्तौड़गढ़ के बीच चलने वाली बड़ी रेलवे लाइन की पहली यात्री गाड़ी को रवाना किया, उदयपुर के पास झामरकोटड़ा में रॉक फास्फेट संवर्धन संयंत्र का शिलान्यास किया और अरड़ावता में बालिका निकेतन के रजत जयंती समारोह में हिस्सा लिया। कार्यक्रमों के दौरान राजीव आक्रामक थे। उनका कहना था कि विपक्ष सत्ता प्राप्त करने के लिए देश को बेच भी सकता है। उन्होंने दोहराया कि केंद्र से राज्यों को जो सहायता दी जाती है, उसका 15 प्रतिशत ही जरूरतमंद लोगों तक पहुंच पाता है। 85 प्रतिशत राशि दलाली, भ्रष्टाचार और सरकार का बोझ ढोने में लग जाती है। उन्होंने यह भी कहा कि भ्रष्टाचार कभी समाप्त नहीं हो सकता; ज्यादा से ज्यादा इतना हो सकता है कि उसे 50 प्रतिशत तक ले जाया जाए। इससे कम करना संभव नहीं हो सकता।[38]

राजस्थान में कांग्रेस नेतृत्वविहीनता की शिकार थी। राज्य भर में दौरे करने वाला कोई एक नेता भी नहीं था। राज्य की धरती से जुड़े नेताओं का पैराशूट से उतरे बूटा सिंह, बलराम जाखड़, राजेश पायलट वगैरह से अलग संघर्ष चल रहा था। नवलकिशोर ने जयपुर के बजाए दौसा से चुनाव लड़ने की ताल ठोंक दी। 1984 में उन्होंने दौसा सीट राजेश पायलट के लिए खाली करके खुद जयपुर से चुनाव लड़ा था। इस बार उन्हें यह खबर मिली थी कि राजीव जयपुर से अपने मित्र पूर्व नरेश भवानी सिंह को प्रत्याशी बनाना चाहते हैं। उन्होंने राजनीतिक आकलन किया और इस नतीजे पर पहुंचे कि जयपुर से भवानी सिंह का टिकट तय है। तब उन्होंने फैसला किया कि वे दौसा से चुनाव लड़ेंगे, अपनी जमीन पर। पायलट ने इसका कड़ा प्रतिवाद किया और राजीव से कहा कि उन्होंने दौसा में पांच साल जमकर काम किया है, इसलिए वहां से चुनाव जीत जाएंगे। उस समय राजीव के लिए एक-एक सीट का महत्व था। लेकिन नवलकिशोर अड़ गए और कहा कि वे अपनी जमीन से ही चुनाव लड़ेंगे। उन्होंने इसके पीछे दौसा से तीन बार चुनाव जीतने का तर्क भी दिया। राजीव ने मजबूरी में पायलट को भरतपुर भेजने का निर्णय लिया, जहां से 1984 में नटवर सिंह चुनाव जीते थे।

कांग्रेस विरोधी लहर में नवलकिशोर का दांव काम नहीं आ सका। वे भाजपा के नाथू सिंह से एक लाख से अधिक वोटों के अंतर से चुनाव हार गए। पायलट को भरतपुर राजघराने के विश्वेंद्र सिंह ने पराजित कर दिया। जयपुर में भवानी सिंह की दावेदारी भी कारगर नहीं हुई; वे भाजपा के गिरधारीलाल भार्गव से बुरी तरह हारे। राजस्थान में हालांकि विपक्ष का समझौता पूरी तरह कारगर नहीं था, इसके बावजूद 25 में से एक भी सीट कांग्रेस को नहीं मिली। बूटा सिंह-बलराम जाखड़ जैसे दिग्गज भी खेत रहे। भाजपा 13, जनता दल 11 और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी एक सीट पर चुनाव जीते। इस तरह का सफाया कांग्रेस के लिए अप्रत्याशित था। राजीव इस बात से विशेष नाराज हुए कि नवलकिशोर की वजह से दौसा में पायलट को सीट छोड़नी पड़ी। इसके अलावा, नवलकिशोर की जन मोर्चा के नेताओं से मित्रता की अफवाहों से भी वे विचलित थे।

संदर्भ सूची

1. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 31 जनवरी, 1988
2. वही
3. वही
4. वही
5. विजय भंडारी: राजस्थान की राजनीति–सामंतवाद से जातिवाद के भंवर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 240–241
6. मार्गरेट अल्वा: करेज एंड कमिटमेंट, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 199–200
7. वही, पृष्ठ 200
8. अशोक गहलोत: महानगर टाइम्स से अनौपचारिक साक्षात्कार
9. विजय भंडारी: राजस्थान की राजनीति–सामंतवाद से जातिवाद के भंवर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 241
10. श्याम आचार्य: तेरा तुझको अर्पण, ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2015, पृष्ठ 69
11. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 31 जनवरी, 1988
12. वही
13. वही
14. वही
15. आर. वेंकटरमन: जब मैं राष्ट्रपति था, वाणी पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 108
16. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 31 जनवरी, 1988
17. वही
18. पंकज पचौरी: इंडिया टुडे, 15 फरवरी, 1988
19. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 31 जनवरी, 1988
20. पंकज पचौरी: इंडिया टुडे, 15 फरवरी, 1988
21. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 31 जनवरी, 1988
22. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 7 मई 1989
23. वही
24. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 8 दिसम्बर, 1988
25. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 17 अप्रेल, 1988
26. मूल पत्र की प्रति

27. 10 नेताओं का अशोक गहलोत को पत्र, 30 नवम्बर, 1988
28. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 8 दिसम्बर, 1988
29. प्रभु चावला: इंडिया टुडे, 15 अप्रेल, 1989
30. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 7 मई 1989
31. वही
32. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 19 फरवरी, 1989
33. प्रभु चावला: इंडिया टुडे, 15 अप्रेल, 1989
34. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 18 जून, 1989
35. वही
36. वही
37. डॉ. सरस्वती माथुर: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा हरिदेव जोशी, राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति, जयपुर, पृष्ठ 60
38. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 15 अक्टूबर, 1989

कांग्रेस फोरम फॉर एक्शन

लोग बड़ी-बड़ी बातें करते थे और बड़े-बड़े दावे करते थे। वे अब चुप क्यों हैं? जो लोग चुनाव में अपनी जमीन की बात करते थे, उनकी जमीन कहां गई?

–राजीव गांधी

1989 का लोकसभा चुनाव हारने के बाद कांग्रेस के भीतर विद्रोह के स्वर तेज होने लगे। अनेक वरिष्ठ नेताओं का पार्टी से मोहभंग होने लगा और कई गुट सक्रिय हुए। राजीव गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस दिशाहीन नजर आ रही थी। पंजाब और कश्मीर में अलगाववाद से निपटने में वी.पी. सिंह की विफलता जैसे ज्वलंत मुद्दे भी कांग्रेस को राजनीतिक धार नहीं दे पा रहे थे। विपक्ष के नेता के रूप में राजीव से आक्रामक प्रतिक्रिया की उम्मीद की जा रही थी, लेकिन वे जैसे तब तक प्रधानमंत्री होने की खामखयाली में ही थे.. विदेशी मेहमानों के लिए इफ्तार पार्टी आयोजित करने, अपने पूर्व सुरक्षा अधिकारियों से चाय पर चर्चा करने और लोकसभा में अनुपस्थित रहने की आदतें बरकरार थीं। कांग्रेस का हाल यह था कि वह कश्मीर समस्या के लिए पाकिस्तान को जिम्मेदार बताकर कार्रवाई की मांग करती, लेकिन चरमपंथियों से सख्ती बरते जाने का खुद ही विरोध करने लगती। पंजाब को लेकर कांग्रेस यही तय नहीं कर पा रही थी कि उसे वहां चुनाव चाहिए या राष्ट्रपति शासन। रामजन्मभूमि के मुद्दे पर एक तरफ राजीव भाजपा को सांप्रदायिकता भड़काने का दोषी बता रहे थे; वहीं दूसरी तरफ, विवादित स्थल पर मंदिर के शिलान्यास के विषय पर द्वारका के शंकराचार्य के साथ दिल्ली प्रदेश कांग्रेस का एक गुट सक्रिय था। इन हालात ने कांग्रेस के साधारण कार्यकर्ताओं को असमंजस में डाल रखा था।[1]

राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार बनने के बाद बोफोर्स प्रकरण की जांच शुरू होने जैसे विषय राजीव के लिए इतने चिंताजनक नहीं थे; इससे कहीं अधिक वे अपनी ही पार्टी के बागी नेताओं की योजना को लेकर सशंकित होने लगे। वरिष्ठ नेता कमलापति त्रिपाठी ने राजीव

को कांग्रेस अध्यक्ष पद से हटाने की मुहिम छेड़ दी। उन्होंने एक व्यक्ति-एक पद के मुद्दे पर जोर देना शुरू किया, जिसका सीधा आशय यह था कि विपक्ष के नेता चुन लिए जाने के बाद राजीव का कांग्रेस अध्यक्ष बने रहना उचित नहीं है। त्रिपाठी के वक्तव्य की हिन्दी-अंग्रेजी में 700 प्रतियां छपवाकर पार्टी के पदाधिकारियों और विधायकों में बांटी गईं। उसी दौरान चुनाव हारे हुए नेताओं ने जितेंद्र प्रसाद के संयोजकत्व में समन्वय समिति का गठन करके बैठकें करना शुरू किया। इंदिरा गांधी के बेहद करीबी व्यक्तियों में रहे यशपाल कपूर ने आह्वान किया कि पार्टी को एक 'फुलटाइम' अध्यक्ष की जरूरत है, जो स्वच्छंद रूप से देश का दौरा कर सके और पार्टी के लोगों के लिए उपलब्ध रहे।[2]

इसके साथ ही अनेक मोर्चों पर असंतुष्ट गतिविधियां तेज हुईं। नेहरू-इंदिरा के दौर की तरह एक बार फिर कांग्रेस के भीतर दबाव समूहों की सक्रियता बढ़ी। सबसे पहले हरियाणा का मुद्दा उठा। उस समय राजीव जनता दल के देवीलाल गुट से नजदीकियां बढ़ाने की कोशिश कर रहे थे। देवीलाल ने राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार में उप प्रधानमंत्री बनने के लिए हरियाणा के मुख्यमंत्री का पद अपने पुत्र ओमप्रकाश चौटाला को दे दिया था। फरवरी, 1990 में चौटाला ने महम विधानसभा क्षेत्र से उपचुनाव लड़ा, जहां उनके समर्थकों पर मतदाताओं को डराने और हिंसा करने के आरोप लगे। वहां हुई हिंसक कार्रवाई में 13 व्यक्तियों तक के मारे जाने की सूचना थी।[3] इस चुनाव को रद्द कर दिया गया। मई के महीने में चौटाला ने महम के साथ-साथ दड़बा कलां सीट से दोहरी दावेदारी की। महम में फिर से हिंसा हुई और एक निर्दलीय उम्मीदवार की लाश मिली।[4] इस घटना की व्यापक प्रतिक्रिया हुई और चौटाला के इस्तीफे की मांग होने लगी। यहां तक कि जनता दल के केंद्रीय नेतागण भी उनका इस्तीफा मांग रहे थे। लेकिन राजीव इस विषय पर चुप्पी साधे हुए थे। महम उपचुनाव में कांग्रेस के उम्मीदवार का कहना था कि आलाकमान इस मुद्दे पर लीपापोती करने की कोशिश कर रहा है। हरियाणा के मुख्यमंत्री रहे कांग्रेस के बंसीलाल ने इसे मुद्दा बनाकर विकास मंच का गठन कर लिया।[5]

उसी दौरान बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री भागवत झा आजाद ने जन आस्था मंच बनाया, जिसका उद्देश्य बिहार के सभी महत्वपूर्ण कांग्रेस नेताओं को राष्ट्रीय नेतृत्व के खिलाफ एकजुट करना था। मध्य प्रदेश के पूर्व प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष दिग्विजय सिंह और युवक कांग्रेस के पूर्व अध्यक्ष आनंद शर्मा के नेतृत्व में 'युवा तुर्क' एकजुट हुए; उनका मकसद राजीव के निर्णयों को प्रभावित कर रही मंडली को निष्क्रिय करना था।[6] इन गतिविधियों के बीच राजीव को एक बड़ी चुनौती महाराष्ट्र के बालासाहेब विखे पाटिल की ओर से मिल रही थी, जो महाराष्ट्र के दिग्गज नेता रहे यशवंतराव चव्हाण के करीबी थे। पाटिल ने 'कांग्रेस फोरम फॉर एक्शन' का गठन किया। इस मंच को और भी ताकत मिली, जब नवलकिशोर शर्मा और जितेंद्र प्रसाद इससे जुड़ गए। कमलापति त्रिपाठी ने भी फोरम का गठन किए जाने का समर्थन किया।[7]

नवलकिशोर विशेष रूप से सक्रिय हुए। उन्होंने पार्टी में आंतरिक लोकतंत्र स्थापित करने और संगठनात्मक चुनाव करवाने पर जोर देना शुरू किया।[8] 1972 के बाद से कांग्रेस संगठन के चुनाव नहीं हुए थे। नवलकिशोर ने फोरम के बैनर तले इस विषय को प्रमुखता से उठाया

और अनेक स्थानों पर सम्मेलन आयोजित किए। वे राजस्थान में भी गतिविधियां बढ़ाने के लिए प्रयासरत रहे। जयपुर में उन्होंने अपने सहयोगी रमेशचंद घीया को संयोजक बनाया।[9] इन गतिविधियों का गहरा असर हुआ। राजीव के करीबी युवा नेताओं ने भी अपना असंतोष प्रकट करना शुरू कर दिया। वरिष्ठ नेताओं की नाराजगी पहले से थी। उसी दौरान उमाशंकर दीक्षित ने भी संगठन के चुनाव करवाए जाने की जरूरत पर जोर देना शुरू कर दिया। आखिरकार, राजीव को चुनाव करवाने का वादा करना करना पड़ा।[10]

दूसरी तरफ, वी.पी. सिंह की सरकार कांग्रेस का सशक्त विकल्प बनने का अवसर खोती चली गई। पार्टी के भीतर की फूट जल्दी ही उजागर होने लगी। मंडल आयोग की सिफारिशें लागू करने से लेकर लालकृष्ण आडवाणी को राम रथयात्रा के बीच गिरफ्तार करने जैसे घटनाक्रम वी.पी. के गले की फांस बनते चले गए। प्रधानमंत्री के रूप में वे एक वर्ष भी पूरा नहीं कर सके। वे भ्रष्टाचार के मुद्दे पर सत्ता परिवर्तन का शंखनाद करके शीर्ष पद पर पहुंचे थे, लेकिन उनके कार्यकाल में बोफोर्स जैसे ज्वलंत विषयों पर कोई ठोस कार्रवाई नहीं की जा सकी। 10 नवम्बर, 1990 को उन्हें इस्तीफा देना पड़ा। इसके बाद चंद्रशेखर ने जनता दल से अलग होकर समाजवादी जनता पार्टी का गठन किया और कांग्रेस के समर्थन से सरकार बनाई। महज आठ महीने के भीतर कांग्रेस द्वारा समर्थन वापस ले लिए जाने से चंद्रशेखर को भी अपदस्थ होना पड़ा। इसके बाद लोकसभा का मध्यावधि चुनाव करवाने की घोषणा हो गई।

राजीव ने जोरशोर से चुनाव अभियान शुरू किया। उसी दौरान वे 4 मई, 1991 को जयपुर पहुंचे। उनके आगमन पर तोतुका सभा भवन में कांग्रेसजनों का कार्यक्रम रखा गया, जिसमें प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष परसराम मदेरणा सहित पार्टी के अन्य वरिष्ठ नेता उपस्थित थे। मंच संचालन जनार्दनसिंह गहलोत कर रहे थे। वहां नवलकिशोर भी पहुंचे, जिनकी गतिविधियों के कारण स्थानीय कांग्रेसजनों के एक गुट में गहरी नाराजगी थी। इन नेताओं ने राजीव की मौजूदगी को उपयुक्त अवसर की तरह देखा और नवलकिशोर के खिलाफ वातावरण बनाया। जयपुर के एक नेता ने अपने संबोधन के दौरान कटाक्ष किया कि नवलकिशोर जिला कांग्रेस के मामलों में भी हस्तक्षेप करते हैं तो क्यों न इन्हें ही जिला अध्यक्ष बना दिया जाए![11] सेवा दल के एक पदाधिकारी ने पार्टी विरोधी गतिविधियों का आरोप लगाते हुए नवलकिशोर को कांग्रेस से निष्कासित करने की मांग की। इसके बाद राजीव के बोलने की बारी आई। उन्होंने भी नवलकिशोर पर परोक्ष रूप से हमला किया, 'लोग बड़ी-बड़ी बातें करते थे और बड़े-बड़े दावे करते थे। वे अब चुप क्यों हैं? जो लोग चुनाव में अपनी जमीन की बात करते थे, उनकी जमीन कहां गई?'[12] सभी जानते थे कि यह नवलकिशोर के दौसा से चुनाव लड़ने पर कटाक्ष था। नीचे बैठे कार्यकर्ताओं के एक समूह ने नवलकिशोर के खिलाफ नारेबाजी शुरू कर दी। सभागार में हंगामा हो गया। नवलकिशोर उस दौरान अविचल भाव से शांत बैठे रहे।[13] उन्होंने नेतृत्व का सम्मान किया और इस घटना के बाद भी पार्टी की मुख्यधारा से जुड़े रहे।

संदर्भ सूची

1. भास्कर रॉय और प्रभु चावलाः इंडिया टुडे, 31 मई, 1990
2. भास्कर रॉयः इंडिया टुडे, 31 मार्च, 1990
3. एपी न्यूज, 8 मार्च, 1990
4. डी.सी. मिगलानीः पॉलिटिक्स एंड रूरल पॉवर स्ट्रगल, दीप एंड दीप पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ 52
5. भास्कर रॉय और प्रभु चावलाः इंडिया टुडे, 31 मई, 1990
6. वही
7. भास्कर रॉयः इंडिया टुडे, 15 मई, 1990
8. भास्कर रॉय और प्रभु चावलाः इंडिया टुडे, 31 मई, 1990
9. आर.आर. तिवाड़ी, जयपुर शहर कांग्रेस सेवा दल के पूर्व अध्यक्ष के संस्मरण
10. भास्कर रॉयः इंडिया टुडे, 15 मई, 1990
11. गिरिराज गर्ग, राजस्थान प्रदेश कांग्रेस के पूर्व महामंत्री के संस्मरण
12. आर.आर. तिवाड़ी, जयपुर शहर कांग्रेस सेवा दल के पूर्व अध्यक्ष के संस्मरण
13. पत्रकार कुलदीप शर्मा के संस्मरण

भागः चार

संकटमोचक और सूत्रधार

1990 का दशक और राजस्थान

आप लोगों ने पूर्ण बहुमत देकर हमारी सरकार बनाई थी। लेकिन कांग्रेस ने उसे बर्खास्त कर दिया। हमारी क्या गलती थी? मुझे जबरन छुट्टी पर भेज दिया गया। क्या आप चाहते हैं कि मैं वापस अपनी ड्यूटी जॉइन कर लूं?

–भैरोंसिंह शेखावत

1989 राजस्थान की राजनीति में भारी उठापटक का साक्षी रहा। राज्य में 10 वर्षों से कांग्रेस सत्ता में थी; कुछ ही महीनों में विधानसभा चुनाव होने थे। इसलिए लोकसभा चुनाव के परिणाम से राजस्थान कांग्रेस का राजनीतिक भविष्य भी जुड़ा हुआ था। राजस्थान से जुड़े लोकसभा चुनावों में कांग्रेस का सफाया हो गया। कांग्रेस को एक भी सीट नहीं मिली। कांग्रेस के सभी धुरंधरों बूटा सिंह, बलराम जाखड़, राजेश पायलट, रामनिवास मिर्धा सहित नवलकिशोर शर्मा चुनाव हार गए। सीकर में हरियाणा के मुख्यमंत्री देवीलाल के चुनाव लड़ने से जाखड़ जरूर कमजोर माने जा रहे थे। इसी तरह, नाथूराम मिर्धा नागौर में रामनिवास से भारी पड़ते थे। लेकिन जिस तरह भाजपा के कैलाश मेघवाल ने जालोर जाकर बूटा सिंह को हराया और तब तक जमीनी राजनीति में निपुण नहीं माने जाने वाले जसवंत सिंह जोधपुर में गहलोत को हराकर जीते, वह आश्चर्यजनक था। कांग्रेस के लिए यह बड़ा झटका था। मुख्यमंत्री शिवचरण माथुर के पास कोई तर्क नहीं था। उन्हें पद से तत्काल हटना पड़ा। राजीव को तारणहार के रूप में हरिदेव जोशी दिखाई दिए, जिन्हें बेइज्जत करके राजस्थान से हटाया गया था।

जिन जोशी को हटाने के लिए विधायकों के बहुमत को यह कहते हुए ठुकरा दिया गया था कि उनके रहते प्रदेश में कांग्रेस विपक्ष का मुकाबला नहीं कर सकती, उन्हीं जोशी को संकट का सहारा मानकर वापस मुख्यमंत्री बनाया गया। जो केंद्रीय नेतागण माना करते थे कि जोशी उपयुक्त मुख्यमंत्री नहीं हैं, उन्हीं हारे हुए सिपहसालारों के सामने राजीव को फैसला करना पड़ा कि विपक्ष का मुकाबला जोशी ही कर सकते हैं। जोशी को 1985 में जोशो-खरोश से राजस्थान

का ताज सौंपा गया था, उन्हें हटवाकर शिवचरण माथुर ने शपथ ली तो कोई जोशी से राजभवन में बात करने को भी तैयार नहीं था। शामियाने के नीचे कांपते हाथ से जोशी चाय का कप थामे हुए थे और वह गिरने लगा तो एक 'अनजान' ने गर्म कप थाम लिया तो जोशी की आंखें कृतज्ञता से छलछला आई थीं। 'वही' माथुर अपमानजक ढंग से हटाए गए और 'उन्हीं' जोशी को वापस लाना पड़ा।[1] ऐसे समय में जबकि राजस्थान में कांग्रेसी शासन की उल्टी गिनती शुरू होना माना जा रहा था, क्या जोशी दो-तीन महीनों में होने वाले विधानसभा चुनावों में कांग्रेस को बहुमत दिलवा पाएंगे, यह नकारात्मक प्रश्न-सा लग रहा था। लोकसभा चुनाव के परिणामों से स्पष्ट संकेत मिला कि कांग्रेस विरोधी लहर का सर्वाधिक प्रकोप राजस्थान में है। इस लहर का मुकाबला करने के लिए जोशी बुलाए गए थे, लेकिन राज्य में कांग्रेसी शासन को बचाए रखने की गारंटी लेने की स्थिति में वे भी नहीं थे।

निस्संदेह जोशी उस समय राजस्थान के सर्वाधिक लोकप्रिय कांग्रेसी नेता थे। देश की आजादी की लड़ाई में उन्होंने हिस्सा लिया था। आजीवन खादी धारण करने का उन्होंने उत्कट व्रत ले रखा था। ये बातें जोशी को राजस्थान के आम कांग्रेसियों से अलग करती थीं और इन्ही कारणों से राजस्थान में उनका सम्मान भी था, लेकिन कांग्रेस के लिए तब संकट का समय चल रहा था। गत लोकसभा चुनावों में विपक्ष को न केवल 25 सीटें हासिल हुईं; साथ ही, इन लोकसभा क्षेत्रों से संबंधित 200 में से 180 विधानसभा क्षेत्रों में विपक्ष ने बढ़त हासिल की। केवल आठ कांग्रेसी विधायक ही अपने क्षेत्र से कांग्रेस को बढ़त दिलवा पाए। इन स्थितियों में जोशी को केवल सरकार चलाकर ही नहीं दिखाना था, बल्कि अपार जीत की खुशी से आह्लादित विपक्ष का मुकाबला भी करना था, जिसको जनता ने व्यापक जनसमर्थन दिया था। माथुर ने भले ही 'हार की नैतिक जिम्मेदारी' का हवाला देकर पद छोड़ा था, लेकिन यह माथुर के नेतृत्व की नहीं, बल्कि संपूर्ण कांग्रेस की हार थी।[2]

राजस्थान में कांग्रेस की उल्टी गिनती खत्म होने को आ गई। चुनावी समरांगण में जुटे कांग्रेसी दिग्गज भी इस बात से अपरिचित नहीं थे कि प्रदेश में कांग्रेस का शासन इने-गिने दिनों का रह गया। हालांकि प्रदेश की पौने तीन करोड़ जनता का वोट डालना बाकी था, लेकिन कांग्रेस उस रस्साकशी की मुख्य प्रतिद्वंद्वी नहीं रह गई। 1990 के विधानसभा चुनाव में भाजपा और जनता दल ने 160 सीटों पर मिलकर चुनाव लड़ा। इनमें से कुछ सीटों पर विवाद भी था और 40 सीटों पर दोनों दलों के उम्मीदवार खड़े थे। इस चुनाव ने राजस्थान में कांग्रेस की कमर तोड़ दी। आठ विधानसभा चुनावों में से सात बार सरकार बना चुकी कांग्रेस नवें विधानसभा चुनाव में सिर्फ 50 सीटें जीत सकी। राजस्थान में पहली बार सीटों की संख्या के हिसाब से कांग्रेस तीसरे नंबर पर आई। भाजपा ने 128 सीटों पर चुनाव लड़ा था; उसे 85 सीटें मिलीं। जनता दल ने 120 सीटों पर चुनाव लड़ा और 55 सीटें जीतने में सफल रहा। कांग्रेस को 33.64 प्रतिशत वोट मिले, जबकि भाजपा और जनता दल को मिलाकर 46.83 प्रतिशत वोट प्राप्त हुए। भाजपा-जनता दल ने मित्रतापूर्ण टकराव के बावजूद भैरोंसिंह शेखावत के नेतृत्व में सरकार बनाई।

जनता में व्याप्त परिवर्तन की लहर, शेखावत की बेदाग ताकतवर छवि और प्रदेश कांग्रेस में सशक्त नेतृत्व की कमी जैसे मिले-जुले कारणों ने आगामी वर्षों में कांग्रेस को हाशिए पर धकेल दिया। उस दौरान राज्यपाल मर्रि चन्ना रेड्डी की हमेशा इच्छा रहती थी कि कांग्रेस को दुबारा सत्ता में कैसे लाया जाए। उन्हीं दिनों प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंह राव माउंट आबू के दौरे पर आए। राव ने राज्यपाल होने के नाते रेड्डी से राजस्थान में कांग्रेस की स्थिति के बारे में पूछा। रेड्डी ने बताया, 'राज्य के बड़े कांग्रेस नेताओं में एकता नहीं है। सब अपनी-अपनी अलापते रहते हैं, इसलिए कांग्रेस को नुकसान हो रहा है।'[3] रेड्डी ने इस बातचीत के दौरान जनार्दनसिंह गहलोत के बारे में चर्चा की। राव ने गहलोत को काम में लेने पर सहमति व्यक्त कर दी। जयपुर लौटने पर रेड्डी ने गहलोत से पूछा कि सारे पार्टी नेताओं को कैसे एकजुट किया जाएगा। आखिरकार गहलोत के घर पर सभी प्रमुख कांग्रेस नेताओं को खाने पर बुलाया और बात की। इस बैठक में नवलकिशोर के अलावा हरिदेव जोशी, रामकिशोर व्यास, परसराम मदेरणा, शिवचरण माथुर, हीरालाल देवपुरा और कमला भी शामिल थे।[4]

हालांकि बाद में रेड्डी का तमिलनाडु तबादला कर दिया गया। वहां जयललिता जैसी तेज तर्रार मुख्यमंत्री को काबू में रखने के लिए एक सख्त राजनेता की जरूरत थी। बाबरी ढांचे के ध्वंस के बाद राजस्थान में राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया था। उस दौरान रेड्डी की जगह बलिराम भगत को राज्यपाल बनाकर लाया गया। भगत की कार्यशैली भी अलग नहीं रही। नई सरकार के गठन से पहले उन्होंने खूब मनमानी की। लोक सेवा आयोग और अन्य निगमों-वार्डों में उन्होंने अपने चहेतों को नियुक्त कर दिया। करों की समाप्ति और पिछड़े वर्गों में नई जातियों को शामिल करने जैसे दूरगामी फैसले भी उन्होंने ऐसे कर डाले, जैसे वे कामचलाऊ प्रशासक नहीं बल्कि राज्य के निर्वाचित मुख्यमंत्री हों। विधानसभा चुनाव की प्रक्रिया शुरू हो जाने के बाद भी वे इससे बाज नहीं आए।[5] लेकिन जनमानस पर इसका असर नहीं हो सका। 1993 के विधानसभा चुनाव में भाजपा या कांग्रेस से ज्यादा बड़ा प्रश्न व्यक्तिगत हो चला; शेखावत का व्यक्तित्व अधिक भारी पड़ने लगा। उस दौरान शेखावत ने जनसभाओं में कहना शुरू किया, 'आप लोगों ने पूर्ण बहुमत देकर हमारी सरकार बनाई थी। लेकिन कांग्रेस ने उसे बर्खास्त कर दिया। हमारी क्या गलती थी? मुझे जबरन छुट्टी पर भेज दिया गया। क्या आप चाहते हैं कि मैं वापस अपनी ड्यूटी जॉइन कर लूं?' इस पर सकारात्मक स्वर गूंजने लगते, 'हां साब, आप तो वापस आओ।'

राजस्थान कांग्रेस के लिए यह अंधकार युग की तरह था। पार्टी की अंदरूनी राजनीति चलती रही। प्रादेशिक स्तर पर वरिष्ठ माने जाने वाले नेतागण मुख्यधारा से कटते चले गए। ऐसे में नवलकिशोर निशाने पर आए। उन कांग्रेसी नेताओं को पहली बार बोलने का मौका मिला, जो दो दशक से नवलकिशोर के आभामंडल में खुद को बौना महसूस कर रहे थे। जो नवलकिशोर के नजदीकी नेता माने जाते थे, उनके टिकट तक काटे गए। ऐसे ही एक स्थानीय नेता थे रोहिताश्व शर्मा। अलवर जिले के बानसूर विधानसभा क्षेत्र से 1990 में रोहिताश्व कांग्रेस प्रत्याशी के रूप में दूसरे स्थान पर रहे थे। 1993 के विधानसभा चुनाव में रोहिताश्व

का टिकट काटकर राजेश पायलट की पत्नी रमा को कांग्रेस उम्मीदवार बना दिया गया। उस क्षेत्र में गुर्जर मतदाताओं की संख्या काफी थी, इसीलिए रमा को उतारा गया था। रोहिताश्व ने निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में नामांकन दाखिल कर दिया। चुनाव के दौरान इतना भयंकर जातिवाद उभरा कि रमा का गैर गुर्जर गांवों में प्रचार करना तक मुश्किल हो गया। रोहिताश्व ने रमा को लगभग 25 हजार वोटों से पराजित किया। इसी तरह, पास की बहरोड़ सीट से दो बार कांग्रेस विधायक रहे सुजानसिंह यादव को टिकट नहीं मिला तो वे भी निर्दलीय खड़े हो गए। बहुकोणीय मुकाबले में वे चुनाव जीतने में सफल रहे।

चुनाव परिणाम में राजस्थान के इतिहास में किसी पार्टी के पक्ष में सबसे बड़ा उछाल आया। भाजपा को 1990 में प्राप्त 25.25 प्रतिशत वोटों के मुकाबले 1993 में 38.60 प्रतिशत वोट मिले। उसकी 85 सीटों से बढ़कर 95 सीटें आईं। हालांकि कांग्रेस भी लाभ में रही, लेकिन भाजपा से पिछड़ गई। कांग्रेस को 1990 में मिले 33.64 प्रतिशत वोटों के स्थान पर 38.27 प्रतिशत वोट मिले; उसकी सीटें भी 50 से बढ़कर 76 हो गईं। भाजपा सत्ता के नजदीक थी; और सबसे बड़े दल के रूप में स्वाभाविक तौर पर उसे सरकार बनाने का निमंत्रण मिलना था। इसके बावजूद राज्यपाल बलिराम भगत ने आनाकानी की और भाजपा को सरकार बनाने के लिए तत्काल नहीं कहा। 29 नवम्बर, 1993 को जयपुर स्थित भाजपा मुख्यालय में लोकसभा में प्रतिपक्ष के नेता अटलबिहारी वाजपेयी की उपस्थिति में भाजपा के नवनिर्वाचित विधायकों की बैठक हुई। इसमें शेखावत को सर्वसम्मति से विधायक दल का नेता चुना गया। उसी दिन प्रदेश भाजपा के अध्यक्ष रामदास अग्रवाल ने राज्यपाल को पत्र लिखकर नई सरकार का गठन करने के लिए आमंत्रित करने का आग्रह किया। इस पत्र में यह दावा भी किया गया कि पार्टी के 98 सदस्य निर्वाचित हुए हैं; इनमें 95 पार्टी के अधिकृत प्रत्याशी और 3 समर्थित सदस्य हैं।[6]

भाजपा को पूर्ण बहुमत के लिए 101 विधायकों की आवश्यकता थी। उस समय उसे रोहिताश्व और सुजान सिंह के साथ ने काफी मजबूती दी। रोहिताश्व ने चुनाव प्रचार के दौरान ही शेखावत को मुख्यमंत्री बनाने के पक्ष में वोट डालने की घोषणा करके राजपूत मतदाताओं को अपने साथ जोड़ लिया था। चुनाव के बाद वे इस बात पर कायम हो गए, 'नवलकिशोर नहीं तो भैरोंसिंह'। नवलकिशोर को आगे नहीं लाया गया। चार अन्य निर्दलीय विधायकों ज्ञानसिंह चौधरी, शशि दत्ता, भगवानदास डोसी और गंगाराम चौधरी ने भी राज्यपाल को अलग से पत्र लिखकर शेखावत को समर्थन देने की घोषणा की। यह महत्वपूर्ण है कि इनमें से भी दो विधायक पूर्व में कांग्रेस के टिकट पर चुनाव जीते हुए थे। उस दौरान कांग्रेस की सरकार बनाने के लिए हरियाणा के मुख्यमंत्री भजनलाल के जरिए विधायकों की खरीद-फरोख्त से जुड़े समाचार सामने आए।[7]

शेखावत द्वारा बहुमत का दावा किए जाने और राज्यपाल द्वारा उन्हें सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करने के बीच का पांच दिवसीय घटनाक्रम काफी नाटकीय और आशंकाओं से भरा रहा। कांग्रेस ने सरकार बनाने के लिए जोड़तोड़ शुरू की और उसके कई सत्तारूढ़ केंद्रीय नेता

इसके लिए जुट गए। भजनलाल अपने खेमे के साथ जयपुर में एक पांच सितारा होटल में डेरा डालकर बैठ गए। राजस्थान के प्रभारी महासचिव अहमद पटेल ने कहा कि जनता दल, मार्क्सवादी, कम्युनिस्ट पार्टी और निर्दलीय विधायकों ने कांग्रेस को समर्थन देने का वादा किया है और जैसे ही दिल्ली में विधायक दल के नेता का मनोनयन होगा, सरकार बनाने के लिए औपचारिक दावा पेश कर दिया जाएगा। दिल्ली में कांग्रेस के प्रवक्ता वी.एन. गाडगिल ने भी एक संवाददाता सम्मेलन में दावा किया कि भाजपा राजस्थान में सरकार नहीं बना सकेगी। नवलकिशोर भी आश्वस्त थे। उनका कहना था कि अधिकांश निर्दलीयों से बात हो चुकी है और वे कांग्रेस के पक्ष में आ रहे हैं। भाजपा खेमे में जा चुके रोहिताश्व के बारे में नवलकिशोर ने भरोसा जताया, 'उनसे मेरी एक बार बात हो जाने के बाद वे इधर आ जाएंगे।'[8]

दूसरी तरफ, अस्वस्थ हो चले हरिदेव जोशी और प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष परसराम मदेरणा मुख्यमंत्री बनने की सियासत में उलझ गए। चंदनमल बैद इस फिराक में लग गए कि जोशी या मदेरणा के नाम पर सहमति नहीं बनती है तो देवपुरा को मुख्यमंत्री बनवा दिया जाए। जोशी के मन में भी मुख्यमंत्री बनने की इच्छा जगी। अपनी रुग्णता और बहुमत के अभाव के बावजूद वे सत्तारूढ़ होने की आस संजोए कमर कसकर तैयार हो गए। उन्हें 21 निर्दलीय विधायकों में से अधिकांश के साथ आने और जनता दल के 6 तथा 1 मार्क्सवादी विधायक के समर्थन का भी भरोसा था। लेकिन आलाकमान उन्हें पुन: मुख्यमंत्री बनाने को तैयार नहीं था। जोशी समर्थक यह दावा कर रहे थे कि जोशी को विधायक दल का नेता बनाने पर ही कांग्रेस राजस्थान में सरकार बनाने में सक्षम हो सकेगी, लेकिन पार्टी का शीर्ष नेतृत्व यह मानने को तैयार नहीं था। आलाकमान तक यह संदेश पहुंचाया गया कि शेखावत के साथ गए विधायक जोशी को नेता बनाने पर ही कांग्रेस में लौट सकते हैं क्योंकि वे सिर्फ जोशी के समर्थक हैं, कांग्रेस के नहीं। आखिरकार, आलाकमान को जोशी को ही हरी झंडी दिखानी पड़ी और विधायक दल ने उनको अपना नेता चुन लिया। लेकिन जोशी राज्यपाल के हर तरह के सहयोग के बावजूद बहुमत नहीं जुटा पाए।[9]

इस दौरान नाटकीय घटनाक्रम हुआ। नौ निर्दलीय विधायकों ने राज्यपाल को लिखकर दे दिया कि वे शेखावत के नेतृत्व में सरकार बनाने के लिए भाजपा विधायक दल के साथ हैं। शेखावत ने बिना समय गंवाए इस अवसर का उपयोग किया। वे भाजपा के दो मजबूत विधायकों देवीसिंह भाटी और राजेंद्र राठौड़ के साथ अचानक राजभवन पहुंचे। उनके आने की पूर्व सूचना नहीं होने के कारण राजभवन के द्वार बंद ही रहे। लेकिन द्वार पर मौजूद पुलिस के बड़े अफसरों को शेखावत ने द्वार खुलवाने को कहा तो उन्होंने झिझकते हुए द्वार खुलवा दिया। शेखावत की गाड़ी के पीछे दो गाड़ियां और पहुंच गईं। शेखावत पोर्च के पास उतरकर लॉन में बैठ गए। उन्होंने राज्यपाल से मिलने की इच्छा प्रकट की। दस-पंद्रह मिनट बाद राज्यपाल बाहर निकले। उनका चेहरा उड़ा हुआ था। शेखावत ने राज्यपाल से हाथ मिलाया और हाथ को पकड़े रखा। करीब एक मिनट भर के इस घटनाक्रम के बाद राज्यपाल ने धीमे से कहा, 'मैं पत्र टाइप करवाकर आपको भिजवा रहा हूं।' शेखावत इतना कहते हुए लौट

आए, 'राज्यपाल झूठ नहीं बोल सकते।'

वाजपेयी और जसवंत सिंह भी राज्यपाल से मिले। उन्होंने मांग की कि अकेली सबसे बड़ी पार्टी होने के नाते भाजपा को सरकार बनाने का मौका दिया जाना चाहिए। वाजपेयी ने उदाहरण दिया बताया कि पी.वी. नरसिंह राव को भी प्रधानमंत्री बनाए जाते समय यही हुआ था।[10] आखिरकार, राज्यपाल ने शेखावत को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित कर लिया।

उस दौर में ज्यादातर दिल्ली में सक्रिय नवलकिशोर पार्टी में अपना महत्व पुनर्स्थापित करने के लिए किसी अनैतिक गतिविधि में शामिल होने को तैयार नहीं हुए। 1996 में जब शेखावत बाईपास सर्जरी के लिए अमेरिका गए तो उनके पीछे से सरकार गिराने की कोशिशें होने लगीं। प्रदेश कांग्रेस के अनेक नेता विधायकों की खरीद-फरोख्त में जुटे थे, लेकिन नवलकिशोर उनकी मुहिम में शामिल नहीं हुए। इस दौरान राजनीतिक शुचिता की आदर्श मिसाल परसराम मदेरणा ने कायम की, जो विपक्ष के नेता थे। उन्होंने कांग्रेस को हॉर्स ट्रेडिंग में शामिल नहीं होने दिया। शेखावत के स्वदेश लौट आने से इन नेताओं के मनसूबे धरे रह गए।

1990 के दशक में राजस्थान में भाजपा की पैठ गहरी होती गई। चुनावों में उसे मिलने वाले वोट प्रतिशत में भी भारी उछाल आया। विशेष रूप से लोकसभा चुनावों में सीटों की संख्या में अंतर होने के बावजूद वोट प्रतिशत के मामले में भाजपा-कांग्रेस की नजदीकी टक्कर होती रही। उस दौर में अन्य पार्टियों की उपस्थिति लगभग नगण्य थी। 1991 में भाजपा को 40.9 प्रतिशत वोट के साथ 12 सीटों पर जीत मिली, जबकि कांग्रेस ने 44 प्रतिशत वोट के साथ 13 सीटों पर कब्जा किया। 1996 में दोनों पार्टियों के खाते में 12-12 सीटें आईं, लेकिन भाजपा का वोट प्रतिशत कांग्रेस के 40.5 प्रतिशत के मुकाबले 42.4 प्रतिशत हो गया। 1998 के चुनाव में कांग्रेस 44.5 प्रतिशत वोट की बदौलत 18 सीटें पाने में कामयाब रही; वहीं, भाजपा महज पांच सीटें ला सकी, जबकि उसे 41.7 प्रतिशत वोट मिले थे। 1999 में यही समीकरण उलटा हो गया; भाजपा को 47.2 प्रतिशत वोट के साथ 16 सीटों पर जीत मिली, लेकिन कांग्रेस की सीटों की संख्या 45.1 प्रतिशत वोट पाने के बावजूद 9 पर सिमट गई।[11]

संदर्भ सूची

1. जयपुर महानगर टाइम्स, 15 नवम्बर, 1999
2. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 10 दिसम्बर, 1989
3. जनार्दन सिंह गहलोत: संघर्ष से शिखर तक, पृष्ठ 89
4. वही, पृष्ठ 90
5. मिलापचंद डंडिया : चेहरों का सच, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2021, पृष्ठ 82
6. रामदास अग्रवाल का राज्यपाल को पत्र, 20 नवम्बर, 1993
7. एन.के. सिंह: इंडिया टुडे, 31 दिसम्बर, 1993
8. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 12 दिसम्बर, 1993
9. मिलापचंद डंडिया: चेहरों का सच, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2021, पृष्ठ 99-100
10. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 12 दिसम्बर, 1993
11. टाइम्स नाउ न्यूज वेब, 25 फरवरी, 2019

नरसिंह के संकटमोचक

लोकसभा चुनाव प्रक्रिया, जो आधे रास्ते में थी, उसे राजीव गांधी की हत्या हो जाने पर स्थगित कर दिया गया। यह चुनाव प्रक्रिया एक महीने बाद पूरी हुई और केंद्र में कांग्रेस पार्टी ने सरकार बनाई, जबकि उत्तर प्रदेश में भाजपा पहली बार सत्ता में आ गई। तब से एक नया खेल शुरू हुआ, जिसमें मैं केंद्र बिंदु रहा.. पीड़ित या खलनायक जो भी आप कहना चाहें।

–पी.वी. नरसिंह राव

21 मई, 1991.. राजीव गांधी चुनाव प्रचार के लिए तमिलनाडु के श्रीपेरंबदुर में थे। उनके स्वागत के बहाने नजदीक पहुंची एक महिला ने आत्मघाती विस्फोट किया। राजीव सहित 17 अन्य व्यक्तियों की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई। विस्फोट इतना शक्तिशाली था कि मृत व्यक्तियों के शरीर के अंग अलग–अलग दिशाओं में काफी दूर तक बिखर गए। महिला हमलावर का सिर उसके धड़ से अलग होकर 65 फीट दूर जाकर गिरा।[1] अपनी मां की तरह राजीव भी प्रतिक्रियावादी हिंसक तत्वों के कोपभाजन बन गए। सारा देश स्तब्ध रह गया।

कांग्रेस में अचानक नेतृत्व का संकट खड़ा हो गया। पार्टी के अनेक वरिष्ठ नेताओं ने सोनिया गांधी को अध्यक्ष चुनने का फैसला किया। यहां तक कि सोनिया के विरोधी माने जा रहे शरद पवार ने भी इसका समर्थन किया। जब कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक में प्रणब मुखर्जी ने पी.वी. नरसिंह राव का नाम प्रस्तावित किया तो पवार ने उन्हें टोका और सोनिया का नाम आगे किया। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हो गया। दूसरी तरफ, सोनिया सक्रिय राजनीति से दूर रहना चाहती थीं। उन्होंने न केवल अध्यक्ष पद ठुकराया, बल्कि अपनी तरफ से कोई नाम सुझाने के बजाय फैसला पार्टी पर छोड़ दिया। लंबे समय से गांधी–नेहरू परिवार के विश्वासपात्र रहे माखनलाल फोतेदार इन गतिविधियों से जुड़े हुए थे। राजीव की अस्थियां विसर्जित करने के लिए इलाहाबाद जाते समय राव ने फोतेदार से अपने लिए समर्थन मांगा। फोतेदार ने उन्हें याद दिलाया कि वे त्रिवेणी जा रहे हैं, जो एक महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल है। उन्होंने राव से वचन लिया कि वे गांधी–नेहरू परिवार के खिलाफ कोई काम नहीं करेंगे और अगर वे प्रधानमंत्री बन गए तो उन्हें तीन महीने के भीतर अध्यक्ष पद छोड़ना होगा। राव ने

जवाब दिया, 'तीन महीने क्यों, मैं 45 दिनों में पद छोड़ दूंगा।' दिल्ली लौटने के बाद वर्किंग कमेटी की बैठक में राव को सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुन लिया गया।[2]

राजीव की हत्या से उपजी सहानुभूति ने कांग्रेस को डूबने से बचा लिया। चुनाव परिणाम देखकर कहा जा सकता था कि इन चुनावों में हरियाणा के अलावा सारे देश में मतदाताओं का एक बड़ा हिस्सा हिंदुत्व या राम मंदिर के मुद्दे पर भाजपा का समर्थन कर रहा था। राजीव की हत्या से भाजपा को मिल रहे समर्थन में मामूली कमी आई; वहीं, कांग्रेस के वोट काफी बढ़ गए। 20 मई तक जिन 204 संसदीय क्षेत्रों के चुनाव संपन्न हुए थे, उनमें से कांग्रेस को केवल 48 सीटों पर जीत मिली।[3] लेकिन राजीव की हत्या के बाद स्थिति बदली; कुल 521 में से कांग्रेस के खाते में 232 सीटें आ गईं।[4] राजस्थान में दो चरण में चुनाव हुए। 20 मई को 15 सीटों के लिए मतदान हुआ, जिनमें से कांग्रेस को मात्र 5 सीटों पर जीत मिली। बयाना में जगन्नाथ पहाड़िया, जयपुर में नवलकिशोर शर्मा, अजमेर में जगदीप धनखड़ जैसे नेता हार गए। वहीं, 23 मई को जब 10 सीटों पर मतदान हुआ तो कांग्रेस 8 सीटों पर विजयी रही।[5] दूसरे चरण में जोधपुर, उदयपुर संभाग की दस सीटों पर हुए चुनाव में पहले चरण की अपेक्षा कांग्रेस को करीब 12 प्रतिशत वोटों का लाभ मिला।[6]

कांग्रेस को 1989 की तुलना में अच्छी-खासी बढ़त मिली थी, लेकिन बहुमत के लिए जरूरी आंकड़ा तब भी नहीं छुआ जा सका। सरकार के गठन के लिए भागदौड़ तेज होने लगी। संसदीय दल के नेता के चुनाव के लिए पवार ने राव को चुनौती दे दी। पवार अपनी जीत को लेकर आश्वस्त थे। राव भी इसे एक बड़ी चुनौती के रूप में देख रहे थे। उन्होंने एक बार फिर समर्थन के लिए फोतेदार की तरफ देखा। फोतेदार ने पवार को अपने घर बुलाकर एकांत में बात की और राजनीतिक परिस्थितियों से अवगत करवाया। फोतेदार ने बताया कि उन्होंने राव को वचन दिया है और सोनिया की भी अनुमति ले चुके हैं। आखिरकार, पवार ने अपनी दावेदारी वापस ले ली। राव सर्वसम्मति से संसदीय दल के नेता चुन लिए गए और राष्ट्रपति ने उन्हें प्रधानमंत्री पद ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया।[7]

प्रधानमंत्री के रूप में राव की सबसे यादगार उपलब्धि अर्थव्यवस्था का उदारीकरण रहा। सरकार बनाने के एक महीने बाद ही यह ऐतिहासिक कदम उठाकर उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया। लेकिन इतने से उनकी राह आसान नहीं हो सकी। वे शिखर से खाई की ओर गिरते चले गए। वे वह मौका खोने लगे, जो उन्हें राजनीतिक दावपेंच और बुद्धिमत्ता से अधिक भाग्य की बदौलत मिला था। दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश के प्रधानमंत्री होते हुए भी उनमें वह शक्ति समाप्त होती जा रही थी, जिसके बल पर जनतंत्र में नेतृत्व किया जाता है। वे जवाहरलाल नेहरू की तरह युद्ध नहीं हारे थे, न इंदिरा गांधी की तरह आपातकाल, जबरन नसबंदी अभियान और प्रेस का गला घोंटने के दोषी थे, न मोरारजी देसाई की तरह खंड-खंड होती पार्टी के अगुवा थे, न राजीव गांधी की तरह बोफोर्स की दलाली उनसे चिपकी हुई थी, न वी.पी. सिंह की तरह वे आत्माहुतियों के जिम्मेदार थे और न चरणसिंह-चंद्रशेखर की तरह खिलौना

प्रधानमंत्री थे; इसके बावजूद उनके शासन में बने रहने के प्रति जनता का इकबाल खत्म होता जा रहा था।[8]

राव की लोकतंत्र के प्रति आस्थावान छवि का विरोधाभास एक व्यक्ति-एक पद के सिद्धांत के विपरीत आचरण करने, कांग्रेस कार्यसमिति में चुने गए नेताओं से इस्तीफा दिलवाने और राज्यों में कांग्रेस कमेटियों के चुनाव नहीं करवाने से सामने आया। उनकी ईमानदार छवि हर्षद मेहता के आरोप और बेटे-दामाद पर लगे भ्रष्टाचार के आरोप से धूमिल हो गई। स्वच्छ सरकार की बात बोफोर्स प्रकरण को दबाने की कोशिश में लिप्त विदेश मंत्री माधवसिंह सोलंकी के इस्तीफे और प्रतिभूति घोटाले में लिप्त फेयरग्रोथ कंपनी से पांच करोड़ रुपए के बाजार भाव के शेयर मूल ढाई लाख रुपए देकर खरीदने के कारण इस्तीफा दे चुके पी. चिदंबरम की घटनाओं से दागदार हो चुकी थी। राशन व्यवस्था और आंतरिक सुरक्षा से खिलवाड़ करने वाले फैसलों से नाराज होकर गृह सचिव माधव गोडबोले और प्रतिभूति घोटाले का पर्दाफाश कर रहे सीनियर अधिकारी के. माधवन को भी सेवानिवृत्ति लेनी पड़ी।[9] स्थितप्रज्ञ, अशक्त, घाघ और मौके पर मौन साध लेने की मिली-जुली छवि ने राव को उस हालत में पहुंचा दिया, जब प्रधानमंत्री पद से उनका हटना कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं रह गई। चूंकि विपक्ष में भाजपा के अलावा कोई अन्य दल चुनाव नहीं चाहता था और कांग्रेस के पास राव जैसा भी विकल्प नहीं था, यही दोनों बातें राव को प्रधानमंत्री बनाए हुए थीं।[10]

जनता के बीच धूमिल होती छवि से कहीं अधिक राव अपनी पार्टी के भीतर पल रहे षडयंत्रों से चिंतित थे। सरकार का अल्पमत में होना भी स्थाई खतरा बना हुआ था। लालबहादुर शास्त्री के बाद वे पहले प्रधानमंत्री थे, जिनका संबंध गांधी-नेहरू परिवार से नहीं था। सरकार और पार्टी पर नियंत्रण बढ़ाने की उनकी कोशिशें इस परिवार के प्रति आस्थावान नेताओं को अपनी बिसात बिछाने के मौके दे रही थीं। राव के पास राजीव जैसी लोकप्रियता और दबंग व्यक्तित्व भी नहीं था, जिसके सहारे वे अंदरखाने से उठ रही विरोधी आवाजों को दबा सकें। इसके अलावा उनका दक्षिण भारत से होना कहीं-न-कहीं पार्टी के उत्तर भारतीय नेताओं को असहज करता था। ऐसे में, राव के ऊपर हर समय विद्रोह का संकट मंडरा रहा था। उन्हें ऐसे भरोसेमंद सहयोगियों की जरूरत थी, जो उनकी कुर्सी की सुरक्षा सुनिश्चित कर सकें।

नरसिंह के पांच वफादार

अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए नरसिंह राव ने अलग-अलग विशेष क्षमताओं वाले पांच नेताओं को चुना। उनकी इस पंचमंडली के सदस्य जितेंद्र प्रसाद, विद्याचरण शुक्ल, भुवनेश चतुर्वेदी, राजेश पायलट और नवलकिशोर थे। इन नेताओं को राव का सलाहकार कहे जाने से आपत्ति थी। जितेंद्र प्रसाद के अनुसार, 'राव अपने सलाहकार खुद हैं और किसी को उन्हें सलाह देने की जरूरत नहीं है।'[11] पांचों नेताओं का कार्यक्षेत्र उनकी विशेषताओं के आधार पर बंटा हुआ था। प्रसाद का काम पार्टी में राव की उदारवादी छवि स्थापित करना और उन्हें आरोपों से मुक्त रखना था। चतुर्वेदी राजनीतिक गलियारों में हो रही कानाफूसी की खबरें राव

तक पहुंचाते थे। पायलट विपक्षी पार्टियों के विरुद्ध रणनीति बनाने में मदद करते थे। शुक्ल मध्यप्रदेश से जुड़े होने के कारण राव के सबसे बड़े प्रतिद्वंद्वी अर्जुन सिंह को नियंत्रित रखने में सहायक थे। वहीं, जमीनी हालात से भलीभांति परिचित नवलकिशोर के जिम्मे सांगठनिक चुनौतियों से निपटने और हिन्दी भाषी क्षेत्र को संभालने का काम सौंपा गया।[12]

हालांकि नवलकिशोर 1991 का लोकसभा चुनाव जीतने में विफल रहे थे। जयपुर सीट पर उन्हें भाजपा के गिरधारीलाल भार्गव ने एक लाख से अधिक वोटों के अंतर से हराया। यह नवलकिशोर की लगातार दूसरी चुनावी हार थी, लेकिन हार ने उन्हें विचलित नहीं किया। एक अनुशासित सिपाही की तरह वे पार्टी के काम को आगे बढ़ाने में जुट गए। सांगठनिक स्तर पर काम करने का लगभग चार दशकों का अनुभव और राव के साथ पुराना व्यक्तिगत संबंध उन्हें सलाहकारों में सर्वाधिक उपयोगी बनाता था। धरातल पर सक्रिय रहने के कारण वे नेताओं की नब्ज पहचानते थे। उन्हें पता था कि कौन कब विद्रोह कर सकता है और किसका मुंह कैसे बंद करवाया जा सकता है। राव के लिए हिंदीभाषी क्षेत्र में जमीन तैयार करने और किसी भी बगावत को समय रहते दबाने का काम नवलकिशोर अन्य लोगों से बेहतर कर सकते थे और राव ने उन्हें कांग्रेस महासचिव के रूप में यही जिम्मेदारी सौंपी। उन्हें उत्तर प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक और दिल्ली जैसे महत्वपूर्ण राज्यों का प्रभार दिया गया। जब भी सरकार पर कोई संकट मंडराता, नवलकिशोर सक्रिय होकर अतिकुशल पार्टी प्रबंधक की भूमिका में आ जाते। जैसे ही संकट टल जाता, वे अपने सीमित दायरे में लौट आते और एक साधारण कार्यकर्ता की तरह जमीनी स्तर पर संपर्क बढ़ाने में जुट जाते।[13]

एक महत्वपूर्ण प्रसंग कर्नाटक का है, जहां के मुख्यमंत्री एस. बंगारप्पा पार्टी में व्यापक विरोध के बावजूद पद से हटने के लिए तैयार नहीं हो रहे थे। इतना ही नहीं, वे राज्य के महत्वपूर्ण नेताओं को लेकर अलग पार्टी बनाने की भी चेतावनी दे रहे थे। उस दौरान नवलकिशोर को महासचिव के रूप में कर्नाटक का प्रभार मिला हुआ था। उन्होंने राव को सुझाव दिया कि बंगारप्पा से सीधा टकराव मोल लेने के बजाए उनके सहयोगियों को अपने पक्ष में मिलाने की कोशिश करनी चाहिए। राव को यह सुझाव पसंद आया। इसके बाद नवलकिशोर ने बंगारप्पा के दो मुख्य सहयोगियों गृह मंत्री धरम सिंह और राज्य आवासन मंडल के अध्यक्ष टी. गौड़ा से संपर्क किया और कहा कि अगर उन्होंने अलग पार्टी बनाने में बंगारप्पा का साथ दिया तो आने वाले परिणामों के लिए वे खुद जिम्मेदार होंगे। यह तरकीब काम कर गई। विद्रोह का पूरा मानस बनाकर बंगारप्पा जैसे ही दिल्ली से बंगलौर पहुंचे, उनके साथियों ने स्पष्ट कह दिया कि वे कांग्रेस छोड़कर कहीं नहीं जाएंगे।[14]

बंगारप्पा की विदाई तय हो गई। उस समय जिन नामों को लेकर कयास लगाए जा रहे थे, उनमें विधानसभा अध्यक्ष एस.एम. कृष्णा प्रमुख थे। यहां तक कि उन्हें दिल्ली से टेलीफोन पर बधाई भी मिल गई।[15] लेकिन नवलकिशोर के समीकरण कुछ और कहते थे। 16 नवम्बर, 1992 को नवलकिशोर विधायक दल के नए नेता के नाम का सीलबंद लिफाफा लेकर बंगलौर पहुंचे। विधायक दल की बैठक में जब वह लिफाफा खोला गया तो

नवलकिशोर के मुंह से आलाकमान की पसंद का नाम सुनकर वहां सन्नाटा छा गया। वह नाम था वीरप्पा मोइली। कृष्णा की जगह मोइली का नाम कैसे आ गया, इसे लेकर राजनीतिक गलियारों में चर्चा होती रही।[16] मोइली मुख्यमंत्री बन गए। बंगारप्पा ने कुर्सी और पार्टी का भरोसा दोनों गंवा दिया; वे फिर कभी सत्ता में नहीं लौट सके।

अयोध्या की चेतावनी

भाजपा–विश्व हिन्दू परिषद के नेतृत्व में चल रहे रामजन्भूमि मुक्ति आंदोलन को देखते हुए नवलकिशोर को उत्तर प्रदेश का प्रभार सौंपा गया। अयोध्या की परिस्थिति का अवलोकन करके सरकार को रिपोर्ट देने के लिए एक शिष्टमंडल भेजने की तैयारी की गई। इसका नेतृत्व गांधीवादी कार्यकर्ता निर्मला देशपांडे कर रही थीं। नवलकिशोर ने कन्नौज से सांसद रह चुकीं शीला दीक्षित को भी शिष्टमंडल के सदस्य के रूप में जोड़ा। इन लोगों ने लौटकर यह रिपोर्ट दी कि अयोध्या भीतर से सुलग रहा है और स्थिति कभी भी विस्फोटक हो सकती है; वहां कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए त्वरित कार्रवाई किए जाने की जरूरत है।[17] आंदोलन निर्णायक मोड़ पर पहुंचने लगा तो इसके प्रभाव को सीमित करने के लिए राव ने नवलकिशोर को फैजाबाद से मार्च निकालने के लिए कहा।[18]

नवलकिशोर विवादित ढांचे के ध्वंस के दो दिन पहले तक इसके लिए प्रयासरत रहे कि कारसेवकों की उग्रता को कम किया जा सके। लेकिन आंदोलन दबाने के सिलसिलेवार सरकारी प्रयासों, शिला पूजन–कारसेवा जैसी सफलताओं ने रामभक्तों के संकल्प को दृढ़ कर दिया था और कांग्रेस से उनका मोहभंग हो चुका था। नवलकिशोर की राजनीतिक सूझबूझ जनभावना के आगे असरदार साबित नहीं हो सकी। 4 दिसम्बर, 1992 को फैजाबाद से निकाले गए शांति मार्च में उनके साथ जितेंद्र प्रसाद, शीला दीक्षित, उत्तर प्रदेश विधानमंडल दल के नेता प्रमोद तिवारी और अन्य प्रमुख नेतागण उपस्थित थे। अर्जुन सिंह भी दिल्ली से आने वाले थे। एक स्थानीय दैनिक ने राजेश पायलट के भी आने की खबर छापी थी। इसके बावजूद आसपास के जिलों से कार्यकर्ताओं को इकट्ठा करने पर भी साढ़े तीन सौ लोग ही जुटे। अर्जुन सिंह को लखनऊ स्टेशन पर कारसेवकों द्वारा घेर लिया गया। मुख्यमंत्री कल्याण सिंह ने उनकी बात राव से करवाई, तो राव ने उन्हें दिल्ली वापस आने के लिए कह दिया। इस तरह, फैजाबाद से अयोध्या तक निकाले जाने वाले मार्च की योजना को रद्द करके फैजाबाद तक ही सीमित करना पड़ा। कार्यकर्ता कचहरी की चारदीवारी के अंदर इकट्ठे हुए और सड़क पर निकलने के पहले ही गिरफ्तारी दे दी गई।[19] मेरी मुलाकात उस समय नवलकिशोर से हुई। वे कांग्रेस द्वारा बनाए गए मंच पर खड़े थे और गिरफ्तारी देने की बात कह रहे थे। इसके बावजूद अनुभवी नवलकिशोर के लिए हालात समझना कठिन नहीं था। वे अति गंभीर थे और भविष्य की घटनाओं का शायद अनुमान लगा पा रहे थे।

विवादित ढांचे के ध्वंस के बाद कांग्रेस के कुछ प्रमुख नेताओं ने राव के खिलाफ मोर्चा खोल दिया, इसमें अर्जुन सिंह अगुवा बने। यह किसी से छिपा नहीं था कि राव के इस विरोध

के पीछे सोनिया गांधी की परोक्ष भूमिका थी, जो गहरी चुप्पी के रूप में ज्यादा मुखर थी। हालांकि वे पहला राजनीतिक कदम बाबरी ध्वंस की निंदा करके उठा चुकी थीं। इसके बाद प्रधानमंत्री के आदेश पर इंटेलिजेंस ब्यूरो सोनिया के आवास 10, जनपथ पर नजर रखने लगा। 18 दिसम्बर, 1992 को इंटेलिजेंस ब्यूरो ने जवाब दिया, '7 दिसम्बर से सोनिया गांधी से मिलने वाले प्रमुख लोगों में अर्जुन सिंह (7 और 14 दिसम्बर), दिग्विजय सिंह, सांसद (7 और 8 दिसम्बर), नारायणदत्त तिवारी, माधवराव सिंधिया और अहमद पटेल थे।' इस रिपोर्ट में आगे लिखा था, 'सोनिया गांधी से बातचीत के दौरान अर्जुन सिंह, दिग्विजय सिंह, ए.के. जोगी, सलामतुल्लाह और अहमद पटेल ने प्रधानमंत्री समेत अन्य लोगों द्वारा इस मामले से निपटने के तरीकों पर नाराजगी जाहिर की।' 1992 तक राव लगभग हर सप्ताह एक बार सोनिया गांधी से मिलते रहे। 1993 के मध्य में उन्होंने सोनिया गांधी से मिलने उनके घर जाना छोड़ दिया।[20]

इस मुश्किल भरे दौर में राव पूरी तरह अपनी पंचमंडली पर आश्रित थे। नवलकिशोर की जिम्मेदारी भी बढ़ती गई। मार्च, 1993 में हरियाणा के सूरजकुंड में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। वहां अनेक नेताओं ने एक व्यक्ति-एक पद का विषय उठाया। उन्होंने राव से पार्टी अध्यक्ष का पद छोड़कर लोकतांत्रिक पद्धति से किसी नए व्यक्ति का चुनाव होने देने की मांग की। यह मांग उठाने वालों में फोतेदार अग्रणी थे, जो विवादित ढांचे के ध्वंस के बाद मंत्रिमंडल से इस्तीफा देकर राव को प्रधानमंत्री और पार्टी अध्यक्ष दोनों पदों से हटाने की प्रतिज्ञा ले चुके थे। उन्होंने राव को एक लंबा पत्र लिखकर उनके पवित्र वचन का स्मरण करवाया और कहा कि वे पार्टी की कमान किसी ऐसे व्यक्ति को सौंपें, जो अपना पूरा समय संगठनात्मक कार्यों को दे सके। इस मांग को राव के नेतृत्व को दी जा रही चुनौती के रूप में लिया गया। फोतेदार दबाव बनाने के लिए नटवर सिंह, शीला दीक्षित, के.एन. सिंह और अन्य सदस्यों के साथ धरने पर बैठे। अधिवेशन में अर्जुन सिंह ने इसी विषय पर एक प्रस्ताव भी रखा, लेकिन राव उसे निरस्त करवाने में सफल रहे।[21]

राव की पंचमंडली ने अधिवेशन में सबसे पहले यह सुनिश्चित किया कि वर्किंग कमेटी का चुनाव गुप्त मतपत्र से नहीं होने दिया जाए। विद्याचरण शुक्ल ने ध्वनि मत का सहारा लेकर चुनाव प्रक्रिया को समेटने का प्रस्ताव रखा। अर्जुन सिंह को निष्क्रिय करने के लिए वर्किंग कमेटी की रिक्तियों का चुनाव टालने की भी सलाह भी उन्होंने दी। ध्वनि मत के लिए ऊंची आवाज में चिल्लाने वाला दल तैयार किया जाना था। जितेंद्र प्रसाद ने विश्वसनीय समर्थकों की तलाश अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के बाहर करने का फैसला करते हुए कांग्रेस से संबद्ध सेवा दल और सज्जन कुमार तथा भजनलाल गुट के सदस्यों का सहारा लिया। अधिवेशन में जिन सदस्यों को मतदान का अधिकार प्राप्त था, उनकी संख्या केवल 950 थी लेकिन लगभग 4 हजार लोग विशेष आगंतुक के रूप में पहुंचे। वर्किंग कमेटी के प्रत्येक सदस्य को अपने साथ 10 विशेष आगंतुक लाने का अधिकार था, जबकि जितेंद्र प्रसाद को 100 और भजनलाल को 2 हजार प्रवेश पत्र दिए गए। सेवादल के एक हजार कार्यकर्ता अधिवेशन में पहुंचे।[22]

नवलकिशोर चौतरफा नजर रखे हुए थे। वे तुरंत भांप गए कि असंतुष्टों की गुप्त मतदान की मांग का समर्थन कर रहे अधिकतर नेता पार्टी या सरकार में पद नहीं मिलने से नाराज थे। उन्होंने ऐसे कुछ नेताओं की निशानदेही की और उनसे संपर्क साधा। बूटा सिंह से उन्होंने चार बार वार्ता की और उन्हें फोतेदार तथा के.एन. सिंह के असंतुष्ट गुट में शामिल नहीं होने के लिए राजी किया। इसी तरह उन्होंने हरियाणा के असंतुष्टों को राजनीतिक प्रलोभन देकर अपने पक्ष में किया। वहां के कद्दावर नेता चौधरी वीरेंद्र सिंह को नवलकिशोर ने समझाया कि अगर वे अभी राव को समर्थन देंगे तो उन्हें आगे चलकर पुरस्कृत किया जाएगा; वहीं, अगर वे हठधर्मिता दिखाएंगे तो भविष्य में मिलने वाले फायदों से हाथ धो बैठेंगे।[23]

राव ने उद्‌घाटन भाषण शुरू किया। जैसे ही उन्होंने वर्किंग कमेटी की दो रिक्तियों के लिए चुनाव के संबंध में बात की, आगे की पंक्तियों में बैठे लोग एक स्वर में चिल्ला उठे, 'आप नियुक्त कर दें, चुनाव की आवश्यकता नहीं है।' इस बीच छिटपुट विरोध का स्वर भी सुनाई दिया, 'नहीं-नहीं, चुनाव होना चाहिए।' इसके बाद हजारों की संख्या में पहुंचे विशेष आगंतुक खड़े होकर चुनाव के विरोध में आवाज उठाने लगे। इस माहौल में सीताराम केसरी ने राव से कहा कि अगर वे सदस्यों को नियुक्त करने का आग्रह अस्वीकार करते हैं तो यह सभा का अपमान होगा। इस पर राव ने कहा, 'मैं लाचारी में कुबूल करता हूं।' विरोध में उठ रही आवाजें शोर में गुम हो गईं। इसके बाद एक व्यक्ति-एक पद के नियम से राव को मुक्त रखने का प्रस्ताव ध्वनि मत से पारित हो गया। इने-गिने व्यक्ति ही इसके विरोध में हाथ खड़े करने का साहस कर सके।[24]

नवम्बर, 1993 में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश में विधानसभा चुनाव होने जा रहे थे। अयोध्या में विवादित ढांचे के ध्वंस के बाद इन चारों राज्यों की भाजपा सरकार को निलंबित करके राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया था। सबसे बड़ी चुनौती उत्तर प्रदेश में थी, जहां कांग्रेस की जड़ें बुरी तरह हिल चुकी थीं*। राव ने चुनावी रणनीति तैयार करने के लिए एक दल बनाया और नवलकिशोर को उससे जोड़ा। रामजन्मभूमि के मुद्दे पर भाजपा के प्रति बढ़ते आकर्षण के बीच कांग्रेस स्थानीय मुद्दों को तरजीह देने की नीति पर काम कर रही थी। बर्खास्त की गई चार राज्यों की भाजपा सरकारों के खिलाफ चार्जशीट दाखिल करने की भी तैयारी थी। भाजपा को टक्कर देने के लिए उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश में मुलायमसिंह यादव तथा कांशीराम के साथ गठबंधन करने पर भी विचार हो रहा था। अर्जुन सिंह, शरद पवार, राजेश पायलट और के. करुणाकरण गठबंधन की वकालत कर रहे थे, लेकिन नवलकिशोर, जितेंद्र प्रसाद और दिनेश सिंह इसके विरोध में थे। आखिरकार, कोई ठोस फैसला नहीं करते हुए संभावनाओं के द्वार खुले रखने की नीति पर अमल हुआ। नवलकिशोर का कहना था, 'हम अपनी उपलब्धियों और भाजपा की विफलताओं को उभारेंगे।'[25]

उस दौरान गुजरात में भी राजनीतिक संकट गहराने लगा, जिससे निबटने के लिए राव ने

---

*1991 के लोकसभा चुनाव में उत्तर प्रदेश में कांग्रेस को सिर्फ 5 सीटें मिल सकीं; भाजपा ने 51 सीटों पर जीत दर्ज की। उसी वर्ष विधानसभा चुनाव भी हुए। कांग्रेस को फिर जबर्दस्त झटका लगा। भाजपा ने 221 सीटों पर कब्जा कर लिया; कांग्रेस 46 सीटों पर सिमट गई।

नवलकिशोर को मोर्चे पर नियुक्त किया। अक्टूबर, 1994 में राज्यसभा चुनाव हुए। उस समय गुजरात में कांग्रेस की सरकार थी। चिमनभाई पटेल के इस्तीफे के बाद छबीलदास मेहता मुख्यमंत्री बनाए गए थे। गुजरात से कांग्रेस के राज्यसभा उम्मीदवार जे.बी. शाह अप्रत्याशित रूप से हार गए। यह क्रॉस वोटिंग का नतीजा था; गुजरात के 98 में से लगभग 15 विधायकों ने भाजपा उम्मीदवारों आनंदीबेन पटेल और कनकसिंह मंगरोला को वोट दिया था। कांग्रेस के अन्य दो उम्मीदवार माधवसिंह सोलंकी और राजू परमार जीतने में सफल रहे, लेकिन उन्हें भी अनुमान से कम वोट मिले। इस घटनाक्रम के बाद भाजपा द्वारा कांग्रेस विधायकों को अपने साथ मिलाकर सरकार बनाने के प्रयास तेज होने लगे। इन हालात में राव ने अपने विश्वस्त सहयोगियों को गुजरात में सक्रिय किया। नवलकिशोर के साथ जगन्नाथ मिश्र, जी.के. मूपनार और एच.के.एल. भगत पर्यवेक्षक के रूप में पहुंचे। उन्होंने विधायकों से मिलकर स्थिति को संभाला। आखिरकार, विधायकों ने नेतृत्व से जुड़ा फैसला प्रधानमंत्री के ऊपर छोड़ दिया।[26]

केंद्र में राव को सबसे अधिक चुनौती अर्जुन सिंह से मिल रही थी, जिन्होंने अयोध्या में विवादित ढांचा ध्वस्त होने के बाद से ही राव विरोधी राह पकड़ ली। मानव संसाधन विकास मंत्री होते हुए भी उन्होंने राव की आलोचना नहीं छोड़ी। 20 अप्रेल, 1994 की शाम अपने 1, रेसकोर्स रोड स्थित निवास पर मुझे दिए गए एक लंबे साक्षात्कार में उन्होंने कहा, 'विवादित ढांचा ध्वस्त होने में जिम्मेदारी सरकार की कैसे नहीं है? सरकार तो सरकार है, पूरी तरह से जिम्मेदारी से पल्ला कैसे झाड़ सकती है?' राव प्रधानमंत्री होने के साथ कांग्रेस के अध्यक्ष भी हों, इससे भी अर्जुन सहमत नहीं थे। उनका मानना था कि देश और पार्टी के लिए सोनिया गांधी कभी भी संकट के समय संबल बनने का काम कर सकती हैं। उन्होंने चश्मे के ऊपर से झांकती आंखों पर जोर डालते हुए कहा, 'अब बेताबी बढ़ रही है और एक सीमा से ज्यादा बेताबी होती है, तभी क्रांति होती है।'[27]

साम-दाम-दंड-भेद

राष्ट्रीय स्तर पर चल रही गुटबाजी से राजस्थान भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। प्रदेश कांग्रेस मुख्य रूप से दो धड़ों में विभाजित दिखाई दे रही थी; एक धड़ा नरसिंह राव के साथ था और दूसरा, अर्जुन सिंह के साथ। हरिदेव जोशी के बिगड़ते स्वास्थ्य के कारण राव समर्थक गुट के नेतृत्व की बागडोर नवलकिशोर के हाथ में आ गई। राजस्थान के विधायकों का बड़ा वर्ग नवलकिशोर के साथ था क्योंकि नवलकिशोर ने उन्हें टिकट दिलवाने में मदद की थी। नवलकिशोर के प्रभाव के कारण प्रदेश के नेता राव का खुलकर विरोध करने से बच रहे थे। अर्जुन सिंह द्वारा सरकार की अक्षमताओं को इंगित करते हुए मंत्रिमंडल से इस्तीफा दिए जाने और इसके जवाब में राव द्वारा अनुशासनहीनता के आरोप में अर्जुन को पार्टी से निष्कासित किए जाने के बाद हालात और जटिल हुए। प्रदेश अध्यक्ष अशोक गहलोत ने सार्वजनिक रूप से अर्जुन के खिलाफ की गई कार्रवाई का समर्थन किया, लेकिन परसराम मदेरणा, नाथूराम मिर्धा, राजेश पायलट जैसे नेता कोई एक पक्ष चुनने से परहेज कर रहे थे।

शिवचरण माथुर जयपुर में अर्जुन की विशाल रैली की तैयारियों में जुटे जरूर थे, लेकिन तब तक उन्होंने राव के खिलाफ कुछ नहीं बोला था। उनका कहना था, 'हम बस उस मुद्दे को उठाना चाहते हैं, जिसे अर्जुन सिंह ने जनता के सामने रखा है। इस पर चर्चा होनी चाहिए।'[28]

कांग्रेस के नेताओं में नेतृत्व को लेकर असमंजस चल रहा था। जयपुर की अर्जुन समर्थक रैली में कांग्रेस नेता और बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री भागवत झा आजाद द्वारा राव पर देश बेचने का आरोप लगाए जाने के खिलाफ कांग्रेस के मुख्यमंत्री पद पर विद्यमान नेता भी उसे अंदरूनी मामला बता रहे थे। दूसरी ओर, उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री द्वारा नारायणदत्त तिवारी पर देशद्रोही होने का आरोप लगाए जाने पर उनकी निंदा कर रहे थे।[29]

इन परिस्थितयों में सत्ता बचाए रखने के लिए राव अपने विश्वस्त सहयोगियों पर आश्रित थे और नवलकिशोर की भूमिका महत्वपूर्ण होती गई। पेचीदा राजनीतिक हालात को संभालने में महारत रखने वाले नवलकिशोर ने राव की अनेक परेशानियों को अपने चातुर्य से सुलझाया। वे असंतुष्टों के मन में सबसे पहले यह बात बैठाते थे कि दक्षिण भारत में मजबूत लॉबी होने के कारण राव को पद से हटाना असंभव है। फिर वे उन्हें सलाह देते थे कि बगावत की कोशिश करके राजनीतिक कैरियर खत्म करने से बेहतर है कि राव के समर्थक बनकर इनाम पाते रहें। आत्मविश्वास और कठोरता से पेश की गई ये दलीलें नेताओं के मन में असुरक्षा और डर पैदा कर देती थीं। आखिरकार, वे विद्रोह का विचार छोड़कर वफादार बन जाते थे। नवलकिशोर की इन खूबियों को देखते हुए राव ने उन्हें महत्वपूर्ण राज्यों में पार्टी को मजबूती देने का जिम्मा सौंपा। विवादित ढांचे के ध्वंस के बाद राष्ट्रपति शासन में रखे गए उत्तर प्रदेश और राजस्थान में नवलकिशोर को समन्वय समिति का अध्यक्ष बनाया गया क्योंकि दोनों राज्य आगामी चुनावों के लिहाज से कांग्रेस के लिए जरूरी थे। यह फैसला राव के अंदरूनी घेरे में नवलकिशोर के बढ़ते कद का परिचायक था।[30] इंदिरा-संजय-राजीव की अनुपस्थिति में बिखरने की कगार पर आती हुई कांग्रेस के लिए नवलकिशोर मजबूत पतवार की भूमिका निभा रहे थे।

खादी-ग्रामोद्योग आयोग के अध्यक्ष

नरसिंह राव के कार्यकाल में खादी को बढ़ावा देने के प्रयासों में भी नवलकिशोर केंद्रीय भूमिका में रहे। नवलकिशोर पर खादी का काफी प्रभाव था। वे चप्पल और अंत:वस्त्र भी खादी के ही पहनते थे। महात्मा गांधी के विचारों से प्रेरणा लेकर उन्होंने 1967 में दौसा जिले में क्षेत्रीय खादी-ग्रामोद्योग समिति* की स्थापना की थी। उनका उद्देश्य युवाओं और महिलाओं को खादी-ग्रामोद्योग के माध्यम से रोजगार उपलब्ध करवाकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाना था। केंद्रीय

*इस संस्था से कतिन-बुनकरों, कामगारों और कार्यकर्ताओं के दो हजार परिवार जुड़े हुए हैं, जिन्हें प्रति वर्ष 4 करोड़ रूपए पारिश्रमिक दिया जाता है। संस्था को 5 बार राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। नवलकिशोर की प्रेरणा से दौसा जिले के सिकंदरा से महुआ के क्षेत्र में खादी-ग्रामोद्योग आयोग द्वारा विकसित स्टोन क्लस्टर आज देश-विदेश में अपना परचम फहरा रहा है। इसे वर्ल्ड स्टोन मार्ट प्रदर्शनी में प्रथम पुरस्कार भी दिया गया था। 2003-04 में राजस्थान अकाल की चपेट में आया तो नवलकिशोर ने खादी को फैमिन कोड से जुड़वाकर मजदूरी का 75 प्रतिशत अनाज सहायता दिलवाकर कतिन-बुनकरों की मदद की। (नवलकिशोर शर्मा का संक्षिप्त जीवन परिचय, क्षेत्रीय खादी-ग्रामोद्योग समिति, दौसा)

राजनीति में सक्रिय रहते हुए भी वे इस समिति के उपाध्यक्ष बने रहे। उनकी यही सोच राष्ट्रव्यापी बनती गई; दौसा की क्षेत्रीय खादी समिति को उन्होंने देश की अग्रणी खादी-ग्रामोद्योग संस्था में ला खड़ा किया। नवलकिशोर खादी के मर्म को समझते थे और इसके विकास के लिए प्रयासरत रहते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि खादी-ग्रामोद्योग के विकास से ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी को दूर किया जा सकता है। 1994 में राव ने खादी-ग्रामोद्योग आयोग के अध्यक्ष के लिए किसी योग्य व्यक्ति की तलाश शुरू की। उन्होंने इस बारे में विनोबा भावे के निकट सहयोगी रहे खादी मिशन के संयोजक बाल विजय भाई से चर्चा की। बाल विजय भाई ने नवलकिशोर का नाम सुझाया। राव ने नवलकिशोर के समक्ष यह प्रस्ताव रखा तो नवलकिशोर ने इनकार कर दिया। राव ने उन्हें कहा, 'खादी को आपकी जरूरत है। किसी भी कुर्सी का पद इस पर बैठने वाले इंसान के व्यक्तित्व से बढ़ और घट सकता है। आपने यह पद ग्रहण कर लिया तो पद का मान बढ़ जाएगा।' राव की समझाइश का असर हुआ; नवलकिशोर खादी-ग्रामोद्योग आयोग के अध्यक्ष का पद संभालने के लिए तैयार हो गए।[31]

उस दौर में खादी संस्थाएं जबरदस्त संकट का सामना कर रही थीं। खादी से जुड़े लाखों कामगार बेरोजगार हो रहे थे। राव ने खादी जगत की समस्याओं को हल करने के लिए अपनी अध्यक्षता में एक हाई पॉवर कमेटी बनाई। उन्होंने नवलकिशोर को भी इससे जोड़ा। इस कमेटी में ए.के. एंटनी, मनमोहन सिंह, प्रणब मुखर्जी, एम. अरुणाचलम, पी.ए. संगमा आदि शामिल थे। कमेटी ने देश के विभिन्न भागों में बैठकें आयोजित करके राज्य खादी-ग्रामोद्योग मंडलों, संस्थाओं के प्रतिनिधियों और क्षेत्र के अनुभवी व्यक्तियों से चर्चा की। खादी से जुड़े कारीगरों, कार्यकर्ताओं और आयोग के कर्मचारियों के प्रतिनिधियों को भी इन बैठकों में आमंत्रित किया गया। व्यापक चर्चाओं के बाद कमेटी ने जुलाई, 1994 में अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंपी। इसमें खादी के प्रचार-प्रसार को बढ़ाने के लिए कई सुझाव और प्रस्ताव दिए गए थे। सरकार द्वारा अतिरिक्त वित्तीय सहायता के माध्यम से 20 लाख लोगों को रोजगार मुहैया करवाने का लक्ष्य रखा गया। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए देश में 21 सर्वाधिक पिछड़े जिलों की निशानदेही करके प्रत्येक जिले में 10 हजार रोजगार सृजित करने का ध्येय रखा गया। इन जिलों के अलावा भी 50 जिले और 125 ब्लॉक खादी-ग्रामोद्योग आयोग के विशेष रोजगार कार्यक्रम (एसईपी) के अंतर्गत चिह्नित किए गए थे।[32]

हाई पॉवर कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में सुझाव दिया कि सभी प्रमुख वित्तीय संस्थाओं और व्यावसायिक बैंकों को खादी-ग्रामोद्योग क्षेत्र में संस्थागत ऋण का प्रवाह बढ़ाने का परामर्श दिया जाना चाहिए। इसके अलावा, सरकार ग्रामोद्योग के लिए नाबार्ड या किसी स्वतंत्र वित्तीय संस्था की देखरेख में 2 हजार करोड़ रुपए का अतिरिक्त कोष तैयार करे। एक महत्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि खादी-ग्रामोद्योग आयोग के अंतर्गत आने वाले ग्रामीण उद्योगों का योजना और विकास के उद्देश्यों में सरकारी स्तर के ग्रामीण और लघु उद्योग के रूप में आकलन किया जाए। खादी-ग्रामोद्योग बोर्ड के सशक्तीकरण के लिए उचित कदम उठाए जाएं। इन सिफारिशों के आधार पर भारत सरकार ने खादी-ग्रामोद्योग क्षेत्र के लिए कई नीतियां

बनाईं। इस क्षेत्र तक वित्तीय सहायता पहुंचाने के लिए एक सुनियोजित तंत्र बनाने के उद्देश्य के साथ ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम की शुरुआत की गई।[33] 1995–96 के बजट में खादी–ग्रामोद्योग आयोग को एक हजार करोड़ रुपए का ऋण मुहैया करवाने की योजना प्रस्तुत की गई। यह प्रावधान किया गया कि केंद्रीय खादी–ग्रामोद्योग आयोग के लिए केंद्र सरकार और राज्य स्तरीय खादी–ग्रामोद्योग बोर्डों के लिए संबंधित राज्य सरकारों की गारंटी पर ऋण मुहैया करवाया जाएगा।[34]

नवलकिशोर ने खादी को लोकप्रिय बनाने के लिए बहुस्तरीय प्रयास किए। इनमें खादी–ग्रामोद्योग विशेष रोजगार कार्यक्रम, आरपीडीएस, ब्लॉक विकास कार्यक्रम, सीसीबी के तहत संस्थाओं को आर्थिक और तकनीकी मदद उपलब्ध करवाना प्रमुख है। उन्होंने खादी–ग्रामोद्योग को जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के साथ जोड़ा, कामगारों की समस्याओं को समझा और खादी संस्थाओं के प्रतिनिधियों से भी विस्तृत चर्चाएं की। उन्होंने खादी मिशन से देश के हर कोने को जोड़ने का प्रयास किया। पूर्वोत्तर के राज्यों में खादी–ग्रामोद्योग की गतिविधियों को बढ़ाने के लिए गुवाहाटी में आयोग की वार्षिक सभा और खादी सभा का आयोजन किया। इस क्षेत्र में यह अब तक का सबसे बड़ा आयोजन माना जाता है। इसका असर यह हुआ कि असम, मणिपुर, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, मेघालय, और त्रिपुरा के गांवों में खादी–ग्रामोद्योग समितियों ने अपने बिक्री केंद्र और उत्पादन केंद्र खोले। इससे आदिवासी महिलाएं भी खादी मिशन से जुड़ीं। इन गतिविधियों से ग्रामीणों का रुझान इस क्षेत्र के प्रति बढ़ने लगा और कामगारों की आमदनी में इजाफा हुआ। परिणामस्वरूप, खादी के उत्पादन और बिक्री दोनों में वृद्धि हुई। 1995–96 के अंत में सरकार द्वारा जारी किए गए आंकड़ों के अनुसार खादी–ग्रामोद्योग आयोग से 14.43 लाख लोग लाभान्वित हो रहे थे। इनमें से 3.74 लाख लाभार्थी अनुसूचित जाति और जनजाति से थे। लाभार्थियों में 46 प्रतिशत से अधिक महिलाएं थीं। 1995–96 और 1996–97 में देश में खादी–ग्रामोद्योग उत्पादन बिक्री और रोजगार सृजन का रिकॉर्ड कायम हुआ।[35] लेकिन वित्तीय अभाव के कारण नवलकिशोर जितना करना चाहते थे, उतना नहीं कर सके। आठवीं पंचवर्षीय योजना में खादी–ग्रामोद्योग कार्यक्रम के लिए 1,498 करोड़ रुपए आवंटित किए गए, जबकि आयोग ने 5,864 करोड़ रुपए का बजट प्रस्ताव रखा था। प्रस्तावित बजट का केवल 25 प्रतिशत मुहैया करवाए जाने के बावजूद नवलकिशोर ने अपने लक्ष्य का 40 प्रतिशत पूरा कर लिया। 1994–97 के बीच 8 लाख अतिरिक्त रोजगार सृजित किए गए।[36]

इसके समानांतर ही पार्टी के भीतर गुटबाजी जारी रही। 1994 में राव के विरोधी सोनिया गांधी के साथ जमा होने लगे। अर्जुन सिंह, नटवर सिंह, माखनलाल फोतेदार, शीला दीक्षित और विन्सेंट जॉर्ज आदि सोनिया से उनकी शिकायत करते रहे। सोनिया को यह यकीन दिलाया गया कि राव जानबूझकर उनके पति की मौत की जांच धीमी कर रहे हैं। सोनिया को संदेह था कि राव धीरे–धीरे उनके परिवार को कांग्रेस के केंद्र से हटा रहे थे। 1995 तक वे खुलकर बोलने के लिए तैयार हो गईं। राव चिंतित थे। राजीव गांधी की हत्या के मामले

में सोनिया उन्हें कड़े पत्र भेज रही थीं। विशेष जांच टीम द्वारा आपराधिक छानबीन के अलावा, उन चूकों का पता लगाने के लिए वर्मा और जैन न्यायिक आयोग भी गठित किए गए, जिनकी वजह से हत्या हुई थी। सोनिया को लग रहा था कि वे कोशिशें नई नहीं थीं। राव ने सोनिया को समझाने के लिए उनसे मिलने का प्रयास किया। उन्होंने 10, जनपथ में एक स्पेशल आरएएक्स फोन लगाने का भी सुझाव दिया ताकि वे उनसे सुरक्षित लाइन पर बात कर सकें। शुरू में इसके लिए तैयार हो चुकीं सोनिया ने बाद में इससे इनकार कर दिया।[37]

केसरी के साथ नई शुरुआत

20 अगस्त, 1995 को सोनिया गांधी ने राजीव के लोकसभा क्षेत्र अमेठी में एक भाषण दिया। उन्होंने दस हजार लोगों की भीड़ को संबोधित करते हुए कहा, 'आप मेरा दुख समझ सकते हैं। मेरे पति को गुजरे चार साल, तीन महीने बीत चुके हैं, लेकिन उनकी हत्या की जांच इतनी धीमी गति से चल रही है।' उन्होंने यह भी कहा कि उनके पति की मृत्यु के बाद नेतृत्व में एक खालीपन पैदा हो गया है। यह उनकी पहली राजनीतिक रैली थी और उनकी बातों के जवाब में भीड़ ने 'राव हटाओ, सोनिया लाओ' के नारे लगाए।[38] इसके साथ ही तेजी से राजनीतिक माहौल करवट लेने लगा। राव के विरोधियों ने इसे सुनहरे अवसर की तरह देखा और सोनिया को पार्टी की कमान संभलाने की मुहिम जोर पकड़ने लगी। कांग्रेस की सदस्य नहीं होने के बावजूद सोनिया को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशनों में 'विशेष आगंतुक' के रूप में बुलाया जाने लगा। हर बार उनके आगमन पर समर्थकों के नारे गूंजने लगते और काफी देर तक अधिवेशन की कार्रवाई में व्यवधान बना रहता। हालात ऐसे हो गए थे कि एक बार राव के भाषण के दौरान सोनिया अधिवेशन में पहुंचीं तो उनके समर्थकों ने नारेबाजी शुरू कर दी और राव को भाषण रोककर शोर थमने का इंतजार करना पड़ा।[39]

इसी दौरान कांग्रेस में एक नया धड़ा तैयार करने की रणनीति बनने लगी। फोतेदार ने जातिगत समीकरणों के आधार पर नारायणदत्त तिवारी (ब्राह्मण) और अर्जुन सिंह (ठाकुर) के नेतृत्व में नई पार्टी बनाने का प्रस्ताव रखा। उनका कहना था कि नई पार्टी वास्तविक कांग्रेस के आदर्शों और मूल्यों का प्रतिनिधित्व करेगी और राव के नेतृत्व में असहज महसूस कर रहे कार्यकर्ताओं की बड़ी तादाद को मंच प्रदान करेगी। सोनिया ने इस प्रस्ताव का खुलकर समर्थन नहीं किया, लेकिन यह इशारा मिल गया कि वे इस कदम का समर्थन करेंगी। इसके बाद गतिविधियां तेज हो गईं। गांधी-नेहरू परिवार के करीबी रहे लोगों को एकजुट करने की कोशिश हुई। नटवर सिंह, शीला दीक्षित, अजय माकन आदि साथ आते गए। तिवारी की वरिष्ठता को देखते हुए नई पार्टी का नाम ऑल इंडिया इंदिरा कांग्रेस (तिवारी) रखा गया।[40]

1996 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस के जीतने की गुंजाइश उसकी गुटबाजी ने ही खत्म कर दी थी। उसे तिवारी कांग्रेस के घोषित विरोध का सामना तो करना ही पड़ रहा था; पार्टी के बचे हुए लोगों में भी राव को सत्ताच्युत करने की चाह रखने वालों की बड़ी संख्या थी।

ऐसे लोगों ने कांग्रेस छोड़ी नहीं थी, लेकिन अंदरखाने में राव का विरोध करने में जुटे हुए थे। हालांकि 1996 के लोकसभा चुनाव परिणाम में कांग्रेस को सर्वाधिक 28.80 प्रतिशत वोट मिले, लेकिन उसकी सीटों की संख्या घटकर 140 रह गई। दूसरी ओर, भाजपा 20.2 प्रतिशत वोट प्राप्त करने के बावजूद 161 सीटों पर विजयी हुई। तिवारी कांग्रेस को डेढ़ प्रतिशत से कुछ कम वोट मिले, लेकिन वे शिवसेना को मिले वोटों जितने थे। तिवारी कांग्रेस के निराशाजनक प्रदर्शन से उसे सिर्फ चार सीटों पर संतोष करना पड़ा, लेकिन कई सीटों पर वह कांग्रेस को हराने में सफल रही। राव अपनी मर्जी से पार्टियों को भी जोड़े रखने में सक्षम नहीं थे। वे तमिलनाडु में उस समय लोकप्रिय द्रमुक से समझौता नहीं कर पाए, जिसे 17 सीटें मिलीं; कांग्रेस ने अन्नाद्रमुक से तालमेल किया, जिसका खाता भी नहीं खुल सका। कांग्रेस से अलग हुई तमिल मनीला कांग्रेस का उदय भी बड़ी घटना के रूप में सामने आया; उसे तमिलनाडु में 20 सीटें प्राप्त हुईं। इस तरह कांग्रेस के नेताओं ने अपनी जड़ें खोदने का काम खुद किया। यह सब राव को हटाने के लिए हो रहा था, लेकिन यह समझना मुश्किल नहीं था कि परोक्ष रूप से सोनिया और उनके समर्थकों की शह थी।

राजस्थान की 25 सीटों में से कांग्रेस को 11 सीटों पर जीत प्राप्त हुई। 1991 में अलवर लोकसभा क्षेत्र भाजपा का गढ़ था। कुल आठ में से सात विधानसभा क्षेत्रों में उसे बढ़त मिली थी। कांग्रेस को मिले 23.50 प्रतिशत वोटों के मुकाबले भाजपा को 48.30 प्रतिशत वोट मिले थे। इसके बावजूद नवलकिशोर ने 1996 में अलवर लोकसभा क्षेत्र से चुनाव लड़ना स्वीकार किया। राज्य में उस समय सरकार भी भाजपा की थी। नवलकिशोर कड़े संघर्ष के बावजूद आश्चर्यजनक रूप से अलवर से चुनाव जीत गए। दौसा और जयपुर के बाद तीसरे नए लोकसभा क्षेत्र से चुनाव जीतना अपने आप में महत्वपूर्ण था। कुल आठ विधानसभा क्षेत्रों में से अलवर, राजगढ़ और बानसूर विधानसभा क्षेत्रों में मिली बढ़त के कारण ही वे चुनाव जीत पाए। वे पांचवीं बार लोकसभा सदस्य के रूप में दिल्ली जरूर पहुंचे, लेकिन कांग्रेस में चल रही उठापटक से काफी असंतुष्ट और दुखी थे। वे सोनिया समर्थकों द्वारा की जा रही असंतुष्ट गतिविधियों से सहमत नहीं थे और इसमें देश तथा लोकतंत्र दोनों का नुकसान देख रहे थे। उस दौर में अनेक कांग्रेसजनों ने कांग्रेस का दामन छोड़कर भाजपा को अपनाया। राजस्थान के कुछ कांग्रेस नेताओं के संपर्क में भाजपा थी। इसमें राजस्थान भाजपा की कोई भूमिका नहीं थी; सब दिल्ली से ही हो रहा था। उस दौरान नवलकिशोर से भी संपर्क साधा गया। नवलकिशोर कांग्रेस छोड़ने को तैयार नहीं हुए। मैंने इस बारे में पूछा तो उनका कहना था, 'अटलबिहारी वाजपेयी से मेरे अच्छे संबंध हैं। वे मेरा सम्मान भी करते हैं। कांग्रेस में इस समय जो चल रहा है, उससे मैं संतुष्ट भी नहीं हूं। लेकिन कांग्रेस नहीं छोड़ सकता।'[41]

चुनावी हार के बाद राव को अध्यक्ष पद छोड़ना पड़ा और सीताराम केसरी* को पार्टी की

*सीताराम केसरी ने स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लिया था। वे 1942 में जयप्रकाश नारायण वगैरह के साथ हजारीबाग जेल में बंद थे। जब जयप्रकाश अपने साथियों के साथ दिवाली की रात जेल से कूदकर भागे तो जेल के वार्डनों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए केसरी और उनके साथी ढोल पीटकर खूब नाचे। (कुसुम देशपांडे: विनोबा-अंतिम पर्व, परमधाम प्रकाशन, पवनार, 2010, पृष्ठ 361)

कमान सौंपी गई। केसरी को कांग्रेस संसदीय दल का नेता बनाने के लिए वर्किंग कमेटी में सर्वसम्मति लाने में नवलकिशोर की भूमिका थी। नवलकिशोर और मनमोहन सिंह को संसदीय दल के नेता को लेकर सांसदों की राय जानने के लिए वर्किंग कमेटी ने अधिकृत किया था। नेता के चुनाव की निर्धारित तारीख को स्थगित करवाने से लेकर जानकीबल्लभ पटनायक और ए.के. एंटनी को केसरी के नाम पर राजी करने तक नवलकिशोर सक्रिय रहे।[42] केसरी के विरोधी माने जा रहे शरद पवार सहित वर्किंग कमेटी के लगभग सभी सदस्य केसरी के समर्थन में आ गए। केवल राजेश पायलट* अपवाद थे और चुनाव करवाने पर अड़े हुए थे।[43]

अध्यक्ष चुने जाने के बाद केसरी ने कांग्रेस वर्किंग कमेटी में पहली नियुक्ति के रूप में नवलकिशोर को साथ लिया।[44] वे नवलकिशोर के सुदीर्घ अनुभव का अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में लाभ उठाना चाहते थे। वर्किंग कमेटी में नवलकिशोर की नियुक्ति को उन्हें महासचिव बनाने की पूर्व की कार्यवाही के रूप में देखा गया। वहीं, पहले महासचिव रह चुके नवलकिशोर का मानना था कि यह पद किसी अन्य को दिया जाना चाहिए। वे मानते थे कि देश को कांग्रेस की जरूरत है, लेकिन कांग्रेस को सत्ता में लाने के लिए उसे मजबूत करना होगा। उन्होंने कहा कि वे पार्टी की पुरानी महिमा वापस लाने के लिए यथाशक्ति काम करेंगे।[45] उसी दौरान पार्टी को नए सिरे से पुनर्जीवित करने के लिए एक चिंतन शिविर आयोजित करने को लेकर विचार शुरू हुआ। 1974 में आयोजित नरौरा शिविर के बाद ऐसा कोई कार्यक्रम नहीं हो सका था। नरसिंह राव ने भी इस तरह के शिविर का आयोजन करने को लेकर चर्चा की थी, लेकिन किन्हीं कारणों से ऐसा नहीं हो सका**। केसरी इसकी काफी जरूरत महसूस कर रहे थे। उनकी नजर एक बार फिर नवलकिशोर पर गई, जिनकी नरौरा शिविर में सक्रिय भूमिका रही थी। उन्होंने शिविर की तैयारियों के लिए एक कमेटी गठित की और नवलकिशोर को उसका अध्यक्ष बनाया।[46]

शिविर में शीर्ष नेतृत्व के सामने प्रस्तुत करने के लिए पांच दस्तावेज तैयार किए जाने की योजना बनी। समकालीन राजनीतिक स्थिति और कांग्रेस की भूमिका का महत्वपूर्ण दस्तावेज तैयार करने की जिम्मेदारी नवलकिशोर को सौंपी गई। आर्थिक नीति पर मनमोहन सिंह, चुनाव सुधारों पर माधवराव सिंधिया, संगठन के मामलों पर वी.एन. गाडगिल और विदेशी मामलों पर प्रणब मुखर्जी तथा नटवर सिंह ने काम शुरू किया। इन दस्तावेजों को आगामी शिविर में प्रस्तुत किया जाना था, जहां चर्चा के बाद इन दस्तावेजों के आधार पर पार्टी का एजेंडा तय होना था। शिविर में कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य, सभी प्रदेशों के निवर्तमान

---

*राजेश पायलट के कारण नवलकिशोर को अपना तैयार किया हुआ दौसा छोड़ना पड़ा, लेकिन नवलकिशोर ने इसे अपने अभिमान से नहीं जोड़ा। 11 जून, 2000 को दौसा से जयपुर आने के दौरान पायलट के वाहन को एक सरकारी बस ने टक्कर मार दी। उन्हें अस्पताल लाया गया, लेकिन बचाया नहीं जा सका। उनकी पत्नी रमा अपने दोनों बच्चों सचिन-सारिका और दामाद विशाल के साथ जयपुर अस्पताल पहुंची तो वहां नवलकिशोर पहले से मौजूद थे। उन्होंने भीड़ को हटाकर अंदर जाने में उनकी मदद की। (रमा पायलट: राजेश पायलट-अ बायोग्राफी, रोली बुक्स, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 190)

**नवलकिशोर के अनुसार, 'जब नरसिंह राव को पार्टी का नेतृत्व मिला तो उन्होंने एक शिविर आयोजित करने का फैसला किया। वे यह आयोजन भोपाल में करना चाहते थे। मुझे नहीं पता कि यह क्यों नहीं हो सका। अगर शिविर आयोजित किया जाता तो चुनाव में हमारा प्रदर्शन बेहतर होता।' (नवलकिशोर शर्मा: साक्षात्कार, रेडिफ.कॉम, 25 जनवरी, 1997)

और पूर्व अध्यक्ष, कांग्रेस विधायक दलों के नेतागण, कांग्रेसी मुख्यमंत्री-उपमुख्यमंत्री, पूर्व राज्य पार्टी सचेतक, सांसद के पद पर बने हुए सभी पूर्व मंत्री आमंत्रित किए जाने थे, जिनकी संख्या 300 से 375 तक होने का अनुमान था। नवलकिशोर चाहते थे कि यह शिविर उनके लोकसभा क्षेत्र अलवर में हो। वहीं, शरद पवार यह आयोजन अपने गृह राज्य महाराष्ट्र के महाबलेश्वर में करवाने के इच्छुक थे।[47] शिविर की रूपरेखा और उद्देश्यों के बारे में नवलकिशोर का कहना था:

> कांग्रेस में हर व्यक्ति यह सोच रहा है कि पार्टी की ऐसी हालत क्यों हो गई। पार्टी के सांसदों की संख्या 147 रह गई है। पार्टी के इतिहास में हमने ऐसी स्थिति का सामना कभी नहीं किया था। क्या हमसे आर्थिक नीतियों में चूक हुई है? हम किस तरह समाज के सभी वर्गों के बीच अपनी पैठ बना सकते हैं? इन बिंदुओं का विश्लेषण किए जाने की जरूरत है। हर पार्टी को अपनी नीतियों और कार्यक्रमों को लेकर स्पष्ट होना चाहिए; विशेष रूप से भारत में, जहां पिछले 50 वर्षों में अनेक परिवर्तन हुए हैं। कांग्रेस 1989 से विफलताओं का सामना कर रही है। मुझे लगता है कि इसका एक कारण किसी भी मुद्दे पर स्पष्ट नीति का अभाव है। अभी पार्टी में नेतृत्व परिवर्तन की प्रक्रिया जारी है। इसलिए इस समय कार्यकर्ताओं को पुनः सक्रिय करने के लिए एक शिविर की जरूरत महसूस की जा रही है। शिविर में चार मुद्दों पर चर्चा की जाएगी। पहला, हमें एक सुस्पष्ट आर्थिक नीति की जरूरत है। दूसरा, पार्टी का जनाधार बनाने के उपायों पर चर्चा होगी; विशेष रूप से पिछड़े वर्गों के संदर्भ में, जो कांग्रेस से दूरी बनाए हुए हैं। इस पर भी विचार होगा कि युवाओं का समर्थन कैसे जुटाएं; हमारा युवा वर्ग निराश क्यों है; उसे हम पार्टी के साथ कैसे जोड़ें। तीसरा बिंदु यह है कि पार्टी को जिला और गांव स्तर पर कैसे मजबूत किया जाए; पार्टी के ढांचे में किस तरह का परिवर्तन हो कि लोग वरिष्ठ नेताओं से सीधी बातचीत कर सकें। अंततः, बदलते वैश्विक आर्थिक परिप्रेक्ष्य में पड़ोसी देशों से तालमेल को लेकर विदेश नीति पर विचार होगा।[48]

संदर्भ सूची

1. रानी सिंह: सोनिया गांधी-एन एक्स्ट्राऑर्डिनरी लाइफ, एन इंडियन डेस्टिनी, पालग्रेव मैकमिलन, न्यूयॉर्क, 2011, पृष्ठ 125-126
2. माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 264-265
3. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 23 जून, 1991
4. चुनाव आयोग की रिपोर्ट
5. चुनाव आयोग की रिपोर्ट का विश्लेषण
6. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 23 जून, 1991
7. माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 265-266
8. गोपाल शर्मा: आजादी के बाद, प्रज्ञा प्रकाशन, जयपुर, 1996, पृष्ठ 20
9. गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका, 1 अगस्त, 1993
10. गोपाल शर्मा: आजादी के बाद, प्रज्ञा प्रकाशन, जयपुर, 1996, पृष्ठ 20
11. जफर आगा: इंडिया टुडे, 31 मई, 1993
12. जफर आगा: इंडिया टुडे, 1 मई, 1993
13. वही
14. वही
15. राजकुमार सिंह: समय के चेहरे, ग्रंथ सदन, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 60
16. वही
17. शीला दीक्षित: सिटिजंस दिल्ली-माय टाइम्स, माय लाइफ, ब्लूम्सबरी इंडिया, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ 103
18. रशीद किदवई: द ट्रिब्यून, 14 जनवरी, 2020
19. गोपाल शर्मा: कारसेवा से कारसेवा तक, राजस्थान पत्रिका प्रेस, जयपुर, 1993, पृष्ठ 189
20. विनय सीतापति: आधा शेर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ 216-217
21. माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 279-280
22. जफर आगा, युवराज घिमिरे और इंद्रजीत बढ़वार: इंडिया टुडे, 15 अप्रेल, 1993
23. जफर आगा: इंडिया टुडे, 1 मई, 1993
24. जफर आगा, युवराज घिमिरे और इंद्रजीत बढ़वार: इंडिया टुडे, 15 अप्रेल, 1993

25. जफर आगा: इंडिया टुडे, 15 अक्टूबर, 1993
26. उदय माहुरकर: इंडिया टुडे, 15 अक्टूबर, 1994
27. गोपाल शर्मा: मानव संसाधन विकास मंत्री अर्जुन सिंह से साक्षात्कार, राजस्थान पत्रिका, 22 अप्रेल, 1994
28. एन.के. सिंह: इंडिया टुडे, 15 फरवरी, 1995
29. गोपाल शर्मा: मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह से साक्षात्कार, राजस्थान पत्रिका, 6 फरवरी, 1995
30. जफर आगा: इंडिया टुडे, 1 मई, 1993
31. महेश शर्मा, नवलकिशोर शर्मा के पूर्व पीए के संस्मरण
32. खादी-ग्रामोद्योग कार्यक्रम की मूल्यांकन रिपोर्ट, पीईओ स्टडी सं 181, योजना आयोग, भारत सरकार
33. प्रेस विज्ञप्ति, लघु कुटीर एवं मध्यम उपक्रम मंत्रालय, भारत सरकार, 10 अप्रेल, 2017
34. मनमोहन सिंह: बजट भाषण, भाग 'अ', 15 मार्च, 1995, पृष्ठ 5-6
35. नवलकिशोर शर्मा का संक्षिप्त जीवन परिचय, क्षेत्रीय खादी-ग्रामोद्योग समिति, दौसा
36. खादी-ग्रामोद्योग कार्यक्रम की मूल्यांकन रिपोर्ट, पीईओ स्टडी सं. 181, योजना आयोग, भारत सरकार
37. विनय सीतापति: आधा शेर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ 219
38. वही, पृष्ठ 220
39. रानी सिंह: सोनिया गांधी-एन एक्स्ट्राऑर्डिनरी लाइफ, एन इंडियन डेस्टिनी, पालग्रेव मैकमिलन, न्यूयॉर्क, 2011, पृष्ठ 159
40. माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीफ्स, हार्परकॉलिन्स पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 284
41. नवलकिशोर शर्मा से तत्कालीन साक्षात्कार पर आधारित
42. रेणु मित्तल: राष्ट्रदूत, 9 जनवरी, 1997
43. बिजनेस स्टैंडर्ड, 2 जनवरी 1997
44. सैयद फिरदौस अशरफ: रेडिफ.कॉम, 25 जनवरी, 1997
45. रेणु मित्तल: राष्ट्रदूत, 9 जनवरी, 1997
46. वही
47. वही
48. नवलकिशोर शर्मा: साक्षात्कार, रेडिफ.कॉम, 25 जनवरी, 1997

पचमढ़ी शिविर के सूत्रधार

वरिष्ठ नेता नवलकिशोर शर्मा पचमढ़ी शिविर के प्रभारी थे। शिविर में कांग्रेस नेताओं ने पांच समूहों में विभिन्न मुद्दों पर चर्चा की और अपनी सिफारिशें शर्मा को सौंपीं। शर्मा की सलाह पर सोनिया गांधी ने मुझे उन सिफारिशों को एकत्र करके उद्घोषणा का रूप देने के लिए और मीडिया से बात करने के लिए अधिकृत किया।

–प्रणब मुखर्जी

1996 का लोकसभा चुनाव भारतीय राजनीति में नया मोड़ साबित हुआ। त्रिशंकु परिणाम के कारण स्थिति यह बनी कि दो वर्ष के भीतर तीन प्रधानमंत्री बदल गए। सबसे पहले भाजपा ने अटलबिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में सरकार बनाई, लेकिन वाजपेयी बहुमत सिद्ध करने में विफल रहे और 13 दिनों बाद उन्हें इस्तीफा देना पड़ा। इसके बाद जनता दल के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चा बना। भारत के राजनीतिक इतिहास में पहली बार चुनाव के बाद हुए छोटे प्रादेशिक दलों के गठबंधन ने केंद्र में सरकार बनाई। संयुक्त मोर्चा सरकार में मुख्य रूप से वे दल शामिल थे, जो किसी राज्य विशेष तक ही सीमित थे। इसमें तेलुगु देशम पार्टी, द्रमुक, अन्ना द्रमुक, तमिल मनीला कांग्रेस और असम गण परिषद शामिल थे। कांग्रेस और माकपा ने संयुक्त मोर्चा सरकार को बाहर से समर्थन देने का फैसला किया और कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री एच.डी. देवगौड़ा के नेतृत्व में सरकार का गठन हुआ। लगभग दस महीने बाद कांग्रेस ने सरकार से समर्थन वापस ले लिया, लेकिन चुनाव को टालने के लिए नए प्रधानमंत्री की शर्त पर समर्थन जारी रखना स्वीकार किया। इसके बाद संयुक्त मोर्चा की कमान इंद्रकुमार गुजराल के हाथों में आ गई।

उसी दौरान मार्च, 1997 में सोनिया गांधी ने कांग्रेस की सदस्यता ली। यह वह दौर था, जब पी.वी. नरसिंह राव के साथ भारत के आर्थिक उदारीकरण के सूत्रधार रहे मनमोहन सिंह को कांग्रेस में नजरअंदाज किया जाने लगा था। पार्टी में नई आर्थिक नीतियों की जरूरत महसूस की जा रही थी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का 80वां अधिवेशन कलकत्ता में अगस्त में आयोजित होना तय हुआ। इसके लिए कई महीने पहले से ही आर्थिक सुधारों

का नया खाका तैयार किया जाने लगा। नवलकिशोर शर्मा, प्रणब मुखर्जी और अहमद पटेल अग्रणी भूमिका में थे। पार्टी अध्यक्ष सीताराम केसरी के करीबी इन नेताओं को आर्थिक प्रस्ताव का मसविदा तैयार करने की जिम्मेदारी दी गई। पटेल को आगामी अधिवेशन का संयोजक बनाया गया, जबकि प्रणब प्रस्तावों से जुड़ी सभी कमेटियों के संयोजक की भूमिका में थे।[1]

अप्रेल में पार्टी की आर्थिक कमेटी की बैठक में मनमोहन सिंह की आलोचनाओं ने मुखर रूप लिया। प्रणब और नवलकिशोर ने कहा, 'मनमोहन का अर्थशास्त्र त्रुटिपूर्ण है और उसमें नई दिशा का अभाव है। समय आ गया है कि कांग्रेस आर्थिक नीति को नई दिशा दे क्योंकि पिछली कांग्रेस सरकार के कुछ कार्यक्रम बुरी तरह विफल हुए हैं।' कमेटी के अध्यक्ष प्रणब का कहना था, 'हमें निवेशकों के लिए हितकारी नीति का मसविदा बनाना चाहिए और यह तैयारी रखनी चाहिए कि कांग्रेस के सत्ता में आने पर इसे लागू किया जाए।' मनमोहन भी इस कमेटी के सदस्य थे। ए.के. एंटनी, नारायणदत्त तिवारी, माधवसिंह सोलंकी, मीरा कुमार और मणिशंकर अय्यर अन्य सदस्य थे। बैठक में मनमोहन ने अपनी नीतियों का बचाव करने की काफी कोशिश की, लेकिन प्रणब और नवलकिशोर ने स्पष्ट कर दिया कि कमेटी की रिपोर्ट 'नई बोतल में पुरानी शराब' की तर्ज पर नहीं बनाई जा सकती। नवलकिशोर का कहना था, 'समय आ गया है कि कांग्रेस आर्थिक नीति को नई दिशा दे क्योंकि पिछली कांग्रेस सरकार के कुछ कार्यक्रम बुरी तरह विफल हुए हैं।'[2]

नवलकिशोर ने इस बात पर जोर दिया कि उनकी आलोचना मनमोहन की ओर केंद्रित नहीं है, लेकिन वे वास्तव में अतीत की वित्तीय नीतियों के प्रति चिंतित हैं। उनका मानना था कि विदेशी निवेश को लेकर किए जा रहे बड़े-बड़े दावे गलत साबित हुए। उन्होंने अपनी बात को विस्तार देते हुए कहा, 'हम ऊर्जा जैसे क्षेत्रों में आशानुरूप विदेशी निवेश प्राप्त करने में विफल रहे हैं। देश में औद्योगिक निवेश में भारी गिरावट आई है और सरकार का यह वादा कि विदेशी निवेश का लगभग 85 प्रतिशत हिस्सा आधारभूत ढांचे में आएगा, झूठा साबित हुआ। अधिकतर निवेश उपभोक्ता क्षेत्र में आए।' इन आलोचनाओं का जवाब देते हुए मनमोहन ने विदेशी निवेश में आई गिरावट के लिए निम्न ऊर्जा उत्पादन, बुरे प्रबंधन से जूझ रहे राज्य विद्युत बोर्ड और अनपेक्षित मुकदमेबाजी को जिम्मेदार ठहराया।[3]

कांग्रेस के वरिष्ठ नेता के रूप में नवलकिशोर इस बात पर जोर दे रहे थे कि पार्टी को अपनी नीतियों में व्यापक परिवर्तन करने की जरूरत है। लेकिन उनकी चिंताएं दलीय घेरे में सीमित नहीं थीं। वे यह महसूस कर रहे थे कि संवैधानिक मूल्यों का निरंतर ह्रास हो रहा है और राजनीति का स्वरूप विकृत हुआ है। उस समय देश की आजादी का स्वर्ण जयंती वर्ष चल रहा था। इसके उपलक्ष में लोकसभा में विशेष सत्र आयोजित किया गया। वहां नवलकिशोर ने देश की आजादी के बाद हुए उल्लेखनीय विकास को रेखांकित करते हुए राजनीतिक मूल्यों में आती गिरावट पर विचार व्यक्त किए। उन्होंने कहा:

स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती के अवसर पर हम यह आत्मचिंतन कर रहे हैं कि हमने क्या पाया है और क्या खोया है। विषय गंभीर है और स्वाभाविक रूप से इस बारे में विभिन्न दृष्टिकोण हैं। कई मुद्दों पर जोर दिया जाना चाहिए, लेकिन प्रमुख विषय यह है कि हमने महात्मा गांधी के नेतृत्व में लंबे समय के बाद यह आजादी हासिल की है। यह दुनिया का पहला उदाहरण था कि इस देश ने अहिंसा के जरिए आजादी पाई। हमारे आजाद होने के बाद दुनिया के अनेक देशों को आजादी मिली। आज हमें गर्व होता है कि ब्रिटिश शासन के दौर में गरीबी, भुखमरी, अज्ञानता और रूढ़िवादिता का शिकार हो चुके इस देश ने आजादी के बाद तरक्की की है। मुझे कम समय मिला हुआ है। किसी भी वक्त घंटी बज सकती है। इसलिए मैं आंकड़ों में नहीं जाना चाहता। लेकिन यह तथ्य है कि हमने उद्योग, कृषि, शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और सामाजिक क्षेत्रों में तरक्की की है। उसमें कमियां हो सकती हैं, लेकिन हमने तरक्की की है। इसमें कोई शक नहीं है। मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि आजादी के बाद देश की कोई उपलब्धि नहीं रही और सब कुछ व्यर्थ चला गया। यह सच है कि देश कई समस्याओं से जूझ रहा है.. गरीबी, भ्रष्टाचार, सामाजिक अन्याय, अशिक्षा, आधारभूत ढांचे की कमी। अब भी काफी कुछ किया जाना बाकी है। आज सवाल यह है कि इन समस्याओं को कैसे सुलझाया जाए। मैं महसूस करता हूं कि आज इस देश में सबसे बड़ी समस्या विश्वसनीयता की है। आज भरोसे की कमी है, चरित्र और आस्था का संकट है। अगर हम इस संकट का समाधान खोज लें तो शायद समस्याएं सुलझ सकती हैं।

लोकतंत्र के चार स्तंभ हैं– विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और प्रेस, जिसे आजकल मीडिया कहा जाता है। हम इन स्तंभों की दशा पर विचार करें। विधायिका की स्थिति यह है कि आज संसद वैसी नहीं है, जैसी 30 वर्ष पहले थी। इसका स्तर धीरे–धीरे नीचे गिरा है। यह चिंता का विषय है और इस पर मंथन होना चाहिए कि यह समस्या किस तरह सुलझाई जा सकती है। विधानसभाओं की स्थिति तो और भी खराब है। विधानसभा के सत्र जरूरी कामों के लिए, बजट पास करने के लिए बुलाए जाते हैं और डेढ़ महीने में सात–आठ दिन का सत्र आयोजित कर लिया जाता है। दूसरा स्तंभ कार्यपालिका है। हम सभी महसूस करते हैं कि हमारी कार्यपालिका की हालत के कारण लोगों को न्याय नहीं मिल पाता है। आज सरकारें जातिगत आधार पर कार्यपालिका, प्रशासनिक मशीनरी, पुलिस और अन्य कार्यकारिणियों को बांटने की कोशिश करती हैं। हमारी कार्यपालिका जाति के आधार पर विभाजित हो और स्थानांतरण तथा नियुक्तियां जातिगत आधार पर हों, इससे शर्मनाक कुछ भी नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में संभव नहीं है कि कार्यपालिका जनता के दुख–तकलीफों को दूर कर सके। ऐसी हमारी कार्यपालिका की हालत है। तीसरा स्तंभ न्यायपालिका है। न्यायपालिका के बारे में अधिक कहना

उचित नहीं होगा, लेकिन यह एक तथ्य है कि गरीब आदमी न्यायपालिका से न्याय की कोई उम्मीद नहीं रखता है। प्रत्येक उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में भी हजारों मुकदमे लंबित हैं और इनका कोई समाधान नहीं होता। याचिकाकर्ता की मौत हो जाती है, उसकी दूसरी या तीसरी पीढ़ी आ जाती है और वह न्याय के लिए गुहार लगाता रह जाता है। लोग सालों तक जेल में बंद रह जाते हैं, उन्हें न्याय नहीं मिल पाता। चौथा स्तंभ है मीडिया, प्रेस। यह सच है कि प्रेस ने कुछ अच्छा काम किया है। कई बार खोजी पत्रकारिता के कारण अनेक घोटालों का पर्दाफाश होता है, लेकिन सनसनीखेज पत्रकारिता प्रेस के लिए खतरे की घंटी है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अद्भुत चीजें लेकर आया है। हिंसा, तड़क-भड़क, सेक्स, अंधाधुंध व्यावसायीकरण और उपभोक्तावाद इसके नियम बन गए हैं। देश को इससे नुकसान होगा। लोकतंत्र के इन चार महत्वपूर्ण स्तंभों की दशा के बारे में विचार किया जाना चाहिए। जब तक इन मुद्दों पर समग्र रूप से बात नहीं होगी, तब तक देश के बड़े प्रश्नों को नहीं सुलझाया जा सकेगा। अगर हम देश की बड़ी समस्याओं को हल करना चाहते हैं तो हमें उनकी जड़ों तक जाना होगा। समस्या का समाधान जड़ से करना होगा। आज राजनीति दोराहे पर खड़ी है। नेतागण भी अपनी विश्वसनीयता खो चुके हैं। उनकी कथनी और करनी में अंतर आ गया है। देश की हालत यह है कि सत्ताबल के बिना कोई काम नहीं होता है।

माननीय अटल जी ने राजनीति के अपराधीकरण के बारे में बात की। उन्होंने चुनाव सुधारों की भी मांग उठाई। लेकिन क्या चुनाव सुधारों से काम हो जाएगा? लोगों को चुनाव की निष्पक्षता पर भरोसा नहीं है। चुनावों में न केवल धांधली होती है, बल्कि जीतने वाले को हारा हुआ और हारने वाले को जीता हुआ घोषित करने के लिए सरकारी मशीनरी का भी इस्तेमाल किया जाता है। चुनावों का खर्च बढ़ा है क्योंकि कार्यकर्ताओं में पार्टी के प्रति आस्था नहीं रह गई है। राजनीति तेजी से एक पेशे और व्यवसाय में बदल रही है, यह अब सेवा का माध्यम नहीं रह गई है। इसलिए राजनीति में उतरे लोगों की मानसिकता में बदलाव की जरूरत है। ये बदलाव केवल कानून बनाने से नहीं आएंगे। इन चीजों के लिए राजनीतिक दलों को प्रतिबद्ध होना पड़ेगा। एक राजनीतिक दल सत्ता हासिल करने के लिए चुनाव लड़ता है। यह जनता की सेवा का अवसर पाने का एक जरिया है, लेकिन केवल सत्ता ही उद्देश्य नहीं होना चाहिए। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि नेतागण ही नहीं, बल्कि आम जनता पर भी सत्ता का जुनून सवार है क्योंकि सत्ता के बिना कोई काम ही नहीं हो सकता। कोई धार्मिक सम्मेलन हो तो उद्घाटन के लिए एक मंत्री होना चाहिए। प्रबुद्ध लोगों की बैठक हो तो वहां भी उद्घाटन के लिए एक मंत्री आएगा। राजनीति आज शक्ति का प्रतीक बन गई है और इसी के दुष्परिणाम देश को भुगतने पड़ रहे हैं।

आजकल हम खूब चर्चाएं करते हैं, लेकिन उनका कोई नतीजा निकलकर नहीं आता। चार दिनों का विशेष सत्र आयोजित किया जा रहा है। लोगों को इससे बहुत उम्मीदें हैं। उन्हें लग रहा है कि शायद इस सत्र से कुछ निकलकर आए। अगर कोई ठोस नतीजा नहीं निकलता है तो यह भी केवल एक चर्चा भर रह जाएगी। तब इसका कोई उद्देश्य, कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। इस सत्र के अंत में हमें निष्कर्ष के रूप में कुछ सामूहिक निर्णय करने चाहिए। यह निर्णय केवल इसलिए न किए जाएं कि हम अनेक निर्णय कर रहे हैं, बल्कि उन्हें लागू करने के लिए एक समय सीमा भी निर्धारित करनी चाहिए। इस विशेष सत्र में कम-से-कम दो या चार निर्णय ऐसे होने चाहिए, जिन पर कोई मतभेद नहीं रहे। अगर हम चाहते हैं कि हमारा यहां जुटना सार्थक हो तो उन समस्याओं का शीघ्र समाधान खोजने की जरूरत है, जो देश के सामने बनी हुई हैं। हम भ्रष्टाचार के बारे में बहुत बातें करते हैं, लोकपाल बिल के बारे में भी बात करते हैं। भ्रष्टाचार केवल ऊंचे महकमों में ही नहीं, बल्कि निचले स्तर तक व्याप्त है और आम आदमी इससे त्रस्त है। इस भ्रष्टाचार की जांच कैसे की जाए? हम सीआईडी या इंस्पेक्टर नियुक्त कर सकते हैं, लेकिन इससे भ्रष्टाचार का पता लगाने में मदद नहीं मिलेगी। मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं कि सूचना का अधिकार एक वैधानिक अधिकार बनाया जाना चाहिए। यह अधिकार प्रत्येक नागरिक के पास होना चाहिए। अगर ऐसा हो जाए तो मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि लोगों को प्रत्येक स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर करने में मदद मिलेगी। यह ठीक है कि सुरक्षा, विदेशी मामले और तकनीक से जुड़े संवेदनशील विषयों के बारे में सूचना नहीं दी जानी चाहिए, लेकिन इसके लिए पर्याप्त सुरक्षात्मक व्यवस्था की जा सकती है।

एक बात और कहना चाहता हूं। हमारे संविधान के अध्याय 4 में राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों का उल्लेख है। ये नीति निदेशक सिद्धांत क्या हैं? हमने महिलाओं, अनुसूचित जातियों और दलितों के साथ हुए अत्याचारों पर बात की। हमने बात की कि अनुसूचित जातियों, दलितों और महिलाओं को अधिकार मिलने चाहिए। हमारे पारंपरिक हस्तशिल्प को बढ़ावा देने के लिए एक विश्वविद्यालय होना चाहिए। आजादी के आंदोलन के दौर में गांधीजी ने कहा था कि हमें ग्राम स्वराज की जरूरत है। पंचायतीराज, खादी और कुटीर उद्योग इस दिशा में महत्वपूर्ण पहलू हैं। लेकिन आज कुटीर उद्योग का अस्तित्व मिट रहा है। लोग इन उद्योगों से निकलकर दूसरे रोजगार तलाश रहे हैं, जिससे झुग्गी-बस्तियों की तादाद बढ़ रही है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आने से खतरा और बढ़ गया है। बेरोजगारी में इजाफा हो रहा है। जरूरतमंद हाथों की संख्या बढ़ रही है और उन तक काम पहुंचाना सरकार की जिम्मेदारी है। गांधीजी का सपना ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर और खादी उद्योगों की स्थापना से ही पूरा किया जा सकता है। हमने

पंचायतीराज व्यवस्था शुरू की, लेकिन उसे अधिकार नहीं दिए गए हैं। ये सभी बातें नीति–निदेशक सिद्धांतों में वर्णित हैं। चाहे प्राथमिक शिक्षा का नियम हो या असमानता का या फिर सामाजिक केंद्रीकरण का, हमारे संविधान के नीति निदेशक सिद्धांतों के हिस्से में अनुच्छेद 36 से अनुच्छेद 51 के बीच इन विषयों का उल्लेख है। लोकसभा अध्यक्ष और पार्टियों के नेताओं की सहमति से एक हाई लेवल कमेटी का गठन किया जाना चाहिए, जो यह जांच करे कि नीति निदेशक सिद्धांतों को किस सीमा तक लागू किया गया है, क्या बाधाएं आ रही हैं, क्या कदम उठाए जाने चाहिए, कार्यवाही का स्वरूप कैसा होना चाहिए। कम–से–कम जिन मुद्दों पर राजनीतिक दलों में मतभेद नहीं हैं, उनके संबंध में नेताओं को एकमत होना चाहिए; जैसे, हरिजनों पर अत्याचार नहीं होने चाहिए, महिलाओं को समान वेतन मिलना चाहिए, बंधुआ मजदूरी की प्रथा का उन्मूलन होना चाहिए, प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाया जाना चाहिए। ऐसे अनेक मुद्दे हैं। चूंकि इन मुद्दों पर दलगत राजनीति से परे एकजुटता होनी चाहिए, इसलिए मेरा परामर्श है कि अध्यक्ष महोदय सभी नेताओं की बैठक बुलाएं और जानकार तथा विशेषज्ञ लोगों की हाई पॉवर कमेटी गठित की जाए। वे एक समयबद्ध कार्यक्रम तैयार करें और सदन तथा सरकार के समक्ष इन नीति निदेशक सिद्धांतों को रखें। मेरा मानना है कि तब हम उन समस्याओं का समाधान तलाश सकेंगे, जिनके बारे में आज चर्चा हो रही है। हमने लगातार चर्चाएं की हैं। हो सकता है कि चर्चा का स्तर गिरा हो या कोई नतीजा नहीं निकलने के बावजूद चर्चाएं जारी रखी गई हों, इसलिए लोग निराश हैं।

मैं 30–35 साल पुरानी चीजों के बारे में बात करूंगा। उस समय जब कोई मुद्दा उठता था तो लोगों को महसूस होता था कि संसद में मुद्दा उठा है। आज प्रतिदिन संसद में मुद्दे उठाए जाते हैं, लेकिन कोई इस बारे में नहीं पूछता, कोई इसे गंभीरता से नहीं लेता। उस दौर में अनेक वरिष्ठ मंत्री थे, लेकिन हमें उनके पास जाने की जरूरत नहीं पड़ती थी। केवल पत्र व्यवहार से ही सभी समस्याओं का समाधान हो जाता था। आज मंत्रियों के पास जाना पड़ता है, तब भी कोई परिणामदायक कार्रवाई नहीं होती है। संसद और सांसदों की स्थिति इतनी खराब है। आज हर क्षेत्र में पतन हो रहा है। बुनियादी सवाल यह है कि इस पतन को कैसे रोका जाए। यह प्रधानमंत्री, सांसद या किसी एक नेता के बस की बात नहीं है। हम सभी को देश के लिए कुछ करना चाहिए। यही वह उपहार है, जो हमें देश की आजादी की लड़ाई में प्राण न्योछावर करने वालों को अर्पित करना चाहिए। हमें सुनिश्चित करना चाहिए कि और पतन नहीं हो तथा देश समृद्ध बने। अगर हम ऐसा प्रबंध कर सकें तो यह अर्थपूर्ण होगा। अपनी बात कहने का अवसर देने के लिए मैं आपका धन्यवाद करता हूं।[4]

दूसरी तरफ, सोनिया के कांग्रेस में आने के बाद गुजराल सरकार पर राजीव गांधी हत्याकांड की जांच तेज करने के लिए दबाव बढ़ने लगा। कांग्रेस में सारी चर्चा सोनिया पर केंद्रित हो गई। केसरी नहीं चाहते थे कि उनके हाथ से नेतृत्व निकल जाए और पार्टी की बागडोर सीधी सोनिया और उनके बहाने अर्जुन सिंह वगैरह के पास चली जाए। ऐसी स्थिति में कांग्रेस सांसदों ने इस बात के लिए बैठकें शुरू कर दी कि सोनिया आने वाले दो-तीन दिनों में इस बात का फैसला करें कि वे राजनीति में आना चाहती हैं या नहीं। यदि वे राजनीति में नहीं आना चाहती हैं तो कांग्रेस की राजनीति को प्रभावित करने की परोक्ष कोशिशें बंद कर दें। सांसदों का कहना था कि सारे देश के कांग्रेसी कार्यकर्ता चाहते हैं कि राजीव के हत्यारों को सजा दिलवाने के सामने मध्यावधि चुनाव का सामना करना कोई महत्व नहीं रखता। कार्यकर्ताओं का सोचना था कि राजीव की हत्या के मुद्दे पर भी यदि कांग्रेसी चुप रहे तो वे किस मुंह से जनता के सामने जाएंगे। कांग्रेस ने फैसला किया कि जब तक केंद्रीय मंत्रिमंडल से द्रमुक को हटाने की उसकी मांग नहीं मानी जाती, तब तक संसद के दोनों सदनों की कार्यवाही नहीं चलने दी जाएगी।[5]

सरकार ने कांग्रेस के समर्थन की जरूरत को ध्यान में रखते हुए कार्रवाई तेज की और नवम्बर, 1997 में जैन आयोग की रिपोर्ट सामने आ गई। इस रिपोर्ट में संयुक्त मोर्चा गठबंधन के घटक द्रमुक को राजीव की हत्या के जिम्मेदार संगठन एलटीटीई को समर्थन देने का दोषी पाया गया। इसके बाद कांग्रेस ने द्रमुक के सदस्यों को मंत्रिमंडल से बाहर करने की मांग उठाई, जिसे प्रधानमंत्री गुजराल ने खारिज कर दिया। इसके परिणामस्वरूप, 28 नवम्बर, 1997 को कांग्रेस ने सरकार से समर्थन वापस ले लिया और फरवरी-मार्च, 1998 में मध्यावधि चुनाव करवाने की घोषणा हो गई।[6] इस दौरान कांग्रेस के भीतर सोनिया को अध्यक्ष बनाने की मांग तेज होने लगी थी। अध्यक्ष पद को लेकर अपना पक्ष स्पष्ट किए बिना सोनिया ने यह घोषणा कर दी कि वे आगामी लोकसभा चुनाव के लिए प्रचार करेंगी। यह उनकी ओर से एक सावधानीपूर्वक उठाया गया कदम था, लेकिन इसने उनकी पार्टी के प्रति निष्ठा को दर्शाया।[7]

सोनिया ने अपनी पहली चुनावी सभा तमिलनाडु के श्रीपेरंबदुर में की, जहां राजीव गांधी की हत्या हुई थी। 82 वर्षीय केसरी ने सोनिया के फैसले का स्वागत करते हुए कहा कि वे रक्षक के रूप में आई हैं।[8] फरवरी-मार्च, 1998 में लोकसभा चुनाव हुए। नवलकिशोर ने चुनाव नहीं लड़ने का फैसला किया। कांग्रेस एक बार फिर सत्ता पाने में नाकाम हुई। सबसे बड़े दल के रूप में उभरी भाजपा को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया गया और अटलबिहारी वाजपेयी ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली। भाजपा ने शिवसेना, अकाली दल, समता पार्टी, अन्ना द्रमुक और तृणमूल कांग्रेस को मिलाकर राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) का गठन कर लिया। इसके अतिरिक्त कुछ और पार्टियां असम गण परिषद, लोकतांत्रिक जनता दल, हरियाणा लोकदल और नेशनल कांफ्रेंस भी बाद में राजग में शामिल हो गए। इन सबके सांसदों की संख्या मिलकर 254 हुई, लेकिन यह संख्या लोकसभा में

बहुमत नहीं बना पाई। लेकिन तेलुगू देशम पार्टी और कुछ अन्य छोटे दलों द्वारा बाहर से समर्थन प्राप्त होने से वाजपेयी के नेतृत्व वाली सरकार ने जीने का सहारा पा लिया।[9]

यह स्थिति लगातार बनी हुई थी कि केंद्र सरकारें प्रादेशिक दलों के साथ हुए चुनावी गठबंधन पर निर्भर रहने लगी थीं। यह परिदृश्य आजादी के बाद के उस लंबे दौर से एकदम अलग था, जब सभी राज्यों में कांग्रेस या तो पहली या फिर दूसरी सबसे बड़ी पार्टी हुआ करती थी। वोट प्रतिशत में आई दशकवार गिरावट (1989 में 39.5 प्रतिशत से 1998 में 25.9 प्रतिशत) पार्टी की चिंता बढ़ा रही थी। इसके बाद जल्दी ही केसरी पर इस्तीफा देने और कार्यभार सोनिया को सौंपने के लिए दबाव बढ़ने लगा। हालांकि इतना होने पर भी सोनिया ने पार्टी प्रमुख बनने के प्रति उत्सुकता नहीं दिखाई और तटस्थ बनी रहीं, जिससे उनकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई।[10]

केसरी अध्यक्ष पद छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे, इसलिए उन्हें हटाने के प्रयास शुरू हुए। कांग्रेस के विधान में अध्यक्ष के चुनाव के लिए विस्तृत प्रावधान दिया गया है, लेकिन अध्यक्ष को हटाने के संबंध में कोई नियम नहीं है। शायद विधान बनाने वालों ने सोचा नहीं होगा कि भविष्य में इसकी नौबत आ सकती है। कांग्रेस के सुदीर्घ इतिहास में कभी ऐसा मौका नहीं आया था, जब कांग्रेस अध्यक्ष को पद से हटाना पड़ा हो। जब भी अध्यक्ष और पार्टी आलाकमान (गांधी और नेहरू) के बीच मतभिन्नता होती थी, तब आलाकमान के विचारों को तरजीह मिलती थी और अध्यक्ष निष्कासन की नौबत आने से पहले खुद इस्तीफा दे देते थे। वास्तव में कांग्रेस की सरकार में अध्यक्ष एक तरह से प्रधानमंत्री का प्रतिनिधि होता था। लेकिन केसरी के प्रसंग में कांग्रेस वर्किंग कमेटी एक विचित्र स्थिति का सामना कर रही थी।[11]

इसी बीच सोनिया के करीबी माने जाने वाले जितेंद्र प्रसाद ने प्रणब से मुलाकात की और कहा कि पार्टी में केसरी की लोकप्रियता तेजी से गिर रही है। प्रणब ने उनसे पूछा कि वे इस बारे में इतना आश्वस्त कैसे हो सकते हैं, जबकि कुछ महीने पहले ही केसरी कलकत्ता अधिवेशन में शरद पवार और राजेश पायलट को हराकर प्रभावशाली रूप से अध्यक्ष चुने गए हैं। प्रसाद ने बताया कि चुनाव के दौरान सघन प्रचार करने के कारण सोनिया की पार्टी सदस्यों के साथ घनिष्ठता बढ़ गई है और यह धारणा विकसित हो रही है कि उन्हें पार्टी का नेतृत्व करना चाहिए। उस दौरान शरद पवार नेतृत्व परिवर्तन को लेकर सबसे मुखर थे, जिसके पीछे संभवत: उनकी यह सोच थी कि सोनिया द्वारा पद अस्वीकार कर दिए जाने पर वे अध्यक्ष बन सकते हैं। राव को दुबारा अध्यक्ष बनाने के पक्ष में कोई नहीं था।[12]

पार्टी के विधान में अध्यक्ष को हटाने के बारे में प्रावधान नहीं होने के कारण प्रसाद ने प्रणब को कोई रास्ता तलाशने को कहा क्योंकि उनके विचार में प्रणब को कांग्रेस विधान के बारे में गहरी जानकारी थी। प्रणब ने इस विषय का अध्ययन किया और आखिरकार एक रास्ता खोज निकाला। कांग्रेस वर्किंग कमेटी के पास ऐसे हालात को सुलझाने का अधिकार था। कांग्रेस विधान के अनुच्छेद 19-जे में एक प्रावधान है, जिसके अनुसार किसी असाधारण परिस्थिति में वर्किंग कमेटी विधान में वर्णित उपायों से इतर उचित समाधान अपना सकती

है, लेकिन छह महीने के भीतर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा उसका अनुमोदन आवश्यक होगा। ध्यानपूर्वक विचार करने के बाद मुखर्जी ने प्रसाद और पवार को इस प्रावधान की सूचना दी और इस संभावना पर चर्चा करने का फैसला किया गया। वर्किंग कमेटी के कुछ अन्य सदस्य मुखर्जी के निवास पर चर्चा के लिए आए और योजना की रूपरेखा तैयार की। योजना इस प्रकार थी:

1. अल्पावधि सूचना पर वर्किंग कमेटी की बैठक बुलाई जाएगी।
2. अगर कांग्रेस अध्यक्ष अधिग्रहण के आधार पर वर्किंग कमेटी को बुलाने से इनकार करते हैं, तो कमेटी के सदस्य स्वयं बैठक का संचालन करेंगे और उचित निर्णय लेंगे।[13]

पार्टी संविधान की जटिलताओं की समझ रखने के कारण प्रणब को योजना तैयार करने और उसे अंजाम देने के लिए कहा गया। इस परिस्थिति में उनकी भूमिका दरअसल शैक्षिक थी। गोपनीयता बनाए रखने के लिए यह भी तय किया गया कि इस विषय में आगे कोई चर्चा नहीं होगी।[14]

5 मार्च, 1998 को केसरी ने 24, अकबर रोड स्थित पार्टी कार्यालय में वर्किंग कमेटी की बैठक बुलाई। उस दिन जितेन्द्र प्रसाद, शरद पवार और गुलाम नबी आजाद ने तत्कालीन परिस्थिति का उल्लेख किया और केसरी से अनुरोध किया कि वे सोनिया को अध्यक्ष पद संभालने के लिए आमंत्रित करें। केसरी ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और प्रणब तथा कुछ अन्य उपस्थित सदस्यों पर षडयंत्र रचने का आरोप लगाया। इसके बाद उन्होंने बैठक समाप्ति की घोषणा कर दी और अपने विश्वासपात्र महासचिव तारिक अनवर के साथ वहां से चले गए। प्रणब और वर्किंग कमेटी के अन्य सदस्य वहीं मौजूद थे। सबसे वरिष्ठ सदस्य होने के कारण प्रणब को बैठक का संचालन करने के लिए कहा गया। बैठक में एक प्रस्ताव पेश किया गया। इस प्रस्ताव में वर्किंग कमेटी ने केसरी को मीडिया में पहले ही आ चुके उनके इस बयान के लिए धन्यवाद दिया कि अगर सोनिया अध्यक्ष पद स्वीकार करें तो वे पद छोड़ देंगे। इस प्रस्ताव में आगे अध्यक्ष के रूप में पार्टी को नेतृत्व और दिशा-निर्देश देने के लिए केसरी का आभार व्यक्त किया गया। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हो गया।[15]

कांग्रेस के अनेक वरिष्ठ नेता भी सोनिया की छत्रछाया में अपने को सुरक्षित महसूस करते थे। उनकी निगाह में केवल गांधी परिवार ही कांग्रेस को एकजुट कर सकता था। किसी भी विषय में वे गांधी परिवार की सहमति का संकेत पाने के बाद ही कार्य करते थे। यही सोचकर सोनिया को कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए आमंत्रित किया गया। शरद पवार, ए.के. एंटनी, गुलाम नबी आजाद ने सोनिया के आवास पर जाकर उनसे पार्टी की कमान संभालने का अनुरोध किया।[16] केसरी खतरा भांप चुके थे। उन्होंने माखनलाल फोतेदार से संपर्क साधा और कहा कि अगर वे तटस्थ रहते हैं तो बाकी नेताओं को संभाला जा सकता है। लेकिन फोतेदार सहित सभी नेता केसरी को अपदस्थ करने के लिए कटिबद्ध थे।[17]

सोनिया के विरोधी माने जाने वाले शरद पवार का उन्हें समर्थन देना आश्चर्यजनक था। इसमें इंदिरा के मुख्य सचिव रहे पी.सी. अलेक्जेंडर ने भूमिका निभाई। अलेक्जेंडर ने इस

विषय को उठाया कि 1978 में जब कांग्रेस में विभाजन हुआ, उस समय कांग्रेस के पास एक कद्दावर नेता इंदिरा गांधी थीं और उन्होंने पार्टी को पुनर्जीवित किया। यह स्पष्ट है कि वर्तमान परिस्थिति में केसरी पार्टी को भली प्रकार संगठित नहीं कर सकते। हिंदी भाषी क्षेत्र उत्तर भारत में समुचित समर्थन प्राप्त करने के लिए कुछ और समय की आवश्यकता है। इस मोड़ पर सोनिया को अवश्य लाना होगा, तभी कांग्रेस को बचाया जा सकता है।[18] अलेक्जेंडर के तर्क से पवार जैसे नेता सहमत हुए। 14 मार्च, 1998 को सोनिया को कांग्रेस अध्यक्ष चुन लिया गया। फोतेदार नाराज केसरी के घर गए और उन्हें पार्टी का सर्वसम्मत निर्णय मानकर सोनिया के नेतृत्व को मजबूत करने की दिशा में तैयार करने की कोशिश की। व्याकुल केसरी उनकी तरफ देखकर बोले, 'फोतेदार जी, आपने बहुत गलत किया है। हमारी बात याद रखिए, यह महिला आपको कुछ नहीं देगी*।'[19]

उस समय सोनिया लोकसभा या राज्यसभा से निर्वाचित सांसद नहीं थीं। इसलिए उनके अनुकूल कांग्रेस संसदीय पार्टी के संविधान में एक झकझोर देने वाला संशोधन किया गया। उस समय तक कांग्रेस संसदीय पार्टी का नेता लोकसभा या राज्यसभा का सदस्य होता था और वह दूसरे सदन के लिए नेता की नियुक्ति करता था। लेकिन इस संशोधन के जरिए कांग्रेस संसदीय पार्टी के नेता को राज्यसभा या लोकसभा का सदस्य होने की शर्त को समाप्त कर दिया गया। यह संशोधन स्पष्ट रूप से सोनिया का रास्ता साफ करने के लिए था। आखिरकार, प्रणब ने सोनिया का नाम प्रस्तावित किया और शीघ्र ही सभी ने समर्थन कर दिया। इसके बाद सोनिया ने पवार को लोकसभा और मनमोहन को राज्यसभा का नेता नियुक्त कर दिया।[20]

भारत के सबसे बड़े राजनीतिक दल की सत्ता संभालने को लेकर कोई विशेष जल्दबाजी दिखाने के बजाए सोनिया ने अपने अधिकार और प्रतिष्ठा का इस्तेमाल पार्टी के सदस्यों के उत्साहवर्धन के लिए किया। वे केसरी का यथावत सम्मान करती रहीं और उन्हें कभी अलग-थलग महसूस नहीं करने दिया।[21] कांग्रेस संविधान के नियमानुसार अपनी नई टीम बनाने का अधिकार होते हुए भी सोनिया ने पुराने लोगों को बनाए रखने का फैसला किया। उन्होंने वर्किंग कमेटी के निर्वाचित हिस्से में छेड़छाड़ नहीं की और केवल मनोनीत वर्ग में बदलाव करने का फैसला किया। सभी पदाधिकारी अपनी जगह बने रहे। वर्किंग कमेटी में पी.ए. संगमा को शामिल किया गया। अंबिका सोनी को सोनिया का राजनीतिक सलाहकार नियुक्त किया गया और बाद में अहमद पटेल ने उनकी जगह ली।[22]

---

*लगभग दो महीने बाद राज्यसभा के चुनाव आए। उत्तर प्रदेश से राज्यसभा सदस्य चुने गए माखनलाल फोतेदार का कार्यकाल समाप्त होने को था। मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह ने अपने राज्य से फोतेदार का नाम प्रस्तावित किया, लेकिन सोनिया ने इसे नामंजूर कर दिया और किसी अन्य व्यक्ति को चुना। राज्यसभा सदस्य के नाते आवंटित सरकारी आवास के अलावा फोतेदार का दिल्ली में कोई घर नहीं था। इंदिरा और राजीव इस बात से परिचित थे और उन्हें आश्वासन दिया गया था कि उनकी स्थिति का ध्यान रखा जाएगा। सोनिया द्वारा इनकार किए जाने से फोतेदार बेघर होने की स्थिति में आ गए। मित्रों और शुभचिंतकों की सहायता से उन्हें रहने का ठिकाना मिला। आगे चलकर शीला दीक्षित के कारण दिल्ली में राज्यसभा सीट मिलने को लेकर फोतेदार आशान्वित थे। दिल्ली की कमान शीला को सौंपने के लिए सोनिया को राजी करने में उनकी भूमिका रही थी। उन्हें फिर निराश होना पड़ा। शीला ने फोतेदार की जगह कर्ण सिंह का समर्थन किया और सोनिया ने सहमति दे दी। (माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 298-299)

राजस्थान के नेताओं में पूर्व मुख्यमंत्री शिवचरण माथुर ने पहले ही कांग्रेस छोड़ दी थी और तिवारी कांग्रेस से जुड़े हुए थे। तिवारी कांग्रेस गठित होने के बाद उसके शुरुआती सम्मेलनों में जयपुर का आयोजन शामिल था। अशोक गहलोत कभी तिवारी कांग्रेस में शामिल नहीं हुए और न उन्होंने इसके प्रति कोई सहानुभूति दिखाई, लेकिन उनकी निष्ठा सोनिया के साथ बनी थी। वे कांग्रेस के मध्यम श्रेणी के नेताओं में अगुवा थे, जिन्होंने यह माना कि कांग्रेस का नेतृत्व नेहरू-गांधी परिवार के हाथों में रहना चाहिए। नवलकिशोर ने उस समय अपने को पारिवारिक राजनीति से अलग रखा। वे कांग्रेसी नेतृत्व के साथ बने रहे और यह स्थिति उनके साथ तब तक बनी रही, जब तक कि औपचारिक रूप से किसी ने कांग्रेस का नेतृत्व नहीं संभाल लिया। राजस्थान में उस समय कांग्रेस की हालत कमजोर थी।

10 जुलाई, 1998.. शुक्रवार की देर शाम! जयपुर में बादल मंडराए हुए थे। कुछ देर पहले हल्की बूंदाबांदी हुई। शहर का लक्ष्मी विलास होटल। माधवराव सिंधिया खाना खाने के लिए प्लेट उठाते हैं। चम्मच लेने बढ़ते हैं और ठहाके के साथ टिप्पणी करते हैं, 'यहां चम्मचें तो बहुत हैं।' आसपास खड़े लोग हंस पड़ते हैं। राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष रहे जी.एम. खान ने कहा, 'हमारे तो पोतड़े भी कांग्रेस के ही थे, हम तो जन्म से ही कांग्रेसी हैं।' लेकिन जिन विशिष्ट अतिथि के सम्मान में यह रात्रिभोज आयोजित हुआ है, वे इन सब बातों के बीच कहीं नहीं थीं और न ही उनके सामने कोई इस तरह की बातें कर पाता। वे थीं सोनिया गांधी।

जयपुर के चुनिंदा नागरिकों के बीच मौजूद सोनिया डेढ़ घंटे के दौरान एक-एक से मिलीं और इस परिचय के दौरान अन्य नेताओं की तरह कहीं और खोई नहीं रहीं। उनकी नजरें सामने वालों की आंखों को भेद देती थीं। उनका कहा हुआ 'यस' प्रश्न और उत्तर दोनों का काम करता। कोई दो-चार वाक्य आगे बोलकर बढ़ना चाहे तो वे उस बात को पूरी रुचि के साथ सुनतीं, फिर आगे बढ़तीं। किसी को पहले से जानने का अहसास देना होता तो उनकी आंखों की चमक कुछ ज्यादा बढ़ जाती और नहीं तो वे ध्यान से देखतीं। भीड़ से वे परेशान नहीं होतीं। वे भोजन की टेबल पर बैठीं तो बलराम जाखड़, नटवर सिंह उनके साथ भोजन करने बैठे। इतने में गहलोत प्लेट लेकर भोजन के लिए लाइन के पास खड़े परसराम मदेरणा को बुला लाए और सोनिया के साथ बैठाया। सोनिया ने उन्हें नजर उठाकर देखा। यह सोनिया का 'पॉजिटिव रिस्पॉन्स' था। उस दौरान सोनिया के लिए राजस्थान कांग्रेस के नेता का मतलब लगभग गहलोत ही था। शिवचरण माथुर से सोनिया गांधी परिचित थीं, लेकिन माथुर को उन्होंने तभी महत्व दिया जब गहलोत ने ध्यान दिलाया।

सोनिया के लिए वह चुनौती भरा समय था। उन्हें कांग्रेस अध्यक्ष बने चार महीने भी पूरे नहीं हुए थे और वे पार्टी को पुनर्जीवित करने की कोशिश में लगी थीं। वैधव्य के एकाकी जीवन की नीरसता तब तक उनका पीछा नहीं छोड़ पाई थी। कोई उन्हें आगे की गतिविधि पहले बताता तो वे अधिक सहज होतीं। वे मौसम के अंदाज भांपना जानती थीं। जैसे गुलाबी नगर के रूप में मशहूर जयपुर आते समय उन्होंने दिल्ली में बिंदियों वाली हल्की गुलाबी साड़ी पहनना पसंद किया तो सावन के महीने में गुलाबी नगर की बादली रात उन्होंने हरे रंग

के साड़ी-ब्लाउज पहने। हल्का मेकअप किया हुआ था। चेहरे पर कुछ पाउडर और हल्की लिपस्टिक। सुरक्षा का घेरा भी मौके-मौके के हिसाब से बदल जाता। हाथ में बिना हथियार लिए दो कमांडो उनके आस-पास थे, लेकिन वे किसी को आगे या पीछे हटने-बढ़ने को नहीं कहते। सोनिया चाटुकारों से दूर दिखीं। वे कम बोल रही थीं। जो सामने था, उस पर पूरी नजर थी और सच्चाई से आंखें नहीं चुरा रही थीं।

कांग्रेसजनों में सोनिया के प्रति पूरा सम्मान और आकर्षण नजर आ रहा था। उस समय के राजनीतिक माहौल को देखकर लगा कि उस समय राजनीति में सोनिया का इतना निभा ले जाना भी कम नहीं है। यह भी महसूस हो रहा था कि सोनिया को अधिक घुलना-मिलना पसंद नहीं है, लेकिन वे एक-एक से मिलने में लगी थीं। उन्हें यह पता चलने पर काफी वेदना हुई कि जयपुर के एक संभ्रांत व्यक्ति की बेटी से सामूहिक बलात्कार हुआ। वे उस युवती के पिता से भी मिलीं और उन्हें सांत्वना दी। समाज में महिलाओं की बदतर होती स्थिति पर उनके चेहरे पर तनाव उभर आया। सोनिया ने कहा कि राजस्थान में महिलाओं पर ज्यादा जुल्म और अत्याचार हो रहा है; महिलाओं का शोषण रुकना चाहिए और उनके साथ हिंसा नहीं होनी चाहिए। उनका कहना था कि उन्हें इस बात का संतोष है कि महिला संगठनों ने महिलाओं पर हो रहे अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाई है।

सीमित समयावधि में सोनिया से मिलने-मिलाने का दौर चलता रहा। कार्यक्रम समाप्त होने का समय आ गया। इन सबके बीच एक वरिष्ठ नेता होटल के लॉन के आखिर में अलग-थलग एक-दो कार्यकर्ताओं के साथ बैठे रहे। वे थे नवलकिशोर।[23]

लेकिन उस दौरान नेतृत्वकर्ता की भूमिका को लेकर सोनिया विशेष रूप से सजग थीं। उन्होंने केसरी द्वारा नवलकिशोर के संयोजकत्व में बनाई गई कांग्रेसजनों के शिविर की योजना पर काम शुरू किया। उन्होंने तय किया कि सितम्बर, 1998 में मध्यप्रदेश के पचमढ़ी में तीन दिवसीय शिविर आयोजित होगा। 'सतपुड़ा की रानी' कहा जाने वाला, लगभग एक हजार मीटर की ऊंचाई पर स्थित यह हिल स्टेशन अपनी प्राकृतिक सुंदरता के अलावा ब्रिटिशकालीन सैन्य छावनी के कारण भी लोकप्रिय है। 1974 में नरोरा में आयोजित शिविर के लगभग 25 वर्षों बाद यह पहला चिंतन शिविर होने वाला था। नवलकिशोर इस शिविर के संयोजक बने रहे, लेकिन अन्य फैसलों में कुछ बदलाव किए गए। शिविर की रूपरेखा के बारे में तय किया गया कि उद्घाटन समारोह के बाद सदस्य पांच समूहों में विभाजित होकर विभिन्न मुद्दों पर चर्चा करेंगे। प्रणब मुखर्जी और नटवर सिंह को अंतरराष्ट्रीय मुद्दों पर चर्चा कर रहे समूह की अगुवाई करने के लिए कहा गया।[24] अर्जुन सिंह को तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का उल्लेख करने की जिम्मेदारी सौंपी गई।[25] आर्थिक चर्चा के लिए मनमोहन सिंह, कृषि संबंधी चर्चा के लिए बलराम जाखड़ और सांगठनिक विषयों की चर्चा के लिए गुलाम नबी आजाद को नेतृत्वकर्ता चुना गया।[26] यह सामूहिक चर्चा 4 और 5 सितम्बर को होनी थी। प्रत्येक समूह को एक निष्कर्षात्मक रिपोर्ट तैयार करनी थी, जिसके अध्ययन और समीक्षा के बाद 'पचमढ़ी उद्घोषणा' जारी की जानी थी। नवलकिशोर ने इस अवसर पर कहा कि सभी समूहों को

अपने विषयों पर चर्चा करने के लिए पर्याप्त समय मिलेगा और वे आधी रात तक बैठकर चर्चा कर सकते हैं।[27]

कड़े सुरक्षा प्रबंधों के बीच पचमढ़ी शिविर के आयोजन की तैयारियां शुरू हुईं। जिस रिसॉर्ट में शिविर का आयोजन होना था, वहां और आसपास के क्षेत्र में सुरक्षा की व्यापक व्यवस्था थी। शिविर में पहुंचने वाले नेताओं में 20 से अधिक ऐसे नेता थे, जिन्हें जेड या जेड प्लस श्रेणी की सुरक्षा मिली हुई थी। पूर्व प्रधानमंत्री राव और पूर्व कांग्रेस अध्यक्ष केसरी को भी आमंत्रित किया गया था। जो पर्यटक सोनिया के पचमढ़ी आने की सार्वजनिक घोषणा के बाद उस रिसॉर्ट में पहुंचे थे, उनके बारे में तफ्तीश की गई। पचमढ़ी आने वाले रास्तों में विभिन्न स्थानों पर जांच-तलाशी की जा रही थी। लगभग 4 हजार पुलिसकर्मियों को शिविर की अवधि तक पचमढ़ी में नियुक्त किया गया था। विशेष सुरक्षा दल (एसपीजी) ने भी सुरक्षा व्यवस्था का मुआयना किया।[28] पचमढ़ी शिविर की तुलना 1974 के नरौरा शिविर से की जा रही थी। नरोरा शिविर का उद्देश्य इंदिरा सरकार को अपदस्थ करने की कोशिशों की खिलाफत और सुरक्षात्मक रणनीति तैयार करना था। नवलकिशोर की नरौरा शिविर में सक्रिय भागीदारी रही थी। पचमढ़ी शिविर में उन्हें संयोजक की भूमिका देने के पीछे यह संभावित कारण था। अंतर यह था कि तब कांग्रेस सत्ता में थी और इस बार वह सत्ता में आने के लिए नए रास्ते तलाश रही थी। नवलकिशोर का कहना था, 'हमें भविष्य के बारे में अपना नजरिया स्पष्ट करने के लिए इस अवकाश की जरूरत थी।'[29]

कांग्रेस के इतिहास में एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम के रूप में दर्ज हो चुके इस चिंतन शिविर में वर्किंग कमेटी के सदस्यों, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के पदाधिकारियों, प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्षों, विधायकों-सांसदों और अन्य राष्ट्रीय-प्रादेशिक नेताओं को मिलाकर लगभग 300 नेता शामिल हुए। सोनिया ने उद्घाटन भाषण में शिविर के मुख्य लक्ष्यों का उल्लेख किया और पार्टी की भावी नीतियों के बारे में चर्चा की। उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय और अन्य स्तरों पर इस प्रकार के शिविरों का आयोजन किया जाना चाहिए ताकि पार्टी को गंभीरतापूर्वक चिंतन-मनन करने का अवसर मिलता रहे। इस मौके पर उन्होंने मासिक पत्रिका 'कांग्रेस संदेश' का भी विमोचन किया, जिसमें कार्यकर्ताओं के आलेख-सुझाव और पार्टी के कार्यक्रमों के सचित्र समाचार प्रकाशित करने की योजना बनाई गई थी। सोनिया ने नरसिंह राव द्वारा लागू की गई आर्थिक नीतियों पर भी बात की। उन्होंने कहा कि इन नीतियों से मध्यम वर्ग को तो तरक्की का अवसर मिला, लेकिन गरीबी में जी रहे लोगों को विशेष लाभ नहीं हुआ। उन्होंने गरीबी कम करने के लिए कृषि क्षेत्र का विकास किए जाने और महंगाई को नियंत्रित करने की आवश्यकता पर जोर दिया।[30] इसके बाद विभिन्न समूहों ने अपने विचार रखे। सोनिया ने प्रत्येक समूह के विचार-विमर्श को लगभग एक घंटे सुना। अगले दिन सभी समूहों के नेतृत्वकर्ताओं ने अपनी सिफारिशें नवलकिशोर को सौंपीं। नवलकिशोर की सलाह पर सोनिया ने प्रणब को उन सिफारिशों को उद्घोषणा के प्रारूप में एकत्रित करने के लिए कहा। प्रणब ने मणिशंकर अय्यर और कुछ अन्य नेताओं की मदद से इन निष्कर्षों को

उद्घोषणा के प्रारूप में एकत्रित किया ताकि उसे शिविर के अंतिम दिन आम सभा की सहमति मिल सके। प्रणब को उद्घोषणा के प्रमुख बिंदु नेताओं के सामने स्पष्ट करने के साथ-साथ इस विषय पर मीडिया से भी बात करने के लिए कहा गया।[31]

इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा चुका था कि तत्कालीन परिस्थिति को देखते हुए पार्टी के सामने गठबंधन में शामिल होने की स्थिति आना अवश्यंभावी है। प्रश्न यह था कि यह कदम उठाया जाना चाहिए या नहीं। विस्तृत चर्चा के बाद यह तय हुआ कि कांग्रेस अन्य दलों के साथ गठबंधन कर सकती है, लेकिन उसे अपने सिद्धांतों और विचारधाराओं के साथ किसी भी कीमत पर समझौता नहीं करना चाहिए।[32] शिविर के अंत में अपनी निष्कर्षात्मक टिप्पणी में सोनिया ने कहा:

> 'राष्ट्रीय राजनीति में हम गठबंधन के दौर से गुजर रहे हैं, यह तथ्य अनेक रूपों में कांग्रेस के पतन को दर्शाता है। यह दौर बीत रहा है और हम दुबारा पूरी ताकत के साथ और अपने दम पर वापस लौटेंगे। लेकिन इस बीच गठबंधन की जरूरत पड़ सकती है।'[33]

शिविर की समाप्ति के बाद 7 सितम्बर, 1998 को सोनिया ने नवलकिशोर को पत्र लिखकर आभार प्रकट किया। उन्होंने लिखा:

> प्रिय नवलकिशोर जी,
> पचमढ़ी विचार मंथन हर दृष्टि से एक यादगार राजनीतिक कार्यक्रम था। यह शिविर सफल रहा क्योंकि सैकड़ों समर्पित कार्यकर्ताओं ने इसे हमारे हाल के इतिहास में मील का पत्थर बनाना सुनिश्चित करने के लिए कई महीनों तक अतिरिक्त श्रम किया। इतना कहने के बाद, मुझे आपके उस उत्कृष्ट प्रयास को अलग से रेखांकित करना ही होगा, जिसे आपने कई महीनों तक जारी रखकर सुनिश्चित किया कि किसी भी चीज की तैयारी छूट नहीं जाए। आपके प्रेरित नेतृत्व में हम काफी कुछ कार्यान्वित करने में सक्षम रहे। पहले दिन से ही स्पष्ट हो गया था कि सभी प्रतिभागी सुनिश्चित करने में जुटे थे कि शिविर रचनात्मक, सृजनात्मक, अर्थपूर्ण और विषय-केंद्रित रहे। क्या आप कृपया अपने सभी साथियों और सहकर्मियों तक उनके सहयोग और समर्पित कार्य के लिए मेरी सराहना प्रेषित कर देंगे? यह एक उत्कृष्ट टीम वर्क था। अब हमें पचमढ़ी उद्घोषणा में उल्लिखित मुद्दों पर कार्रवाई की शुरुआत करनी है।

सुदीर्घ राजनीतिक अनुभव लिए नवलकिशोर की देखरेख में आयोजित इस शिविर की सबसे बड़ी खासियत यह थी कि वहां प्रत्येक स्तर के लोगों को अपने विचार रखने का अवसर मिला। यह कांग्रेस कार्यकर्ताओं के लिए एक नया अनुभव था, जो केवल बैठकर भाषण सुनने

और पारित हो रहे प्रस्ताव के समर्थन में हाथ खड़े करने के आदी थे। इससे कार्यकर्ताओं तक एक सकारात्मक संदेश गया कि उनके विचार भी नीति निर्धारण में महत्वपूर्ण हैं। मीडिया ने कांग्रेस के इस नए रूप को संज्ञान में लिया और अन्य दलों ने भी इस पर ध्यान दिया।[34] नवलकिशोर की सलाह पर ही पचमढ़ी शिविर वह अवसर बना, जिसके बाद प्रणब सोनिया के करीबी हो गए। शिविर में प्रणब की सक्रिय भागीदारी के बाद सोनिया ने उनसे पहले से अधिक संपर्क करना शुरू कर दिया। उनके रिश्ते में मौजूद एक तरह की विरक्ति धीरे-धीरे घनिष्ठता और परस्पर सम्मान में बदल गई।[35]

संदर्भ सूची

1. जॉर्ज आइप: रेडिफ.कॉम, 7 अप्रेल, 1997
2. वही
3. वही
4. लोकसभा डिबेट्स अंग्रेजी, खंड 17, सं 18–23, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, 1999, पृष्ठ 232–240
5. गोपाल शर्मा: जयपुर महानगर टाइम्स, 24 नवम्बर, 1997
6. रानी सिंह: सोनिया गांधी–एन एक्स्ट्राऑर्डिनरी लाइफ, एन इंडियन डेस्टिनी, पालग्रेव मैकमिलन, न्यूयॉर्क, 2011, पृष्ठ 161
7. अर्जुन सिंह और अशोक चोपड़ा: अ ग्रेन ऑफ सैंड इन द आवरग्लास ऑफ टाइम, हे हाउस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 355
8. इंडिया टुडे, 19 नवम्बर, 2018
9. शरद पवार: ऑन माय टर्म्स, स्पीकिंग टाइगर पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 151–152
10. अर्जुन सिंह और अशोक चोपड़ा: अ ग्रेन ऑफ सैंड इन द आवरग्लास ऑफ टाइम, हे हाउस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 355
11. प्रणब मुखर्जी: द कॉलिशन इयर्स, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 38
12. वही, पृष्ठ 39
13. वही, पृष्ठ 39
14. वही, पृष्ठ 40
15. वही, पृष्ठ 40
16. शरद पवार: ऑन माय टर्म्स, स्पीकिंग टाइगर पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 149
17. माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 298
18. शरद पवार: ऑन माय टर्म्स, स्पीकिंग टाइगर पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 149
19. माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 298
20. शरद पवार: ऑन माय टर्म्स, स्पीकिंग टाइगर पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 150–151
21. अर्जुन सिंह और अशोक चोपड़ा: अ ग्रेन ऑफ सैंड इन द आवरग्लास ऑफ टाइम, हे हाउस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 356

22. प्रणब मुखर्जी: द कॉलिशन इयर्स, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 41
23. गोपाल शर्मा: जयपुर महानगर टाइम्स, 11 जुलाई, 1998
24. प्रणब मुखर्जी: द कॉलिशन इयर्स, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 41
25. अर्जुन सिंह और अशोक चोपड़ा: अ ग्रेन ऑफ सैंड इन द आवरग्लास ऑफ टाइम, हे हाउस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 356
26. सुमित मित्रा: इंडिया टुडे, 14 सितम्बर, 1998
27. रेडिफ. कॉम, 3 सितम्बर, 1998
28. वही
29. सुमित मित्रा: इंडिया टुडे, 14 सितम्बर, 1998
30. रानी सिंह: सोनिया गांधी–एन एक्स्ट्राऑर्डिनरी लाइफ, एन इंडियन डेस्टिनी, पालग्रेव मैकमिलन, न्यूयॉर्क, 2011, पृष्ठ 165
31. प्रणब मुखर्जी: द कॉलिशन इयर्स, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 42
32. अर्जुन सिंह और अशोक चोपड़ा: अ ग्रेन ऑफ सैंड इन द आवरग्लास ऑफ टाइम, हे हाउस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 357
33. प्रणब मुखर्जी: द कॉलिशन इयर्स, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 42
34. अर्जुन सिंह और अशोक चोपड़ा: अ ग्रेन ऑफ सैंड इन द आवरग्लास ऑफ टाइम, हे हाउस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 357
35. प्रणब मुखर्जी: द कॉलिशन इयर्स, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 41–42

मुख्यमंत्रित्व की मरीचिका

मैं स्वास्थ्य कारणों से लोकसभा चुनाव नहीं लड़ सका, इसलिए मेरे समर्थकों ने मुझसे विधानसभा चुनाव लड़ने का आग्रह किया। वे नहीं चाहते थे कि मैं चुनावी राजनीति से बिल्कुल दूर हो जाऊं। मैं जनता की सेवा के लिए ही राजनीति में हूं और जनता चाहती है कि मैं चुनाव लड़ूं, इसलिए मैंने फैसला किया कि मैं जनता की बात मानूंगा। मैं मुख्यमंत्री बनने की होड़ में नहीं हूं, लेकिन अगर मुझे यह दायित्व दिया जाए तो इसका निर्वाह करने में सक्षम हूं।

–नवलकिशोर शर्मा

सीताराम केसरी का 'अहिंसक तख्तापलट' करके सोनिया गांधी को अध्यक्ष बनाए जाने से कांग्रेस की मुश्किलें खत्म नहीं हुईं। सोनिया के समर्थन में चुनावी सभाओं में गूंज रहे नारे और मीडिया में दिए जा रहे बयान उनके नेतृत्व में पार्टी की एकजुटता की तस्वीर पेश कर रहे थे, लेकिन यह तस्वीर का सिर्फ एक पहलू था। भीतर झांकने पर पार्टी दो धड़ों में बंटी हुई थी और उन धड़ों के बीच की खाई लगातार गहरी होती जा रही थी। सोनिया पार्टी की कमान पूरी तरह अपने हाथों में रखना चाह रही थीं। बगावत की भनक लगते ही सख्त कार्रवाई करना, महत्वपूर्ण फैसलों को अंतिम समय तक गोपनीय रखना और व्यक्तिगत वफादारी को पैमाना बनाकर नेताओं को परखना उनकी कार्यशैली का हिस्सा था। पार्टी को नए सिरे से खड़ा करने की कवायद में उन्होंने अपने विश्वासपात्रों को मुख्य भूमिका में उतारा। इसी सिलसिले में अमरिंदर सिंह, शीला दीक्षित, सलमान खुर्शीद जैसे नेता प्रदेश अध्यक्ष बना दिए गए, जो गत चुनावों में अपनी सीटें भी नहीं बचा सके थे।[1]

कांग्रेस के कई वरिष्ठ नेताओं का धड़ा सोनिया के विरोध में लामबंद होने लगा। शरद पवार और जितेंद्र प्रसाद इनमें अग्रणी थे। पार्टी में पड़ी दरार तब स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगी, जब अध्यक्ष बनने के छह महीने बाद सोनिया के सामने तीन महत्वपूर्ण राज्यों मध्य प्रदेश, राजस्थान और दिल्ली के विधानसभा चुनाव कड़ी परीक्षा के रूप में आए। मध्य प्रदेश में दिग्विजय सिंह के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार थी और उसकी स्थिति मजबूत मानी जा रही थी। सुंदरलाल पटवा के पौने तीन वर्षों (5 मार्च 1990–15 दिसम्बर 1992) को छोड़कर 1980 से वहां कांग्रेस का ही शासन था। दिल्ली में 1952 के बाद दूसरी बार विधानसभा चुनाव 1993 में हुए थे और

भाजपा की सरकार बनी थी। राष्ट्रीय राजनीति में इस क्षेत्र की प्रासंगिकता को देखते हुए यह चुनाव जीतना भी कांग्रेस के लिए महत्वपूर्ण था। लेकिन कांग्रेस के लिए इससे कहीं बड़ी चुनौती राजस्थान में थी, जहां 'राजस्थान के सिंह' कहे जाने वाले भैरोंसिंह शेखावत का लगातार दूसरा कार्यकाल चल रहा था। राजस्थान में कांग्रेस को सत्ता से दूर रहते हुए एक दशक होने को था और उसके सारे बड़े प्रादेशिक नेता धीरे-धीरे राजनीतिक हाशिए पर चले गए थे। इस लिहाज से, कांग्रेस राजस्थान में सबसे अधिक जोर लगाना चाह रही थी।

अध्यक्ष के रूप में सोनिया का एक महत्वपूर्ण रणनीतिक कदम पचमढ़ी चिंतन शिविर का आयोजन था, जिसने मीडिया और आम जनता के बीच पार्टी को एक नए कलेवर में पेश किया। इस सिलसिले को आगे बढ़ाकर पार्टी की छवि बेहतर करने और लोकतांत्रिक प्रतिबद्धता दिखाने के लिए सोनिया ने ऐलान किया कि पार्टी आगामी विधानसभा चुनावों में उन्हीं को टिकट देगी, जिनके खिलाफ कोई आपराधिक मुकदमा न हो। लेकिन टिकट वितरण की प्रक्रिया शुरू होते ही पार्टी के वरिष्ठ नेताओं ने दागी उम्मीदवारों को टिकट देने के मुद्दे पर सोनिया को घेरना शुरू कर दिया। सोनिया के धुर विरोधी माने जाने वाले शरद पवार ने मध्य प्रदेश के 10 उम्मीदवारों की सूची बनाकर उन्हें अपराधी बताते हुए सोनिया से उनके टिकट काटने की मांग की। इससे मध्यप्रदेश में पार्टी के समीकरण बिगड़ने के हालात बनने लगे। दूसरी तरफ, राजीव गांधी के करीबी रहे एस.एस. अहलूवालिया ने सोनिया पर दिल्ली के टिकट वितरण में सिख समुदाय के साथ भेदभाव का आरोप लगाना शुरू कर दिया। सोनिया के लिए सांप-नेवले जैसी स्थिति बन गई। अहलूवालिया के बयान जनता के बीच पार्टी की छवि खराब कर रहे थे, लेकिन उनके खिलाफ कार्रवाई करने से सिख वोट बैंक हाथ से निकलने का खतरा था।[2]

मध्य प्रदेश और दिल्ली के संबंध में हो रही बयानबाजी सोनिया के नेतृत्व को लेकर पार्टी के आंतरिक मतभेद को उजागर करने लगी। लेकिन राजस्थान की बात आते ही रहा-सहा झीना पर्दा भी हट गया और अंदरखाने में जूझ रहे पक्ष-विपक्ष खुलकर सामने आ गए। राजस्थान के मुख्यमंत्री पद के लिए एक तरफ सोनिया समर्थक गुट के पसंदीदा उम्मीदवार के रूप में पूर्व विदेश राज्य मंत्री नटवर सिंह का नाम सामने आ रहा था; दूसरी तरफ, राजस्थान कांग्रेस के अध्यक्ष अशोक गहलोत अपने संगठनात्मक परिश्रम, युवा नेताओं के समर्थन और गांधी-नेहरू परिवार के प्रति निष्ठा के कारण पार्टी आलाकमान का समर्थन पाने की कोशिश में जुटे थे। उनका प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष होना उनके पक्ष की सबसे बड़ी मजबूती थी। इसी बीच, राजस्थान की राजनीतिक सक्रियता से अलग केंद्रीय नेतृत्व में सोनिया विरोधी खेमा तीसरे नाम को लेकर अड़ गया। शरद पवार, प्रणब मुखर्जी, जितेंद्र प्रसाद, आर.के. धवन, सीताराम केसरी जैसे धुरंधरों ने मिलकर यह मांग की कि राजस्थान में मुख्यमंत्री पद का उम्मीदवार नवलकिशोर शर्मा को बनाया जाए।[3]

यह एक जटिल परिस्थिति थी क्योंकि नवलकिशोर ने हमेशा केंद्र की राजनीति में दिलचस्पी रखी थी। उन्हें प्रदेश की राजनीति में सक्रिय होने के लिए राजी करना ही चुनौतीपूर्ण

काम था। लेकिन उस दौरान हालात ऐसे बने कि वे विधानसभा चुनाव लड़ने को राजी हो गए। नवलकिशोर का कहना था, 'मैं स्वास्थ्य कारणों से लोकसभा चुनाव नहीं लड़ सका, इसलिए मेरे समर्थकों ने मुझसे विधानसभा चुनाव लड़ने का आग्रह किया। वे नहीं चाहते थे कि मैं चुनावी राजनीति से बिल्कुल दूर हो जाऊं। मैं जनता की सेवा के लिए ही राजनीति में हूं और जनता चाहती है कि मैं चुनाव लड़ूं, इसलिए मैंने फैसला किया कि मैं जनता की बात मानूंगा। मैं विधायक बनकर भी लोगों की उतनी ही सेवा कर सकता हूं, इसके लिए मेरा सांसद होना जरूरी नहीं है।'[4]

नवलकिशोर के विधानसभा चुनाव लड़ने की घोषणा जितनी आश्चर्यजनक थी, उतना ही हैरान करने वाला तथ्य यह था कि वे विपक्ष के गढ़ जयपुर ग्रामीण सीट से चुनाव लड़ने की इच्छा जता रहे थे। 1977 में परिसीमन के बाद राजस्थान विधानसभा की सीटों की संख्या 184 से बढ़कर 200 हो गई थी और उसी दौरान जयपुर में जयपुर ग्रामीण और सांगानेर विधानसभा क्षेत्र बनाए गए। दोनों ही नई सीटों पर विपक्ष का कब्जा कायम हो गया। जयपुर ग्रामीण सीट पर उजला अरोड़ा का एकछत्र स्वामित्व रहा। आपातकाल की गहरी मानसिक और पारिवारिक परेशानियों के बाद जेल से छूटकर उजला ने जनता पार्टी के टिकट पर यहां से चुनाव लड़ा। वे जयपुर की महिलाओं में संघर्ष की पर्यायवाची बन चुकी थीं। जिस तरह उन्होंने जेल में सरकारी उपेक्षा और तकलीफें सहीं, उससे अधिक उनके पीछे से परिवार के भुगते हुए दर्द के किस्से आमजन की चर्चा में बने हुए थे। 1977 की जीती हुई जयपुर ग्रामीण सीट पांच चुनावों तक उजला के पास ही रही। उन्हें राज्य मंत्री बनाया गया तो भी उनकी सादगी और सरलता की छवि साथ जुड़ी रही। मोटी किनारी की सफेद सूती साड़ी और साधारण चप्पल में वे निम्न मध्यमवर्गीय परिवार की सामान्य अधेड़ महिला लगती थीं। 21 वर्ष बाद भी कांग्रेस के लिए उजला को हराने वाला उम्मीदवार खोजना कठिन था। उजला के जनसामान्य से जुड़े होने के कारण कांग्रेस में उस कद का कोई नेता बन ही नहीं पाया। यहां तक कि 1980 में मुख्यमंत्री पद के संभावित दावेदार के रूप में देखे जा रहे कांग्रेस के प्रदेश अध्यक्ष रामकिशोर व्यास भी उनसे 5785 वोटों से चुनाव हार गए थे। ऐसे हालात में नवलकिशोर की घोषणा ने लोगों को हतप्रभ कर दिया। वे 14 वर्ष पहले जयपुर में लोकसभा का चुनाव जरूर जीते थे, लेकिन उसी जयपुर में उन्हें बाद में हार का सामना करना पड़ा। 1991 का लोकसभा चुनाव उन्होंने जयपुर में लड़ा तो जयपुर ग्रामीण विधानसभा क्षेत्र भी अन्य विधानसभा क्षेत्रों की तरह उनके लिए आसान नहीं रहा।

नवलकिशोर के जयपुर ग्रामीण सीट से चुनाव लड़ने की इच्छा व्यक्त करने के साथ ही कांग्रेस की गुटीय राजनीति तेज हो गई। जयपुर शहर की सीटों पर कांग्रेस इस तरह व्यूहरचना करना चाह रही थी कि भाजपा अपना गढ़ सुरक्षित रखने में ही जुटी रहे और इस दौरान कोई न कोई कोना भेद दिया जाए। लेकिन गुटबाजी के कारण मामला उलझा हुआ था। यह तय नहीं हो पा रहा था कि परंपरागत रूप से खड़े होने वाले मुस्लिम उम्मीदवार को कौन-सी सीट दी जाए। वहीं, गहलोत समर्थक महेश जोशी को और नवलकिशोर समर्थक श्रीराम

गोटेवाला को जयपुर ग्रामीण सीट से प्रत्याशी बनाने की जुगत लगा रहे थे।[5] आखिरकार, नवलकिशोर को जयपुर ग्रामीण से उम्मीदवार बनाने की घोषणा कर दी गई। प्रदेश कांग्रेस की तत्कालीन अंदरूनी राजनीति से परिचित लोगों को नवलकिशोर को मनपसंद सीट मिल जाने से हैरानी हुई। वहीं, गहलोत का कहना था, 'इतने बड़े नेता से जुड़ी सीट पर ज्यादा चर्चा नहीं होती।'[6]

टिकट वितरण में मुख्य रूप से गहलोत की ही चली। विधायक दल के नेता परसराम मदेरणा टिकटों का फैसला होते रहने के दौरान दिल्ली से जोधपुर लौट गए क्योंकि मारवाड़ के प्रत्याशियों के बारे में पहले दिन ही बात हो चुकी थी। इसके बाद ज्यादातर गहलोत की राय से हुआ। फिर भी, वे अपने खास समर्थकों को मनपसंद सीटें नहीं दिलवा सके और कई को तो टिकट ही नहीं मिले। गहलोत के करीबी नेताओं में गिने जाने वाले महेश जोशी को टिकट तब मिला, जब नवलकिशोर से सिफारिश करवाई गई।[7] जोशी को किशनपोल सीट पर उतारना तय हुआ। वहीं, लगातार दो बार चुनाव हारे हुए गोटेवाला को टिकट नहीं मिल सका। नवलकिशोर चाहते थे कि गोटेवाला को टिकट दिया जाए। उनका तर्क था कि दो बार चुनाव हारना आड़े नहीं आता क्योंकि वे दोनों चुनाव एक ही सीट से नहीं हारे थे। लेकिन जब उनकी सिफारिश पर भी गोटेवाला को टिकट नहीं मिला तो उन्होंने अन्य सीटों पर सिफारिश नहीं करने का फैसला किया और उनके कार्यकर्ता भी जयपुर ग्रामीण क्षेत्र में ही जुटने लगे।[8] जौहरी बाजार से कांग्रेस के मजबूत दावेदार के रूप में राजस्थान उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रहे इन्द्रसेन इसरानी का नाम लिया जा रहा था, लेकिन इसरानी को टिकट दिए जाने पर एक मुस्लिम उम्मीदवार जयपुर ग्रामीण से उतारना पड़ता और इससे नवलकिशोर वहां उम्मीदवार नहीं हो पाते। इसलिए जौहरी बाजार से मुस्लिम उम्मीदवार को उतारना तय किया गया।[9]

6 नवम्बर, 1998 को नामांकन दाखिल करने की आखिरी तारीख थी। नवलकिशोर ने 5 नवम्बर को अपना नामांकन दाखिल किया। उनकी मुख्य प्रतिद्वंद्वी उजला अरोड़ा ने भी उसी दिन नामांकन भरा। नामांकन के बाद मुख्य चुनाव कार्यालय का उद्घाटन करते हुए नवलकिशोर ने महंगाई के मुद्दे पर भाजपा को घेरते हुए कांग्रेस को एकमात्र विकल्प बताया। उन्होंने कहा कि भाजपा का नारा 'अबकी बारी अटलबिहारी' बदलकर 'अंतिम बारी अटलबिहारी' कर दिया जाना चाहिए।[10] वहीं, उजला अपनी जीत को लेकर आश्वस्त दिख रही थीं। उनका कहना था, 'मैंने पहले भी कई बार कांग्रेस के दिग्गजों को हराया है और इस बार शर्मा भी चुनाव हारेंगे।'[11]

जयपुर ग्रामीण विधानसभा क्षेत्र के मतदाताओं में 26 प्रतिशत मुस्लिम, 20 प्रतिशत अनुसूचित जाति-जनजाति, 15 प्रतिशत ब्राह्मण, 11 प्रतिशत वैश्य और 8 प्रतिशत सिंधी समुदाय के लोग थे। पांच बार से लगातार विधायक रहीं उजला के समर्थक इन सभी समुदायों में थे, लेकिन भाजपा के प्रति नाराजगी के कारण वोटों का व्यापक ध्रुवीकरण होने की संभावना दिख रही थी। राष्ट्रीय जनता दल द्वारा मुस्लिम उम्मीदवार उतारे जाने से मुकाबला

और रोचक हो गया। भाजपा–कांग्रेस से दूरी बनाए हुए मतदाता उनके साथ लग गए। इन हालात में नवलकिशोर ने हताश कार्यकर्ताओं का उत्साह बढ़ाकर सघन चुनाव अभियान की शुरुआत की। उजला के वोट बैंक में सेंध लगाना कांग्रेसी उम्मीदवार के रूप में मुश्किल था, लेकिन नवलकिशोर की व्यक्तिगत साख का प्रभाव तुरंत नजर आने लगा। लगभग चौथाई शताब्दी की अवधि में पहली बार जयपुर ग्रामीण के मतदाता कांग्रेसी उम्मीदवार की सभाओं में जुटते और स्वागत–सम्मान करते दिखाई दे रहे थे।

चुनाव प्रचार के दौरान नवलकिशोर के रामगढ़ मोड़ स्थित प्रधान कार्यालय पर दौसा के लोगों का जमावड़ा लगा रहा। इन लोगों को विश्वास था कि अगर नवलकिशोर जीते तो मुख्यमंत्री ही बनेंगे। उनके चाय–पानी और ठहरने का इंतजाम कार्यालय में ही किया गया था। भोजन के लिए पास के एक ढाबे से अनुबंध था। नवलकिशोर के दिन भर जनसंपर्क में व्यस्त रहने के बावजूद कार्यालय में 30–40 लोग हमेशा जमे रहते। रसोई दिन भर चालू रहती और चाय की चुस्कियों का दौर चलता रहता। कार्यालय के प्रबंधन की पूरी जिम्मेदारी नवलकिशोर के ज्येष्ठ पुत्र बृजकिशोर ने संभाल रखी थी।[12]

कांग्रेस के भीतर चुनावी रणनीति को लेकर स्थिति स्पष्ट नहीं थी। यह जरूर महसूस किया जा रहा था कि भाजपा सरकार विभिन्न मोर्चों पर विफल नजर आ रही है और जनता में असंतोष बढ़ रहा है, लेकिन इसका सीधा लाभ कांग्रेस को वोट के रूप में मिलेगा या नहीं इस बारे में कोई निश्चित राय नहीं थी। ऐसे हालात में पार्टी का एक वर्ग अन्य दलों के साथ गठबंधन की पैरवी कर रहा था। इसके पीछे यह तर्क दिया गया कि सोनिया के नेतृत्व में संगठन के पुनर्गठन का काम पूरा नहीं हुआ है, जिसके कारण मुद्दों को भुनाने में कठिनाई आएगी; वहीं, भाजपा के बारे में यह राय थी कि प्रशासनिक अक्षमता के बावजूद सांगठनिक मजबूती के आधार पर वह मतदाताओं को अपने पक्ष में करने में सक्षम होगी। इन सभी पहलुओं पर गंभीरता से विचार किया जा रहा था। नटवर सिंह का सुझाव था कि राजस्थान में कांग्रेस को राष्ट्रीय लोकतांत्रिक मोर्चा के साथ गठबंधन करना चाहिए। नटवर सिंह के बारे में माना जा रहा था कि उनकी मुख्यमंत्री की कुर्सी पर नजर है और बहुमत नहीं होने की स्थिति में अगर राष्ट्रीय लोकतांत्रिक मोर्चा का सहयोग लेना पड़ा तो नटवर सिंह की दावेदारी मजबूत होगी। नवलकिशोर और राजेश पायलट कोई गठबंधन किए जाने के पक्ष में नहीं थे।[13]

प्रदेश कांग्रेस विभाजित नजर आ रही थी। गत लोकसभा चुनाव में पार्टी को मजबूत स्थिति में लेकर आए प्रदेश अध्यक्ष गहलोत गुटबाजी को रोकने में विफल थे। टिकट काटे गए विधायक विद्रोह पर उतर आए। अनेक अफवाहों से चुनावी माहौल गरमा रहा था। ऐसी चर्चाएं आम थीं कि अमुक सीट के कांग्रेस उम्मीदवार को नवलकिशोर का समर्थन प्राप्त है, इसलिए गहलोत ने वहां किसी निर्दलीय उम्मीदवार को खड़ा कर दिया। इन बातों का असर कार्यकर्ताओं के मनोबल पर पड़ रहा था। उन्हें ऐसा लग रहा था कि कांग्रेस ही कांग्रेस को हराने का काम करती है। लेकिन गहलोत आश्वस्त थे। उनका कहना था कि 1993 में कई पूर्व कांग्रेसी विधायक टिकट काटे जाने पर निर्दलीय मैदान में उतर आए थे और ये दावा कर

रहे थे कि भाजपा की सफलता के आसार बढ़ गए हैं; टिकट वितरण के दौरान भी कई गलतियों का नुकसान उठाना पड़ा था, लेकिन इस बार बगावत से पार्टी को हानि नहीं पहुंचेगी।[14] नवलकिशोर का भी मानना था, 'असंतुष्ट गतिविधियों का कुछ प्रभाव तो रहेगा, लेकिन इतना नहीं कि नतीजा बदल जाए।'[15]

सबसे अधिक संशय मुख्यमंत्री के चेहरे को लेकर था। पार्टी की ओर से इस संबंध में कोई घोषणा नहीं किए जाने के कारण कई तरह के कयास लगाए जा रहे थे। प्रदेश अध्यक्ष होने के नाते गहलोत की स्वाभाविक दावेदारी थी। हमेशा केंद्र की राजनीति में रुचि लेने वाले नवलकिशोर के विधानसभा चुनाव लड़ने के फैसले में भी संकेत महसूस किया जा रहा था। विपक्ष के नेता और जाट समुदाय के सबसे लोकप्रिय प्रतिनिधि के रूप में परसराम मदेरणा की भी मजबूत दावेदारी थी। सोनिया गांधी से निकटता और राज्य में बढ़ती सक्रियता के परिप्रेक्ष्य में नटवर सिंह भी चर्चा के केंद्र में थे। इन सबके बावजूद अनेक स्तरों पर धड़ेबंदी से जूझ रही प्रदेश कांग्रेस में कौन कब तुरुप का पत्ता बनकर सामने आ जाए, कहना मुश्किल था। चुनाव की तारीख नजदीक आने के साथ नवलकिशोर के मुख्यमंत्री बनने को लेकर चर्चा तेज हो रही थी। इस बारे में पूछे जाने पर वे गंभीर भाव से कहते, 'मैं मुख्यमंत्री बनने की होड़ में नहीं हूं, लेकिन अगर मुझे यह दायित्व दिया जाए तो इसका निर्वाह करने में सक्षम हूं।'[16]

कांग्रेस ने इस चुनाव में जबर्दस्त वापसी की। उसे 197* में से 150 सीटों पर विजय प्राप्त हुई। 1980 के बाद यह पहला अवसर था, जब कांग्रेस को विधानसभा में दो-तिहाई बहुमत मिला। भाजपा को केवल 33 सीटों पर जीत हासिल हो सकी। जनता दल के 3, बहुजन समाज पार्टी के 2 और राष्ट्रीय जनता दल, भाकपा तथा माकपा के 1-1 उम्मीदवार को ही जीत मिली। शेखावत सरकार के 39 मंत्रियों में से केवल 11 अपनी सीट बचा सके। उप मुख्यमंत्री हरिशंकर भाभड़ा, उच्च शिक्षा मंत्री ललितकिशोर चतुर्वेदी, गृह मंत्री कैलाश मेघवाल, ऊर्जा मंत्री घनश्याम तिवाड़ी जैसे दिग्गज चुनाव हार गए।[17] नवलकिशोर ने बड़े अंतर से जीत दर्ज की। जयपुर ग्रामीण विधानसभा क्षेत्र के 56.53 प्रतिशत वोट उनके हिस्से में आए। उन्हें मिले वोटों की संख्या 56,594 रही। उनकी मुख्य प्रतिद्वंद्वी उजला अरोड़ा को 31,751 वोट प्राप्त हुए। इन दोनों के वोटों का अंतर कुल मतदान के एक चौथाई से भी अधिक था। जयपुर शहर में नवलकिशोर के अलावा कोई भी 25 प्रतिशत वोटों के अंतर से नहीं जीता।[18] लंबे समय से भाजपा का गढ़ रहे क्षेत्र में यह अप्रत्याशित सेंध थी।

चुनावी नतीजों पर महंगाई का सबसे अधिक असर पड़ा। चुनाव के पहले प्याज के भाव रुला रहे थे। आसमान छूती कीमतों पर काबू पाने में सरकार की विफलता से जनता में व्यापक आक्रोश था। लेकिन चुनाव के दौरान भी भाजपा नेतृत्व आश्वस्त नजर आ रहा था। मुख्यमंत्री भैरोंसिंह शेखावत का कहना था कि महंगाई की समस्या विश्वव्यापी है और जनता इस तथ्य

---

*भीम, कुंभलगढ़ और मंडावा में मतदान रद्द कर दिए गए। इन क्षेत्रों के लिए फरवरी, 1999 में पुन: मतदान हुआ; तीनों सीटों पर कांग्रेस विजयी हुई।

से परिचित है। वे दावा कर रहे थे कि भाजपा को आसानी से बहुमत मिल जाएगा क्योंकि विधानसभा चुनाव स्थानीय मुद्दों पर लड़े जाते हैं। हालांकि उन्हें यह भी उम्मीद थी कि केंद्र सरकार की उपलब्धियों का लाभ भाजपा को मिलेगा।[19]

भाजपा विरोधी लहर का प्रभाव स्पष्ट था। छह महीने पहले हुए लोकसभा चुनाव के बाद राजस्थान में यह लहर शुरू हुई और उसका हर पांचवां मतदाता उससे अलग हो गया। चुनाव परिणाम से साफ हो गया था कि भाजपा से छिटककर यह मतदाता वर्ग लगभग एक दर्जन सीटों के अलावा कहीं भी कांग्रेस के पक्ष में नहीं गया। यही कारण था कि लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को मिले वोट 44.45 प्रतिशत से बढ़कर विधानसभा चुनाव में 44.87 प्रतिशत ही हुए, लेकिन भाजपा को लोकसभा चुनाव में मिले 41.65 प्रतिशत वोट घटकर विधानसभा चुनाव में 33.31 प्रतिशत रह गए। लोकसभा चुनाव में भाजपा को पांच सीटें और 56 विधानसभा क्षेत्रों में बढ़त मिली थी, लेकिन इस चुनाव में इन 56 में से 45 सीटें हाथ से निकल गईं। विधानसभा चुनाव परिणाम के अनुसार सिर्फ दो लोकसभा क्षेत्रों पाली और झालावाड़ में ही भाजपा को कांग्रेस के मुकाबले दो से पांच हजार वोट ज्यादा मिले। राजस्थान में ऐसी पचास सीटें थीं, जहां भाजपा से जुड़े लोग ही भाजपा की खिलाफत कर रहे थे। सिर्फ हाड़ौती और आदिवासी सीटों पर भाजपा से अलग हुआ मतदाता कांग्रेस के साथ जुड़ा। भाजपा ने जो 33 सीटें जीती थीं, उनमें से एक तो पार्टी से निष्कासित निहालचंद की थी; शेष 32 सीटों में से 19 सीटें भाजपा को कांग्रेस की बगावत और भाजपा विरोधी वोटों के बिखरने से मिल गईं, अन्यथा राजस्थान में और बुरा हाल होता। भाजपा विरोधी लहर का सबसे बड़ा प्रमाण यही था कि भाजपा की उसके गढ़ में सबसे अधिक दुर्गति हुई। हाड़ौती की 18 सीटों में से सिर्फ चार मिलीं; जयपुर शहर की पांच में एक हाथ आई; जोधपुर शहर की तीन में से एक भी नहीं। भीलवाड़ा, चित्तौड़, बीकानेर, उदयपुर, कोटा, टोंक, झालवाड़, बूंदी, सिरोही, अलवर, अजमेर जैसे जिला केंद्र भाजपा के हाथ से निकल गए। जिन सीटों पर भाजपा ने जीत दर्ज की, उनमें से आधी सीटें 5 हजार से कम वोटों से जीती थीं। भाजपा के टिकट पर चुनाव जीतने वालों में ज्यादातर या तो निष्ठाएं बदलते रहे थे या भाजपा में गत पांच-सात वर्षों से ही थे।[20]

इन हालात के बावजूद यह कांग्रेस के पक्ष में राज्यव्यापी लहर भी नहीं थी। 60 सीटें उसे बहुकोणीय संघर्ष और गैर कांग्रेसी वोटों के बंटवारे से प्राप्त हुईं। नौ जिलों हनुमानगढ़, श्रीगंगानगर, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, सवाईमाधोपुर, करौली, पाली और जालोर में उसे 46 प्रतिशत वोट भी नहीं मिले। 1977 में जनता पार्टी को 152 सीटें जीतने के लिए 50.4 प्रतिशत वोट लेने पड़े थे। 1998 में कांग्रेस को इससे 6 प्रतिशत वोट कम मिलने के बावजूद 150 सीटें मिल गईं। यहां तक कि 1985 में कांग्रेस को 46.6 प्रतिशत वोट मिले थे, लेकिन सीटों की संख्या 113 ही रही। 1972 में कांग्रेस को ऐतिहासिक 51.1 प्रतिशत वोट मिले, लेकिन 145 सीटें मिलीं। 1998 के विधानसभा चुनाव में भाजपा विरोधी लहर तो थी, लेकिन वह कांग्रेस के पक्ष में तब्दील नहीं हुई। कारण यह रहा कि भाजपा से नाराज हुआ उसका 20

प्रतिशत मतदाता छिटककर कांग्रेस के पक्ष में नहीं गया, बल्कि विभिन्न उम्मीदवारों में बंट गया। इसकी वजह से भाजपा को तो पूरा नुकसान हुआ और गैर कांग्रेसी वोट बंटने से परोक्ष रूप से कांग्रेस को लाभ मिला। भाजपा को उतने ही करीब 33 प्रतिशत वोट मिले, जितने 1990 में कांग्रेस को मिले थे; लेकिन तब कांग्रेस को 50 सीटें मिली थीं। वहीं, 1980 में भाजपा को साढ़े अठारह प्रतिशत वोटों पर ही 32 सीटें मिल गई थीं। यह मतपेटियों का चमत्कार रहा।[21]

चुनाव परिणाम आने के बाद मुख्यमंत्री पद को लेकर रस्साकशी शुरू हो गई। लोकसभा चुनाव के बाद विधानसभा चुनाव में भी पार्टी को शानदार जीत दिलवाने वाले प्रदेश अध्यक्ष गहलोत की दावेदारी मजबूत हो गई। दूसरी तरफ, वरिष्ठता के आधार पर यह सवाल महत्वपूर्ण था कि क्या नवलकिशोर या शिवचरण माथुर जैसे नेताओं को गहलोत के नेतृत्व में काम करने के लिए राजी किया जा सकेगा? इसी बीच माथुर ने यह चर्चा छेड़ दी कि किसी सांसद को मुख्यमंत्री नहीं बनाया जाना चाहिए। जोधपुर से लोकसभा सदस्य गहलोत तो प्रत्यक्ष रूप से इस बयान के निशाने पर थे ही; नटवर सिंह और राजेश पायलट की संभावनाओं को भी ठंडे बस्ते में डालने की तैयारी कर दी गई। जातिगत समीकरणों को भी नजरअंदाज करना मुश्किल था। कांग्रेस ने कुल 37 सीटों पर जाट उम्मीदवार उतारे थे, जिनमें से 31 जीतकर आए थे। ऐसे में मदेरणा पर भी निगाहें टिकी थीं। इन हालात में गहलोत को अंतिम उम्मीद सोनिया गांधी से थी। 1997 में कांग्रेस अध्यक्ष के चुनाव के दौरान गहलोत ने शरद पवार की दावेदारी का विरोध किया था और राजस्थान से अधिकतम वोट पवार के तत्कालीन प्रतिद्वंद्वी सीताराम केसरी को दिलवाने में सफल रहे। इस कदम ने उन्हें पवार का राजनीतिक शत्रु बना दिया, लेकिन इसके साथ ही वे सोनिया के करीबियों में शामिल हो गए।[22] राजस्थान में कांग्रेस की अभूतपूर्व जीत का श्रेय प्रदेश अध्यक्ष होने के नाते गहलोत को दिया जा रहा था, लेकिन गहलोत का कहना था, 'हमारी जीत के अनेक कारण हैं, लेकिन प्रमुख कारण है सोनिया गांधी का नेतृत्व, जिसने पार्टी को पूरी तरह पुनर्जीवित कर दिया।'[23]

मुख्यमंत्री का फैसला होने से पहले की आधी रात तक जगे हुए नवलकिशोर विधायकों की गणित से दूर थे। मुख्यमंत्री बनने की चाहत उनमें तैर रही थी, लेकिन आलाकमान की बाधा से वे अनजान नहीं थे। दूसरी ओर, गहलोत के समर्थन में विधायकों के बहुमत की सूची बन चुकी थी और जीतकर आने वाले विधायक किसी-न-किसी गहलोत समर्थक नेता से जोड़े जा चुके थे। राजस्थान का मुख्यमंत्री बनने को बड़ा 'पॉवर गेम' मानने वाले गहलोत के पक्ष में गहरा झुका हुआ पलड़ा साफ नजर आ रहा था।

राजस्थान के नए मुख्यमंत्री का चुनाव करने के लिए कांग्रेस आलाकमान ने गुलामनबी आजाद, माधवराव सिंधिया, रघुनंदनलाल भाटिया और मोहसिना किदवई को पर्यवेक्षक नियुक्त किया। पार्टी के सभी नवनिर्वाचित विधायक जयपुर में एकत्र होने लगे। 30 नवम्बर, 1998 की सुबह केंद्रीय पर्यवेक्षक जयपुर पहुंचे और गुप्त राजनीतिक मंत्रणाओं के केंद्र के रूप में विख्यात खासा कोठी होटल में ठहरे। वहां उनकी मुलाकात विभिन्न नेताओं से हुई,

जिनमें गिरिजा व्यास और बलराम जाखड़ शामिल थे। पार्टी के सभी विधायक भी वहीं पहुंचे। शिवचरण माथुर ने यह स्पष्ट कर दिया कि वे मुख्यमंत्री के अलावा कोई पद स्वीकार नहीं करेंगे। उनका कहना था, 'मैं पूर्व में मुख्यमंत्री रहा हूं और राजस्थान के लिए मेरा अपना दृष्टिकोण है। मैं किसी और के नेतृत्व में कैसे काम कर सकता हूं!'[24]

उसी दौरान एक न्यूज एजेंसी की ओर से यह खबर फ्लैश की गई कि मदेरणा ने स्वास्थ्य कारणों से मुख्यमंत्री पद की दावेदारी से अपना नाम वापस ले लिया है। यह खबर आते ही अनेक तरह के कयास लगाए जाने लगे। सभी नेता जानते थे कि मदेरणा को कोई गंभीर समस्या नहीं थी और वे चुनाव के दौरान पूरी तरह सक्रिय थे। पर्यवेक्षकों के साथ विधायकों की बैठक में सिर्फ खानापूर्ति होती नजर आई। ऐसा महसूस हो रहा था कि पर्यवेक्षक आलाकमान की पसंद का संदेश साथ लेकर आए थे और विधायकों की रायशुमारी केवल औपचारिकता के लिए हो रही थी। इसी बीच मोहसिना किदवई ने कुछ ऐसी बातें कहीं, जिनसे लगा कि वे आलाकमान की प्रतिनिधि के रूप में अपना प्रभाव दिखाना चाह रही हैं। इसके बावजूद सभी नेता मौन साधे रहे। नवलकिशोर पहले शांत बैठे थे, लेकिन मोहसिना की बात सुनकर वे भरी बैठक में बरस पड़े। मोहसिना ने फिर आलाकमान की दुहाई देते हुए कुछ समझाना चाहा तो नवलकिशोर ने तमतमाते हुए कहा, 'मोहसिना बैठ जाओ! मुझे मत समझाओ। मैं तुम्हारे यहां (उत्तर प्रदेश) दो बार इंचार्ज जनरल सेक्रेटरी रहा हूं। मैं सब जानता हूं। इस बार दावा परसराम जी का है, हम सब इनके पीछे हैं।' नवलकिशोर का यह तल्खी भरा अंदाज देखकर सभागार में सन्नाटा हो गया। इसके बाद नवलकिशोर बैठक से उठकर चल दिए।[25]

दोपहर में कांग्रेस विधायक दल ने एक पंक्ति का प्रस्ताव पारित करके मुख्यमंत्री के चुनाव के लिए सोनिया को अधिकृत कर दिया।[26] लेकिन इसका यह मतलब कदापि नहीं था कि राज्य की जनता ने अपने मुख्यमंत्री के बारे में सोच नहीं रखा था या राजस्थान के आम कांग्रेसजन और ज्यादातर विधायकों के सामने कोई चेहरा नहीं घूम रहा था। मुख्यमंत्री भैरोंसिंह शेखावत ने आठ वर्षों में कांग्रेस के जिस एक नेता की आलोचना की और कांग्रेस के जिस एक नेता ने शेखावत पर जमकर आरोप लगाए, वे और कोई नहीं, अशोक गहलोत ही रहे। लोकसभा चुनाव के बाद जब शेखावत का सत्ताच्युत होना सुनिश्चित हो गया, तब विकल्प के रूप में सिर्फ एक ही नाम उभरा.. अशोक गहलोत। विधानसभा में कांग्रेस ने भाजपा सरकार के खिलाफ भले होंठ सी लिए हों या दिल्ली से आने वाले कांग्रेस के वरिष्ठ नेता शेखावत सरकार की तारीफ में यशोगान करते रहे, लेकिन सिर्फ एक गहलोत ने मान-सम्मान की बिना चिंता किए भाजपा सरकार को आरोपों के कठघरे में खड़े रखा, शेखावत के खिलाफ लगातार बयानबाजी जारी रखी। अकेले गहलोत रहे, जिनकी प्रतिपक्ष की भूमिका के कारण उनके एक भी व्यक्ति का मनवांछित तबादला या नियुक्ति नहीं हुई और न ही उन्होंने भाजपा सरकार के सामने घुटने टेके। कांग्रेस के वरिष्ठ नेता आपसी झगड़ों में उलझते रहे या चुप बैठ गए, लेकिन गहलोत ने व्यक्तिगत सहयोगियों की मदद से न केवल

संगठन को काम में लगाए रखा, बल्कि कांग्रेसजनों को दिशा देने का काम भी किया।[27] शेखावत और राजस्थान की मीडिया ने उस दौरान गहलोत को नेता के रूप में स्वीकार नहीं किया, लेकिन गहलोत राजस्थान की कांग्रेस राजनीति का भविष्य बन चुके थे। उनकी पदचाप में विजय की अनुगूंज थी।

जैसी उम्मीद थी, वैसा ही हुआ। सोनिया ने राजस्थान कांग्रेस विधायक दल के नेता के लिए गहलोत का चुनाव किया। इसके बावजूद उन्हें दो धुरंधर नेताओं से मुकाबला करना था। एक, कांग्रेस की राजनीति के शातिर नवलकिशोर और दूसरे, राजस्थान के जाटों के सबसे बड़े नेता परसराम मदेरणा। दोनों मुख्यमंत्री नहीं बन पाने के कारण आहत लेकिन अनुशासित थे। मदेरणा ने ही 1980 में गहलोत को लोकसभा चुनाव में उम्मीदवार बनवाया था, उनके समर्थन में गांव-गांव गए और उनकी पहचान करवाई। जब भी गहलोत ने चुनाव लड़ा, मदेरणा ने उनका सहयोग किया। मदेरणा पहले तो 1998 का विधानसभा चुनाव ही नहीं लड़ना चाहते थे, लेकिन बाद में उन्होंने मानस बदल दिया। वे लड़े और नवीं बार विधायक बने। वे इतने सिद्धांतवादी निकले कि विधायक दल के नेता के चुनाव के लिए दिल्ली से आए पर्यवेक्षकों से इसलिए मिलने नहीं गए क्योंकि पर्यवेक्षकों ने उन्हें मिलने नहीं बुलाया। पूरे प्रदेश की निगाहें मदेरणा की ओर लगी हुई थीं और चुप्पी साधकर बैठे मदेरणा राजनीति में बने रहने तक को लेकर असमंजस में थे। मीडिया से दूरी रखते हुए किसी भी समाचार पत्र को साक्षात्कार नहीं दे रहे पूर्ण स्वस्थ मदेरणा ने बड़ी मुश्किल से 'महानगर टाइम्स' से कुछ चुप्पी तोड़ी। वे कांग्रेस को मिले जनादेश के कारणों और सरकार के सामने उपस्थित चुनौतियों के बारे में तो फिर भी बोलने को तैयार हुए, लेकिन ज्यों ही बात कांग्रेस की राजनीति और मुख्यमंत्री पद की आती, वे बार-बार कहने लगते, 'चाय पीजिए, ठंडी हो जाएगी।'[28]

मदेरणा को विधानसभा अध्यक्ष बनाया गया। उस दौरान राष्ट्रीय स्तर पर यह विचार किया गया कि नवलकिशोर को गहलोत सरकार में मंत्री का पद दिया जाना चाहिए। कांग्रेस महासचिव के रूप में माधवराव सिंधिया को तब राजस्थान का प्रभार मिला हुआ था। वे नवलकिशोर को गहलोत मंत्रिमंडल में शामिल होने के लिए तैयार करने में विशेष रूप से सक्रिय हुए। नवलकिशोर एकाधिक बार स्पष्ट कर चुके थे कि वे मंत्री नहीं बनेंगे, इसके बावजूद सिंधिया ने कोशिश जारी रखी। एक बार फोन पर इस संदर्भ में निर्णायक वार्ता हुई। लगभग 10 मिनट तक चली जिद-बहस के बाद नवलकिशोर ने सिंधिया से कहा, 'आप स्वयं को मेरे स्थान पर खड़ा करके देखिए और फिर बताइए, क्या मुझे उनके मंत्रिमंडल में शामिल होना चाहिए?' इस बात पर सिंधिया निरुत्तर हो गए। उन्होंने आग्रह छोड़ने की मुद्रा में कहा, 'पंडितजी, आप ने एक ही बार में छक्का मार दिया।'[29]

राजनीतिक दांवपेचों ने गहलोत को ताकतवर बनाया। कांग्रेस के किसी नेता से उन्हें खतरा नहीं था। उनके नेतृत्व में युवा तुर्क विधायकों की एक ऐसी मजबूत टोली थी, जो लंबे समय से उनके साथ थी और उस चुनाव के बाद मंत्री पद पर पहुंचकर और भी मजबूत हो गई थी।

विधानसभा अध्यक्ष बनने के बाद मदेरणा और शांत हो गए। नवलकिशोर बढ़ती उम्र, राजनैतिक नैराश्य और दलीय अनुशासन की वैतरणी में डुबकी लगाने को मजबूर हो गए। गहलोत को सिर्फ नवलकिशोर से आशंका थी.. राजनीतिक तौर पर नहीं, लेकिन वे नवलकिशोर की तीक्ष्णता को समझते थे। नवलकिशोर उस दौर से बाहर निकलते चले गए।

राजस्थान में मोहनलाल सुखाड़िया के बाद सबसे कम उम्र में मुख्यमंत्री बनने वाले गहलोत बहुत जल्दी भले ही मुख्यमंत्री बन गए, लेकिन वे किसी भी जल्दी में नहीं थे। मुख्यमंत्री बनने के बावजूद गहलोत शुरुआती दौर में राजनीतिक महाभारत के अभिमन्यु बने दोहरा चरित्र जी रहे थे। एक वे, जो सबके सामने थे और धीरे-धीरे प्रशासन को व्यवस्थित करते हुए अहम फैसले लेकर सरकार बदलने का अहसास करवा रहे थे। दूसरे, इसके ठीक विपरीत 'अंदर के गहलोत', जो राज्य की जनाकांक्षाएं पूरी करने के लिए तड़प रहे थे और इस बात से परिचित थे कि जनता उनसे तारे तोड़ लाने की उम्मीद भी रखती है। उन्होंने धीरे-धीरे चलने का तरीका अपनाया। वे गलतियां नहीं होने देने के लिए अधिक सावधान थे। वे कहते, 'गलतियों के कारण ही पिछली सरकार की इतनी अधिक दुर्दशा हुई। हर गलती कीमत मांगती है। इसके प्रति हम सावधान हैं।'[30]

गहलोत का चेहरा पढ़ा जा सकता था। उनकी आंखें कुछ कर गुजरने की तमन्ना में सपनीली हो चली थीं। कहीं कुछ विपरीत मनोभाव वाली सूचना मिलती तो उनके चेहरे पर उदासी की लकीरें दौड़ पड़तीं। वे संभलते, मुस्कुराते और अपने तकियाकलाम 'अच्छा ठीक है' जैसे शब्दों का उपयोग करते। लेकिन थोड़ी ही देर में वे कुछ और सोच रहे होते, जो वे करना चाहते थे। बहुमत के बल पर उनमें बहुत कुछ करने की तमन्ना थी। वे कहते, 'मैं एक सामान्य परिवार में जन्मा हूं। यहां तक पहुंचा हूं, इसका मतलब कतई नहीं है कि मैं अपने सिद्धांतों को छोड़ दूं या रास्ता भूल जाऊं। मेरे व्यक्तिगत जीवन पर कोई लांछन नहीं लगा सकता।' यह कहते समय उनकी मुखाकृति गंभीर हो जाती और गहरे अंतर्तल से बोल रहे होते, 'मेरा लक्ष्य सिर्फ मुख्यमंत्री बने रहना नहीं है। सिर्फ मुख्यमंत्री बने रहने के लिए मैं सिद्धांतों से समझौता नहीं कर सकता। जिस दिन लगेगा कि मैं कुछ करने की स्थिति में नहीं हूं, उस दिन मैं खुद ही मुख्यमंत्री पद पर नहीं बने रहना चाहूंगा।'[31]

संदर्भ सूची

1. स्मृति कपूर और हरिंदर बवेजा: इंडिया टुडे, 20 जुलाई, 1998
2. जॉर्ज आइप: रेडिफ.कॉम, 3 नवम्बर, 1998
3. वही
4. नवलकिशोर शर्मा: साक्षात्कार, रेडिफ.कॉम, 19 नवम्बर, 1998
5. जयपुर महानगर टाइम्स, 2 नवम्बर, 1998
6. अशोक गहलोत से तत्कालीन बातचीत पर आधारित
7. जयपुर महानगर टाइम्स, 6 नवम्बर, 1998
8. वही
9. वही, 3 नवम्बर, 1998
10. वही, 5 नवम्बर, 1998
11. मिलापचंद डांडिया: ट्रिब्यून इंडिया, 6 नवम्बर, 1998
12. मनु शर्मा : जयपुर महानगर टाइम्स, 19 नवम्बर, 1998
13. वेंकटेश रामकृष्णन: फ्रंटलाइन, 7 नवम्बर, 1998
14. टी.के. राजलक्ष्मी: फ्रंटलाइन, 21 नवम्बर, 1998
15. नवलकिशोर शर्मा: साक्षात्कार, रेडिफ.कॉम, 19 नवम्बर, 1998
16. वही
17. रेडिफ.कॉम, 29 नवम्बर, 1998
18. चुनाव आयोग की रिपोर्ट का विश्लेषण
19. टी.के. राजलक्ष्मी: फ्रंटनाइन, 21 नवम्बर, 1998
20. गोपाल शर्मा: जयपुर महानगर टाइम्स, 2 दिसम्बर, 1998
21. वही, 3 दिसम्बर, 1998
22. सैयद फिरदौस अशरफ: रेडिफ.कॉम, 29 नवम्बर 1998
23. अशोक गहलोत : साक्षात्कार, रेडिफ.कॉम, 28 नवम्बर, 1998
24. अंबरीश के. दीवानजी : रेडिफ.कॉम, 30 नवम्बर, 1998
25. पत्रकार विनोद चतुर्वेदी के संस्मरण
26. रेडिफ.कॉम, 30 नवम्बर, 1998
27. गोपाल शर्मा: जयपुर महानगर टाइम्स, 30 नवम्बर, 1998

28. परसराम मदेरणा: महानगर टाइम्स, 4 दिसम्बर, 1998
29. महेश शर्मा, नवलकिशोर शर्मा के पूर्व पीए के संस्मरण
30. अशोक गहलोत: जयपुर महानगर टाइम्स, 2 फरवरी, 1999
31. वही, 3 मई, 2001

स्वर्ण जयंती का स्वर्णिम अध्याय

स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ा इतना महत्वपूर्ण काम राजस्थान के अलावा अन्य किसी राज्य में नहीं हुआ। राजस्थान के इतिहास के विस्मृत हो रहे अध्यायों से नई पीढ़ी को अवगत करवाने का यह कार्य अद्‌भुत है।

–आर. वेंकटरमन

राजस्थान के गौरवशाली इतिहास और अगली पीढ़ी के लिए आदर्श की भावना को संजोने का अवसर राजस्थान के एकीकरण के स्वर्ण जयंती वर्ष के रूप में आया। लगभग आठ वर्षों के भाजपा शासन के बाद आई कांग्रेस सरकार के लिए राजस्थान की जड़ों से जुड़ने का यह सुनहरा मौका था। पहली बार मुख्यमंत्री बने अशोक गहलोत ने स्वर्ण जयंती वर्ष को यादगार बनाने का फैसला किया। 16 मार्च, 1999 को नवलकिशोर शर्मा के संयोजकत्व में स्वर्ण जयंती समारोह समिति का गठन हुआ। संयोजक बनने के लिए नवलकिशोर तुरंत तैयार नहीं हुए लेकिन कुछ लोगों से विचार–विमर्श करके इसके लिए सहर्ष स्वीकृति दे दी। समिति में कांग्रेस से जुड़े पूर्व मुख्यमंत्रियों, मंत्रियों, स्वतंत्रता सेनानियों, संपादकों और विशिष्ट व्यक्तियों को सदस्य बनाया गया। स्वर्ण जयंती समारोह समिति के संयोजक के रूप में नवलकिशोर को कैबिनेट स्तर के मंत्री का दर्जा दिया गया।[1] इस दौरान राजस्थान के इतिहास को पुनर्जीवित करने का बड़ा काम हुआ। नवलकिशोर ने जीवन के महत्वपूर्ण पांच वर्ष इस काम में लगाए। उनके मार्गदर्शन में राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के योग्य व्यक्तियों ने मिलकर एक ऐसी बौद्धिक संपदा तैयार की, जो भावी पीढ़ी के लिए अमूल्य धरोहर बन गई।

स्वर्ण जयंती के कार्यक्रम मनाने के लिए समिति की पहली बैठक 26 मार्च, 1999 को शासन सचिवालय में हुई। इसमें नवलकिशोर के अलावा मुख्यमंत्री गहलोत सहित तीन पूर्व मुख्यमंत्री शिवचरण माथुर, जगन्नाथ पहाड़िया और हीरालाल देवपुरा, आठ मंत्री, मुख्य सचिव, सर्वोदयी नेता सिद्धराज ढड्ढा, सांसद शीशराम ओला, चार संपादकों सहित 40

प्रतिनिधि उपस्थित थे। बैठक में स्वर्ण जयंती वर्ष के दौरान आयोजित किए जा सकने वाले कार्यक्रमों के लिए सुझाव मांगे गए। नवलकिशोर ने राजस्थान के एकीकरण के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए कहा कि राजस्थान के गठन की स्वर्ण जयंती मनाने के लिए केवल राज्य सरकार के स्तर पर कार्यक्रम आयोजित करने से लक्ष्य की प्राप्ति संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए जनता की भागीदारी भी जरूरी होगी।

गहलोत ने इन आयोजनों को मकसद, प्रतिबद्धता और समर्पण की भावना से आयोजित करने पर बल दिया। उन्होंने कहा कि कार्यक्रम ऐसे हों, जो आमजन के पास पहुंचें और सामाजिक पहलुओं को छुएं। उनका कहना था कि छुआछूत जैसी सामाजिक बुराई आज भी जिंदा है, इसे हटाने के लिए प्रयत्न करने होंगे। उन्होंने मुख्य सचिव को निर्देश दिए कि वर्षों से अटके कार्यों को अगले एक वर्ष में पूरा करवाने और विकास के विशेष कार्य हाथ में लिए जाएं। उन्होंने निर्देशित किया कि 30 मार्च को राजस्थान दिवस के अवसर पर जयपुर में सद्भावना मार्च, स्वर्ण जयंती कक्ष का उद्घाटन और इसमें प्रदर्शनी के आयोजन सहित सभी कार्यक्रम प्रभावी तरीके से होने चाहिए। साथ ही, स्वर्ण जयंती वर्ष के दौरान राजस्थान के स्वतंत्रता सेनानियों का राज्यस्तरीय सम्मान किए जाने और राजधानी सहित जिला मुख्यालयों पर 'राजस्थान के विकास की कहानी' शीर्षक से प्रदर्शनियों का आयोजन किए जाने की घोषणा की। गहलोत का कहना था कि नई पीढ़ी को राजस्थान की मौजूदा शक्ल और इसके विकास की जानकारी नहीं है, इसलिए आवश्यक है कि राजस्थान के गठन को राज्य स्तर पर समारोहपूर्वक मनाकर इस पीढ़ी को जानकारी दी जाए ताकि वह गौरवान्वित अनुभव कर सके।[2]

माथुर ने सुझाव दिया कि 1922 से 1941 तक 19 वर्ष चले बिजोलिया आंदोलन के बारे में विद्यार्थियों को जानकारी प्राप्त होनी चाहिए। उसी वर्ष माणिक्यलाल वर्मा, जयनारायण व्यास और हीरालाल शास्त्री की जन्मशताब्दी भी थी। माथुर ने कहा कि इन्हें समारोहपूर्वक मनाया जाना चाहिए और उसकी माइक्रो फिल्मिंग की जानी चाहिए। उन्होंने 40 स्वतंत्रता सेनानियों को चिह्नित कर रखा था और उनके बारे में मोनोग्राफ तैयार किए जाने का विचार प्रकट किया। माथुर ने बताया कि ये मोनोग्राफ सभी स्कूलों में भेजे जाने चाहिए ताकि युवा पीढ़ी इनका अध्ययन करके इनसे प्रेरणा ले सके। माथुर ने कहा कि राजस्थान के निर्धन लोगों की सहायतार्थ योजनाएं तैयार करने और सरकारी कर्जों की माफी दिए जाने पर विचार किया जाना चाहिए, राजस्थान के जीवित पूर्व मुख्यमंत्रियों को आमंत्रित करके राज्य की भावी कल्पना पर चर्चा की जानी चाहिए, सभी राजनीतिक दलों का एक दिवसीय सम्मेलन आयोजित किया जाना चाहिए और पूर्व सैनिकों के योगदान को याद करके उनका सम्मान किया जाना चाहिए।

पहाड़िया का विचार था कि स्वर्ण जयंती वर्ष के आयोजन लगातार और सभी स्तरों पर चलें तथा उनमें अधिक-से-अधिक लोगों की भागीदारी हो। उन्होंने कहा कि इस अवसर पर अग्रणी लोगों को याद किया जाना चाहिए। उनका सुझाव था कि राजस्थान भारत का हिस्सा

है, इसलिए भारत के परिप्रेक्ष्य में चर्चा होनी चाहिए और अन्य प्रदेशों की गतिविधियों के बारे में भी जानकारी प्राप्त की जानी चाहिए। उन्होंने अंतरराष्ट्रीय सूचनाओं के आदान-प्रदान की जरूरत पर भी बल दिया। राजनीति, समाज और अर्थव्यवस्था में बदलाव होने का जिक्र करते हुए उन्होंने सवाल उठाए कि हमारी पंचायतों का क्या चित्र था? छुआछूत कितनी थी.. अब कहां है? पहाड़िया का मानना था कि इतिहास को महत्व नहीं दिया गया। उन्होंने कहा कि आर्य समाज और कांग्रेस दोनों की विचारधारा एक थी, लेकिन समय के साथ दोनों दूर होते गए। अब उनकी एकता के प्रयास किए जाने चाहिए। उनका कहना था कि राष्ट्रीय स्तर के अलंकरणों की भांति राज्य स्तर के अलंकरणों की शुरुआत भी की जानी चाहिए।

हीरालाल देवपुरा ने कहा कि कार्यक्रमों को दो भागों में बांटा जाना चाहिए- पहले भाग में स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा आजादी के लिए रियासतों में किए गए संघर्ष पर प्रकाश डालना चाहिए और दूसरे भाग में स्वर्ण जयंती वर्ष से पूर्व के वर्षों में राजस्थान के एकीकरण से लेकर वर्तमान तक हुए विकास को चार्ट-मॉडल के माध्यम से प्रदर्शित किया जाना चाहिए। उन्होंने सुझाव दिया कि कॉलेजों-विश्वविद्यालयों में गोष्ठियां आयोजित करके राज्य की स्थिति के सभी पहलुओं पर चर्चा होनी चाहिए और गरीब के आंसू पोंछने के लिए कार्यक्रम बनाए जाने चाहिए।

सिद्धराज ढड्ढा को चिंता थी कि राजस्थान के गठन के 50 वर्ष पूरे हो रहे हैं, लेकिन हमारे पूर्वजों ने जो स्वप्न नवीन राजस्थान के लिए देखा था, वह आज भी पूरा नहीं हो पाया है। जो सबसे गरीब हो, उसे अपने सामने खड़ा करें और उससे पूछें कि 50 वर्ष में जो कुछ हुआ, उसे वह किस दृष्टि से देखता है? आज के भौतिक युग में स्वर्ण जयंती मनाने लायक क्या है और आगे क्या कर सकते हैं, इस पर विचार करना चाहिए। दरिद्र और बेजुबान को खड़ा करने की आवश्यकता है।[3]

प्रदेश कांग्रेस की पूर्व अध्यक्ष लक्ष्मीकुमारी चूंडावत का मानना था कि 50 वर्ष पहले की महिलाओं की अवस्था और वर्तमान महिलाओं की अवस्था का विश्लेषण किया जाना चाहिए तथा यह प्रचारित किया जाना चाहिए कि इस अवधि में उनको कानूनी अधिकार मिले हैं। महिलाओं की अवस्था में इन 50 वर्षों में आमूलचूल परिवर्तन आया है। उनका सुझाव था कि स्वतंत्रता संग्राम के दौरान होने वाली सांस्कृतिक गतिविधियों और माणिक्यलाल वर्मा के 'पंछिड़ा' जैसे लोकगीतों के कैसेट बनाए जाने चाहिए। सिंचाई मंत्री डॉ. कमला ने कहा कि राजस्थान के बड़े-बड़े गांवों में लाइट और साउंड के माध्यम से आजादी के संघर्ष के जीवंत प्रदर्शन की व्यवस्था की जानी चाहिए। कमला स्वयं भी स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान बाल सेनानी के रूप में सहयोगी रही थीं। उनका कहना था कि वे युवाओं को उन दिनों की स्थिति से अवगत करवाना चाहती हैं। उन्होंने सुझाव दिया कि घटनास्थलों पर विशेष रूप से बड़े आयोजन किए जाने चाहिए और इनकी वीडियो फिल्में भी तैयार की जानी चाहिए। उस समय के नारों, गीतों का उसी तरह और उसी वेशभूषा में प्रदर्शन किया जाना चाहिए। जिला स्तर पर इतिहास लिखे जाएं और स्वतंत्रता सेनानियों के ब्यौरे एकत्रित किए जाएं। स्वर्ण जयंती

भवन में उस समय के दस्तावेज का संकलन किया जाए। स्वतंत्रता संग्राम विशेषकर सामाजिक सुधार में आर्य समाज के योगदान की एक बुकलेट तैयार की जानी चाहिए।

शिक्षा मंत्री बुलाकीदास कल्ला का कहना था कि स्वतंत्रता के बाद राजस्थान ने भूमि सुधार, सिंचाई, बिजली उत्पादन, साक्षरता आदि क्षेत्रों में प्रगति की है; जिला स्तरीय समितियों का गठन करके इस प्रगति का प्रदर्शन किया जाना चाहिए। उन्होंने जयपुर के अल्बर्ट हॉल के पीछे स्वतंत्रता सेनानियों से संबंधित सामग्री का म्यूजियम बनाने और जिला स्तर पर भी ऐसे ही म्यूजियम स्थापित करने का सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि सैन्य प्रतिभाओं, पद्म पुरस्कार प्राप्त करने वालों और अर्जुन अवार्ड से सम्मानित प्रतिभाओं का राज्य स्तर पर सम्मान किया जाना चाहिए।

इस समिति में मैं भी शामिल रहा। मैंने बजट में स्वतंत्रता सेनानियों की पेंशन में की गई वृद्धि के लिए मुख्यमंत्री का धन्यवाद किया। साथ ही, सुझाव दिया कि स्वतंत्रता संग्राम और राजस्थान के एकीकरण का अलग-अलग क्रमवार संयोजन किया जाना चाहिए, केंद्र सरकार से इस अवसर पर डाक टिकट जारी करने का अनुरोध किया जाना चाहिए। राजस्थान के एकीकरण के जनक सरदार वल्लभभाई पटेल की प्रतिमा जयपुर में उचित स्थान पर स्थापित की जानी चाहिए। स्वर्ण जयंती के लिए गठित समिति में अन्य राजनीतिक दलों के सदस्यों को भी शामिल किया जाना चाहिए।[4]

समिति का गठन किए जाते समय सरकार के सामने स्वर्ण जयंती समारोह के अंतर्गत किए जाने वाले कार्यों की स्पष्ट रूपरेखा नहीं थी। हालांकि राज्य के गौरव से जुड़ा सकारात्मक विचार था और इसके संबंध में होने वाले कुछ आयोजनों पर निश्चित धनराशि खर्च करने की मानसिकता थी। सामान्य रूप से यही माना जा रहा था कि यह स्वतंत्रता संग्राम की स्मृतियों को ताजा करने का अवसर है। लेकिन पहली बैठक में ही यह विचार प्रमुखता से आ गया कि स्वतंत्रता संग्राम और राजस्थान के एकीकरण में अंतर किए जाने से दोनों महान ऐतिहासिक उपलब्धियों को महत्व मिलेगा। यह सुझाव आया कि चूंकि राजस्थान के एकीकरण के महानायक सरदार पटेल हैं, इसलिए उनके महत्व को सर्वोपरि रखा जाना चाहिए। सरकार ने इसको इतना ही महत्व दिया कि जल्दी ही जयपुर में पटेल की प्रतिमा स्थापित की गई। लेकिन एकीकरण से संबंधित विचार पूर्णता नहीं ले पाया क्योंकि नेताओं की निगाह में वे दोनों अलग विषय नहीं थे। नवलकिशोर सोचते थे कि राजस्थान की स्वर्ण जयंती पर विविध प्रकार के स्थाई महत्व के कार्य हाथ में लिए जाने चाहिए। लेकिन सरकार की ओर से निर्धारित किए गए दो करोड़ रुपए के बजट ने समिति की योजनाओं की सीमा स्वत: निर्धारित कर दी।

स्वर्ण जयंती के कार्यक्रमों की भव्य शुरुआत हुई। समारोहों का विधिवत उद्घाटन 30 मार्च, 1999 को हुआ। उस दिन राजस्थान का स्थापना दिवस था और इस अवसर पर कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी मुख्य अतिथि थीं। गहलोत और नवलकिशोर की सहभागिता में स्वतंत्रता सेनानियों और अन्य महत्वपूर्ण प्रतिभागियों के साथ जयपुर में स्टेच्यू सर्किल से

रामनिवास बाग स्थित जवाहरलाल नेहरू की प्रतिमा तक सद्भावना मार्च आयोजित किया गया। जयपुर के सूचना केंद्र में स्वतंत्रता सेनानियों के लिए स्वर्ण जयंती कक्ष का उद्घाटन हुआ। इसके बाद के महीनों में समिति की बैठकों का लंबा दौर चला। विपक्ष के नेताओं को भी समिति में लिए जाने का सुझाव आया था, जिसको ध्यान में रखकर पूर्व मुख्यमंत्री भैरोंसिंह शेखावत सहित विपक्ष के कुछ नेता शामिल किए गए।

नवलकिशोर ने सोचा कि राजस्थान के स्वतंत्रता सेनानियों के जीवन वृत्त, स्वतंत्रता आंदोलन–प्रजामंडल आंदोलन की गाथा और इतिहास में गाए जाने वाले गीतों वगैरह का प्रकाशन किया जाना चाहिए। उन्होंने एक पत्र में लिखा कि स्वतंत्रता आंदोलन को लोग विस्मृत करते जा रहे हैं और उन सेनानियों को भूलते जा रहे हैं, इसलिए कम–से–कम इतिहास की याद बनी रहे।[5] लेकिन स्वयं के स्तर पर समिति के काम को अधिक उपयोगी बनाने का यह फैसला क्रियान्वित करना आसान नहीं था। स्वतंत्रता आंदोलन से संबंधित कार्यों के बारे में कोई अधिकृत जानकारी उपलब्ध नहीं थी। आंदोलन में सक्रिय भागीदारी निभाने वाले अधिकांश लोगों की मृत्यु हो चुकी थी। ऐसे स्वतंत्रता सेनानियों के रिकॉर्ड और पत्र व्यवहार भी प्रकाशित नहीं थे। उनके परिवारजनों और मित्रों की भी अनेक कारणों से इस तरह इतिहास उजागर करने में कोई दिलचस्पी नहीं थी।[6]

स्वर्ण जयंती समारोह समिति ने परामर्श मंडल का गठन कर दिया। इसके बावजूद अंतत: नवलकिशोर को ही इस काम का नेतृत्व अपने हाथ में लेना पड़ा। उन्होंने लेखन में रुचि और सामाजिक जुड़ाव रखने वाले कुछ महत्वपूर्ण लोगों को जोड़ना शुरू किया। इनमें लगातार रुचि रखने वाले एक महत्वपूर्ण नेता के रूप में शिवचरण माथुर सामने आए, जो दो बार मुख्यमंत्री रह चुके थे और सामाजिक नीति शोध संस्थान चला रहे थे। राजस्थान पर्यटन विकास निगम को प्रतिष्ठित करने वाले और उसके बहुचर्चित लोगो तथा टैगलाइन 'पधारो म्हारे देस' के मूल सर्जक आईएएस ललित के. पंवार कला एवं संस्कृति तथा सामान्य प्रशासन सचिव रहते हुए उपयोगी सिद्ध हुए। पंवार संस्कृति और राजस्थान से न केवल भावनात्मक लगाव रखते थे, बल्कि यहां की माटी के लिए कुछ बड़ा करने की तत्परता उनके स्वभाव का हिस्सा है। स्वर्ण जयंती प्रकाशन समिति के सचिव के रूप में राज्य प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी हेमंत शेष की नियुक्ति ने कार्य को सुनिश्चित दिशा में बढ़ाने में अहम भूमिका निभाई। सकारात्मक और रचनाधर्मी हेमंत के रूप में नवलकिशोर को एक मनपसंद सहयोगी मिल गए।

नवलकिशोर को सबसे ज्यादा सहयोग मिला वरिष्ठ पत्रकार सीताराम झालानी से, जो आजादी से लेकर तब तक की सभी घटनाओं के साक्षी रहे और अनेक स्वतंत्रता सेनानियों से सीधे संबंध रखते आ रहे थे। उनके पास राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम, प्रजामंडल और नेताओं से संबधित अमूल्य साहित्यिक खजाना था और उनकी आत्मा में सदैव राजस्थान बसता रहा है। झालानी के इतिहास, अनुभव, लेखन और याददाश्त का समुच्चय काम आया। उन्होंने नवलकिशोर के राजनीतिक जीवन को नजदीकी से देखा, उनके मित्र रहे और

नवलकिशोर को भी उनमें पूरा भरोसा था। स्वर्ण जयंती समारोह समिति का संयोजक पद स्वीकार करने से पहले भी नवलकिशोर ने झालानी को विश्वास में लिया। उन्होंने और भी कई महत्वपूर्ण व्यक्तियों को जोड़ा; प्रशासनिक सुधार आयोग के तत्कालीन सचिव लक्ष्मीचंद गुप्त, राजस्थान विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष डॉ. रामगोपाल शर्मा और सुखाड़िया-शेखावत के सहयोगी के रूप में सेवाएं दे चुके पूर्व सूचना एवं जनसंपर्क निदेशक कन्हैयालाल कोचर ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई। झालानी, कोचर और गुप्ता का संपादक मंडल बनाया गया। झालानी इस कार्य में अद्यतन जुड़े रहे और लगभग छह दर्जन पुस्तक-पुस्तिकाओं का प्रकाशन संभव हो सका।

प्रारंभ में शिवचरण माथुर ने नवलकिशोर के समक्ष प्रस्ताव रखा कि संबंधित पुस्तकों का प्रकाशन उनके सामाजिक नीति शोध संस्थान के माध्यम से करवाया जा सकता है।[7] इस प्रस्ताव पर सामान्य तौर पर सहमति रही। यह निर्णय किया गया कि राजस्थान के स्वतंत्रता सेनानियों के जीवन के संबंध में 40 लघु पुस्तिकाएं प्रकाशित करवाई जाएं। इन पुस्तिकाओं की पृष्ठ संख्या 35 से 50 के बीच होनी चाहिए। इनके लेखकों का चयन और संपादन सामाजिक नीति शोध संस्थान करे। लेखक-संपादक को राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी का प्रस्तावित पारिश्रमिक दिया जाए और प्रकाशन का कार्य भी अकादमी ही करे। पुस्तिकाओं की भाषा, पैटर्न, आवरण पृष्ठ और साज-सज्जा एक निश्चित प्रकार के हों ताकि स्वर्ण जयंती प्रकाशनों को अलग से पहचाना जा सके। यह भी सोचा गया कि सभी पुस्तिकाएं 30 मार्च, 2000 तक प्रकाशित हो जानी चाहिए। संस्थान इस कार्य को करने के लिए तैयार हो गया। माथुर ने नवलकिशोर को इस योजना का बजट भी बनाकर भेज दिया। लेकिन किसी भी विवाद से बचने के लिए नवलकिशोर ने तय किया कि सरकारी धन को हाथ नहीं लगाएंगे। इसलिए समिति के माध्यम से खर्च होने वाली राशि हिंदी ग्रंथ अकादमी के खाते में हस्तांतरित करवाई गई। अकादमी ही अपने मापदंडों के अनुसार भुगतान करती रही। कोई व्यवधान नहीं आने देने के प्रति नवलकिशोर व्यक्तिगत रूप से जागरूक रहे।

नवलकिशोर हर पुस्तक और मोनोग्राफ की गहराई में गए। 'राजस्थान के प्रकाश स्तंभ' पुस्तक की पांडुलिपि को देखकर पाया कि अनेक क्षेत्रों की प्रख्यात दिवंगत प्रतिभाओं के परिचय शामिल नहीं हैं। उन्होंने लक्ष्मीचंद गुप्त के संयोजन में शिक्षा, इतिहास, विज्ञान, खेलकूद, सेना, संस्कृति, कला, साहित्य, पत्रकारिता, उद्योग, प्रशासन, राजनीति, समाजसेवा, धर्म, दर्शन, संस्कृति, पुरातत्व, चिकित्सा आदि क्षेत्रों से जुड़े व्यक्तित्वों की सूची बनाने के लिए समिति गठित की। इसमें माथुर को सलाहकार बनाया गया। समिति के सदस्यों में पंवार, झालानी, कोचर और हेमंत शामिल थे।[8] डॉ. रामधारी सैनी, अर्जुन वीर, रामानंद राठी, के.एस. गुप्ता, मिश्रीलाल मंडोत, सरस्वती माथुर, गोविंद शर्मा, मोहनराज भंडारी, ओम सारस्वत, देवदत्त शर्मा, भागीरथ भार्गव, मोहनराज चारण, नटवर त्रिपाठी, डॉ. बी.के. शर्मा, नरेंद्र शर्मा कुसुम, घनश्याम वर्मा, एच.सी. भारतीय, रामस्वरूप जोशी, राजेंद्र जोशी, बुलाकी शर्मा, प्रकाशनारायण नाटाणी, जिया-उल कादरी, डॉ. सत्येंद्र चतुर्वेदी, रामस्वरूप जोशी, डॉ.

रामगोपाल शर्मा ने प्रजामंडल का इतिहास लिखा। झालानी ने 'युगों-युगों से राजस्थान' के जरिए यहां के गौरवशाली विगत को उजागर किया। इसमें डॉ. विजय शंकर और मिट्ठालाल मेहता ने भी आलेख लिखे। 'राजस्थान के प्रकाश स्तंभ' से विभिन्न मनीषियों के जीवन चरित्र सामने आए। 'अभिलेखों में राजस्थान' के माध्यम से ऐतिहासिक महत्व के दस्तावेज प्रकट हुए। इस पुस्तक का संपादन कोचर ने किया। ओमप्रकाश सारस्वत ने राजस्थान के स्वतंत्रता इतिहास और प्रतीकों को रेखांकित किया।

स्वतंत्रता सेनानियों पर मोनोग्राफ लिखवाने में वरिष्ठ पत्रकारों, शिक्षाविदों, साहित्यकारों और सामाजिक कार्यकर्ताओं का सहयोग लिया गया। गुप्ता, कोचर और झालानी का संपादक मंडल बनाया गया। भाषा संपादन में सलाह के लिए देवर्षि कलानाथ शास्त्री का सहयोग लिया गया। अर्जुनलाल सेठी पर मिलापचंद डंडिया, विजयसिंह पथिक पर दुष्यंत ओझा, क्रांतिकारी बारहठ परिवार पर डॉ. सोहनदान चारण, राव गोपालसिंह खरवा पर प्रकाशनारायण नाटाणी, हरिभाऊ उपाध्याय पर भूषणलाल शिशु, जमनालाल बजाज पर कृष्ण शर्मा, बाबा नृसिंहदास पर हरिनारायण शर्मा, भोगीलाल पंड्या पर नटवर त्रिपाठी, भूरेलाल बया पर डॉ. के.एस. गुप्ता, मोतीलाल तेजावत पर डॉ. शांतिकुमारी शर्मा, रामनारायण चौधरी पर मोहनराज भंडारी, पंडित अभिन्न हरि और लादूराम जोशी पर रामस्वरूप जोशी, गोकुलभाई भट्ट पर रामेश्वर विद्यार्थी, माणिक्यलाल वर्मा पर डॉ. नरेंद्र शर्मा 'कुसुम', जयनारायण व्यास पर सूरजप्रकाश पापा, हीरालाल शास्त्री पर भगवानसहाय त्रिवेदी, रामकरण जोशी पर डॉ. तारादत्त निर्विरोध, मोहनलाल सुखाड़िया पर के.एल. कोचर, टीकाराम पालीवाल पर घनश्यामदास पालीवाल, हरिदेव जोशी पर डॉ. सरस्वती माथुर ने शोधपरक लेखन किया।[9]

मास्टर आदित्येंद्र, चंदनमल बहड़, शोभाराम, युगलकिशोर चतुर्वेदी, सागरमल गोपा, शौकत उस्मानी, राजबहादुर, सरदार हरलाल सिंह, गोकुललाल असावा, मुकुटबिहारीलाल भार्गव, घनश्यामदास बिड़ला, मोतीलाल-नाथूलाल जैन, पं. ताड़केश्वर शर्मा, कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी, स्वामी केशवानंद, मथुरादास माथुर, चिरंजीलाल शर्मा, चंद्रगुप्त वार्ष्णेय, गौरीशंकर उपाध्याय, बद्रीनारायण खोरा, रमेशचंद्र व्यास, द्वारकाप्रसाद पुरोहित, विशंभरदयाल, लक्ष्मणस्वरूप त्रिपाठी, अचलेश्वर प्रसाद शर्मा, त्रिलोकचंद माथुर, कुंभाराम आर्य, स्वामी कुमारानंद, स्वामी गोपाल दास, डॉ. देशराज, शोभालाल गुप्त और रूपलाल सोमानी पर पुस्तिकाएं प्रकाशित हुईं। डॉ. निर्मला अग्रवाल, द्वारकेश भारद्वाज, भागीरथ भार्गव, सत्येंद्र चतुर्वेदी, श्यामसुंदर आचार्य, जगमोहन माथुर, राजेंद्र जोशी, देवदत्त शर्मा, ज्ञानप्रकाश पिलानिया, भगवतशरण चतुर्वेदी, हरिनारायण शर्मा, डॉ. संतोष शर्मा, वेणुगोपाल शर्मा, आर.पी. व्यास सहित कई लेखकों-इतिहासकारों ने लेखकीय योगदान किया।[10]

प्रो. रामचरण मेहरोत्रा को विज्ञान और शिक्षा के परिदृश्य का अगले पचास सालों का लेखा-जोखा लिखने के लिए अनुरोध किया गया। जिन स्वतंत्रता सेनानियों के एकल मोनोग्राफ नहीं छापे जा सके, उनको क्षेत्रवार प्रकाशित किया गया। प्रतीक और मोनोग्राफ लेखन के लिए पारिश्रमिक का नियमानुसार भुगतान राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी के स्तर पर

किया गया। यहां तक कि हर मोनोग्राफ लेखक को राजस्थान सरकार के यात्रा भत्ता नियमों के अंतर्गत 'ए' श्रेणी का अधिकारी मानते हुए यात्रा भत्ते का भुगतान किया गया।[11]

एक अवसर पर स्वर्ण जयंती प्रकाशनों के लिए प्रशासनिक विभाग के रूप में सामान्य प्रशासन विभाग को रखने का फैसला हुआ, लेकिन नवलकिशोर के हस्तक्षेप से पूर्ववत कला एवं संस्कृति विभाग के अंतर्गत ही इसे रखा गया।[12] यह निर्णय इसलिए किया गया क्योंकि पृष्ठभूमि में जानकारी, प्रकाशनों का अनुभव, इससे जुड़े तब तक के कार्य और विषय से परिचित होने के कारण कला एवं संस्कृति विभाग के पास ही कार्य रखना तर्कसंगत था। आगे चलकर यह निर्णय हुआ कि मोनोग्राफ में मुख्यमंत्री और समिति संयोजक के संदेश के साथ उनके फोटो भी प्रकाशित होने हैं। नवलकिशोर ने निर्णय किया कि उनके और मुख्यमंत्री के फोटो नहीं जाने चाहिए। एक आदेश जारी करके उस पर रोक लगा दी गई।[13]

पुस्तकों के लोकार्पण समारोहों की मर्यादा में भी नवलकिशोर की दृष्टि अहम थी। कार्यक्रमों में राज्यपाल अंशुमान सिंह और मुख्यमंत्री अशोक गहलोत को क्रमशः मुख्य अतिथि तथा अध्यक्ष के रूप में सहभागी बनाया गया। कार्यक्रमों के संचालन, उस अवसर पर गाए जाने वाले गीत, अल्पाहार पर होने वाले व्यय और आमंत्रण भेजे जाने के स्वरूप तक का नवलकिशोर ध्यान रखते। यदि किसी विषय में कोई पत्र आता तो विस्तार से जवाब देते। अपना टेलीफोन नंबर भी उन्होंने सार्वजनिक कर रखा था और कोई भी जरूरत पड़ने पर उनसे सीधी बात की जा सकती थी। उन्होंने इस कार्य में कभी वरिष्ठता और अहम को आड़े नहीं आने दिया। केंद्र में मंत्री रहे नटवर सिंह ने सदस्य सचिव को पत्र लिखकर स्वतंत्रता सेनानी ठाकुर देवराज सिंह के जीवन पर भरतपुर जिले में जघीना के मास्टर हरभान सिंह से पुस्तक लिखवाने का आग्रह किया। नवलकिशोर ने खुद नटवर सिंह को पत्र लिखकर उनके सुझाव के अनुसार पुस्तक लिखवाने की सूचना भेजी।[14]

शिवचरण माथुर के नाना त्रिलोकचंद माथुर ने आजादी की लड़ाई में करौली का प्रतिनिधित्व किया था। उनके अलावा वहां के अन्य स्वतंत्रता सेनानियों ने भी राजाओं और जागीरदारों के अत्याचारों के विरोध में संघर्ष किया। स्वतंत्रता सेनानी समिति, करौली के सचिव बालकृष्ण शर्मा ने यह विषय उठाया और उन पर पुस्तिका प्रकाशित हुई। स्वतंत्रता सेनानी रामनारायण चौधरी, दुर्गाप्रसाद चौधरी, माणिक्यलाल वर्मा और शोभालाल गुप्त ने 1930 में सागवाड़ा से बारह किलोमीटर दूर खड़लई क्षेत्र में कार्य प्रारंभ किया था। उन्होंने पिछड़े आदिवासी क्षेत्रों में डेरा डाला और जनजागरण किया। उन्होंने लोगों को खेती का काम सिखाया, शिक्षा दी और कताई-बुनाई का प्रशिक्षण दिया। उनकी स्मृति को अक्षुण्ण रखे जाने का आग्रह तात्कालिक श्रम मंत्री भीखा भाई ने किया। भीखा भाई स्वतंत्रता सेनानी गौरीशंकर उपाध्याय और रामशरण जोशी से भी प्रभावित थे। उन्होंने उन स्वतंत्रता सेनानियों की स्मृति में स्वाधीनता भवन बनवाए जाने के साथ जीवनियां लिखवाए जाने का आग्रह किया।[15] भवनों के लिए सरकार से धनराशि प्राप्त नहीं हो सकी, लेकिन उन पर मोनोग्राफ लिखवाए गए।

राजस्थान उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश दिनकरलाल मेहता ने बागड़ के स्वतंत्रता

सेनानियों पर सामूहिक रूप से पुस्तक प्रकाशित करने का आग्रह किया। उनमें बांसवाड़ा के स्वतंत्रता सेनानी दूलजी भावसार का महत्वपूर्ण योगदान था। 1944 में बांसवाड़ा में प्रजामंडल की स्थापना हुई, उसके भावसार अध्यक्ष थे। प्रजामंडल के कार्यों में उन्हें भूपेंद्र त्रिवेदी, चिमनलाल मालोत, बाबा लक्ष्मणदास, मणिशंकर आदि का सहयोग प्राप्त हुआ। भावसार गुजरात से, त्रिवेदी बम्बई से और भालोत तथा बाबा बांसवाड़ा से संग्राम का संचालन करते थे। 1942 में इन सभी को अलग-अलग स्थानों से गिरफ्तार कर लिया गया। भावसार की पत्नी विजया बेन और त्रिवेदी की पत्नी शकुंतला बेन महिलाओं की ओर से लड़े गए स्वतंत्रता संग्राम में अग्रणी थीं। विजया बेन ने 1945-46 में बांसवाड़ा महिला मंडल की स्थापना की। ये दोनों महिला नेत्रियां तिरंगा हाथ में लिए घोड़े पर बैठकर जुलूसों में शामिल होती थीं।[16] इनकी जीवनी लिखने का काम बहुत मुश्किल भरा था। जिस जमाने में ये आंदोलनकारी सक्रिय थे, उस समय का इतिहास मिलना कठिन था। इसके बावजूद इन स्वतंत्रता सेनानियों के महत्वपूर्ण कार्यों को इतिहास के पन्नों पर लाया गया।

मारवाड़ विधानसभा के अध्यक्ष और महामंत्री के रूप में स्वतंत्रता सेनानी नृसिंह कछवाहा ने किसानों में जागीरदारी जुल्मों से लड़ने के लिए जागृति पैदा की थी। उन्होंने जोधपुर में भूमि सुधार कानून लागू करवाने के लिए संघर्ष किया। डाबड़ा किसान आंदोलन के वे प्रणेता थे और किसानों के सभी वर्गों के नेता होने के कारण उनको राजस्थान राज्य के प्रथम मंत्रिमंडल में किसान प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित किया गया था। सामाजिक कार्यों के लिए विशेष पहचान रखने वाले पूर्व आईएएस सत्यनारायण सिंह ने कछवाहा की जीवनी प्रकाशित करवाए जाने का आग्रह किया।[17] कछवाहा की जीवनी से अनेक अज्ञात पहलुओं की जानकारी मिली। उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधीश रहे सुरेंद्रनाथ भार्गव ने अपने पिता मुकुटबिहारीलाल भार्गव का स्मरण करवाया।[18] भार्गव का स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान था। इसमें उन्होंने नेत्रज्योति तक खो दी, लेकिन हिम्मत नहीं हारी और देश सेवा में लगे रहे। वे संविधान सभा के सदस्य रहे और केंद्रीय लेजिस्लेटिव असेंबली, प्रोविजनल पार्लियामेंट सहित लोकसभा के तीन बार चुनाव जीते। नवलकिशोर को यह सुझाव उपयुक्त लगा क्योंकि आने वाली पीढ़ियों के लिए भार्गव का योगदान प्रेरणादायक था। धौलपुर के स्वतंत्रता सेनानी जगदीशप्रसाद गुप्त ने जौहरीलाल इंदु के योगदान को रेखांकित किया। जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष दुर्गादत्त शास्त्री और एडवोकेट महेशकुमार भार्गव ने भी धौलपुर के स्वतंत्रता सेनानियों की संघर्ष गाथा सामने लाने का अनुरोध किया। नवलकिशोर ने धौलपुर के स्वतंत्रता सेनानियों की संघर्षपूर्ण भूमिका भी शामिल करवाई।

लोगों से सुझाव लेने के लिए रखे गए खुलेपन ने कई बार पेचीदगी भी बढ़ाई। ऐसे भी सुझाव आ रहे थे, जिनके पीछे राजनीतिक महत्वाकांक्षा या व्यक्तिगत एजेंडा था। वागड़ के एक नेता को स्वतंत्रता सेनानी के रूप में प्रतिष्ठित करवाने के लिए कई सिफारिशें आईं। राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर पदारूढ़ नेताओं ने इसके लिए नवलकिशोर को पत्र लिखे, लेकिन उन्होंने प्राप्त पांडुलिपि प्रकाशित किए जाने योग्य नहीं होने के कारण इनकार कर दिया। इस

दौरान ऐसे कथित शिक्षाविद् भी जीवनी लेखन के लिए आगे आए, जो जयनारायण व्यास को जयशंकर व्यास लिख रहे थे। स्वाभाविक था कि ऐसे लोगों को कोई महत्व नहीं मिला।

यह सूचना मिली कि राजस्थान राज्य अभिलेखागार विभाग में मौखिक इतिहास कार्य परियोजना के अतंर्गत स्वतंत्रता सेनानियों के संस्मरण संकलित करके प्रकाशन के लिए पड़े हुए हैं। नवलकिशोर ने ऐसी सभी सामग्रियों को मंगवाकर अवलोकन किया और प्राथमिकता से प्रकाशन की स्वीकृति प्रदान की। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान गाए जाने वाले देशभक्तिपूर्ण गीतों के ऑडियो-वीडयो कैसेट और पुस्तक 'स्वतंत्रता की गीतांजलि' का प्रकाशन किया गया। इसका संपादन वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. मनोहर प्रभाकर ने किया। शिवचरण माथुर के सामाजिक नीति शोध संस्थान ने पुस्तक तैयार की, जिसका स्वर्ण जयंती प्रकाशन समिति की ओर से भुगतान किया गया। पुस्तकों के मूल्य निर्धारण के लिए भी बैठक आयोजित की गई। यह तय किया गया कि वितरकों को दी जाने वाली 20 प्रतिशत छूट जोड़ते हुए संभव लागत मूल पर ही पुस्तकों की कीमत निर्धारित की जाए। उन्हें ऐसे मूल्य पर बिक्री के लिए दिया जाए, जिसमें लागत मूल्य पर ही खरीदकर पढ़ा जा सके।[19]

राजस्थान के इतिहास में अज्ञात रहे अध्यायों को उजागर करने के लिए व्यापक शोध और बड़ी टीम की जरूरत थी, लेकिन सरकार द्वारा निर्धारित बजट एक बड़ा व्यवधान बन रहा था। लेखकों को पारिश्रमिक प्राप्त करने में भी दिक्कतें आईं, लेकिन नवलकिशोर ने दृढ़तापूर्वक ऐसी समस्याओं को हल करवाया। अकादमी को निर्देश दिए गए कि वह समिति की राशि का संरक्षक है और अनावश्यक रूप से बार-बार आपत्ति नहीं की जानी चाहिए। एक बार कॉलेज शिक्षा विभाग ने हिंदी ग्रंथ अकादमी को पत्र लिखकर स्वर्ण जयंती मद में बची हुई राशि को वापस जमा करवाने तक के लिए कह दिया। नवलकिशोर ने इस पर कड़ी आपत्ति की। कॉलेज शिक्षा विभाग के निदेशक को लिखा गया कि जब समिति स्वविवेक और सर्वसम्मति से राज्य हित में प्रकाशन कार्य निरंतर करती आ रही है तो शेष राशि को वापस जमा करवाने के लिए कहना अवांछनीय और अनधिकार चेष्टा है। उन्हें निर्देशित किया गया कि भविष्य में कोई पत्राचार नहीं करें।[20]

स्वर्ण जयंती समारोह समति के द्वारा राज्य स्तर पर विभिन्न सांस्कृतिक संध्याओं, ऐतिहासिक इमारतों पर प्रकाश की व्यवस्था, कवि सम्मेलन-मुशायरे और राजस्थान के विकास के बारे में वर्तमान तथा भविष्य को दर्शाते हुए आजादी से जुड़े ऐतिहासिक स्थलों का सजीव मंचन किया गया। उस दौर में गाए जाने वाले गीतों और नारों का भी समावेश किया गया। समिति ने प्रयास किया कि राजस्थान के निवासियों को गौरवमय अतीत से जोड़ा जाए। जिला स्तर पर भी समिति के द्वारा सक्रिय भूमिका निभाई गई। जिला स्तर पर राजस्थान के इतिहास एवं विकास के बारे में प्रदर्शनियों का आयोजन किया गया। स्कूलों-कॉलेजों में राजस्थान के इतिहास पर गोष्ठियों और प्रभात फेरियों का आयोजन किया गया। जयपुर के बिड़ला ऑडिटोरियम में राजस्थान के स्वतंत्रता सेनानियों के एक साथ उपस्थित होने से स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास जीवंत हो गया। स्वतंत्रता सेनानी जीवन के आखिरी दौर में भी

देशभक्ति के भावों से भरे हुए थे। वे वर्तमान और भविष्य को अपने अनुभवों की धरोहर देना चाह रहे थे।

समिति की बैठक में यह भी निर्णय किया गया कि स्वतंत्रता सेनानियों के नाम पर भवनों, स्कूलों, रास्तों, चौराहों, अस्पतालों आदि के नाम रखे जाएं। इनके लिए सामान्य प्रशासन विभाग के मंत्री डॉ. बी.डी. कल्ला की अध्यक्षता में उप समिति का गठन किया गया।

राजस्थान के स्वर्ण जयंती वर्ष के कार्यक्रमों की शृंखला में 23-24 सितम्बर, 2000 को अंतरराष्ट्रीय राजस्थानी सम्मेलन आयोजित किया गया। राजस्थान में यह अनूठा सम्मेलन था, जिसमें राजस्थान की धरती से जुड़े महत्वपूर्ण व्यक्तियों को एक मंच पर एकत्रित किया गया। ये वो लोग थे, जो राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ट योगदान कर रहे थे। इस सम्मेलन के परिणामस्वरूप अनेक प्रमुख राजस्थानी अपनी माटी से जुड़े और राजस्थान के विकास के लिए अपना जुड़ाव महसूस किया। आगे चलकर इनमें से कुछ उद्यमियों ने राजस्थान में उच्चस्तरीय संस्थानों के निर्माण में योगदान किया। सम्मेलन के उद्घाटन के अवसर पर नवलकिशोर ने अपने उद्बोधन में कहा:

> देश-विदेश से पधारे हमारे प्यारे भाइयो और बहनो! अभी जब मैं आपसे मुखातिब हूं तो मेरे मस्तिष्क में भावनाओं का एक सैलाब उमड़ रहा है। हम लोग जो राजनीति में रहते हैं, साधारणतया बहुत जज्बाती नहीं होते। लेकिन हमारे जीवन में भी कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं, जब मन इतना आंदोलित और अभिभूत हो जाता है कि अपने भावों को प्रकट करना कठिन हो जाता है। ये भी कुछ ऐसे ही क्षण हैं। देश के विभिन्न भागों और समुद्र पार से मातृभूमि के ममत्व से खिंचे आए आप सब भाई-बहनों को आज यहां अपने मध्य पाकर हर्ष और आनंद की जो अनुभूति मुझे हो रही है, उसे प्रकट करने के लिए शब्द और लिपि का लिबास भी छोटा पड़ने लगता है। मैं आप सब का अभिवादन और अभिनंदन तहेदिल से करता हूं। बारंबार स्वागत करता हूं। आप चाहे कलकत्ता में रह रहे हों अथवा कनाडा में, बिहार में निवास कर रहे हों अथवा बोस्टन में, आपका ठिकाना नागपुर में हो चाहे न्यूयॉर्क में; राजस्थान की जिस सौंधी मिट्टी में आपने या आपके वंशधरों ने जन्म लिया है, उसकी मीठी यादें आपके जहन में अवश्य मंडराती होंगी। राजस्थान की गौरवपूर्ण ऐतिहासिक थाती, उसकी विरासत, उसकी धरोहर में आप सब सहभागी हैं। पुरखों के पुण्यों ने आप सबको उन बुलंदियों तक पहुंचाया है, जहां अभी आप विद्यमान हैं। भक्ति और शक्ति के प्रदेश राजस्थान को आप कैसे भूल सकते हैं क्योंकि आप राणा प्रताप, राणा सांगा और दुर्गादास सरीखे वीरों; दादू, मीरा और सुंदरदास सरीखे संतों; माघ, बिहारी और सूर्यमल्ल मिश्रण जैसे कवियों की सरनाम धरती के बेटे हैं। वैसे कहा भी गया है, यह भूमि है उन सतियों और जुझारों की, धन-कुबेरों-लक्ष्मीपतियों की, पंडितों-तपस्वियों की तथा उन करोड़ों

भूमिपुत्रों की, जिन्होंने इस माटी को चंदन का स्तर दिया और सुनहरी बालू के कण-कण को ओज, ऊर्जा और त्याग का प्रतीक बनाया। परिभाषा की परिवर्तनशील प्रकृति से हर युग अपना नया अर्थ ग्रहण करता है। 'राजस्थान' या 'राज्यस्थान' शब्द भले कभी राजधानी के रूप में प्रयुक्त होता होगा; अब तो राजस्थान के नए महाभारत के प्रणेता जेम्स टॉड ने अपने विश्व प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ 'एनाल्स एंड एंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान' में इसे प्रदेशवाची बनाकर प्रस्तुत किया है। हमें यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि एक राजनीतिक इकाई के रूप में राजस्थान भले ही आधी सदी पूर्व अस्तित्व में आया हो, सांस्कृतिक दृष्टि से इसकी एक खास पहचान सदियों से कायम है। हमारा यह प्रदेश इतिहास के अनेक दौर और उतार-चढ़ावों से गुजरा है। आजादी से पूर्व अंग्रेजी हुकूमत, सामंती शासन और जागीरदारी प्रथा के तिहरे कुचक्र में यहां के लोगों ने शोषण, उत्पीड़न और दमन का निरंतर सामना किया, लेकिन स्वाधीनता के सूर्योदय के बाद विभिन्न संघर्षों से गुजरते हुए पिछली आधी सदी में उसने पुनर्निर्माण की एक साहसिक जय-यात्रा तय की है। क्रांतिकारी भूमि सुधार, कृषि उत्पादन के नए कीर्तिमान, श्वेत क्रांति, इंदिरा गांधी नहर का निर्माण और शिक्षा, स्वास्थ्य तथा पेयजल जैसी सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में सफलता के जो सोपान राजस्थान ने तय किए हैं, उन्होंने राजस्थान का इतिहास ही नहीं बल्कि भूगोल भी बदलकर रख दिया है। कई बार दृश्य के बहुत निकट होने के कारण हमारे इर्द-गिर्द जो घटित हो रहा होता है, उसकी अहमियत को हम महसूस नहीं कर पाते; दूर का एक तटस्थ द्रष्टा ही उसकी महिमा को जान पाता है। इस प्रदेश में पिछले सालों में जो कुछ हुआ है, उसको अगर पचास साल पहले गया आदमी आकर देखे तो वह भी एक बार विस्मित ही होगा। इस सारे प्रयास में राजस्थान की जनता और राजस्थान के भाइयों और बहनों का, चाहे वे इस देश की धरती पर रहते हों चाहे बाहर, बड़ा योगदान रहा है। पचास वर्षों के समय का इतिहास एक गौरवमयी इतिहास है। अब हमारी मनोकामना इस प्रदेश को देश के अग्रिम पंक्ति के राज्यों में ले जाने की है। इसमें प्रदेश के ही नहीं, बल्कि इस प्रदेश की माटी से जुड़े सभी लोगों को इस काम को सहयोग से आगे बढ़ाने की जरूरत है। इसके तहत अनेकानेक समारोहों और आयोजनों की शृंखला में आज का यह अंतरराष्ट्रीय राजस्थानी सम्मेलन आयोजित किया गया है।

स्वर्ण जयंती समारोह के माध्यम से हमने जहां एक ओर राजस्थान की पचास वर्ष की विकास यात्रा का दिग्दर्शन करवाने का प्रयास किया है; वहीं दूसरी ओर, राज्य के गौरवमयी इतिहास, बहुरंगी संस्कृति और आजादी के लिए हुए जन-जागरण आंदोलनों एवं शहीदों के जीवन वृत्तांत से आज की पीढ़ी को अवगत कराने का प्रयास भी जारी है। राजस्थान के गौरवमय अतीत के साथ राजस्थान के जागरण

से लेकर राजस्थान के निर्माण और उसके विकास की गाथा को भी पुस्तक के माध्यम से प्रकाशित किया जा रहा है। साथ ही, राजस्थान के निर्माण में जिन महानुभावों और देवियों का योगदान रहा है, उनकी स्मृति को स्थाई बनाने के लिए राजकीय भवनों का, रास्तों-चौराहों का नामकरण करने का कार्य भी हाथ में लिया गया है। स्वर्ण जयंती वर्ष के दौरान राजस्थान की कला और संस्कृति के प्रोत्साहन, लुप्त कलाओं के संवर्धन और प्रलेखन तथा ऐतिहासिक स्मारकों के जीर्णोद्धार और संरक्षण के लिए सांस्कृतिक कार्यक्रम, वर्कशॉप, सेमीनार आदि का आयोजन किया गया। संग्रहालय भवनों के संरक्षण, पुनरुद्धार और मरम्मत कार्यों की क्रियान्विति की गई, जिसमें केंद्रीय संग्रहालय अल्बर्ट हॉल, जयपुर के विशेष संरक्षण, रख-रखाव और नवीनीकरण का कार्य भी किया गया। आप में से अनेक बंधु ऐसे होंगे, जो यहां के गांव, ढाणी, कस्बों में जन्म लेकर यहां की मिट्टी में खेलकूद कर बड़े हुए हैं। आपने देश-विदेश में अपनी मेहनत, निष्ठा, लगन और प्रतिभा तथा श्रमशीलता से न केवल अपने उद्यम को ही बढ़ाया है, बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में सर्वोच्च शिखर का स्पर्श भी किया है। हमें इस बात पर गर्व है कि भारत की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ आधार देने में राजस्थान के जन्मे लोगों का महत्वपूर्ण योगदान है। कला, साहित्य, संस्कृति, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी जैसे सामाजिक विकास के विभिन्न क्षेत्रों में राजस्थानी बंधुओं ने देश और विदेश में अपनी विलक्षण प्रतिभा को उजागर किया है। वे सभी हमारे सम्मान के पात्र हैं। हम उन पर गर्व करते हैं। मैं इस अवसर पर आपसे एक ही निवेदन करना चाहता हूं कि राजस्थान के जन-जीवन में खुशहाली लाने और सामान्य जन को सुखी तथा समृद्ध बनाने की दिशा में अभी हमें एक लंबी यात्रा तय करनी है। राजस्थान में गरीबी और बेरोजगारी के खिलाफ एक जंग जारी है। गरीबी और सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन के विरुद्ध लड़ी जा रही इस लड़ाई में आप लोगों की सहभागिता जरूरी है। शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में बहुत कुछ हुआ है, लेकिन अभी बहुत कुछ होना शेष भी है। राजस्थान में औद्योगिकीकरण के लिए अब एक आधारभूत ढांचा तैयार हो चुका है। हमारे प्रवासी उद्योगपति और नव उद्यमी राज्य में औद्योगीकरण को बहुत बढ़ावा दे सकते हैं। गरीबी उन्मूलन के लिए वे गांवों को गोद ले सकते हैं। शिक्षा के उच्चतर संस्थान खोल सकते हैं। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता लाने के लिए आदर्श पाठशालाओं की स्थापना कर सकते हैं। मेधावी छात्र-छात्राओं को छात्रवृत्तियां देकर उन्हें उच्चतर वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा के लिए वहां बुला सकते हैं। ज्ञान-विज्ञान और कला-साहित्य के क्षेत्र में जो विभूतियां यहां पधारी हैं, उनसे मेरा एक विशेष अनुरोध है। आज हम एक ऐसे दौर से गुजर रहे हैं, जब हमारे मानवीय और सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन हो रहा है। धर्म और संप्रदाय के नाम पर जगह-जगह मनोमालिन्य दिखाई दे रहा है। समाज विरोधी

ताकतें सिर उठा रही हैं। ऐसे में हमारी राजस्थानी प्रतिभाएं वैज्ञानिक मानसिकता का विकास करने और सांप्रदायिक सद्‌भाव तथा मानवीय बंधुत्व भाव के प्रसार में बहुत बड़ा योगदान कर सकती हैं। हमारे कलाकार अपनी कृतियों के जरिए मनुष्य-मनुष्य के बीच प्रेम और भ्रातृत्व भावना की वृद्धि में बहुत सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

आप सब भाई-बहन जो अपनी अनेक व्यस्तताओं के बावजूद यात्रा के अनेक कष्ट उठाकर भी यहां पधारे हैं, मैं इस कृपा, उदारता और सद्‌भावना के लिए अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। मैं अपने अंतर्मन से यह कहना चाहता हूं कि आप सबके यहां आगमन से हमारे भाईचारे को एक नई ताकत मिली है। आपके साथ इस अवसर पर जो विचार-विमर्श होगा, हमें उससे निश्चय ही एक नई दिशा, एक नई दृष्टि मिलेगी। आपके सहयोग से राजस्थान समृद्धि के नए क्षितिजों का स्पर्श करेगा, इसमें कोई संशय नहीं। हमारी मैत्री, बंधुत्व भाव और ममत्व के बंधन दृढ़ से दृढ़तर हों, यही मेरी कामना है। आगे आने वाले वर्षों में आपका सहयोग राजस्थान के नव निर्माण में निर्णायक सिद्ध हो, तभी यह सम्मेलन अपनी सार्थकता सिद्ध कर पाएगा। इन्हीं शब्दों के साथ एक बार पुनः मैं आप सबका अभिनंदन करता हूं और आपको अपनी शुभकामनाएं देता हूं।[21]

धन्यवाद! जय हिंद!

नवलकिशोर का उद्‌बोधन जितना मार्मिक था, सम्मेलन में शामिल हुए लोगों के रवैए में उतनी उत्सुकता दिखाई नहीं दी। सम्मेलन के दौरान बार-बार उभरकर यह सामने आया कि जितने भी बड़े पूंजीपति वहां पहुंचे, राजस्थान के प्रति उनकी भावना दबी हुई थी। वे सिर्फ सीख देते रहे और यह अहसास दिया कि यहां कुछ करने में लाभ दिखाई देगा, तभी वे यहां कुछ करना चाहेंगे। ये बड़े उद्योगपति राजस्थानी सेठों की परंपरागत उदारवृत्ति और दानवीरता भुला चुके थे। मुख्यमंत्री गहलोत सहित राजस्थान के नेता दो दिन तक इन्हें भले 'भामाशाह' कहते रहे, लेकिन ये लाभ की बात ही करते रहे। सम्मेलन में आए ज्यादातर मध्यम दर्जे के व्यवसायी-प्रतिनिधि जरूर राजस्थान के प्रति भावुक थे और यहां के लिए कुछ करना भी चाहते थे, लेकिन उनकी सीमाएं थीं। गहलोत और नवलकिशोर ने बार-बार यह अहसास दिया कि अंतरराष्ट्रीय राजस्थानी सम्मेलन पूंजी निवेश के लिए नहीं है। हालांकि सम्मेलन के सत्रों की दिशा यही थी, विचार-विमर्श का विषय यही था। चूंकि बड़े उद्योगपतियों की इस विषय में कोई रुचि नहीं थी और सरकार को लगता था कि कहने से कोई फायदा नहीं है, इसलिए दो दिन तक पर्दा पड़ा रहा। आतिथ्य-सत्कार में सरकार ने कोई कसर नहीं छोड़ी, उसकी वाहवाही अधिकतर राजस्थानी प्रतिनिधि करते रहे। बड़े पूंजीपति बार-बार इस बात पर जोर देते रहे कि उनके लिए नियम-कायदे कानून कम-से-कम हों, अधिकारियों की मनमर्जी पर रोक लगे और उन्हें नीतियों के नाम पर इधर-उधर चक्कर नहीं लगाना पड़े।[22]

नवलकिशोर के संयोजकत्व में स्वर्ण जयंती समारोह समिति ने राजस्थान के इतिहास के अनेक अज्ञात अध्यायों को समेटे वृहद ग्रंथमाला तैयार की। यह ग्रंथमाला आठ खंडों में प्रकाशित हुई। इसमें 432 व्यक्तित्वों की जीवनगाथा का समावेश था। लगभग 6 दर्जन पुस्तक-पुस्तिकाओं का प्रकाशन हुआ। इतना अधिक करने के बावजूद नवलकिशोर संतुष्ट नहीं थे। उनके मन में सबसे ज्यादा दर्द इस बात को लेकर था कि स्वर्ण जयंती के लिए स्वीकृति धनराशि दो करोड़ रुपए में से मुश्किल से एक करोड़ रुपए की धनराशि ही मिल पाई। इसके कारण अनेक कार्यक्रमों की स्वीकृति के बावजूद क्रियान्वयन नहीं हो सका। स्वतंत्रता सेनानियों के नाम पर सरकारी भवनों के नामकरण लगातार किए जाते रहे। धन के अभाव में स्वतंत्रता सेनानियों की याद में भवन निर्माण और प्रतिमाएं लगाने का कार्य नहीं किया जा सका। लोकसभा चुनाव, पंचायती राज चुनाव, उपचुनावों और कर्मचारियों की राज्यव्यापी हड़ताल ने भी विभिन्न समारोहों को प्रभावित किया। चुनाव में निर्देशित आचार संहिता के कारण सरकारी स्तर पर कार्यक्रम नहीं किए जा सकते थे। नवलकिशोर चाहते थे कि विद्यालयों में स्वतंत्रता सेनानियों की भूमिका से जुड़ा पाठ्यक्रम लागू हो, लेकिन यह उनके स्तर पर संभव नहीं था। यह कार्यवाही राज्य सरकार के द्वारा ही हो सकती थी, स्वर्ण जयंती समारोह समिति के कार्यों से इसका संबंध नहीं था।[23]

पूर्व राष्ट्रपति आर. वेंकटरमन को इस ऐतिहासिक कार्य के बारे में पता चला तो उन्होंने सार्वजनिक रूप से टिप्पणी की, 'स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ा इतना महत्वपूर्ण काम राजस्थान के अलावा अन्य किसी राज्य में नहीं हुआ। राजस्थान के इतिहास के विस्मृत हो रहे अध्यायों से नई पीढ़ी को अवगत करवाने का यह कार्य अद्भुत है।'[24]

संदर्भ सूची

1. विशिष्ट शासन सचिव का आदेश, संख्या प. 113 मं.मं./99, मंत्रिमंडल सचिवालय, राजस्थान सरकार
2. राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति की बैठक कार्यवाही, 26 मार्च, 1999
3. वही
4. वही
5. नवलकिशोर शर्मा का दुर्गादत्त शास्त्री को पत्र, 17 सितम्बर, 2000
6. वही
7. शिवचरण माथुर का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, 29 जुलाई, 1999
8. राजस्थान स्वर्ण जयंती प्रकाशन उप समिति का कार्यवाही विवरण, 22 नवम्बर, 2000
9. राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी के निदेशक का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, 30 सितम्बर, 2003
10. वही
11. हेमंत शेष का जगमोहन माथुर को पत्र, 23 नवम्बर, 2000
12. राजस्थान स्वर्ण जयंती प्रकाशन उप समिति का कार्यवाही विवरण, 12 अप्रेल, 2001
13. वही, 30 सितम्बर, 2001
14. नवलकिशोर शर्मा का नटवर सिंह को पत्र, 25 मार्च, 2003
15. भीखा भाई का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, 7 अप्रेल, 2000
16. दिनकरलाल मेहता का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, जून, 2001
17. सत्यनारायण सिंह का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, 3 जुलाई, 2000
18. सुरेंद्रनाथ भार्गव का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, 8 जून, 2000
19. स्वर्ण जयंती प्रकाशन उप समिति की बैठक कार्यवाही, 11 मई, 2001
20. राजस्थान स्वर्ण जयंती प्रकाशन उप समिति का कार्यवाही विवरण, 22 नवम्बर, 2002
21. नवलकिशोर शर्मा: अंतरराष्ट्रीय राजस्थानी सम्मेलन, 23–24 सितम्बर, 2000
22. गोपाल शर्मा: जयपुर महानगर टाइम्स, 25 सितम्बर, 2000
23. नवलकिशोर शर्मा का स्वतंत्रता सेनानी तारकप्रसाद व्यास को पत्र, 10 मार्च, 2000
24. सीताराम झालानी: नवलकिशोर शर्मा के संस्मरण

महारथी का शक्ति प्रदर्शन

मुझे इस बात का गर्व है कि मैं कांग्रेस पार्टी में पं. नवलकिशोर शर्मा का सहयोगी रहा। वे कांग्रेस के प्रति पूरी तरह समर्पित थे। वे कांग्रेस के जिस पद पर भी रहे, उन्होंने पार्टी के साधारण कार्यकर्ता की बात सुनने की कोशिश की। उन्होंने आम आदमी की समस्याओं को कांग्रेस की सोच और नीतियों में महत्व दिलवाया।

–डॉ. मनमोहन सिंह

विधानसभा के कार्यकाल के दौरान नवलकिशोर शर्मा ने खुद को दिल्ली की राजनीति से पूरी तरह अलग कर लिया। राजस्थान के राजनीतिक हालात से भी वे संतुष्ट नहीं थे, लेकिन अनुशासन में बंधे रहे। राज्य की स्वर्ण जयंती के अवसर पर ऐतिहासिक अध्यायों के संकलन के दायित्व ने उन्हें व्यस्त रखा और वे जैसे अपनी तरुणाई के दिनों का पुनर्स्मरण कर रहे थे। उन्होंने मौन को साधना शुरू कर दिया था। चेहरों का सच अच्छी तरह समझते हुए भी प्रतिक्रिया व्यक्त करना उनके लिए जरूरी नहीं रह गया। लेकिन उनका मौन अलग तरह से मुखर था। उनकी चुप्पी में मायूसी नहीं थी, बल्कि अनुभवों की विशाल पूंजी समेटे व्यक्तित्व का चिंतन नए आयाम ले रहा था। जनप्रतिनिधित्व की राजनीति से अलग होकर राज्यसभा में चले जाने का विचार भी उनके मन में था, लेकिन 21वीं सदी की राजनीति में बदलते मानकों के बीच अपनी पीढ़ी के नेताओं के साथ हो रहे व्यवहार को भी वे महसूस कर रहे थे।

उस दौरान सोनिया गांधी तेजी से राजनीति की बारीकियों में पारंगत होती हुई राष्ट्रीय नेता के स्वरूप में सामने आईं। अपनी बात सार्वजनिक रूप से कहने में आड़े आने वाला संकोच खत्म हो रहा था; वे अपने विरोधियों पर खुलकर प्रहार करने लगी थीं। राहुल और प्रियंका की सक्रियता भी बढ़ रही थी। सोनिया के नेतृत्व में कांग्रेस के दृष्टिकोण में एक महत्वपूर्ण बदलाव यह आ रहा था कि संगठन को सरकार पर वरीयता दी जाने लगी। सोनिया का कहना था, ‘राजनीतिक दल सरकारों का गठन करते हैं, सरकारें उनका एजेंडा तय नहीं करतीं। हमें इस आधारभूत सच्चाई का सदैव सम्मान करना चाहिए। यह संगठन ही है, जो जनता और

सरकार के बीच सेतु की भूमिका निभाता है। कांग्रेस अकेली पार्टी है, जो भारत की विविधता का संपूर्ण चित्रण करती है; जो भारत की अनेकता को उसके पूरे वैभव के साथ प्रतिबिंबित करती है; जिसका संबंध प्रत्येक भारतीय से है। कांग्रेस के कार्यकर्ता देश के बारे में सोचें और पार्टी के लिए काम करें।'[1]

जून, 2001 में सोनिया अमेरिका के दौरे पर गईं। उनके साथ मनमोहन सिंह और नटवर सिंह भी थे। वहां पत्रकारों ने सोनिया से अगले चुनाव में कांग्रेस के प्रधानमंत्री उम्मीदवार के बारे में सवाल किया। सोनिया ने जवाब दिया कि उनकी पार्टी में प्रधानमंत्री पद के कई दावेदार हैं और कुछ तो उनके साथ आए भी हैं। उनके इस जवाब को भारतीय मीडिया ने अधिक तवज्जो नहीं दी। लेकिन 'महानगर' के संपादकीय पृष्ठ पर टिप्पणी थी, 'निश्चित तौर पर सोनिया का इशारा मनमोहन सिंह की ओर होगा, लेकिन 'कुछ' शब्द से नटवर सिंह भी फूले नहीं समा रहे होंगे। सोनिया को लग गया है कि कांग्रेस में प्रधानमंत्री पद के एकमेव दावेदार के रूप में अगर वे खड़ी रहती हैं तो इससे उन्हें अधिक जनसमर्थन हासिल नहीं होने वाला है। यह स्वीकारोक्ति अगर उन्होंने मन से की होगी तो कांग्रेस एक बार फिर वाजपेयी सरकार से टक्कर लेने की स्थिति में आ सकती है।'[2]

लेकिन राजस्थान में मुख्यमंत्री अशोक गहलोत का सफर आसान नहीं रहा। मुख्यमंत्री बनने के साथ ही उन्हें दलीय और जातीय विरोध से कड़ा मुकाबला करना पड़ रहा था। विधानसभा चुनाव नजदीक आने के साथ गहलोत पर दबाव बढ़ने लगा। आलाकमान के समर्थन और विधायकों में बहुमत होने से वे मुख्यमंत्री जरूर बने रहे, लेकिन विपक्ष में बैठी भाजपा से बड़ी चुनौती उनकी अपनी पार्टी के पुराने नेता थे, जिन्होंने किसी खास मौके की उम्मीद नहीं होते हुए भी गहलोत के मार्ग में कांटे बिछाए रखे। गहलोत अपनी पसंद से प्रदेश अध्यक्ष नहीं बनवा सके। हालांकि कांग्रेस आलाकमान से उनके बेहतर संबंध थे और राजस्थान में भी उनके पास विधायकों का बड़ा आधार था, इसके बावजूद गिरिजा व्यास को अध्यक्ष मनोनीत कर दिया गया। व्यास को नवलकिशोर का समर्थन प्राप्त था। बड़ी बात यह थी कि व्यास को नियुक्त करने से पहले आलाकमान ने गहलोत की सहमति नहीं ली, बल्कि सूचना दी। गहलोत आलाकमान के भाव को तब भी नहीं समझ पाए, जब जयपुर आईं सोनिया ने अल्बर्ट हॉल की रैली में जाते समय व्यास की मौजूदगी सुनिश्चित की, जबकि यह अध्यक्ष बनने से पहले की घटना थी और गहलोत बगल में चल रहे थे।

आगे चलकर मनोनीत अध्यक्ष व्यास का उस पद पर निर्वाचित होना निश्चित हो गया क्योंकि गहलोत ने भी उनके पक्ष में मानस व्यक्त कर दिया। इससे प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष पद को लेकर विवाद समाप्त हो गया। बीच में एक बार जरूर ऐसा माहौल बना कि गहलोत के समर्थन से महेश जोशी को अध्यक्ष बना दिया जाए, लेकिन व्यास समर्थक नवलकिशोर वगैरह वरिष्ठ नेताओं ने वह स्थिति नहीं आने दी। उसी दौरान गहलोत ने संकेत दिया कि वे सरकार चलाने वाले मुखिया के रूप में 'पार्टी' बनने को कांग्रेस के खिलाफ मानते हैं।[3] व्यास के साथ न केवल जनार्दनसिंह गहलोत को प्रदेश उपाध्यक्ष बनाया गया; बल्कि नवलकिशोर, शीशराम

ओला, नटवर सिंह उनके पूरी तरह साथ थे, जो गहलोत विरोधी माने जाते थे। उस दौरान जयपुर में राज्यस्तरीय पंचायतीराज सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें सोनिया भी शामिल हुईं। उस सम्मेलन में 90 प्रतिशत वक्ताओं ने गहलोत सरकार के खिलाफ बोला।[4] हालांकि उस सम्मेलन में अपनी बात कहने के 'लोकतंत्र' का परिचय तो दिया गया, लेकिन मंत्रियों को नहीं बोलने देने की तानाशाही वृत्ति भी दिखाई दी। हो-हुल्लड़ करने वाले उदयपुर, चित्तौड़गढ़, सीकर और झुंझुनूं जिले के कतिपय कांग्रेसी थे, जो गहलोत विरोधी खेमे के थे।[5] सोनिया ने तत्काल कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। आगे चलकर सोनिया की राजनीतिक सचिव अंबिका सोनी को राजस्थान का प्रभार सौंपा गया।

यह लगातार महसूस हो रहा था कि गहलोत को पार्टी की ओर से 'फ्री हैंड' नहीं दिया जा रहा है। सरकार की घटती लोकप्रियता से पार्टी चिंतित थी। गहलोत के मुख्यमंत्री बनने से जाट नाराज थे; ब्राह्मणों में भी तीखी प्रतिक्रिया थी। आर्थिक मोर्चे पर भी सरकार विफल साबित हुई। चार वर्षों के कार्यकाल में राज्य सरकार को 15 हजार करोड़ रुपए का कर्ज लेना पड़ा। औद्योगिक मंदी के कारण हालात और बिगड़े।[6] पार्टी के भीतर भी गहलोत सरकार की आलोचना शुरू हो गई। प्रदेश कांग्रेस कमेटी के पदाधिकारी चेतावनी दे रहे थे कि वरिष्ठ नेताओं को नजरअंदाज किया जा रहा है और इसका नतीजा पार्टी को चुनाव में भुगतना पड़ेगा। कांग्रेस विधायक दल के महत्वपूर्ण नेता ने विधानसभा में सरकार की कार्यशैली की आलोचना की।[7] इन परिस्थितियों ने आलाकमान को गंभीर फैसले करने पर मजबूर किया।

उसी दौरान महाराष्ट्र में विलासराव देशमुख को हटाकर सुशील कुमार शिंदे को मुख्यमंत्री बनाए जाने से राजस्थान के असंतुष्ट नेताओं के मनसूबों को और ताकत मिली। नवलकिशोर, नटवर, माथुर, ओला और देवपुरा इनमें अग्रणी थे। इन नेताओं ने दिल्ली में गहलोत के खिलाफ मोर्चा खोलने की तैयारी शुरू की। सोनिया ने गहलोत को दिल्ली बुलाकर बात की। इसके कारण तत्काल गहलोत को हटाने* का विचार टल गया, लेकिन मंत्रिमंडल में व्यापक फेरबदल का फैसला हुआ।[8] इससे गहलोत पर दबाव बना और माधवसिंह दीवान, जनार्दनसिंह गहलोत जैसे उनके विरोधी हो चले विधायकों को भी मंत्री बनाया गया। दो उपमुख्यमंत्रियों की नियुक्ति और कुछ विरोधियों को मंत्रिमंडल में शामिल करने से गहलोत का संकट टल गया। इनमें एक उपमुख्यमंत्री कमला भी बनाई गईं। उसी दौरान प्रदेश कांग्रेस और राज्य सरकार की कार्यशैली की निगरानी के लिए अंबिका सोनी की अध्यक्षता में एक समन्वय समिति का गठन किया गया। राज्य में पार्टी की एकजुटतापूर्ण छवि दिखाने के लिए वरिष्ठ नेताओं को इस समिति से जोड़ा गया। नवलकिशोर भी समिति के सदस्य नियुक्त हुए।[9]

---

*एक स्थिति तो यह भी आई कि आलाकमान ने राजस्थान में नेतृत्व परिवर्तन का सोच लिया; वह किसी जाट नेता को मुख्यमंत्री बनाना चाहता था। इस संदर्भ में सोनिया ने गहलोत सरकार में मंत्री कमला को मिलने के लिए दिल्ली बुलाया। 5 जनवरी, 2003 की सुबह इस मुलाकात से कमला इतनी उत्साहित थीं कि वापस लौटते समय रास्ते में नेताओं से मिलने वाली बधाई को उल्लासित होकर स्वीकार किया।

सोनिया की दुविधा

मार्च, 2003 के अंतिम सप्ताह सोनिया गांधी ने दिल्ली में देश भर के ब्लॉक और जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्षों का सम्मेलन बुलाया। इसका उद्देश्य जमीनी हालात को समझकर उपयुक्त चुनावी रणनीति तैयार करना था। पार्टी के इतिहास में अपनी तरह का यह पहला सम्मेलन था। इसके समापन के बाद 30 मार्च को रामलीला मैदान में विशाल रैली का आयोजन हुआ। कांग्रेस ने इसे 'देश बचाओ रैली' का नाम दिया। वहां सोनिया को भावी प्रधानमंत्री के रूप में प्रस्तुत किया गया। राजस्थान के मुख्यमंत्री अशोक गहलोत, हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री वीरभद्र सिंह, मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह, महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री सुशील कुमार शिंदे और छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री अजीत जोगी ने सोनिया को अगला प्रधानमंत्री बनाने का अपना संकल्प दोहराया। सोनिया ने रैली में वाजपेयी सरकार पर जमकर प्रहार किया। उन्होंने कहा, 'वाजपेयी सरकार ने केवल एक क्षेत्र में ऐतिहासिक जीत दर्ज की है और वह है भ्रष्टाचार। इनका शासन सौदों पर चलता है। यह घोटालों की सरकार है, जिसके कारण लाखों लोगों की आमदनी में भारी गिरावट आ रही है। नौजवानों के हाथ खाली.. आम आदमी की जेब खाली.. गरीब का पेट खाली.. किसानों का खेत खाली!'[10]

सोनिया चुनावी समर में विरोधियों से मुकाबले के लिए कमर कस रही थीं; वहीं दूसरी तरफ, उन्हीं की पार्टी के कतिपय वरिष्ठ नेता बागी तेवर अपनाने लगे। अप्रेल, 2003 में विद्याचरण शुक्ल कांग्रेस पर अपनी नीतियों से विमुख होने का आरोप लगाते हुए शरद पवार की राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी में चले गए। इस कदम से उनके गृह राज्य छत्तीसगढ़ में राजनीतिक टकराव बढ़ने का रास्ता तैयार हो गया। शुक्ल तत्कालीन मुख्यमंत्री अजीत जोगी की नियुक्ति से नाराज थे, जिन्हें सोनिया ने चुना था। उसी दौरान केरल के चार बार मुख्यमंत्री रहे कांग्रेस नेता के. करुणाकरण विद्रोह पर उतर आए। उस समय उनके पुत्र के. मुरलीधरन प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष थे। करुणाकरण ने राज्यसभा चुनाव में पार्टी के आधिकारिक उम्मीदवार के सामने एक बागी उम्मीदवार को खड़ा कर दिया। हालांकि जीत पार्टी के उम्मीदवार को ही मिली, लेकिन करुणाकरण के लिए यह महत्वपूर्ण नहीं था। उनका कहना था, 'मेरा उद्देश्य जीतना नहीं, बल्कि अपनी बात साबित करना था। अब आलाकमान जो चाहे फैसला करे।'[11]

केरल में तब कांग्रेस के नेतृत्व वाले संयुक्त लोकतांत्रिक मोर्चा (यूडीएफ) की सरकार थी और ए.के. एंटनी मुख्यमंत्री के पद पर थे। करुणाकरण खुलेआम कह रहे थे कि कांग्रेस के 26 विधायक उनके समर्थक हैं और उनके निर्देश पर सरकार से समर्थन वापस लेने में परहेज नहीं करेंगे। यह एक गंभीर चेतावनी थी क्योंकि ऐसा होने पर 140 सदस्यों की विधानसभा में 40 संख्या बल वाले वाम लोकतांत्रिक मोर्चा (एलडीएफ) के लिए सत्ता में आने की राह खुल सकती थी। इन हालात को देखते हुए कांग्रेस आलाकमान करुणाकरण के विरुद्ध कार्रवाई करने को लेकर असमंजस की स्थिति में था। इस विषय पर चर्चा के लिए वरिष्ठ नेतागण पार्टी मुख्यालय में एकत्रित भी हुए, लेकिन वहां कोई ठोस फैसला नहीं हो सका। सीधे करुणाकरण से जवाब मांगने के बजाए उनके पुत्र (प्रदेश अध्यक्ष) से रिपोर्ट

तलब करने के निर्णय के साथ बैठक स्थगित कर दी गई। सोनिया की राजनीतिक सलाहकार और केरल की प्रभारी अंबिका सोनी ने मुरलीधरन को रिपोर्ट भेजने को कहा और उन्होंने बिना देरी किए पांच पन्नों की रिपोर्ट दिल्ली भेज दी।[12]

ब्राह्मण नेतृत्व पर प्रहार

चिंता दोहरी थी.. एक तरफ पार्टी की गुटबाजी, दूसरी तरफ सिमटते जनाधार की चुनौती। सोनिया गांधी से उस पार्टी का भविष्य बंध गया था, जिसके सितारे गर्दिश में थे। लोकसभा चुनाव एक कठिन मुकाबला होने जा रहा था। वाजपेयी प्रधानमंत्री के रूप में लोकप्रिय थे और सरकार के प्रति जनधारणा सकारात्मक थी। पहली बार स्थिर गैर-कांग्रेसी सरकार बनने से भाजपा के प्रति आकर्षण बढ़ रहा था। देश की सबसे बड़ी और पुरानी पार्टी की बागडोर संभाले सोनिया के लिए यह समझ पाना कठिन नहीं था कि भाजपा को एक बड़ा लाभ हिंदी भाषी क्षेत्र में खास तौर से ब्राह्मण मतदाताओं के रूप में मिल रहा था, जो कभी परंपरागत रूप से कांग्रेस के साथ हुआ करते थे।

आजादी के बाद पहली बार देश के 22 राज्यों के चुनाव हुए तो 13 राज्यों की कमान संभालने वाले मुख्यमंत्री ब्राह्मण थे। पहली लोकसभा में हर चौथा सांसद ब्राह्मण था। जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में बनी पहली केंद्र सरकार में सात ब्राह्मण थे। वे 29 प्रतिशत थे। पार्टी में ब्राह्मण नेताओं की सक्रियता को 'ब्राह्मण लॉबी' का नाम देकर एक साथ दबाया गया। इंदिरा गांधी के दौर में भी इन विषयों पर आलोचक मुखर थे, लेकिन वे सहमत नहीं थीं। वे ब्राह्मण नेताओं के प्रति सदाशय थीं और पार्टी में उनकी बहुलता को स्वाभाविक तथा न्यायोचित मानती थीं। वाशिंगटन यूनिवर्सिटी में राजनीति विज्ञान और अंतरराष्ट्रीय संबंधों के विशेषज्ञ प्रोफेसर रहे तथा भारतीय राजनीति के गंभीर विश्लेषक पॉल रिचर्ड ब्रास ने 26 मार्च, 1978 को इंदिरा का इंटरव्यू किया। उस समय केंद्र में जनता पार्टी की सरकार थी। इंटरव्यू में इंदिरा ने कहा:

> उत्तर प्रदेश के ब्राह्मण बहुत गरीब हैं। वे अमीर लोग नहीं हैं। किसी ब्राह्मण और अन्य जाति में कभी संघर्ष नहीं हुआ। हरिजनों को ब्राह्मणों द्वारा प्रताड़ित नहीं किया जाता है। वे पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जाटों द्वारा और अन्य हिस्सों में ठाकुरों द्वारा प्रताड़ित किए जाते हैं। संघर्ष यहां से शुरू होता है। ..आजादी की लड़ाई में मुख्य रूप से पीड़ा सहने वाले ब्राह्मण थे। राज्यसभा सदस्य तारकेश्वर पांडेय को बलिया से हटाया गया तो वे उन लोगों की सूची लेकर आए, जिनकी आजादी के आंदोलन के दौरान मृत्यु हुई थी। उनमें 99 प्रतिशत ब्राह्मण थे। ..अन्य जातियां तो अब आ रही हैं। दूसरे राज्यों में स्थिति अलग है, लेकिन विशेष रूप से उत्तर प्रदेश में ऐसा है। मैं बिहार के बारे में अधिक नहीं जानती। ..मैं जाति से पूरी तरह अनजान हूं। प्रधानमंत्री बनने के बाद ही मुझे पता चला कि कौन-से नाम ब्राह्मणों के होते हैं।

> अन्यथा मुझे पता भी नहीं था। ..(जातिगत तत्वों को मिटाने में) मैं सफल हुई हूं। दूसरे लोगों को शामिल करने वाली मैं ही थी। (कांग्रेस के) विभाजन के बाद पहली बार ऐसा हुआ कि अन्य पिछड़ा वर्गों का प्रतिनिधित्व किसी भी स्तर पर कहीं अधिक रहा; विधानसभा के सदस्य, लोकसभा के सदस्य आदि के रूप में।[13]

लेकिन कथित ब्राह्मण लॉबी का विरोध क्रमशः बढ़ता ही गया, जिसके कारण कांग्रेस समर्थक एक प्रभावशाली वर्ग उससे दूर होता चला गया। खास तौर से आपातकाल के दौर में पार्टी में संजय गांधी का प्रभाव बढ़ते जाने के साथ ये नेता अलग-थलग पड़ते गए। 30 नवम्बर, 1975 को इंदिरा ने जहाजरानी मंत्री उमाशंकर दीक्षित* को मंत्रिमंडल से बाहर कर दिया। कुछ दिनों बाद उन्हें कर्नाटक का राज्यपाल नियुक्त कर दिया गया।[14] उसी दौरान उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री हेमवतीनंदन बहुगुणा राजनीतिक षडयंत्रों का शिकार बने**। मुख्यमंत्री रहने के दौरान के अनुभवों के बारे में वी.पी. सिंह के अनुसार, 'बहुगुणा को गढ़वाल का चुनाव हरवाने के लिए हरियाणा के मुख्यमंत्री भजनलाल ने वहां जाकर लाइन लगवाकर लाठियां बांटीं। इसकी वहां के लोगों में इतनी प्रतिक्रिया हुई कि वे लोग किसी बूथ पर कब्जा करने नहीं जा पाए। वहां के लोग पत्थर लेकर पहाड़ के ऊपर से मारने लगे और सभी जान बचाकर भागे। कांग्रेस ने तय कर रखा था, चाहे जो हो जाए बहुगुणा को चुनाव हरवाना है। इसीलिए मुझे आखिरी वक्त में चुनाव से अलग कर दिया गया।'[15]

मध्यप्रदेश के सिरमौर रहे द्वारकाप्रसाद मिश्र को अकल्पनीय दृश्य देखने पड़े। कांग्रेस का विभाजन होने के बाद इंदिरा के नेतृत्व को मजबूती देने के लिए पर्दे के पीछे से काम कर रहे महत्वपूर्ण नेताओं में मिश्र अग्रणी थे। उन्हें परोक्ष रूप से अपमानित किया जाने लगा। अगस्त, 1977 में इंदिरा ने उन्हें वर्किंग कमेटी की बैठक में विशेष आगंतुक के रूप में शामिल होने के बहाने दिल्ली बुलाया। बैठक के दौरान बात करने का मौका नहीं मिलने के कारण मिश्र बातचीत के लिए इंदिरा के आवास पहुंचे। वहां भी वे खुलकर बात नहीं कर सके क्योंकि संजय और धीरेंद्र ब्रह्मचारी बार-बार आते रहे। 45 मिनट की मुलाकात के दौरान वे दोनों कम-से-कम चार बार वहां आ धमके। जब मिश्र को विदा करने इंदिरा उठीं तो वे भी दरवाजे तक साथ गए। मिश्र इस व्यवहार से बेहद आहत हुए। उन्हें महसूस हुआ कि इंदिरा इन दोनों के हाथों की कठपुतली बनकर रह गई हैं। इस घटना के बाद उन्होंने कांग्रेस के साथ अपने 50 वर्ष पुराने संबंध तोड़ लिए।[16]

---

*हालांकि उमाशंकर दीक्षित आखिर तक कांग्रेस से जुड़े रहे। उन्होंने वी.पी. सिंह के रक्षा मंत्री पद से इस्तीफे के बाद यह कहते हुए उन्हें मनाने की कोशिश की, 'मैं जानता हूं कि राजीव गांधी इसमें आकंठ ही नहीं, नाक तक डूबे हुए हैं। तुम सोचो कि पार्टी बिना फंड के चलती है?' इससे समझा जा सकता है कि वे राजीव के बारे में क्या सोच रहे थे। (रामबहादुर राय: विश्वनाथ प्रताप सिंह-मंजिल से ज्यादा सफर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 228)

**हेमवतीनंदन बहुगुणा से किए गए व्यवहार के बारे में वी.पी. सिंह ने राजीव को बताया, 'आपकी मां के साथ काम करते हुए कांग्रेस नामक मशीन को हमने चलाया है। इसका एक-एक नट-बोल्ट जानते हैं। मेरे जैसे सेकेंड रैंकर लोगों ने बहुगुणा को भगा दिया क्योंकि वे चाहती थीं। वे यह नहीं बोलीं, हम लोगों ने ही यह काम किया।' (रामबहादुर राय: विश्वनाथ प्रताप सिंह-मंजिल से ज्यादा सफर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 232)

बोफोर्स प्रकरण के दौरान हुए विद्रोह ने राजीव गांधी की सत्ता को कमजोर करने के साथ-साथ कांग्रेस के परंपरागत जातीय समीकरणों को भी विचलित कर दिया। राजीव की जातीय सोच नहीं होने के बावजूद उनकी हमउम्र और समर्थक टोली को अपने-अपने राज्यों में पुराने नेताओं से मुकाबला करना पड़ा; इसके बाद ही नया नेतृत्व काबिज हो सकता था। खासकर, हिंदी भाषी राज्यों में परंपरागत रूप से ब्राह्मण नेतृत्व की बड़ी भूमिका थी। इस नेतृत्व को नए राजनीतिक दौर में सीधी चुनौती दी गई। इस चुनौती के पीछे राजीव की शह छिपी हुई नहीं थी। कांग्रेस के लिए सर्वस्व लगा देने वाले ब्राह्मण नेताओं को अपमान, पदावनति और उपेक्षा के संत्रासपूर्ण दौर से गुजरना पड़ा।

उसी दौरान कमलापति त्रिपाठी को हाशिए पर धकेला गया, जिसकी उन्होंने कभी कल्पना नहीं की थी। इंदिरा के समय में वे अत्यधिक प्रभावशाली रहे थे*। 1983 में आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में मिली अप्रत्याशित हार के बाद इंदिरा ने संगठन को मजबूत बनाने के लिए उन्हें कार्यकारी अध्यक्ष (वर्किंग प्रेसिडेंट) बनाया था, जबकि पार्टी के विधान में ऐसे पद का कोई प्रावधान नहीं था। इस पद पर त्रिपाठी के शुरुआती फैसलों में राजीव को महासचिव नियुक्त करना शामिल था। उन दिनों त्रिपाठी के आवास 9, जनपथ पर लोगों का जमावड़ा लगा रहता था। साधारण कार्यकर्ता से लेकर मंत्री और बागी नेतागण तक उनके 'दर्शन' के लिए आते तथा विभिन्न विषयों पर उनसे परामर्श लेते। हर शाम पत्रकारों की मंडली राजनीतिक गलियारों की विश्वसनीय खबर पाने के लिए त्रिपाठी के आवास पर जुटती। लेकिन राजीव के कार्यकाल में उनका यह रसूख ढलान पर आ गया। 1986 में राजीव ने त्रिपाठी को दरकिनार करने के लिए अर्जुन सिंह को उपाध्यक्ष नियुक्त किया। प्रणब मुखर्जी और आर. गुंडू राव जैसे असंतुष्टों द्वारा उकसाए जाने पर त्रिपाठी ने भी पलटवार शुरू कर दिया। अप्रेल, 1986 में राजीव को भेजा उनका लंबा पत्र असंतोष का पहला बड़ा संकेत बना, जिसमें उन्होंने सरकार की अनेक खामियों का उल्लेख किया था। कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने इस पर कड़ा रुख व्यक्त किया। त्रिपाठी को झुकना पड़ा। उन्होंने माफी मांगते हुए कदम पीछे खींच लिए। इससे वे पार्टी से निष्कासित होने से तो बच गए, लेकिन अपमानित होने से नहीं बच सके। 12 नवम्बर, 1986 को उन्हें कार्यकारी अध्यक्ष के पद से इस्तीफा देना पड़ा।

कांग्रेस के इतिहास के नाजुक मोड़ों पर त्रिपाठी मजबूती से पार्टी नेतृत्व के साथ खड़े रहे थे। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री चंद्रभानु गुप्ता का जवाहरलाल नेहरू से विवाद हुआ तो त्रिपाठी ने नेहरू के पक्ष में रणनीति बनाई। 1969 में कांग्रेस के विभाजन के समय उन्होंने इंदिरा को समर्थन दिया। जनता पार्टी के शासन के दौरान इंदिरा के कई विश्वासपात्र नेताओं ने किनारा कर लिया, लेकिन त्रिपाठी वफादार बने रहे। राजीव द्वारा अपमानित किए जाने के बाद भी उन्होंने राजीव को विरोधी के रूप में नहीं देखा। भले ही राजीव ने संवाददाता सम्मेलन में

---

*1980-81 में जब त्रिपाठी के प्रेस में दिए गए बयानों से नाराज होकर इंदिरा ने उनसे रेलवे मंत्रालय छीना, तब भी प्रतिक्रिया से बचने के लिए उनकी जगह एक सरयूपारी ब्राह्मण को लिए जाने की सलाह पर अमल करते हुए बिहार के केदार पांडेय को नियुक्त किया। (माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 144-145)

त्रिपाठी को 'नॉन वर्किंग प्रेसिडेंट' कहकर मखौल बनाया और राजनीतिक नवागंतुकों ने राजीव के प्रति निष्ठा व्यक्त करने की होड़ में त्रिपाठी पर मौखिक हमले शुरू कर दिए, लेकिन 1987 के मध्य में जब राष्ट्रपति जैल सिंह के साथ राजीव का टकराव चरम पर पहुंच गया तो त्रिपाठी ने जैल सिंह को पत्र लिखकर संकट पैदा नहीं करने का अनुरोध किया। त्रिपाठी का कहना था, 'मैं प्रधानमंत्री को पत्र केवल उनकी आलोचना करने के लिए नहीं लिखता हूं। जब भी मुझे लगता है कि नेतृत्व का कोई कदम पार्टी को नुकसान पहुंचा सकता है, मैं सचेत करना चाहता हूं। कांग्रेस का मतलब है कुछ तयशुदा मूल्य और नियम; अगर उन्हें नष्ट कर दिया गया तो कांग्रेस, कांग्रेस नहीं रह जाएगी।'[17]

त्रिपाठी ने वर्किंग कमेटी और संसदीय बोर्ड की बैठकों में जाना बंद कर दिया। अपने आवास पर वे खाली कुर्सियों के बीच बैठे दिखते। इक्का-दुक्का लोग मिलने आते और चले जाते, लेकिन सूनापन बरकरार रहता। त्रिपाठी की आवाज में टूटन महसूस होने लगी थी। नेहरू परिवार की चार पीढ़ियों के साथ काम कर चुके इकलौते जीवित नेता के लिए यह दुखांत प्रहसन था। इसके बावजूद वे राजनीतिक गतिविधियों से निर्लिप्त नहीं रह सके। जब राम जन्मभूमि मुक्ति आंदोलन जोर पकड़ने लगा और सरकार किंकर्तव्यविमूढ़ महसूस करने लगी, त्रिपाठी ने यह साहसपूर्ण वक्तव्य दिया कि मामले को अदालत में ले जाने के बजाए विवादित स्थल को राष्ट्रीय धरोहर घोषित कर दिया जाना चाहिए। जनता पार्टी बनने के बाद कांग्रेस से अलग हुए कई बड़े नेता त्रिपाठी से मिलते रहे। जनता दल में शामिल हो चुके विद्याचरण शुक्ल उनके संपर्क में थे। कांग्रेस नेताओं द्वारा नेहरू परिवार से होने को लेकर की गई टिप्पणियों से आहत अरुण नेहरू ने भी त्रिपाठी का समर्थन मांगा। कांग्रेस के कई बागी सांसद और पूर्व मंत्री भी त्रिपाठी के आसपास नजर आते रहते थे। इस बारे में पूछे जाने पर त्रिपाठी कहते, 'आशीर्वाद देना हमारे खानदान का काम है।'[18]

इस दौर में प्रणब मुखर्जी से लेकर नवलकिशोर तक विभिन्न राज्यों के ब्राह्मण नेता त्रिपाठी के संपर्क में बने रहे। राजस्थान कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में नवलकिशोर ने त्रिपाठी को जयपुर भी बुलवाया। बोफोर्स प्रकरण से पहले ज्यादातर कांग्रेसी नेताओं की आलाकमान से निकटता का स्रोत फोतेदार और अरुण नेहरू थे, इसलिए स्वाभाविक तौर पर ब्राह्मण नेता भी उनसे सीधे संपर्क में थे। अरुण के विद्रोह के बाद राजीव को यह अहसास करवाया गया कि राज्यों के ब्राह्मण नेताओं का विकल्प खोजा जाना जरूरी है। इसी सोच के निशाने पर राजस्थान भी आया, जिसके मुख्यमंत्री एक ब्राह्मण थे और दिल्ली में सक्रिय नेता के रूप में नवलकिशोर कठपुतली बनने को तैयार नहीं हुए।

राजीव के कार्यकाल के दौरान कांग्रेस की ब्राह्मण राजनीति नए सिरे से व्याख्यायित हुई। 1985 के विधानसभा चुनावों के बाद राजीव ने उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश और राजस्थान में एक साथ चार बड़े प्रदेशों के मुख्यमंत्री ब्राह्मण बनाए। राजस्थान में हरिदेव जोशी, उत्तर प्रदेश में नारायणदत्त तिवारी, बिहार में बिंदेश्वरी दुबे और मध्यप्रदेश में मोतीलाल वोरा को मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलाई गई। इन सभी राज्यों में पहले भी ब्राह्मण मुख्यमंत्री रहते आए

थे और वहां ब्राह्मण मतदाताओं की बड़ी संख्या थी। लेकिन 1987 में राजीव को पहली बार विद्रोह का सामना करना पड़ा तो उन्होंने तीन मुख्यमंत्री लगभग एक साथ हटाए। नारायणदत्त तिवारी को 1985 में ही हटाकर वीरबहादुर सिंह को मुख्यमंत्री बनाया जा चुका था। 1988 की जनवरी में हरिदेव जोशी को और फरवरी में मोतीलाल वोरा तथा बिंदेश्वरी दुबे को हटना पड़ा। ताश की तरह मुख्यमंत्री फेंटना भारी पड़ता गया। उत्तर प्रदेश में तिवारी को मार्च, 1988 में वापस मुख्यमंत्री बनाना पड़ गया। फरवरी, 1989 में अर्जुन सिंह को हटाकर फिर से वोरा को शपथ दिलाई गई। 1989 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस की पराजय होते ही राजस्थान में शिवचरण माथुर को हटाकर हरिदेव जोशी को और बिहार में सत्येंद्रनारायण सिन्हा की जगह जगन्नाथ मिश्र को मुख्यमंत्री बनाया गया। मध्यप्रदेश में वर्ष के अंत में फिर बदलाव हुआ; वोरा की जगह श्यामाचरण शुक्ल को मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलाई गई। लेकिन इस उलटफेर ने कांग्रेस को अस्त-व्यस्त कर दिया। कुछ महीनों बाद हुए विधानसभा चुनावों में राजस्थान, उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश में कांग्रेस सत्ता से बाहर हो गई। राजस्थान में भैरोंसिंह शेखावत, उत्तर प्रदेश में मुलायमसिंह यादव और बिहार में लालूप्रसाद यादव का युग शुरू हुआ; मध्यप्रदेश में भी भाजपा की सरकार बनी।

1989 की चुनावी हार के बाद राजीव की परामर्श मंडली से कई महत्वपूर्ण ब्राह्मण चेहरे गायब होने लगे। इंदिरा के दौर से प्रभावी रहे माखनलाल फोतेदार की उपेक्षा शुरू हुई। उमाशंकर दीक्षित ने राजीव की कार्यशैली के प्रति असंतोष व्यक्त करते हुए कांग्रेस वर्किंग कमेटी से इस्तीफा दे दिया। नवलकिशोर ने राजीव के नेतृत्व से असंतुष्ट नेताओं द्वारा बनाए गए कांग्रेस फोरम फोर एक्शन से जुड़कर उसे मजबूती देने का काम शुरू किया। उनका उद्देश्य पार्टी में आंतरिक लोकतंत्र को बहाल करना और संगठनात्मक चुनाव करवाना था। जितेंद्र प्रसाद भी उनके साथ हो गए। बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री जगन्नाथ मिश्र खुलकर सामने नहीं आए, लेकिन उनके राजनीतिक शिष्य इस फोरम में सक्रिय थे। आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री एम. चेन्ना रेड्डी संगठन में दक्षिण भारत का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं होने का मुद्दा उठाकर नाराजगी प्रकट कर रहे थे।[19]

इन बदले समीकरणों ने हिंदी भाषी प्रदेशों की राजनीति को खास तौर से प्रभावित किया। उससे पहले उत्तर भारत की सियासत में ब्राह्मणों का वर्चस्व लंबे समय तक कायम था। उत्तर प्रदेश में 1989 तक 6 ब्राह्मण मुख्यमंत्री बने- गोविंदवल्लभ पंत, सुचेता कृपलानी, कमलापति त्रिपाठी, हेमवतीनंदन बहुगुणा, श्रीपति मिश्र और नारायणदत्त तिवारी। ये सभी कांग्रेस से थे। इनमें तिवारी तीन बार मुख्यमंत्री रहे। अयोध्या आंदोलन से उत्तर प्रदेश के ब्राह्मण भाजपा से जुड़ने शुरू हुए और ब्राह्मणों की कांग्रेस से दूरी ने उसे प्रदेश की राजनीति में मृतप्राय बना दिया। वह चौथे स्थान पर चली गई। यही हाल बिहार में हुआ, वहां भी ब्राह्मण कांग्रेस से विमुख हो गए। 1989 में उत्तर प्रदेश और बिहार ने आखिरी कांग्रेसी मुख्यमंत्री के रूप में तिवारी और जगन्नाथ मिश्र को देखा। उसी दौरान मध्य प्रदेश के समीकरण प्रभावित हुए। 1956 में मध्य प्रदेश के गठन से लेकर 1990 तक 34 साल में वहां पांच ब्राह्मण मुख्यमंत्री चुने गए थे, जिन्होंने तकरीबन 20 वर्षों तक सत्ता की बागडोर को थामे रखा। लेकिन उसके

बाद प्रदेश में कोई ब्राह्मण नेता इस ओहदे तक नहीं पहुंच पाया। राजस्थान भी इनसे अलग नहीं; 1949 से 1990 के बीच इस समुदाय से चार मुख्यमंत्री बने और सात बार उन्हें मौका मिला। अयोध्या आंदोलन के साथ मंडल कमीशन की सिफारिशों ने भी राजनीति का चेहरा बदला। जो हाशिए पर थे, केंद्र में आ गए; केंद्र वाले हाशिए पर चले गए।

उत्तर प्रदेश-हरियाणा में नवलकिशोर

इन हालात में सोनिया गांधी ने विशेष रूप से उत्तर प्रदेश को साधना शुरू किया, जिसे दिल्ली की सत्ता की सीढ़ी माना जाता है। कांग्रेस वहां दयनीय स्थिति में आ चुकी थी। संगठन को नए सिरे से खड़ा करना जरूरी था। इस समीकरण को भी समझा गया कि ब्राह्मण कांग्रेस से छिटक गए हैं और कांग्रेस को सत्ता में लाने के लिए ब्राह्मणों को आगे लाना जरूरी है। अटलबिहारी वाजपेयी के प्रधानमंत्री होने और भाजपा में मुरलीमनोहर जोशी, प्रमोद महाजन, सुषमा स्वराज, अरुण जेटली जैसे सशक्त ब्राह्मण मंत्रियों की मौजूदगी अलग से बड़ी चुनौती थी। उत्तर प्रदेश भाजपा के पास माधवप्रसाद त्रिपाठी के बाद कलराज मिश्र का सशक्त चेहरा था। सोनिया को जितेंद्र प्रसाद का खालीपन भी भरना था। प्रसाद के सोनिया के खिलाफ अध्यक्ष का चुनाव लड़ने और हारने के कुछ महीनों बाद ही उनका निधन हो जाने से कांग्रेस को कुछ क्षेत्रों में उनकी कमी महसूस हो रही थी। उधर, उत्तर प्रदेश से उत्तरांचल (बाद में उत्तराखंड) के अलग राज्य बन जाने से उत्तर प्रदेश को एक स्थापित नेता नारायणदत्त तिवारी से वंचित होना पड़ा। कांग्रेस के पास ब्राह्मण नेता के रूप में प्रमोद तिवारी थे, लेकिन उनका राज्यव्यापी असर नहीं था। 2002 में उनके नेतृत्व में चुनाव लड़े गए तो कांग्रेस को सिर्फ 25 सीटें मिलीं, जो पिछले विधानसभा चुनाव से 8 कम थीं। सपा, बसपा और भाजपा को अलग-अलग मिले वोटों से आधे वोट भी उसे नहीं मिले। वहीं, उत्तराखंड में नारायणदत्त तिवारी के कारण कांग्रेस बहुमत जुटाने में सफल रही।

राष्ट्रीय स्तर पर ब्राह्मण चेहरे के रूप में ले-देकर कांग्रेस के पास मोतीलाल वोरा और प्रणब मुखर्जी थे, जिनका कोई जनाधार नहीं था। इन हालात में सोनिया को नवलकिशोर की याद आई, जो उत्तर भारत में ब्राह्मणों के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किए जा सकते थे। 2 मई, 2003 को सोनिया ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में फेरबदल किया। उन्होंने दो नए महासचिव नियुक्त किए, कांग्रेस वर्किंग कमेटी का विस्तार किया और राजनीतिक मामलों की 12 सदस्यीय समिति गठित की। नवनियुक्त महासचिव के रूप में इंदिरा गांधी के विश्वासपात्र रहे आर.के. धवन को बिहार और झारखंड का प्रभार मिला। महासचिव के पद पर दूसरी नियुक्ति अधिक आश्चर्यजनक थी। दिल्ली की हलचल से दूर रहकर एक तरह का राजनीतिक अज्ञातवास काट रहे नवलकिशोर की राष्ट्रीय राजनीति में वापसी हुई। नवलकिशोर को सोनिया ने वर्किंग कमेटी का सदस्य भी नियुक्त किया। महासचिव के रूप में उन्हें उत्तर प्रदेश और हरियाणा का प्रभार सौंपा गया। इसके पहले उत्तर प्रदेश की जिम्मेदारी मोतीलाल वोरा के पास थी, जिन्हें कोषाध्यक्ष की भूमिका तक सीमित कर दिया गया।[20] नवलकिशोर की सहायता के

लिए तीन सचिव सुबोधकांत सहाय, जय किशन और परवेज नियुक्त किए गए।[21]

सोनिया ने पार्टी की परंपरा से अलग राह अपनाई और वर्किंग कमेटी के सदस्यों को महासचिव नियुक्त किए बिना ही राज्यों का प्रभार सौंपा। उदाहरण के लिए, गुलामनबी आजाद का जम्मू और कश्मीर के प्रदेश अध्यक्ष का पद बरकरार रहा, लेकिन वर्किंग कमेटी के सदस्य के रूप में उन्हें हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल और आंध्र प्रदेश की भी जिम्मेदारी मिल गई।[22] इस फेरबदल के साथ संगठन में कुल आठ महासचिव हो गए; आजाद भारत के इतिहास में यह कांग्रेस महासचिवों की अधिकतम संख्या थी।[23] परिवर्तन की इस प्रक्रिया में सोनिया ने अंबिका सोनी को राजनीतिक सलाहकार के पद से हटा दिया। उनसे केरल और छत्तीसगढ़ का प्रभार भी ले लिया गया। उनका कांग्रेस अध्यक्ष कार्यालय के प्रभारी का पद बरकरार रहा, लेकिन राजस्थान से जुड़े दलजीत सिंह उनके साथ लगा दिए गए।[24] आपातकाल के दौरान काफी सक्रिय रही अंबिका को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी से वापस जोड़ने वाले नवलकिशोर ही थे। उन्होंने 1990 के दशक में अंबिका को दिल्ली से अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी सदस्य नियुक्त किया था।[25] अंबिका की विदाई के बाद सोनिया के एकमात्र राजनीतिक सलाहकार अहमद पटेल रह गए। उन्हें केरल और दिल्ली की जिम्मेदारी सौंपी गई।[26]

नवलकिशोर को जिन राज्यों की जिम्मेदारी दी गई, वहां कांग्रेस की स्थिति बहुत कमजोर थी। हरियाणा में 2000 के विधानसभा चुनाव में कांग्रेस ने सभी 90 सीटों पर उम्मीदवार उतारे, जिनमें से 21 को जीत मिली और 18 की जमानत जब्त हो गई। वहीं, भारतीय राष्ट्रीय लोकदल ने केवल 62 सीटों पर दावेदारी करके 47 सीटों पर विजय प्राप्त की और पूर्ण बहुमत के साथ सरकार का गठन किया। ओमप्रकाश चौटाला मुख्यमंत्री बने। उत्तर प्रदेश में भी कांग्रेस के हालात यही थे। वहां 2002 में विधानसभा चुनाव हुए थे। समाजवादी पार्टी को 143, बहुजन समाज पार्टी को 98 और भाजपा को 88 सीटें मिलीं। कांग्रेस 25 सीटों पर सिमटकर रह गई। भाजपा और राष्ट्रीय लोकतांत्रिक दल के समर्थन से बसपा ने मायावती के नेतृत्व में सरकार बनाई।

इन हालात में नवलकिशोर ने दोनों राज्यों के कांग्रेसजनों में एकजुटता लाकर संगठन को मजबूत बनाने की दिशा में काम शुरू किया। हरियाणा में कांग्रेस चुनौतियों का सामना कर रही थी। भजनलाल के बाद उसे ऐसे जाट नेता की तलाश थी, जो जाट मतदाताओं को रिझा सके। देवीलाल परिवार का कोई विकल्प नजर नहीं आ रहा था। पार्टी में गुटबाजी अलग से जोर पकड़ रही थी। नवलकिशोर ने वहां पहुंचते ही स्पष्ट कर दिया कि अनुशासनहीनता बर्दाश्त नहीं की जाएगी। इसका असर जल्दी ही दिखाई देने लगा। उस दौरान होने जा रहे फतेहाबाद उपचुनाव के संबंध में प्रदेश कांग्रेस के नेताओं ने नवलकिशोर के सामने जो एकजुटता दिखाई, वह हरियाणा के लिहाज से आश्चर्यजनक थी। भजनलाल, भूपिंदरसिंह हुड्डा और बूटा सिंह जैसे परस्पर विरोधी धड़ों के नेता एक मंच पर एकत्रित हुए तथा पार्टी के आधिकारिक उम्मीदवार के समर्थन में जुटने की अपील की।[27] इस एकजुटता से कांग्रेस के प्रदर्शन में स्पष्ट सुधार दिखाई दिया। हालांकि फतेहाबाद सीट पर लोकदल का वर्चस्व बरकरार रहा, लेकिन कांग्रेस का वोट प्रतिशत पहले की तुलना में काफी बेहतर हुआ। 2000

के विधानसभा चुनाव में उस सीट पर लोकदल और कांग्रेस के बीच 20,989 वोटों का अंतर था; वह 2003 के उपचुनाव में 7,672 पर आ गया। 12 वर्षों के बाद कांग्रेस इस क्षेत्र में 30 प्रतिशत से अधिक वोट पाने में सफल हुई।[28]

नवलकिशोर ने भजनलाल, हुड्डा, चौधरी वीरेंद्र सिंह जैसे ताकतवर नेताओं की मौजूदगी में हिदायत दी कि कोई भी नेता अपने को मुख्यमंत्री उम्मीदवार के रूप में प्रदर्शित नहीं करेगा और मुख्यमंत्री का चुनाव आलाकमान करेगा। उन्होंने यह भी कहा कि टिकट के लालच में बड़े नेताओं के इर्द-गिर्द मंडराते रहने की मानसिकता को बदलें क्योंकि टिकट वितरण का अधिकार कांग्रेस संसदीय दल के पास है। कोई रैली आयोजित करने से पहले अनुमति लेने, जनसभा में स्थानीय विधायक को आमंत्रित करने जैसे विषयों के प्रति भी उन्होंने सचेत किया।[29] लेकिन लंबे समय से चली आ रही धड़ेबंदी बार-बार उजागर होती रही। हालात ये थे कि भूतपूर्व रेवाड़ी राजघराने से जुड़े प्रभावी कांग्रेस नेता राव इंद्रजीत सिंह ने जनसभा आयोजित करके नवलकिशोर को मुख्य अतिथि के रूप में बुलाया तो भजनलाल के समर्थकों ने इसका बहिष्कार किया और सौ मीटर की दूरी पर एक अन्य सभा आयोजित करके भजनलाल के पक्ष में नारेबाजी की।[30]

इन पेचीदा परिस्थितियों वाले हरियाणा के साथ-साथ नवलकिशोर को उत्तर प्रदेश को भी संभालना था, जहां कांग्रेस का अस्तित्व ही खतरे में आ चुका था। आगामी लोकसभा चुनाव को देखते हुए सर्वाधिक सीटों वाले उत्तर प्रदेश में पैठ मजबूत करना कांग्रेस के लिए महत्वपूर्ण था। नवलकिशोर मानते थे:

> अतीत में उत्तर प्रदेश कांग्रेस जनता के मुद्दों से नहीं जुड़ पा रही थी और संगठन निष्क्रिय था। लेकिन इसके पुनर्जीवित होने की पूरी संभावना है। मेरा प्रयास ब्लॉक स्तर तक संगठन तैयार करके उसे चलायमान बनाने का है। जो जिला कांग्रेस कमेटी अध्यक्ष लंबे समय से पदासीन हैं, उन्हें बदला जाएगा। प्रदेश कांग्रेस कमेटी को पुनर्गठित किया जाएगा। प्रदेश इकाई से जिला इकाइयों में आवश्यक परिवर्तन के लिए सुझाव मांगे जाएंगे। इसी तरह, जिला इकाइयां ब्लॉक इकाइयों के लिए कार्यकर्ताओं के नाम प्रस्तावित करेंगी। हम सार्वजनिक मुद्दों पर आंदोलन खड़े कर रहे हैं। ताज कॉरीडोर प्रोजेक्ट* के मुद्दे पर सफल आंदोलन शुरू करने वाली कांग्रेस पहली पार्टी थी। हमारे उद्देश्य को सर्वोच्च न्यायालय का समर्थन मिला। भ्रष्टाचार, धराशायी होती कानून व्यवस्था, अपर्याप्त बिजली, किसानों की समस्याओं के मुद्दे पर हम जेल भरो अभियान शुरू करने जा रहे हैं।[31]

---

*2002 में मायावती ने लगभग 175 करोड़ रुपए की लागत से एक प्रोजेक्ट शुरू करने का ऐलान किया, जिसके तहत ताजमहल को आगरा के किले से एक कॉरीडोर के जरिए जोड़ा जाना था और इस कॉरीडोर में मॉल तथा अम्यूजमेंट पार्क बनाए जाने थे। इस बीच, पर्यावरण और ताजमहल की सुरक्षा के नजरिए से कई सवाल उठने लगे। यह भी आरोप लगा कि जारी किए गए 17 करोड़ रुपए का इस्तेमाल मायावती ने निजी कामों में किया। केंद्र की भाजपा सरकार ने भी कहा कि इसके लिए पर्यावरण विभाग की अनुमति नहीं ली गई। राजनीतिक उठापटक के बीच मायावती को इस्तीफा देना पड़ा।

नवलकिशोर को नियुक्त किए जाने के बाद उत्तर प्रदेश का राजनीतिक परिदृश्य नाटकीय रूप से बदला। राष्ट्रीय लोकतांत्रिक दल के अध्यक्ष अजीत सिंह मायावती से अलगाव करने की मानसिकता में आ गए। मुलायमसिंह यादव के मनसूबों को भी ताकत मिली, वे समाजवादी पार्टी की सरकार बनने को लेकर आशान्वित होने लगे। नवलकिशोर कांग्रेस महासचिव और प्रभारी के रूप में सेतु की भूमिका में थे। नवलकिशोर की पहल पर 29 मई, 2003 को मुलायम सिंह ने दिल्ली में सोनिया गांधी से मुलाकात की। उसी दिन ओबेरॉय होटल में मुलायम सिंह, अमर सिंह, अजीत सिंह, नवलकिशोर और अहमद पटेल मिले।[32] इसके अगले दिन अजीत सिंह ने मायावती सरकार से समर्थन वापस लेने की घोषणा कर दी। जब वे राज्यपाल विष्णुकांत शास्त्री को समर्थन वापसी का पत्र सौंपने राजभवन पहुंचे तो नवलकिशोर और अमर सिंह भी उनके साथ थे। इसके बाद नवलकिशोर ने विपक्ष के नेताओं से संपर्क किया, जिनमें भाजपा से अलग होकर राष्ट्रीय क्रांति पार्टी बना चुके पूर्व मुख्यमंत्री कल्याण सिंह भी शामिल थे। लखनऊ के वीवीआईपी गेस्ट हाउस में नवलकिशोर, कल्याण सिंह, मुलायम सिंह, अमर सिंह और अजीत सिंह के बीच भावी रणनीति के संबंध में चर्चा हुई।[33] नवलकिशोर ने अजीत सिंह और अमर सिंह के साथ राज्यपाल को एक संयुक्त ज्ञापन भी सौंपा और विपक्ष को सरकार के गठन के लिए आमंत्रित करने का अनुरोध किया। ज्ञापन में कहा गया, 'विपक्ष इस विषय पर आपके फैसले का इंतजार कर रहा है। यह गंभीर संवैधानिक संकट है। भाजपा–बसपा गठबंधन को सरकार चलाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।'[34]

दूसरी तरफ, भाजपा और बसपा के गठबंधन में भी दरार पड़ी और गहरी होती गई। इस नाटकीय घटनाक्रम के पीछे ताज कॉरीडोर मामले की प्रमुख भूमिका रही। भ्रष्टाचार के मुद्दे पर आलोचनाओं में घिर रही मायावती का बचाव करना राजनीतिक रूप से नुकसानदेह साबित होता। इसके अलावा स्थानीय समीकरण भी प्रभावी थे। ताकतवर निर्दलीय विधायक रघुराजप्रताप सिंह (राजा भैया) और उनके पिता को आतंकवादी विरोधी नियम (पोटा) के तहत गिरफ्तार करने के फैसले पर प्रदेश भाजपा को कड़ी आपत्ति थी। पूर्व मुख्यमंत्री राजनाथ सिंह विशेष रूप से मुखर थे। भाजपा के केंद्रीय नेतागण इस बात पर जोर दे रहे थे कि गठबंधन के साझेदारों के बीच तालमेल बेहतर करने की जरूरत है।[35]

आगे चलकर दोनों पार्टियों के संबंध कटु होते गए। ताज कॉरीडोर के संदर्भ में केंद्रीय पर्यटन और संस्कृति मंत्री जगमोहन ने बयान दिया कि प्रोजेक्ट के लिए पर्यावरण और पर्यटन विभागों से स्वीकृति नहीं ली गई है। इस पर मायावती ने आक्रामक तेवर अपना लिए। उनका कहना था कि जगमोहन प्रोजेक्ट से जुड़े हर तथ्य से परिचित हैं और अपनी जिम्मेदारी से बचने का प्रयास कर रहे हैं। इसे राजनीतिक षडयंत्र बताते हुए मायावती ने प्रधानमंत्री वाजपेयी से मिलकर जगमोहन को अपदस्थ करने की मांग की। इसके बाद भाजपा की ओर से प्रतिक्रिया शुरू हुई। उत्तर प्रदेश भाजपा के अध्यक्ष विनय कटियार ने मायावती की मांग को अनावश्यक और अनुचित बताया।[36] वाजपेयी द्वारा हस्तक्षेप करके सुलह करवाने की कोशिश से मामला कुछ समय के लिए शांत हुआ, लेकिन अलगाव के बीज पड़ चुके थे। मायावती

के लिए भी असह्य था कि उन्हें भाजपा के निर्देश पर चलने वाली नेता के रूप में देखा जाए। जनाधार और राजनीतिक कौशल पर उन्हें अधिक भरोसा था। वे जनसभाओं में यहां तक कहने लगीं, 'मुझे कभी भाजपा नेताओं का समर्थन नहीं मिला, खास तौर पर राजनाथ सिंह और विनय कटियार का, जिन्होंने गठबंधन में तनाव पैदा करने के लिए ओवरटाइम किया।'[37]

जल्दी ही यह राजनीतिक लड़ाई निर्णायक मोड़ पर आ गई। 25 अगस्त, 2003 को बसपा की रैली होने वाली थी। इसके ठीक पहले मायावती ने मंत्रिमंडल की बैठक बुलाई। इस बैठक में विधानसभा भंग करके राष्ट्रपति शासन लगाने और नए चुनाव करवाने की सिफारिश कर दी गई। उत्तर प्रदेश की राजनीति पर नजर रखे लोगों के लिए यह एक अप्रत्याशित कदम था क्योंकि सप्ताह भर पहले ही लोकसभा में अविश्वास प्रस्ताव के दौरान बसपा ने राजग सरकार का समर्थन किया था। लेकिन मायावती की ओर से सब कुछ पहले से तय था। उन्होंने मीडिया को भी सूचना दे रखी थी कि ढेर सारी मसालेदार खबरों की कवरेज के लिए पूरी तैयारी के साथ पहुंच जाए। शायद भाजपा भी इस स्थिति के लिए तैयारी किए हुए थी। मायावती बैठक से निकलकर विधानसभा को भंग करने की अपनी सिफारिश लिखित रूप में राज्यपाल को सुपुर्द करने पहुंचतीं, इसके पहले ही भाजपा विधायक दल के नेता लालजी टंडन राज्यपाल को समर्थन वापसी का पत्र दे आए। भाजपा के शीर्ष नेतृत्व ने इस पर तुरंत कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष वेंकैया नायडू तमिलनाडु प्रदेश भाजपा की एकता यात्रा के समापन समारोह में व्यस्त थे और बसपा से गठबंधन टूटने की बात को खारिज कर रहे थे। अगली सुबह भाजपा संसदीय दल की बैठक हुई। वहां यह फैसला हुआ कि पार्टी की चुनाव के लिए पर्याप्त तैयारी नहीं होने के कारण राष्ट्रपति शासन स्वीकार्य नहीं है, इसलिए भाजपा किसी नई सरकार के गठन के प्रयासों में बाधा नहीं पहुंचाएगी; भले ही वह मुलायमसिंह यादव के नेतृत्व वाली सरकार क्यों न हो। यह फैसला भी अप्रत्याशित था। इस बार झटका खाने की बारी मायावती की थी। उन्होंने भाजपा पर विश्वासघात का आरोप लगाते हुए इस्तीफा दे दिया।[38]

तेजी से बदलते घटनाक्रम के बीच मुलायम सिंह ने 27 अगस्त की शाम 210 विधायकों का समर्थन होने का दावा पेश कर दिया। उन्होंने राज्यपाल को जो सूची सौंपी, उसमें बसपा के 14 विधायकों के नाम शामिल थे। दलबदल निरोधी कानून के तहत पार्टी के एक तिहाई (37) विधायकों का अलग होना जरूरी था, लेकिन राज्यपाल ने इसे नजरअंदाज करते हुए 28 अगस्त की सुबह मुलायम सिंह को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित कर लिया। उन्हें बहुमत साबित करने के लिए 14 दिनों का समय मिला। इसके बाद बसपा विधायकों को तोड़ने की मुहिम शुरू हुई। मुलायम सिंह ने सबसे असरदार चाल यह चली कि राजा भैया के खिलाफ पोटा के तहत चलाए गए मुकदमे वापस ले लिए*। इसके बाद बसपा के लगभग डेढ़ दर्जन राजपूत विधायक पाला बदलकर मुलायम सिंह के साथ आ गए। 6 सितम्बर को

*मुलायम सरकार के इस कदम को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई। दिसम्बर, 2003 में तीन जजों की बेंच ने यह फैसला दिया कि राज्य सरकार को केंद्र सरकार की सहमति के बिना पोटा के तहत चलाए गए मुकदमे वापस लेने का अधिकार नहीं है। (पीटीआई, 18 दिसम्बर, 2003)

बसपा के 37 विधायकों ने नई पार्टी का गठन कर लिया।[39] इसके बाद मुलायम सिंह का रास्ता साफ था।

कांग्रेस ने मुलायम सरकार को बाहर से समर्थन देने का फैसला किया। नवलकिशोर और अहमद पटेल ने मुलायम सिंह को सूचित किया कि कांग्रेस उनकी सरकार में शामिल नहीं होगी। इसके पीछे सोची-समझी रणनीति थी। आगामी लोकसभा चुनाव में कांग्रेस के लिए बसपा का समर्थन अधिक महत्वपूर्ण होने वाला था क्योंकि समाजवादी पार्टी का जनाधार उत्तर प्रदेश तक ही सीमित था। यह भी आकलन किया गया कि अगर कुछ कांग्रेस विधायकों में मंत्री बनने की लालसा जगी तो वे पार्टी बदल लेंगे। कांग्रेस ने स्पष्ट कर दिया कि विधायकों को तोड़ने की कोशिश होने पर वह समर्थन वापस ले लेगी।[40] इस तरह, संभावनाओं के द्वार भी खुले रखे गए और मुलायम सिंह को उपकृत भी महसूस करवाया गया। 8 सितम्बर, 2003 को विधानसभा में विश्वास मत के दौरान मुलायम सिंह ने कहा, 'मेरे द्वारा अतीत में विदेशी कहे जाने के बावजूद समाजवादी पार्टी को समर्थन देकर सोनिया गांधी ने बड़प्पन दिखाया है।'[41]

मुलायम सिंह की सरकार बन जाने के बाद नवलकिशोर ने अमेठी में जोर लगाना शुरू किया, जहां सोनिया के सामने वहां के राजपरिवार से जुड़े संजय सिंह चुनौती बने हुए थे। हालांकि सोनिया ने 1999 के लोकसभा में उन्हें तीन लाख वोटों के भारी अंतर से पराजित किया था, लेकिन संजय सिंह 1998 के लोकसभा चुनाव में भाजपा उम्मीदवार के रूप में कांग्रेस के सतीश शर्मा को पराजित कर चुके थे। उनकी जड़ें गहरी थीं और उनकी तरफ से कांग्रेस आंखें बंद नहीं कर सकती थी। मार्च, 2003 में अमेठी लोकसभा क्षेत्र से जुड़ी गौरीगंज विधानसभा सीट पर हुए उपचुनाव में प्रियंका के सघन अभियान के बावजूद कांग्रेस की हार ने भी चिंताएं बढ़ा दी थीं। नवलकिशोर ने संजय सिंह से मुलाकात की और नेहरू-गांधी परिवार से पुराने संबंधों तथा राजीव से पुरानी दोस्ती की याद दिलाते हुए उन्हें कांग्रेस में लौटने को प्रेरित किया। आखिरकार संजय सिंह कांग्रेस में लौटे।[42] नवलकिशोर ने अन्य भाजपा नेताओं को भी कांग्रेस में लाने की मुहिम छेड़ी। अमेठी से जुड़े एक और नेता रामरतन पासी को वे कांग्रेस में लेकर आए। पासी 1996-2002 के बीच उत्तर प्रदेश के खादी और ग्रामीण उद्योग मंत्री रहे थे।[43] अमेठी को विवाद रहित करने के कारण ही आगे चलकर वहां से राहुल और रायबरेली से सोनिया के चुनाव लड़ने का रास्ता साफ होता गया।

मध्यावधि चुनाव ने बदले समीकरण

2003 में कुछ महत्वपूर्ण राज्यों के विधानसभा चुनाव का समय आया, जिनमें राजस्थान भी शामिल था। नवलकिशोर शर्मा ने चुनाव लड़ने से इनकार कर दिया। उनके क्षेत्र के कार्यकर्ताओं ने आग्रह किया कि अगर वे खुद चुनाव नहीं लड़ना चाहते हैं तो अपने पुत्र बृजकिशोर को आगे करें। जयपुर ग्रामीण सीट से बृजकिशोर को उम्मीदवार बनाया गया। उस दौरान 21 विधायकों के टिकट काटे गए। बुजुर्ग नेताओं को दबदबा कायम रहा; पहाड़िया, माथुर और देवपुरा प्रत्याशी बनाए गए।[44]

राजस्थान से नवलकिशोर को हटाए जाने का कांग्रेस को नुकसान उठाना पड़ा। हालांकि गहलोत के मंत्रिमंडल में सी.पी. जोशी और बी.डी. कल्ला प्रभावी थे, लेकिन गहलोत ने भंवरलाल शर्मा को नकार दिया था, जो नवलकिशोर के बाद राजस्थान के ब्राह्मण नेताओं में सर्वाधिक प्रभाव रखते थे। राजपूत मतदाता परंपरागत रूप से भैरोंसिंह शेखावत के कारण भाजपा के साथ थे। भाजपा को शेखावत के उपराष्ट्रपति होने का भी परोक्ष लाभ मिल रहा था। इनके अलावा सबसे अधिक प्रभाव वसुंधरा राजे के चमत्कृत करने वाले नेतृत्व और व्यापक रणनीति का रहा, जिनके कारण राजस्थान में पहली बार भाजपा को 120 सीटों के साथ पूर्ण बहुमत मिला। कांग्रेस को अपनी लगभग दो तिहाई सीटें गंवानी पड़ीं। गहलोत मंत्रिमंडल के दोनों उपमुख्यमंत्रियों सहित तीस मंत्री चुनाव हार गए। गहलोत सहित सिर्फ 8 मंत्री ही चुनाव जीत पाए।

उस माहौल में जबकि जयपुर शहर में कांग्रेस को शेष चार सीटें हारनी पड़ीं, सिर्फ जयपुर ग्रामीण विधानसभा सीट से बृजकिशोर को जीत हासिल हुई। कांग्रेस का इतना लचर प्रदर्शन हैरान करने वाला था। इंडिया टुडे के सर्वे में गहलोत मुख्यमंत्री नंबर वन थे। सर्वे रिपोर्टों में कांग्रेस सरकार की दो तिहाई बहुमत से वापसी बताई जा रही थी। लेकिन मतदान के आखिरी सप्ताह में बाजी पलटती दिखाई देने लगी। भाजपा ने चुनाव प्रचार में आगे होकर तेजी से सत्ता की चौखट की ओर कदम बढ़ाए। भ्रष्ट कांग्रेसी मंत्रियों की करतूतों, कम-से-कम 41 प्रतिशत विधायकों के हर चुनाव में हारने की वास्तविकता को भुलाकर अधिकांश विधायकों को चुनाव में उतारने और किसानों-कर्मचारियों की नाराजगी के कारण कांग्रेस चुनाव के आखिरी दौर में पिछड़ गई। इस बदले हुए परिदृश्य से गहलोत अनभिज्ञ नहीं थे। वे 'भलावण'* का आसरा ले रहे थे।[45]

लोकसभा चुनाव को लक्ष्य करके चल रही कांग्रेस के समीकरणों और रणनीतियों को इन विधानसभा चुनावों ने तितर-बितर कर दिया। हालांकि दिल्ली में उसे दो-तिहाई बहुमत मिला, लेकिन राजस्थान, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ हाथ से निकल गए। तीनों राज्यों में भाजपा की पूर्ण बहुमत के साथ वापसी हुई। इस सफलता ने सितम्बर, 2004 में होने वाले चौदहवीं लोकसभा के चुनावों को समय से पहले करवाने पर विचार करने के लिए भाजपा में आत्मविश्वास जगा दिया। मीडिया की रिपोर्टों और ओपीनियन पोल्स ने इस आत्मविश्वास को और मजबूत कर दिया कि अगर चुनाव 2004 के पूर्वार्ध में होते हैं तो भाजपा नेतृत्व वाला राजग आसानी से जीत जाएगा। उप प्रधानमंत्री लालकृष्ण आडवाणी, राष्ट्रीय अध्यक्ष एम. वेंकैया नायडू और चुनाव प्रबंधन समिति के प्रभारी बनाए गए केंद्रीय मंत्री प्रमोद महाजन मध्यावधि चुनाव चाहते थे, लेकिन वाजपेयी इसके लिए उत्सुक नहीं थे। उनके घुटनों के दो ऑपरेशन हो चुके थे, इसलिए वे बहुत कम दौरे कर सकते थे। लेकिन जब भाजपा के

---

*'भलावण' मारवाड़ी का वह शब्द है, जो जो मौके पर याद रखने के लिए काम में लिया जाता है; यानी, 'लोग भूलें नहीं'। चुनाव प्रचार में भाजपा के बाजी मारने के कारण मुख्यमंत्री तक के लिए कांग्रेस नेताओं को भलावण देनी पड़ रही थी। दूसरी ओर, खुद गहलोत भी मतदान के एक दिन पहले आधी रात तक जोधपुर शहर के अन्य दो कांग्रेस प्रत्याशियों के लिए भलावण देने में लगे रहे।

अधिकांश नेता समय से पहले चुनाव करवाने के पक्ष में दिखाई दिए तो वाजपेयी ने भी अपनी सहमति दे दी।[46]

अप्रेल, 2004 में चुनाव होना तय हुआ। इस फैसले के बाद कांग्रेस में भी चुनावी रणनीति को लेकर व्यापक स्तर पर विचार-मंथन शुरू हुआ। 7 जनवरी, 2004 को कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक में अन्य दलों के साथ गठबंधन करने का फैसला हुआ। सोनिया की यह घोषणा अधिक आश्चर्यजनक थी कि वे एम. करुणानिधि के द्रमुक और शरद पवार की राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी से हाथ मिलाने का विचार कर रही हैं। पवार से सोनिया खुद मिलीं और चुनाव से पहले गठबंधन करने का फैसला किया। द्रमुक से चर्चा के लिए उन्होंने मनमोहन सिंह को नियुक्त किया, वे चेन्नई जाकर करुणानिधि से मिले। सोनिया ने दिल्ली में द्रमुक के प्रतिनिधिमंडल से भी वार्ता की, जिसका नेतृत्व करुणानिधि के पुत्र एम.के. स्टालिन और पूर्व केंद्रीय मंत्री टी.आर. बालू कर रहे थे। इस मुलाकात में तमिलनाडु में संयुक्त लोकतांत्रिक गठबंधन (पीडीए) बनाकर चुनाव लड़ने का फैसला हुआ, जिसमें कांग्रेस, द्रमुक, भाकपा, माकपा और दो क्षेत्रीय दल एमडीएमके तथा पीएमके शामिल हुए।[47] रामविलास पासवान, लालूप्रसाद यादव, शिबू सोरेन, के. चंद्रशेखर राव आदि नेताओं से बात करने के लिए प्रणब मुखर्जी लगाए गए। वामपंथी नेताओं हरकिशनसिंह सुरजीत और ज्योति बसु से शुरुआती चर्चा सोनिया ने की; बाद में अहमद पटेल और प्रणब मुखर्जी ने वार्ता जारी रखी।[48] उत्तर प्रदेश में बसपा से हाथ मिलाने की भी कोशिश शुरू हुई। एक तरफ, कांग्रेस ने मुलायम सरकार को बाहर से समर्थन दे रखा था; वहीं दूसरी तरफ, 15 जनवरी, 2004 को मायावती के जन्मदिन समारोह में सोनिया की मौजूदगी कुछ नए संकेत दे रही थी। मायावती भी यह घोषणा कर चुकी थीं कि भाजपा से बदला लेने के लिए वे किसी भी हद तक जाने को तैयार हैं*।[49]

बदली परिस्थितियों में मुलायम सिंह को समर्थन देकर सरकार बनवाने की भूमिका बनाने वाले नवलकिशोर की उत्तर प्रदेश में जरूरत नहीं रह गई थी। हरियाणा में भी उस सतत विरोध को रोकना जरूरी था, जिसके द्वारा भजनलाल अपने विरोधियों को दबाना चाहते थे। हुड्डा उनके लिए खास रोड़ा थे, जो अपने को भविष्य के मुख्यमंत्री के रूप में तैयार कर रहे थे और उनको सबसे बड़ा सहयोग नवलकिशोर से मिल रहा था। 19 जनवरी, 2004 को सोनिया ने कांग्रेस संगठन में फेरबदल करते हुए नवलकिशोर को महासचिव के पद से हटा दिया।

---

*राहुल-प्रियंका की उत्तर प्रदेश में सक्रियता और खास तौर पर मायावती से गठबंधन ने पुराने समीकरण बदल दिए। इसकी कीमत नवलकिशोर को चुकानी पड़ी। आगे चलकर इसका फायदा मायावती को मिला। मायावती ने सतीशचंद्र मिश्र के नेतृत्व में ब्राह्मण जोड़ो अभियान शुरू किया। दो वर्षों में जगह-जगह हुए ब्राह्मण सम्मेलनों ने बसपा के पक्ष में जबर्दस्त माहौल तैयार किया। इसे सोशल इंजीयनिरिंग का नाम दिया गया। कभी 'तिलक, तराजू और तलवार, उनको मारो जूते चार' का नारा देने वालों ने नया नारा बनाया, 'ब्राह्मण शंख बजाएगा, हाथी बढ़ता जाएगा।' 2007 में मायावती पूर्ण बहुमत से सरकार बनाने में सफल रहीं। इसका श्रेय मिश्र के जरिए बसपा को प्राप्त हुए ब्राह्मण वोटों को गया। दूसरी तरफ, कांग्रेस लोकसभा और विधानसभा चुनावों में पिछली सफलता को भी नहीं दोहरा सकी। हालांकि केंद्र में सरकार बनने और रायबरेली तथा अमेठी से सोनिया-राहुल की जीत ने उन कमियों को भुला दिया, जो स्पष्ट रूप से नवलकिशोर की अनुपस्थिति में कांग्रेस को भुगतनी पड़ीं। कांग्रेस का परंपरागत आधार और सिमट गया। बसपा और सपा के मुकाबले उसे एक तिहाई वोट भी नहीं मिले। उत्तर प्रदेश में अगले डेढ़ दशक तक सपा-बसपा सत्ता में बने रहे। नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में राष्ट्रीय फलक पर छाई भाजपा ही उत्तर प्रदेश के लोकसभा-विधानसभा चुनाव में परचम फहरा सकी।

चौधरी वीरेंद्र सिंह को भी हरियाणा से दूर किया गया। उन्हें कांग्रेस वर्किंग कमेटी में जगह मिली और उत्तर प्रदेश का प्रभार सौंपा गया। हरियाणा की जिम्मेदारी आर.के. धवन को मिली, जो संजय गांधी के जमाने से भजनलाल के मित्र थे।[50]

सोनिया ने दो नए महासचिव बनाए और वर्किंग कमेटी में पांच विशेष आगंतुक नियुक्त किए। मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में मिली हार का नतीजा अंबिका सोनी ने भुगता; उनसे दोनों राज्यों का प्रभार ले लिया गया। वहीं, इन प्रदेशों के मुख्यमंत्रियों पर गाज नहीं गिरी। अशोक गहलोत और दिग्विजय सिंह दोनों को वर्किंग कमेटी में जगह मिली। गहलोत को हिमाचल प्रदेश और छत्तीसगढ़ की जिम्मेदारी मिली, जबकि सिंह के हिस्से में असम और ओड़िशा का प्रभार आया। गहलोत की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण थी, जिन्हें हिमाचल प्रदेश देख रहे गुलामनबी आजाद और छत्तीसगढ़ संभाल रहे मोतीलाल वोरा से अधिक उपयुक्त माना गया। उसी दौरान राहुल और प्रियंका पार्टी की प्राथमिक सदस्यता लेकर औपचारिक रूप से सक्रिय हुए। हालांकि उनके चुनाव लड़ने को लेकर तब तक स्थिति स्पष्ट नहीं थी। कांग्रेस के प्रधानमंत्री उम्मीदवार को लेकर भी संशय बना हुआ था। पार्टी के नेताओं का कहना था कि सोनिया गांधी ही प्रधानमंत्री पद की दावेदार हैं। वहीं, सोनिया कह रही थीं कि प्रधानमंत्री का चुनाव जनता करेगी और अगर गठबंधन की सरकार बनती है तो गठबंधन के भागीदार दल इसका फैसला करेंगे। सोनिया ने स्पष्ट किया कि वे कांग्रेस द्वारा बनाए गए गठबंधन की सर्वेसर्वा नहीं हैं और न ही उनकी पार्टी ने कभी ऐसा दावा किया है।[51]

कांग्रेस राजस्थान विधानसभा चुनाव में मिली अप्रत्याशित हार को भूली नहीं थी। यह महसूस किया गया कि आक्रामक चुनाव अभियान नहीं चलाने के कारण कांग्रेस को खमियाजा भुगतना पड़ा। लोकसभा चुनाव में यह खतरा नहीं उठाया जा सकता था। राजस्थान की सभी 25 सीटों पर सुनियोजित रूप से प्रचार अभियान चलाने का फैसला हुआ, जिसकी बागडोर परोक्ष रूप से सोनिया और प्रियंका ने संभाली। राजस्थान में कांग्रेस की रणनीति तय करने के लिए होने वाले विचार-विमर्श में नवलकिशोर की महत्वपूर्ण भूमिका थी। यह तय किया गया कि राजस्थान में प्रमुख रूप से भाजपा के विरुद्ध प्रचार पर जोर दिया जाएगा। दूसरी तरफ, वसुंधरा राजे को मुख्यमंत्री पद संभाले 100 दिन पूरे हो गए थे और भाजपा की ओर से भी उपलब्धियां गिनाने की कवायद चालू थी। कांग्रेस की रणनीति का मुख्य बिंदु था, केंद्र और राज्य की भाजपा सरकार को जनता की नजर में अयोग्य साबित करना। ब्राह्मण-जाट समीकरण के तहत गिरिजा व्यास की जगह नारायण सिंह प्रदेश अध्यक्ष बनाए गए और बी.डी. कल्ला को कांग्रेस विधायक दल का नेता चुना गया। कल्ला का राजे सरकार के संदर्भ में कहना था, '100 दिनों के भीतर कोई भी नई परियोजना शुरू नहीं की जा सकती। भाजपा सरकार द्वारा 100 दिनों में अनेक परियोजनाएं चालू करने के दावे से ही यह स्पष्ट है कि उनकी शुरुआत कांग्रेस सरकार के कार्यकाल में हुई थी।'[52]

चुनाव प्रचार के दौरान भाजपा की स्थिति मजबूत नजर आ रही थी और नेतागण आश्वस्त थे। कांग्रेस के पास भाजपा के 'फीलगुड' या 'इंडिया शाइनिंग' जैसे लोकलुभावन नारे भी

नहीं थे। कांग्रेस इस बात को स्वीकार भी कर रही थी कि इन नारों की जनता में व्यापक अपील है। पार्टी का कहना था, 'हम अंततः भाजपा की बराबरी का एक नारा खोज निकालेंगे। ये नारे सफल इसलिए हुए हैं क्योंकि उनके बाद अच्छी बारिश हुई और तीन राज्यों में भाजपा को जीत मिली। हमारा प्रचार तंत्र भी इस पर काम कर रहा है। हम जल्दी ही कुछ ऐसा लेकर आएंगे, जो आकर्षक होगा। कोई प्रभावशाली नारा रातों-रात तैयार नहीं किया जा सकता।'[53] सोनिया ने अपना प्रचार अभियान उत्तर प्रदेश से शुरू किया। मुजफ्फरनगर से मेरठ के पांच लोकसभा क्षेत्रों के दौरे के साथ चुनावी बिगुल फूंकती हुई सोनिया एक नए और आक्रामक स्वरूप में सामने आईं। वे जनसभाओं में बोलने के लिए कागजों का सहारा नहीं ले रही थीं। वाजपेयी सरकार की विफलताओं को उन्होंने अपने भाषणों में प्रमुख मुद्दा बनाया। भाजपा द्वारा उठाए गए विदेशी मूल के विषय पर पलटवार करते हुए सोनिया ने नया विमर्श छेड़ दिया, 'ये लोग एक औरत से इतने डरे हुए क्यों हैं?'[54]

आने वाले दिनों में राजनीतिक हवा नाटकीय ढंग से बदली। कारगिल विजय, परमाणु परीक्षण, स्वर्णिम चतुर्भुज जैसी यादगार सफलताओं के बावजूद वाजपेयी सरकार की लोकप्रियता में सेंध लगती दिखाई दी। प्रतिष्ठित मीडिया संस्थानों की भविष्यवाणी पर जनभावना की मुहर नहीं लग रही थी। अंततः भाजपा का मध्यावधि चुनाव करवाने का दांव कारगर साबित नहीं हुआ। 13 मई, 2004 को मतगणना शुरू हुई तो सुबह ही यह स्पष्ट हो गया कि भाजपा की स्तब्ध कर देने वाली पराजय अवश्यंभावी है।[55] वह 138 सीटों पर सिमटकर रह गई। कांग्रेस को 145 सीटों पर जीत मिली। हालांकि राजस्थान में कांग्रेस विधानसभा चुनाव की ही तरह एक बार फिर पिछड़ गई और 25 में से 21 सीटों पर भाजपा का कब्जा हो गया। उत्तर प्रदेश में गठबंधन की स्पष्ट नीति नहीं होने का नुकसान कांग्रेस और भाजपा दोनों को हुआ। 1999 में उत्तर प्रदेश से भाजपा के 29 लोकसभा सदस्य थे, वे 2004 में 10 ही रह गए। कांग्रेस की भी एक सीट कम होकर 9 रह गई। लेकिन समाजवादी पार्टी के सांसदों की संख्या 26 से बढ़कर 35 हो गई। बसपा को भी पांच सीटों की बढ़त मिली; उसके 19 उम्मीदवार विजयी हुए। कांग्रेस ने 19 राजनीतिक दलों के साथ किसी-न-किसी प्रकार का गठबंधन करके चुनाव लड़ा था। उन सभी को मिलाकर संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) का गठन हुआ। 15 मई को सोनिया सर्वसम्मति से कांग्रेस संसदीय दल की नेता चुन ली गईं। मनमोहन सिंह ने उनका नाम प्रस्तावित किया और प्रणब मुखर्जी ने समर्थन किया। अगले दिन यूपीए और उसके समर्थक दलों ने सोनिया को गठबंधन का प्रधानमंत्री उम्मीदवार चुन लिया।[56]

भयभीत राहुल-प्रियंका ने बदला भविष्य

2004 में सोनिया गांधी का प्रधानमंत्री नहीं बनना अब तक बहुत-से लोगों के लिए राजनीतिक गुत्थी है। ज्यादातर राजनीतिक समीक्षकों ने अनुमान लगाया कि राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम उन्हें प्रधानमंत्री नहीं बनाना चाहते थे। यहां तक कहा गया कि राष्ट्रपति के पास कुछ ऐसे सबूत पहुंचाए गए, जिनके कारण विदेशी मूल की सोनिया को प्रधानमंत्री बनाना संभव

नहीं था। हालांकि गहराई में जाने पर इसकी पुष्टि नहीं होती। निश्चित तौर पर यह सोनिया परिवार का आपसी फैसला था। सोनिया अनिश्चित थीं, लेकिन उनकी संतानें असहज थीं। निर्णायक घटनाक्रम के दौरान 18 मई, 2004 की सुबह अचानक राहुल और प्रियंका एक साथ अर्जुन सिंह के आवास पर पहुंचे। दोनों जल्दबाजी में थे और उनके स्वरों में चिंता के साथ आक्रामकता थी। दोनों का आशय समान था कि कांग्रेस के नेता 'मम्मी' को प्रधानमंत्री बनाकर मरवाना क्यों चाहते हैं? उनका कहना था कि मम्मी किसी सूरत में प्रधानमंत्री नहीं बनेंगी। राहुल-प्रियंका के ड्राइंग रूम में बैठे रहने के दौरान ही अर्जुन ने जयपुर के ख्याति प्राप्त ज्योतिषी पं. केदार शर्मा को मोबाइल लगाया। उन्होंने शर्मा को सभी बातों की जानकारी देते हुए प्रधानमंत्री पद के लिए अपने ग्रहों की स्थिति और भविष्य जानना चाहा। लगभग नौ बजे मुझे यह जानकारी मिली। उसी दोपहर 'महानगर टाइम्स' ने समाचार प्रकाशित कर दिया कि सोनिया के प्रधानमंत्री बनने में संशय है क्योंकि राहुल-प्रियंका उनके जीवन को लेकर भयभीत हैं।[57]

यह सूचना तब तक देश में अन्य किसी भी स्तर पर नहीं थी। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी इन हालात से बेखबर था। उसी दोपहर बारह बजे सोनिया गांधी ने राष्ट्रपति से मुलाकात की। आश्चर्यजनक रूप से मनमोहन सिंह भी साथ थे। सोनिया ने राष्ट्रपति से कहा, 'हमें पर्याप्त सदस्यों का समर्थन प्राप्त है, लेकिन वह पत्र नहीं ला पाई, जिस पर उन सदस्यों द्वारा समर्थन में किए गए दस्तखत हैं।' सोनिया उस पत्र के साथ सरकार बनने के दावे के लिए 19 मई यानी अगले दिन का समय चाहती थीं। राष्ट्रपति ने उनसे कहा कि वे देर क्यों कर रही हैं, यह काम शाम तक पूरा हो सकता है। इसी दौरान अनेक लोगों, संगठनों, राजनीतिक पार्टियों और नेताओं ने विभिन्न माध्यमों के जरिए राष्ट्रपति से कहा कि वे किसी दबाव के आगे कमजोर पड़कर सोनिया को प्रधानमंत्री नहीं बनने दें। कलाम के अनुसार, 'यह निवेदन किसी भी तरह संवैधानिक नहीं था। अगर सोनिया अपने लिए कोई दावा पेश करेंगी तो मेरे पास उसे स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं होगा।'[58]

सोनिया द्वारा प्रधानमंत्री बनने को लेकर स्पष्ट निर्णय नहीं सुनाए जाने से कुछ और नेताओं को भी आस बंधी, लेकिन सोनिया फैसला कर चुकी थीं। उन्होंने नेताओं की बैठक बुलाई। मनमोहन सिंह, प्रणब मुखर्जी, अर्जुन सिंह, शिवराज पाटील, गुलामनबी आजाद, माखनलाल फोतेदार और नटवर सिंह उपस्थित हुए। सोनिया ने वहां बताया कि उन्होंने मनमोहन सिंह को प्रधानमंत्री का पद संभालने के लिए कहा है। मनमोहन ने तुरंत जवाब दिया, 'मैडम, मेरे पास जनमत नहीं है।' सभी चुप बैठे रहे। नटवर सिंह से राय मांगी गई तो उन्होंने मनमोहन से कहा कि जिनके पास जनमत है, वे जनमत उन्हें हस्तांतरित कर रही हैं।[59]

उसी दिन सोनिया ने राष्ट्रपति से दुबारा समय लेकर शाम सवा आठ बजे मुलाकात की। मनमोहन फिर उनके साथ थे। सोनिया ने राष्ट्रपति को गठबंधन वाले दलों का समर्थन पत्र दिया। राष्ट्रपति ने सरकार बनाने वाले योग्य दल के रूप में उनका स्वागत किया और कहा कि राष्ट्रपति भवन उनके बताए समय पर शपथ ग्रहण समारोह के लिए तैयार है। इसके बाद सोनिया ने कहा कि वे प्रधानमंत्री पद के लिए मनमोहन को नामांकित करना चाहती हैं।

कलाम के संस्मरणों के अनुसार, 'यह सचमुच मेरे लिए और राष्ट्रपति भवन के लिए एक अचंभा था। सचिवालय को मनमोहन सिंह को प्रधानमंत्री नियुक्त करते हुए और यथाशीघ्र सरकार बनाने का आमंत्रण देते हुए दूसरा पत्र बनाना पड़ा।'[60] लेकिन यह सोनिया का अनायास या राहुल–प्रियंका के भय से लिया हुआ फैसला नहीं था। 1998 में प्रधानमंत्री पद के लिए समुचित समर्थन नहीं जुटा पाने और 1999 में विदेशी मूल के मुद्दे पर कांग्रेस की हार के साथ ही सोनिया ने अपनी 'भारतीयता' पर जोर देना बंद कर दिया था।

मनमोहन के समर्थन में पत्र देने के बाद ही हालात बदल गए। उस समय का कलाम के साथ सोनिया–मनमोहन का फोटो सार्वजनिक किया गया। उस फोटो के अनुसार मनमोहन राष्ट्रपति से सोनिया की ओर संकेत करके प्रशंसात्मक भाव से कुछ कह रहे थे; कलाम नजर उठाकर सोनिया को देख रहे थे, लेकिन सामने नजदीक खड़ी सत्ता की सूत्रधार सोनिया कुछ उदास और गुमसुम लग रही थीं। अगले परिदृश्य में राष्ट्रपति भवन परिसर में जुटे पत्रकारों से सोनिया और मनमोहन रूबरू हो रहे थे। उस घड़ी के नायक मनमोहन थे; वे ही पत्रकारों के सवालों के जवाब दे रहे थे। लेकिन बगल में मौजूद सोनिया में वे भाव खोजने कठिन थे, जो कुछ देर पहले 10, जनपथ में भावी प्रधानमंत्री के रूप में मनमोहन की घोषणा करते समय थे। उन्होंने पत्रकारों से हो रही उस बातचीत के दौरान मनमोहन से कहा कि राष्ट्रपति से मिला पत्र पत्रकारों को दिखाइए। उस समय वे कुछ उदास और खुद को उपेक्षित महसूस करती हुई–सी लगीं। उस दौरान 10, जनपथ के बाहर कांग्रेसी कार्यकर्ता सोनिया को प्रधानमंत्री बनाए जाने की मांग करते हुए मरने–मारने पर उतारू थे; उसी समय मनमोहन के घर पर उल्लास का माहौल था.. मिठाइयां बांटी जा रही थी, नगाड़े बज रहे थे।[61]

संदर्भ सूची

1. पूर्णिमा एस त्रिपाठी: फ्रंटलाइन, 25 अप्रैल, 2003
2. जयपुर महानगर टाइम्स, 30 जून, 2001
3. गोपाल शर्मा: जयपुर महानगर टाइम्स, 31 अक्टूबर, 2000
4. जनार्दन सिंह गहलोत: संघर्ष से शिखर तक, 2020, पृष्ठ 94
5. गोपाल शर्मा: महानगर टाइम्स, 18 दिसम्बर, 2000
6. द ट्रिब्यून, 28 जनवरी, 2003
7. कमला बोड़ा: रेडिफ.कॉम, 20 दिसम्बर, 2002
8. जी न्यूज वेब, 22 जनवरी, 2003
9. द ट्रिब्यून, 28 जनवरी, 2003
10. वही, 31 मार्च, 2003
11. एम.जी. राधाकृष्णन और लक्ष्मी अय्यर: इंडिया टुडे, 28 अप्रैल, 2003
12. वही
13. पॉल आर. ब्रास: एन इंडियन पॉलिटिशियन लाइफ, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 204, पृष्ठ 299-300
14. इंडिया टुडे, 15 दिसम्बर, 1975
15. रामबहादुर राय: विश्वनाथ प्रताप सिंह-मंजिल से ज्यादा सफर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 122
16. एन.के. सिंह: इंडिया टुडे, 15 अक्टूबर, 1977
17. भास्कर रॉय: इंडिया टुडे,15 अगस्त, 1989
18. वही
19. भास्कर रॉय और प्रभु चावला: इंडिया टुडे, 31 मई, 1990
20. द ट्रिब्यून, 3 मई, 2003
21. राजीव अय्यर: रेडिफ.कॉम, 2 मई 2003
22. द इकोनॉमिक टाइम्स वेब, 3 मई, 2003
23. लक्ष्मी अय्यर: इंडिया टुडे, 19 मई, 2003
24. राजीव अय्यर: रेडिफ.कॉम, 2 मई 2003
25. लक्ष्मी अय्यर: इंडिया टुडे, 19 मई, 2003
26. द इकोनॉमिक टाइम्स वेब, 3 मई, 2003

27. टाइम्स ऑफ इंडिया वेब, 16 मई, 2003
28. इंडियावोट्स.कॉम
29. द ट्रिब्यून, 1 अगस्त, 2003
30. वही, 24 सितम्बर, 2003
31. नवलकिशोर शर्मा साक्षात्कार: रेडिफ.कॉम, 27 जुलाई, 2003
32. टाइम्स ऑफ इंडिया वेब, 30 मई, 2003
33. द ट्रिब्यून, 31 मई, 2003
34. टाइम्स ऑफ इंडिया वेब, 8 जून, 2003
35. द ट्रिब्यून, 15 फरवरी, 2003
36. पीटीआई, 29 जुलाई, 2003
37. अजीत कुमार झा: इंडिया टुडे, 8 सितम्बर, 2003
38. पूर्णिमा एस. त्रिपाठी: फ्रंटलाइन, 26 सितम्बर, 2003
39. सुभाष मिश्रा: इंडिया टुडे, 22 सितम्बर, 2003
40. पूर्णिमा एस. त्रिपाठी: फ्रंटलाइन, 26 सितम्बर, 2003
41. फरजंद अहमद: इंडिया टुडे, 22 सितम्बर, 2003
42. पीटीआई, 20 अगस्त, 2003
43. जी न्यूज वेब, 4 नवम्बर, 2003
44. पीटीआई, 10 नवम्बर, 2003
45. गोपाल शर्मा: जयपुर महानगर टाइम्स, 30 नवम्बर, 2003
46. लालकृष्ण आडवाणी: मेरा देश मेरा जीवन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 617–618
47. पूर्णिमा एस. त्रिपाठी: फ्रंटलाइन, 13 फरवरी, 2004
48. प्रणब मुखर्जी: द कॉलिशन इयर्स, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 70–71
49. पूर्णिमा एस. त्रिपाठी: फ्रंटलाइन, 13 फरवरी, 2004
50. प्रभजोत सिंह: द ट्रिब्यून, 21 जनवरी, 2004
51. पूर्णिमा एस. त्रिपाठी: फ्रंटलाइन, 13 फरवरी, 2004
52. फाइनेंशियल एक्सप्रेस वेब, 16 अप्रेल, 2004
53. पूर्णिमा एस. त्रिपाठी: फ्रंटलाइन, 13 फरवरी, 2004
54. अजीत कुमार झा: इंडिया टुडे, 26 जनवरी, 2004
55. लालकृष्ण आडवाणी: मेरा देश मेरा जीवन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 619
56. प्रणब मुखर्जी: द कॉलिशन इयर्स, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 68

57. जयपुर महानगर टाइम्स, 18 मई, 2004
58. ए.पी.जे. अब्दुल कलामः टर्निंग पॉइंट्स, राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 121
59. के. नटवर सिंहः वन लाइफ इज नॉट इनफ, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 330
60. ए.पी.जे. अब्दुल कलामः टर्निंग पॉइंट्स, राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 122
61. गोपाल शर्माः जयपुर महानगर टाइम्स, 21 मई, 2004

भाग: पांच

गांधी की भूमि पर गांधीवादी

राज्यपाल का आदर्श कार्यकाल

मैं जब भी पं. नवलकिशोर शर्मा की तरफ देखता हूं तो यह अनुभव करता हूं कि उनका व्यक्तित्व संघर्ष और सृजनात्मकता के मेल से बना है। संविधान का शब्दशः पालन करते हुए, उसे प्राणवान रखते हुए निरंतर पांच साल तक उसे निभाना.. यह व्यक्तित्व में बहुत ऊंचाई होने पर ही संभव होता है। मैंने इस ऊंचाई का अनुभव किया है। राज्य की धुरी चलाने में एक पिता की तरह उन्होंने मेरा मार्गदर्शन किया है। बहुत कम सौभाग्यशाली मुख्यमंत्री होंगे, जिनको ऐसे राज्यपाल मिले हों।

–नरेंद्र मोदी

5 जुलाई, 2004 को नवलकिशोर शर्मा का 80वां जन्मदिन था। उसी दिन उन्हें गुजरात का राज्यपाल बनाए जाने की औपचारिक सूचना मिली*। शुभचिंतकों की ओर से बधाई संदेशों का तांता लग गया। लेकिन नवलकिशोर और उनके परिजनों के लिए एक दुख इस दोहरी खुशी पर भारी पड़ रहा था। घर की वरिष्ठतम महिला, नवलकिशोर की धर्मपत्नी मनभरी देवी (मुन्नी देवी) जयपुर के सवाई मान सिंह अस्पताल के आईसीयू में मौत से जूझ रही थीं। जीवनसंगिनी के अपार कष्ट को देखकर नवलकिशोर व्यथित थे। राज्यपाल बनाए जाने की सूचना नवलकिशोर के लिए उन हृदय विदारक घड़ियों में यदि कोई गम लेकर नहीं आई थी, तो उनको उससे खुशी भी महसूस नहीं हुई।

अस्पताल में शुभचिंतकों की आवाजाही बढ़ गई। लोग फूलों का गुलदस्ता लेकर आते और नवलकिशोर को राज्यपाल बनने की बधाई देते। नवलकिशोर के विधायक पुत्र बृजकिशोर शर्मा भी मोबाइल पर व्यस्त नजर आ रहे थे। कई लोग उनके जरिए ही

---

*मई, 2004 में यूपीए की सरकार बनते ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की पृष्ठभूमि वाले राज्यपालों को कार्यकाल पूरा होने से पहले हटाए जाने की अपुष्ट खबरें आने लगी थीं। 2 जुलाई को राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने उत्तर प्रदेश के राज्यपाल विष्णुकांत शास्त्री, हरियाणा के राज्यपाल बाबू परमानंद, गोवा के राज्यपाल केदारनाथ साहनी और गुजरात के राज्यपाल कैलाशपति मिश्र को हटाने का आदेश जारी किया। इन सभी राज्यों में गैर-कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों का शासन था; उत्तरप्रदेश में मुलायमसिंह यादव (समाजवादी पार्टी), गोवा में मनोहर पर्रिकर (भाजपा), हरियाणा में ओमप्रकाश चौटाला (भारतीय राष्ट्रीय लोक दल), गुजरात में नरेंद्र मोदी (भाजपा)। आपातकालीन परिस्थितियों में राज्यपाल की भूमिका निभाने के लिए उत्तरांचल के राज्यपाल सुदर्शन अग्रवाल को उत्तरप्रदेश, पंजाब के राज्यपाल ओमप्रकाश वर्मा को हरियाणा, महाराष्ट्र के राज्यपाल मोहम्मद फजल को गोवा और मध्यप्रदेश के राज्यपाल बलराम जाखड़ को गुजरात का अतिरिक्त प्रभार सौंपा गया। (प्रेस विज्ञप्ति, राष्ट्रपति सचिवालय, 2 जुलाई, 2004) इसके तीन दिन बाद उत्तर प्रदेश में टी.वी. राजेश्वर, हरियाणा में ए.आर. किदवई, गोवा में एस.सी. जमीर और गुजरात में नवलकिशोर शर्मा को नियुक्त किए जाने की घोषणा हो गई। (प्रेस विज्ञप्ति, राष्ट्रपति सचिवालय, 5 जुलाई, 2004)

नवलकिशोर से संपर्क कर रहे थे। बृजकिशोर अपने पिता को मोबाइल देकर बीमार मां को देखने अंदर चले जाते। आगंतुकों को बेसन के लड्डू खिला रहे परिजनों के चेहरे पर खुशी और दुख के मिले-जुले भाव नजर आ रहे थे। आईसीयू के छोटे से कक्ष में बैठे नवलकिशोर स्थिर भाव से बधाई संदेश सुनते और पत्रकारों के सवालों के संक्षिप्त जवाब देते।[1] वे कहते, 'मुझे न कोई खुशी है और न ही कोई मलाल। मेरे अनुभव को देखते हुए पार्टी ने जो उपयुक्त समझा, वह किया और मैं उसे सहर्ष स्वीकार करता हूं।' सबसे अधिक पूछा जाने वाला सवाल यह था कि वे राज्यपाल के पद की शपथ कब ले रहे हैं? नवलकिशोर एक ही जवाब दे रहे थे, 'मुझे अभी राष्ट्रपति का आदेश प्राप्त नहीं हुआ है, इसलिए अभी नहीं कह सकता कि अपना नया दायित्व संभालने कब जाऊंगा।'[2]

पत्रकारों के पास नवलकिशोर के लिए कई सवाल थे। नवलकिशोर धैर्यपूर्वक और सधे हुए शब्दों में अपने जवाब दोहरा रहे थे। उनका कहना था:

> सक्रिय राजनीति में रहने की एक उम्र होती है। मैंने इसका अहसास करते हुए न तो विधानसभा का चुनाव लड़ा और न ही लोकसभा में प्रत्याशी बना। आखिर नई पीढ़ी के लिए स्थान भी तो खाली करना होता है। वैसे मैं उम्र से जरूर बुजुर्ग हो सकता हूं, लेकिन मानसिक रूप से काफी सुदृढ़ महसूस करता हूं। राज्यपाल का पद एक संवैधानिक पद है। संविधान के दायरे में रहकर ही अपनी भूमिका निभाऊंगा। जहां जरूरत होगी, वहां पूर्व राज्यपालों और सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों तथा सरकारिया आयोग* की सिफारिशों को देखकर अपना फैसला करूंगा। किसी भी राज्य में कानून और व्यवस्था जैसी परिस्थितियों को देखना राज्यपाल का काम नहीं है। यह दायित्व राज्य सरकार का है। संवैधानिक रूप में यदि कोई समस्या हो तो राज्यपाल की भूमिका सामने आती है।'[3]

पत्नी की दशा को लेकर नवलकिशोर चिंतित थे, लेकिन सरकार द्वारा सौंपी गई जिम्मेदारी को भी महसूस कर रहे थे। उसी दौरान उन्हें गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी का औपचारिक टेलीफोन प्राप्त हुआ, जो पद की गरिमा बनाए रखने के लिए और प्रोटोकॉल के लिहाज से बधाई स्वरूप था। मोदी के लिए भाजपा विगत का राज्यपाल हटाया जाना निश्चय ही अनुचित था, लेकिन नवलकिशोर को राज्यपाल बनाए जाने पर उन्होंने कोई विपरीत प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। मोदी किंचित संतुष्ट थे कि आने वाले राज्यपाल सैद्धांतिक धारा का प्रतिनिधित्व करने वाले गांधीवादी हैं। संक्षिप्त टेलीफोन वार्ता में मोदी को मुन्नी देवी के अस्वस्थ होने का

---

*विभिन्न संवैधानिक व्यवस्थाओं की कार्यप्रणाली की समीक्षा के लिए 1983 में न्यायमूर्ति आर.एस. सरकारिया की अध्यक्षता में गठित आयोग ने पांच वर्षों के अध्ययन और विमर्श के बाद 1600 पेज की रिपोर्ट तैयार की। इसमें एक महत्वपूर्ण हिस्सा राज्यपालों की नियुक्ति और उनके दायित्वों से संबंधित था।

पता चला तो उन्होंने तत्काल प्रस्ताव रखा कि उनका इलाज अहमदाबाद में बेहतर हो सकता है। व्यक्तिगत संबंधों और भावनात्मक लगाव की कद्र करने वाले नवलकिशोर ने मोदी के प्रस्ताव को कृतज्ञ भाव से लिया। यह बात अलग थी कि मुन्नी देवी तब कहीं और ले जाए जाने की स्थिति में नहीं थीं।[4]

केंद्र सरकार द्वारा राज्यपालों की बर्खास्तगी को लेकर देश भर में बयानबाजी हो रही थी। लोकसभा में नेता प्रतिपक्ष लालकृष्ण आडवाणी और राज्यसभा में नेता प्रतिपक्ष जसवंत सिंह ने प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह से मुलाकात करके इस फैसले का विरोध किया।[5] भाजपा के राज्यसभा सांसद बी.पी. सिंघल ने राज्यपालों की बर्खास्तगी को असंवैधानिक बताते हुए सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी*।[6] यह माना जा रहा था कि नए राज्यपालों के लिए एजेंडा सुस्पष्ट है और उनसे संबंधित राज्य सरकारों पर तीखी नजर रखने की आशा की जाएगी।

कांग्रेस की तत्कालीन कार्यशैली ऐसी थी कि गुजरात में नवलकिशोर के जरिए कोई बड़ा दांव खेले जाने को लेकर कई लोग उम्मीद लगाए बैठे थे। आठ वर्षों की प्रतीक्षा के बाद केंद्र में कांग्रेस को सत्ता का सुख मिला था। यह वही पार्टी थी, जिसका चार दशक से अधिक समय तक भारतीय राजनीति पर लगभग एकाधिकार रहा था। सत्ता में लौटने के बाद कांग्रेस ने सबसे पहले देश भर के राजभवनों पर निशाना साधा। एक महीने के भीतर छह राज्यपाल नियुक्त किए और चार राज्यपालों को बर्खास्त कर दिया। छह महीने की अवधि में कम-से-कम 17 राज्यों के राज्यपालों को इधर-उधर किया गया। राज्यपाल के पद का इस्तेमाल वफादारों को पुरस्कृत करने और विरोधियों को निर्वासन में भेजने के लिए किया जाने लगा। लगभग सभी बड़े राज्यों में कांग्रेस ने अपने लोगों को नियुक्त किया। केंद्रीय गृह मंत्री शिवराज पाटिल ने बेधड़क ऐलान कर दिया कि राज्यपालों को विचारधारा के स्तर पर केंद्र के समरूप होना चाहिए।[7]

विपक्षी दलों की सरकारों को निशाने पर लेने के साथ, अपनी पार्टी के समीकरणों को भी ध्यान में रखा गया। पूर्व मुख्यमंत्रियों एस.एम. कृष्णा, सुशील कुमार शिंदे और एस.सी. जमीर को राज्यपाल का पद देकर यह सुनिश्चित किया गया कि वे अपने राज्यों से बाहर रहें ताकि वहां पार्टी की अंदरूनी शांति बनी रहे। 1999 से 2004 के बीच कर्नाटक के मुख्यमंत्री रहे कृष्णा को महाराष्ट्र का राज्यपाल बनाने का फैसला हुआ, जबकि 2004 के विधानसभा चुनाव में वे विजयी हुए थे। त्रिशंकु परिणाम के बावजूद कांग्रेस की सरकार बनने की प्रबल संभावना भी थी। लेकिन कृष्णा के लिए दिल्ली में फरमान जारी हो चुका था। उस समय वे चीन के दौरे पर थे। वे दिल्ली लौटे और सोनिया गांधी से मिलने के लिए इंतजार में रहे। आखिरकार, उन्हें आलाकमान का फैसला मानना पड़ा। कांग्रेस ने सहयोगी

---

*सर्वोच्च न्यायालय ने बी.पी. सिंघल की याचिका पर लगभग छह वर्ष बाद फैसला दिया कि सत्ता परिवर्तन होने पर राज्यपालों को मनमाने ढंग से नहीं बदला जा सकता। मुख्य न्यायाधीश के.जी. बालकृष्णन की अध्यक्षता में पांच न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ ने अपने आदेश में कहा कि राज्यपाल को केवल सत्यापित कदाचार और अन्य अनियमितताओं के अकाट्य कारणों के आधार पर ही हटाया जा सकता है। (टाइम्स ऑफ इंडिया (वेब), 7 मई, 2010)

दलों को भी थोड़े अधिकार दिए। बिहार में रामा जोइस और तमिलनाडु में पी.एस. राममोहन राव को हटाकर राजद और डीएमके के लिए रास्ता तैयार किया गया। दरअसल, तमिलनाडु की तत्कालीन मुख्यमंत्री जयललिता द्वारा राव को पद पर बनाए रखने से जुड़ी असफल याचिका ने ही राज्यपालों के व्यापक निष्कासन का सूत्रपात किया। भाजपा द्वारा नियुक्त किए गए जोइस, राव और पंजाब के राज्यपाल ओमप्रकाश वर्मा ने बिना किसी प्रतिरोध के इस्तीफे सौंप दिए।[8]

उन वरिष्ठ नेताओं को भी ध्यान में रखा गया, जो चुनाव में हार गए थे या जिन्हें सरकार में शामिल नहीं किया जा सका था। इनमें बलराम जाखड़ को मध्य प्रदेश, रघुनंदनलाल भाटिया को केरल, ए.आर. किदवई को हरियाणा में राज्यपाल नियुक्त किया गया। इनके अलावा जनरल एस.एफ. रोड्रिग्वेज (पंजाब), रामेश्वर ठाकुर (ओड़िशा), बी.एल. जोशी (दिल्ली) और बूटा सिंह (बिहार) को गांधी परिवार के करीबी होने का लाभ मिला।[9] इसी दौरान माखनलाल फोतेदार को भी राज्यपाल पद की पेशकश हुई। सोनिया गांधी के राजनीतिक सलाहकार अहमद पटेल ने उनसे मुलाकात की और मनपसंद राज्य का राज्यपाल बनने का प्रस्ताव रखा। फोतेदार भांप गए कि यह उन्हें सक्रिय राजनीति से दूर करने की कोशिश है। उन्होंने प्रस्ताव ठुकरा दिया। उन्होंने कारण बताया कि वे इस काम के लिए उपयुक्त नहीं हैं और इसके बजाए यथाक्षमता पार्टी की ही सेवा करना पसंद करेंगे। उन्होंने यह भी याद दिलाया कि वे कई राज्यपालों को नियुक्त कर चुके हैं और अब उन्हें ही राज्यपाल बनाकर भेजने की बात हो रही है![10]

राजनीतिक विचारधारा के आधार पर व्यापक रूप से राज्यपालों को नियुक्त करना और हटाना एक नई परिपाटी को जन्म दे रहा था। इस संदर्भ में संविधान समीक्षा आयोग का कहना था, 'राज्यपालों के चयन और नियुक्ति के मामले में राष्ट्रपति की शक्तियों को कम नहीं किया जाना चाहिए।' साथ ही, उसने यह भी सिफारिश की, 'किसी राज्य के राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा उस राज्य के मुख्यमंत्री के परामर्श के बाद ही करनी चाहिए।' राजग के 6 वर्षों के शासनकाल में एक भी राज्यपाल की नियुक्ति संबंधित राज्य के मुख्यमंत्री के परामर्श, बल्कि अनुमोदन के बिना नहीं की गई थी। यह आश्चर्यजनक था कि इंदिरा गांधी और राजीव गांधी के प्रधानमंत्री रहते प्रमुख सचिव रहे डॉ. पी.सी. अलेक्जेंडर को राजग सरकार ने दोबारा राज्यपाल नियुक्त किया। मेघालय के राज्यपाल एम.एम. जैकब को भी दोबारा अवसर दिया गया, जबकि वे राजीव गांधी के मंत्रिमंडल में मंत्री रहे थे।[11]

खास तौर पर नवलकिशोर जैसे धुरंधर माने जाने वाले नेता के चयन के पीछे गुजरात की संवेदनशील स्थिति की पृष्ठभूमि में ध्रुवीकरण की चुनौती को महसूस किया गया। राजनीति की सूक्ष्म उठापटक को समझने में निष्णात नवलकिशोर को मोदी सरकार की गतिविधियों से केंद्र सरकार को अवगत रखने के लिए नियुक्त प्रतिनिधि के रूप में देखा जा रहा था। इन अटकलों के बीच पत्रकारों द्वारा पूछे जा रहे सवालों पर नवलकिशोर तटस्थ प्रतिक्रिया दे रहे थे। उनका कहना था:

मैंने अभी अपना पदभार न तो ग्रहण किया है और न ही नियुक्ति पत्र प्राप्त किया है। इसलिए इतना ही कह सकता हूं कि कहीं भी राज्यपाल की नियुक्ति के लिए व्यापक रूप से कोई मानदंड निर्धारित नहीं किए गए हैं। सरकार जिन्हें चाहती है, उनकी नियुक्ति कर देती है। आप किसी को भी इस पद पर नियुक्त करें, इसके खिलाफ कुछ भी कहा जा सकता है। यदि भारतीय प्रशासनिक सेवा, विदेश सेवा या सेना के किसी अधिकारी को इस पद पर नियुक्त किया जाए तो भी यह तोहमत लगाई ही जा सकती है कि पद पर रहते इनका अमुक राजनीतिक दल से खास संबंध रहा है। यह समय है कि सभी दल मिलकर इस मुद्दे पर बातचीत करें ताकि इस समस्या का समाधान हो सके।[12]

नवलकिशोर के राज्यपाल बनने से पहले राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम भी गुजरात का दौरा कर चुके थे। कलाम का दौरा निश्चित हुआ तो प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने भी उनसे पूछा था, 'आप क्या इस समय अपने गुजरात दौरे को जरूरी समझते हैं?' कलाम का उत्तर था, 'मैं इसे अपनी एक जरूरी जिम्मेदारी समझता हूं, जिससे मैं उनके दर्द को कुछ कम कर सकता हूं। मैं वहां मानसिक एकता का माहौल बना सकता हूं, जिस पर मैंने अपने शपथ ग्रहण समारोह में जोर दिया था।' कलाम के अनुसार, 'इस संबंध में बहुत-सी शंकाएं व्यक्त की गई थीं; जैसे, मुख्यमंत्री मेरे दौरे का बहिष्कार करेंगे, मेरा अधमना स्वागत होगा, मुझे बहुत तरफ से विरोध का सामना करना पड़ेगा। लेकिन मेरे लिए यह एक बड़ा आश्चर्य था कि न केवल मुख्यमंत्री बल्कि उनका पूरा मंत्रिमंडल, बहुत से विधायक, अधिकारी और बड़ा जनसमुदाय एयरपोर्ट पर उपस्थित था। मैंने बारह क्षेत्रों, तीन राहत कैंप और उन नौ दंगा प्रभावित क्षेत्रों का दौरा किया, जिनमें बहुत अधिक नुकसान हुआ था। मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी मेरी यात्रा के समय लगातार मेरे साथ रहे। एक तरह से इसका फायदा मुझे यह हुआ कि जब मेरे सामने दावे और शिकायतें पेश हुईं, वे मेरे साथ थे और मैं उनसे कह सका कि उन पर जितनी जल्दी हो सकेगा, कार्यवाही की जाएगी।'[13]

दो दिन के दौरे के बाद कलाम के पास राज्य सरकार के खिलाफ कहने को कुछ नहीं था। उन्होंने संवाददाता सम्मेलन बुलाकर एक वक्तव्य के जरिए अपने विचार व्यक्त किए, 'एक गंभीर आंदोलन इस अभीष्ट को लेकर चलाने की जरूरत है कि सांप्रदायिकता और किसी भी तरह के कलह को समाज से पूरी तरह से मिटाया जाए और मानसिक एकता का वातावरण बने।'[14]

नवलकिशोर पदभार संभालने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो पाते, उससे पहले ही उनकी जीवनसंगिनी का देहांत हो गया। 6 जुलाई को दोपहर 2 बजकर 40 मिनट पर 75 वर्षीय मुन्नी देवी ने अंतिम सांस ली। हर कदम पर साथ निभाने वाली धर्मपारायण पत्नी का निधन नवलकिशोर के लिए गहरा आघात था। उनके ससुराल प्रवेश से ही नवलकिशोर का भाग्योदय शुरू हुआ था और वह सफर उनके आखिरी सांस लेने तक जारी रहा। सामान्य शिक्षित लेकिन

अत्यंत मृदुभाषी, मिलनसार और ममता की प्रतिमूर्ति मुन्नी देवी हमेशा नवलकिशोर के साथ कदम से कदम मिलाकर चलीं। घर परिवार की जिम्मेदारियों को उन्होंने बखूबी निभाया और नवलकिशोर के सार्वजनिक जीवन की सक्रियता में कोई बाधा नहीं आने दी। उन्होंने नवलकिशोर के पास आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से अपने परिवार के सदस्य की भांति ही व्यवहार किया। मुन्नी देवी के निधन के समय नवलकिशोर, उनके बड़े भाई, दोनों पुत्र, पुत्र वधुओं सहित पूरा परिवार अस्पताल में मौजूद था। वे मुन्नी देवी की पार्थिव देह को घर ले गए। यह दुखद समाचार मिलते ही विभिन्न क्षेत्रों के गणमान्य व्यक्ति जयपुर की जनता कॉलोनी स्थित नवलकिशोर के आवास पर जुटने लगे। मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे परिवार को सांत्वना देने पहुंचीं। अशोक गहलोत, कमला बेनीवाल, शांति धारीवाल, सी.पी. जोशी, रामसिंह विश्नोई, हरिसिंह महुवा, देवीसिंह भाटी, बी.डी. कल्ला, डॉ. रघु शर्मा..राजस्थान के अनेक बड़े नेता एक-एक करके पहुंचते गए। देर रात तक सांत्वना प्रकट करने वालों का तांता लगा रहा।[15]

7 जुलाई की सुबह मुन्नी देवी को श्रद्धांजलि देने के लिए उनके आवास पर भीड़ जुटनी शुरू हो गई। मुन्नी देवी के पार्थिव शरीर पर राजस्थान के राज्यपाल मदनलाल खुराना, गुजरात के प्रभारी राज्यपाल बलराम जाखड़ और मुख्यमंत्री मोदी की ओर से पुष्पचक्र चढ़ाकर श्रद्धांजलि अर्पित की गई। इसके बाद शवयात्रा निकली और करीब साढ़े नौ बजे आदर्श नगर श्मशान पहुंची। 10 बजकर 39 मिनट पर ज्येष्ठ पुत्र बृजकिशोर ने मां की चिता को मुखाग्नि दी। वहां चार पूर्व मुख्यमंत्री अशोक गहलोत, शिवचरण माथुर, जगन्नाथ पहाड़िया और हीरालाल देवपुरा, प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष नारायण सिंह, कांग्रेस विधायक दल और प्रतिपक्ष के नेता बी.डी. कल्ला, महामंत्री अश्कअली टांक, शिक्षा मंत्री घनश्याम तिवाड़ी, सार्वजनिक निर्माण विभाग मंत्री राजेन्द्र राठौड़ सहित विभिन्न दलों के प्रमुख नेता उपस्थित थे। कई पत्रकार, प्रशासनिक अधिकारी, पुलिस अफसर, विभिन्न सामाजिक संगठनों के प्रतिनिधि और गणमान्य नागरिक भी अंत्येष्टि में शामिल हुए।[16]

उसके बाद भी मैं नवलकिशोर से मिलने गया। वे पत्नी शोक में थे, लेकिन राजनीतिक बातचीत से किनारा नहीं कर रहे थे। मैंने उनसे मोदी से अपने अनुभवों के बारे में बताया, जब कन्याकुमारी से श्रीनगर के लालचौक तक की एकता यात्रा में मैं एक महीने तक साथ रहा था। खासतौर पर कार्यकर्ताओं के प्रति संवेदनशीलता, आतंकवाद के गंभीर खतरों के बीच अद्‌भुत साहस और संगठन कौशल्य ने मुझे प्रभावित किया था। नवलकिशोर ने इस पर कोई टिप्पणी नहीं की, लेकिन उनका कहना था कि जमीन और संस्कार से जुड़ा व्यक्ति किसी भी परिस्थिति का मुकाबला करने में सक्षम होता है। उन्होंने मोदी से टेलीफोन पर हुई बातचीत के बारे में भी बताया। वे इस बात पर आश्चर्यचकित थे कि अन्य राज्यों की तरह मोदी ने राज्यपाल की नियुक्ति के पीछे राजनीति देखने की कोशिश नहीं की थी। नवलकिशोर ने चाहा कि उनके शपथ ग्रहण के समय मैं गांधीनगर आऊं; उनकी इच्छा मेरे लिए आदेश की तरह थी।

पत्नी के देहावसान से जुड़े सभी कर्मकांड पूरे होने के बाद नवलकिशोर ने शपथ ग्रहण के लिए 24 जुलाई, 2004 की तारीख तय की। पांच दशक से अधिक की राजनीतिक

सक्रियता के बाद वे दलीय सीमाओं से बाहर जा रहे थे। राजस्थान के कांग्रेसजनों के लिए यह 'बाबूजी' की विदाई का माहौल था। नवलकिशोर के आवास पर नेताओं-कार्यकर्ताओं और आम लोगों की आवाजाही तेज होने लगी। जयपुर-दौसा-अलवर की जनता से गहरे तक जुड़े रहे नवलकिशोर से मिलते समय लोगों की आंखें छलछला रही थीं। उनके निकटवर्ती लोगों को लग रहा था कि अब उनके बाबूजी गुजरात के ही होकर रह जाने वाले हैं; विभिन्न अवसरों पर भले जयपुर-दौसा आना-जाना हो जाए, लेकिन राज्यपाल बनने के बाद स्थितियां बदल जाने वाली हैं। नवलकिशोर के चरण स्पर्श करने वालों का श्रद्धाभाव देखते ही बनता था। नवलकिशोर भी इस स्थिति को समझ रहे थे और विदाई भाव से ही लोगों की मालाएं स्वीकार कर रहे थे। पत्नी के देहावसान के बारह दिन पूरे होने के बावजूद उन्होंने सिर्फ नाम भर के अपने ड्राइंग रूम में आने-जाने वालों के बैठने के लिए पहले की तरह ही बिछायत करवाई हुई थी। साधारण-सी दरी पर जाजम बिछी हुई थी, जिस पर घुटनों के दर्द के बावजूद राजस्थान की कांग्रेस राजनीति के महारथी ब्राह्मण नेता नीचे बैठकर लोगों से हाल-चाल पूछते और अपने स्वभाव के अनुरूप सपाट लहजे में साफ-साफ बात करते। परिवार से शोक की छाया हटी नहीं थी। कामकाज में नियमितता आने के बावजूद घर में घोर निस्तब्धता की छाया विद्यमान थी, जो परिवार में आई कमी की कहानी खुद-ब-खुद बयान कर देती थी।[17]

शपथ लेने से पहले नवलकिशोर दिल्ली जाकर कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी और गृह मंत्री शिवराज पाटिल से मिले। राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम और उपराष्ट्रपति भैरोंसिंह शेखावत से भी उनकी चर्चा हुई।[18] दिल्ली से जयपुर लौटने के बाद 23 जुलाई को उन्हें गांधीनगर रवाना होना था। सुबह से ही उनके आवास पर कांग्रेस नेताओं और शुभचिंतकों की लंबी कतार लगनी शुरू हो गई। पत्रकारों से बात करते समय नवलकिशोर राजस्थान के दो पूर्व मुख्यमंत्रियों के बीच बैठे थे। उनके एक ओर हीरालाल देवपुरा और दूसरी ओर जगन्नाथ पहाड़िया थे। नवलकिशोर से पूछा गया कि उन्हें सबसे ज्यादा याद किसकी आएगी। उन्होंने तुरंत कहा, 'अपने मित्रों और निर्वाचन क्षेत्र के लोगों की।' राज्यपाल के रूप में प्राथमिकताओं के संबंध में नवलकिशोर ने कहा कि गुजरात में अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों के बीच अविश्वास का माहौल घर कर गया है। उनकी कोशिश होगी कि रचनात्मक कार्यों के माध्यम से खोए हुए विश्वास को फिर से बहाल करें। पत्रकार वार्ता के बाद नवलकिशोर राजस्थान के राज्यपाल मदनलाल खुराना के आमंत्रण पर अल्पाहार के लिए राजभवन पहुंचे। खुराना ने उन्हें प्रदेश की जनता की ओर से शॉल ओढ़ाकर सम्मानपूर्वक विदाई दी।[19]

घर से एयरपोर्ट के लिए निकलते समय परिजनों ने नवलकिशोर को तिलक लगाया और माला पहनाकर अभिनंदन किया। राजस्थान पुलिस की टुकड़ी ने गार्ड ऑफ ऑनर दिया। गुजरात राजभवन से आए ए.डी.सी. ने राजस्थान राजभवन से आई कार का दरवाजा खोला और नवलकिशोर मुस्कुराते हुए कार में बैठ गए। एयरपोर्ट पर वे कार से उतरकर वीआईपी लाउंज में जाकर बैठे। वहां मौजूद लोगों ने उन्हें फूल मालाओं से लाद दिया। एयरपोर्ट पहुंचे सैकड़ों शुभचिंतकों और समर्थकों की भावनाओं से नवलकिशोर अभिभूत हो गए। प्रदेश

कांग्रेस के नेताओं सहित अनेक गणमान्य व्यक्तियों ने उन्हें भावभीनी विदाई दी। गुजरात सरकार के विशेष विमान में चढ़ने के बाद नवलकिशोर ने हाथ हिलाकर सभी का अभिवादन किया। उनकी मुद्रा से प्रतीत हो रहा था, जैसे वे राजनीतिक सक्रियता से विदाई ले रहे हों।[20]

नवलकिशोर के अहमदाबाद के सरदार वल्लभभाई पटेल एयरपोर्ट पहुंचते ही नरेंद्र मोदी विमान में उनकी अगवानी करने गए और पुष्पगुच्छ देकर उनका स्वागत किया। स्वागत के बाद नवलकिशोर विमान की सीढ़ियां उतरने लगे और मोदी उनके पीछे चले। इसी बीच अंतिम सीढ़ी पर पहुंचकर नवलकिशोर का संतुलन बिगड़ गया और वे गिरने लगे। उसी समय पीछे आ रहे मोदी ने तत्काल हाथ का सहारा देकर उन्हें संभाला।[21]

नवलकिशोर-मोदी में साम्य और वैचित्र्य

गांधीनगर के टाउन हॉल में शपथग्रहण के क्षणों में नवलकिशोर भावुक थे। घुटनों में लंबे समय से दर्द के कारण मंच की इनी-गिनी सीढ़ियों पर वे आहिस्ता-आहिस्ता चढ़े। कांग्रेस की आधी सदी की सक्रिय राजनीति के साक्षी रहे नवलकिशोर को शायद अहसास हो रहा था कि वे कितनी महत्वपूर्ण जिम्मेदारी के निर्वहन के लिए महात्मा गांधी की धरती पर संवैधानिक प्रमुख का दायित्व देकर भेजे गए हैं। गांधीनगर का आसमान साफ था और दूर-दूर तक बादलों के कहीं निशान नहीं थे। शपथ लेते समय नवलकिशोर खुर्राट राजनेता नहीं बल्कि एक लोकतांत्रिक प्रतिनिधि की दृढ़ता लिए हुए थे, जिन्होंने करीब चार दशक पहले जयपुर राजघराने के प्रतिनिधि को शिकस्त देकर राजनीतिक जीवन की मजबूत आधारशिला रखी थी। उनके भावुक हुए चेहरे से विनम्रता-सदाशयता और कहीं मन के कोने में छिपे संकल्प के भाव महसूस किए जा सकते थे। गुजरात से कहीं अधिक चर्चित हो चले मुख्यमंत्री मोदी उनके ठीक पीछे चल रहे थे। गुजरात में संघ-भाजपा पृष्ठभूमि का राज्यपाल हटाकर कांग्रेस विगत का राज्यपाल बनाए जाने की कटुता कहीं नजर नहीं आ रही थी।

गुजरात वाले भाजपा को भाजप और गुजरात को कल्पनाओं का हिन्दू प्रदेश बोलते थे। शपथग्रहण वाले टाउन हॉल में ये भाजप नेता-मंत्री सामान्यतया खुश दिखाई दे रहे थे और यह भाव तो कत्तई नजर नहीं आया कि वे जबरन थोपे गए कांग्रेसी राज्यपाल के शपथ ग्रहण में शामिल होने को मजबूर हैं। दूसरी ओर, गुजरात के कांग्रेस नेता जैसे स्वभावतः मायूस हो चले थे। गुजरात कांग्रेस अध्यक्ष वी.के. गढ़वी राजस्थान कांग्रेस अध्यक्ष नारायण सिंह से भी उन्नीस ही ठहरते थे। दोनों को उपयुक्त सीटें खोजने में भी दिक्कतें आईं; आगे-पीछे होते रहे। नारायण सिंह फिर भी आगे की पंक्ति में कुर्सी पा गए, लेकिन गढ़वी के लिए तो कोई आगे की सीट खाली करने को तैयार नहीं हुआ। वे पीछे की सीट पर ही बैठे। अपनी सहजता-सादगी से सभी जगह लाभ पा जाने वाले बी.डी. कल्ला को आसानी से गुजरात के मंत्रियों के बीच कुर्सी मिल गई। टाउन हॉल बड़ी संख्या में पहुंचे नवलकिशोर के समर्थकों से ठसाठस भर गया। राजस्थान के सैकड़ों लोग अपने 'बाबूजी' के राज्यपाल बनने की ऐतिहासिक घटना के गवाह बनने अपने-अपने साधनों से और जेब से पैसे लगाकर गांधीनगर पहुंचे थे।

कांग्रेस की आंख की किरकिरी बने मोदी के चेहरे पर सत्ता की स्वाभाविक चमक से कहीं अधिक तेजस्विता और संकल्प शक्ति नजर आ रही थी। उन्होंने क्षण भर के लिए भी यह प्रदर्शित नहीं होने दिया कि उनमें कहीं गुरूर है या वे संवैधानिक प्रमुख की वरिष्ठता से इतर जनादेश प्राप्त सरकार की महत्ता को हावी रखना चाहते हैं। लेकिन मोदी आखिर मोदी ही हैं। उन्होंने शायद इस खास अवसर के लिए ही केसरिया रंग का जैकेट पहना हो तो आश्चर्य नहीं। शायद उसका मकसद रहा होगा कि यदि कांग्रेस असंवैधानिक तौर-तरीकों का प्रयोग करके उनकी सरकार को हिलाना चाहेगी तो वे केसरिया बाना धारण करके संघर्ष करेंगे; घुटने टेकने वाले नहीं हैं। एक राज्यपाल जो कांग्रेस के वातावरण में पले-बढ़े और गांधीवादी तौर-तरीकों पर चलते हुए खादी-ग्रामोद्योग जैसे स्वदेशी प्रयोगों को जीवन में आगे बढ़ाते रहे; दूसरी तरफ, एक ऐसे मुख्यमंत्री जो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक के रूप में आगे बढ़े और गुजरात के मुख्यमंत्री बनने पर हिन्दुत्व के प्रतीक बन गए। दोनों में कितना वैचित्र्य! इसके बावजूद तादात्म्य के अनेक तथ्य, सिर्फ राशि का मिलान ही नहीं। दोनों सामान्य परिवार से आगे बढ़े हुए, दोनों कर्मठ और मेहनती, दोनों अपने समर्थकों का खास तौर पर ख्याल रखने वाले, दोनों ढकोसलों से दूर, दोनों स्वाभिमानी और सत्ता की जूठी पत्तल चाटने से दूर। अंतर इतना कि एक योग्य होने पर भी कांग्रेस की आलाकमान प्रधान राजनीति के चलते सत्ता के असली मुकाम तक नहीं पहुंच पाए, लेकिन स्वाभिमान नहीं छोड़ा; वहीं, दूसरे गुजरात से दूर कर दिए जाने के बावजूद अपने दमखम और सूझबूझ से गुजरात के मुख्यमंत्री पद पर पहुंचे और सारे देश में छद्म धर्मनिरपेक्षतावादियों और एलीट-अंग्रेजीदां लोगों की नापसंदगी के बावजूद गुजरात का हृदय सम्राट बनने में सफल रहे।

राजनीतिक विचारधारा के लिहाज से विपरीत ध्रुव वाले नवलकिशोर और मोदी को प्रथम मिलन ने आकर्षित किया। नवलकिशोर गांधीनगर पहुंचते ही राज्य सरकार के आतिथ्य-सत्कार और मोदी की सहृदयता से प्रभावित हुए। वहीं, संगठन की सोच वाले मोदी को नवलकिशोर के प्रति उनके समर्थकों-प्रशंसकों के अगाध श्रद्धा भाव ने छू लिया। मोदी देख पा रहे थे कि नवलकिशोर के शपथग्रहण समारोह में राजस्थान से आए लोगों में धनाढ्य या चापलूस प्रवृत्ति के लोग नहीं थे, बल्कि वस्तुत: उनमें नवलकिशोर के प्रति प्रेम झलक रहा था। शपथग्रहण के बाद नवलकिशोर और मोदी एक साथ खड़े हुए और नवलकिशोर राजस्थान से पहुंचे लोगों का अभिवादन स्वीकार करने लगे। जिस तरह पंक्तिबद्ध होकर लोग एक-एक करके आगे बढ़ रहे थे और नवलकिशोर के चरण स्पर्श कर रहे थे, उन दृश्यों में उन लोगों का सम्मान-स्नेह स्पष्ट परिलक्षित हो रहा था। मोदी ने इसे गहरे तक महसूस किया। उनमें से कई लोगों ने मोदी के भी चरण स्पर्श किए। मोदी के चेहरे पर प्रतिस्पर्धा और ग्लानि के नहीं, बल्कि प्रसन्नता के भाव थे। नवलकिशोर के परिवार से मुलाकात होने पर मोदी यह जानकर काफी प्रसन्न हुए कि नवलकिशोर उन परिजनों का कितना ख्याल रखते हैं, जिन्हें उनकी अधिक आवश्यकता है। मोदी के लिए यह अच्छी सूचना थी कि नवलकिशोर के विधायक पुत्र बृजकिशोर एक सहृदय व्यक्ति हैं और अनावश्यक चीजों में नहीं उलझे रहते।

नवलकिशोर के समर्थकों की व्यवस्था को लेकर गांधीनगर में कोई राजनीति नहीं थी। मोदी ने निर्देश दिए हुए थे कि राज्यपाल के मेहमान गुजरात के मेहमान हैं। नवलकिशोर तो उनकी समुचित व्यवस्था के लिए चिंतित थे ही। वह एक अनूठा दृश्य था, जब वे मेहमान नवागंतुक राज्यपाल के सुसज्जित और बेशकीमती सामान से भरपूर निजी शयनकक्ष में बैठे दिखाई दिए। नवलकिशोर ने शयनकक्ष में मिलने वालों के लिए बीसियों कुर्सियां लगवाई थीं। कुछ लोग तो उनके कीमती बेड पर ही बैठ जा रहे थे। शयनकक्ष में एक ऐसी तस्वीर चमक रही थी, जो नवलकिशोर के लिए सबसे बड़ी यादगार थी। उस तस्वीर में नवलकिशोर के बगल में उनकी अर्धांगिनी बैठी हुई सिर का पल्लू ठीक करती दिख रही थीं। संसार से विदा होने से पहले उन्होंने अपने पति के भाग्य को और संवार दिया था।[22]

दुर्योग ही माना जाएगा कि 63 महीनों से प्रथम महिला नागरिक* से वंचित गांधीनगर का राजभवन एक बार फिर उसी स्थिति में था। नवलकिशोर लगातार चौथे राज्यपाल थे, जिनका राजभवन में सपत्नीक आगमन नहीं हो सका। 18 मार्च, 1999 को सुंदरसिंह भंडारी ने गुजरात के राज्यपाल पद की शपथ ली थी, जो अविवाहित थे। उनके बाद राज्यपाल बनाए गए कैलाशपति मिश्र भी अविवाहित थे। केंद्र सरकार द्वारा मिश्र की बर्खास्तगी और नवलकिशोर की नियुक्ति के बीच मध्यप्रदेश के राज्यपाल बलराम जाखड़ को गुजरात का कार्यवाहक राज्यपाल बनाया गया। जाखड़ विवाहित तो थे, लेकिन वे भी शपथ लेने अकेले ही पहुंचे और शपथ लेने के अगले ही दिन भोपाल लौट गए। इसके बाद नवलकिशोर को गुजरात का स्थाई राज्यपाल नियुक्त करने की घोषणा की गई, जिसके 24 घंटे बाद ही उनकी पत्नी का निधन हो गया। इस तरह, एक बार फिर गुजरात का राजभवन प्रथम महिला नागरिक से महरूम रह गया।[23]

गांधीवादी नवलकिशोर राज्यपाल पद की शपथ लेने के बाद सपरिवार साबरमती आश्रम के दर्शन करने गए। आश्रम के प्रवेश द्वार पर राष्ट्रपिता की पुण्य स्मृति को नमन करके वे आगे बढ़े। वहां से सीधे गांधी के बैठक स्थल पहुंचे, जहां आज भी कच्ची जमीन रखी गई है और साबरमती नदी का शांत जल स्वत: ही ध्यान आकर्षित करता है। देश की प्रमुख राजनीतिक हस्तियां वहां पेड़ों की छाया तले बैठकर अंग्रेजों से भारत को मुक्त करवाने के लिए राजनीतिक मंथन करके आंदोलन की रूपरेखा बनाती थीं। नवलकिशोर ने उस स्थान पर हाथ जोड़कर गांधी का स्मरण करते हुए कहा, 'आप सहित उन सभी विभूतियों को मेरा नमन है, जिनकी वजह से आज हम आजादी की खुली हवा में सांस ले रहे हैं।' एक-दो मंत्री और राज्य सरकार के अधिकारी साथ में गांधी आश्रम गए ही थे, राज्यपाल के आगमन का समाचार सुनकर कांग्रेस के कुछ नेता भी वहां पहुंच गए। इसके बाद नवलकिशोर और उनके परिजनों ने गांधी की प्रतिमा पर माल्यार्पण किया। इस अवसर पर नवलकिशोर ने कहा, 'बापू, आपके

---

*राष्ट्रीय स्तर पर जहां राष्ट्रपति राष्ट्र का प्रथम नागरिक होता है; वहीं, राज्य स्तर पर राज्यपाल को प्रथम नागरिक के रूप में संवैधानिक मान्यता प्राप्त है। राष्ट्रपति या राज्यपाल की पत्नी को प्रथम महिला नागरिक माना जाता है।

आशीर्वाद से आज मुझे आपके राज्य में राज्यपाल बनकर आने का मौका मिला है। मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं आपकी खादी और आपकी विचारधारा को आगे बढ़ाकर गरीबों के कल्याण का काम कर सकूं।'[24] आश्रम के हृदय कुंज कुटीर में नवलकिशोर ने चरखा चलाया। उन्होंने आश्रम के सचिव से विजिटर्स बुक मंगवाकर उसमें लिखा कि गांधीजी की सादगी और ईमानदारी उन्हें अपने पथ पर चलने के लिए प्रेरणास्रोत का काम करेगी।[25] लौटने से पहले नवलकिशोर ने गांधी की प्रतिमा के नीचे कुरसी लगवाकर अपने परिवार के साथ फोटो भी खिंचवाए।[26]

शपथ लेने के अगले ही दिन नवलकिशोर ने एक साक्षात्कार में तमाम अटकलों को विराम देते हुए एक आदर्श राज्यपाल के कार्यकाल का सूत्रपात किया। उन्होंने केंद्र सरकार की ओर से 'विशेष निर्देश' मिलने जैसे अनेक सवालों का स्पष्ट जवाब देकर सभी आशंकाओं को खारिज कर दिया। उन्होंने साफ कहा कि उन्हें किसी को 'ठीक करने' के लिए नहीं भेजा गया है और न ही किसी खास दिशा में कार्य करने का निर्देश मिला है। मोदी को लेकर उनका नजरिया मीडिया द्वारा प्रचारित धारणा के ठीक विपरीत होने के कारण आश्चर्यजनक रहस्योद्घाटन की तरह था। उनका कहना था:

> राज्यपाल के रूप में मेरी नियुक्ति से पूर्व किसी ने मुझसे इस बारे में चर्चा नहीं की थी। मेरी विचारधारा और सोच रचनात्मक है। मैं सर्वधर्म समभाव में विश्वास करता हूं। मैं चाहता हूं कि समाज में सौहार्द रहे। सामाजिक खाई पाटने के लिए राज्य सरकार को कदम उठाने चाहिए, लेकिन मैं बाध्य नहीं करूंगा। ऐसा भी नहीं समझना चाहिए कि अकेले सरकार के स्तर पर खाई पट जाएगी। लोगों के दिल-दिमाग को बदलना होगा। इसमें सामाजिक संगठन, स्वयंसेवी संगठन, बुद्धिजीवी, सेवाभावी, धार्मिक संस्थाओं से जुड़े लोग पहल करें, तो मैं समझता हूं कि वातावरण में सुधार होगा। गुजरात महात्मा गांधी और सरदार पटेल की जन्म और कर्मस्थली है। इस भूमि पर महात्मा गांधी के सिद्धांतों की होली हो, यह दुखद है। जिन सरदार पटेल ने देश को एक सूत्र में बांधा, उन्हीं के प्रदेश में मनों में विभाजन होना कष्टदायी है। नरेन्द्र मोदी की प्रशासनिक शैली के बारे में अभी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त करना नहीं चाहूंगा। पहले देखना चाहूंगा कि राज्य में कानून व्यवस्था की स्थिति कैसी है; विकास के कार्य कहां तक चल रहे हैं; मोदी की मंत्रियों पर पकड़ कैसी है; वे उनसे कैसे डील करते हैं; लोगों को सुनवाई के अवसर कितने मिलते हैं; उनकी सुनवाई का निराकरण होता है या नहीं। इस सब बातों को देखने के बाद ही कोई राय जताई जा सकती है। ऊपरी तौर पर मीडिया के माध्यम से ही दोनों रूपों की जानकारी है। मीडिया की बनाई छवि को ही वेदवाक्य मान लेना भी तो ठीक नहीं है।'[27]

गुजरात में नियुक्ति के साथ नवलकिशोर की जीवन यात्रा का एक नया अध्याय शुरू हुआ। गुजरात में व्यवसाय और उद्योग की सुदीर्घ परंपरा रही है। उत्तर भारत के क्षेत्रों में प्रभावी रही त्याग की परंपरा के साथ वैष्णव मत और जैन संप्रदाय में अर्जन की अवधारणा विकसित हुई। गुजरात में ये वर्ग आबादी में सबसे अधिक हैं। सामान्य गुजराती परिवार में धन कमाने को व्यक्ति का कर्तव्य माना जाता है। वहां के लोगों की मानसिकता यह है कि सरकारी नौकरी करने या राजनीति में उतरने से बेहतर है कि अपना धंधा शुरू किया जाए। हालांकि पर्याप्त धन होने के बावजूद सामान्य जीवनशैली रखना गुजराती लोगों की खासियत रही है। वे आलीशान मकानों, महंगे कपड़ों और अन्य दिखावटी साज-सज्जा पर पैसे खर्च करने को फिजूल मानते हैं। छोटे घर, कामचलाऊ फर्नीचर, सुपाच्य और हल्का शाकाहारी भोजन, आरामदेह साधारण वस्त्र..यही एक औसत गुजराती गृहस्थी की पहचान है। देश के शीर्षस्थ नेताओं के बीच पैठ बनाने के बाद भी खुद ही सुई-धागा लेकर कुरते की बांह सिलने बैठ जाने वाले गांधीवादी नवलकिशोर के लिए यह सादगीपूर्ण परिवेश सुखद था।

वे एक बदले हुए स्वरूप के साथ राजभवन पहुंचे। जीवन के प्रति मन में संतुष्टि का भाव, आंखों में चमक और चेहरे पर गंभीरता। किसी भी बात का तत्काल जवाब देने की उनकी प्रवृत्ति में बदलाव आ गया था। वे सचमुच अपना राजनीतिक अतीत छोड़कर नई संभावनाओं की ओर बढ़े थे। राज्यपाल बनने की खुशी उनकी भाव-भंगिमा में नहीं पढ़ी जा सकती थी और न ही उनमें किसी तरह का अहंकार दिखाई देता था। उनकी आंखें बात करती हुई मालूम पड़तीं और लगता कि इसका संबंध उनके हृदय से है। यह बात उन्हें राजनेता से अलग करती थी और पारिवारिक प्रगाढ़ता का अहसास करवाती थी।

राज्यपाल का पदभार संभालते ही नवलकिशोर ने एक विवादित धार्मिक मामले में वैधानिक हस्तक्षेप करके श्रद्धालुओं का दिल जीत लिया। जूनागढ़ जिले में गिरनार पर्वत पर स्थित जैन तीर्थंकर नेमिनाथ की तीर्थस्थली पर कुछ असामाजिक तत्वों ने कब्जा कर लिया था। वे तीर्थयात्रियों को परेशान करते थे। उन्होंने वहां कुछ निर्माण कार्य भी शुरू कर दिया था। यह भारतीय पुरातत्व विभाग के कानूनों का उल्लंघन था, जिसके अनुसार, विभाग द्वारा संरक्षित किसी स्थल की 100 गज की परिधि में कोई निर्माण कार्य नहीं करवाया जा सकता। जैन समुदाय ने इस निर्माण कार्य को न्यायालय में चुनौती दी हुई थी। लेकिन कब्जा होने की वजह से वे 30-40 वर्षों से वहां पूजा-आराधना नहीं कर पा रहे थे।[28]

इस बात की शिकायत जैन संस्कृति रक्षा मंच की ओर से नवलकिशोर को राज्यपाल पद की शपथ लेने से पहले की गई। उन्होंने कहा कि शपथ लेने के बाद वे इस विषय को देखेंगे और उचित कार्यवाही करेंगे। उनके शपथ लेने के बाद जैन समाज का शिष्टमंडल मिला तब तक नवलकिशोर तथ्यों का पता लगा चुके थे; अगले दिन नवलकिशोर ने फोन करके जानकारी दी कि अशांति फैलाने वाले अराजक तत्वों को गिरफ्तार करके मोक्षस्थली पर जैन

यात्रियों की सुरक्षा के लिए पुलिस चौकी स्थापित कर दी गई है।[29] इससे जैन समाज को पुनः पूजा-आराधना का अधिकार मिल गया।

नवलकिशोर के राज्यपाल बनने के दो दिन बाद जूनागढ़ जिले के ही वेरावल में भीषण सांप्रदायिक हिंसा हुई। एक लड़की को छेड़े जाने से शुरू हुए इस मामले ने सांप्रदायिक रूप ले लिया, जिसके परिणामस्वरूप व्यापक दंगे शुरू हो गए। कर्फ्यू घोषित हुआ और देखते ही गोली मारने का आदेश जारी किया गया, लेकिन इसके बावजूद हिंसक तत्व नियमों की धज्जियां उड़ाते रहे। दोनों वर्गों की ओर से पुलिस पर निष्क्रियता का आरोप लगाया जा रहा था। इस घटनाक्रम में पुलिस की गोली से एक मौत हुई और एक युवक को समाजकंटकों ने नुकीले हथियार से मार डाला। प्रशासन ने केवल इन्हीं दो मौतों की पुष्टि की, लेकिन प्रत्यक्षदर्शियों का कहना था कि एक अन्य व्यक्ति को जिंदा जलाया गया था। 20 लोग घायल हुए थे। 15 घरों को लूटा गया, 40 से अधिक दुकानों, केबिनों और वाहनों को आग के हवाले कर दिया गया। आग लगाने की कुछ घटनाएं पुलिस आउटपोस्ट के बाहर हुईं।[30] इस वारदात के बाद नवलकिशोर ने पुलिस महानिदेशक को निर्देश दिया कि राज्य में कहीं भी ऐसी घटना हो तो तुरंत उन्हें जानकारी दी जाए।[31]

राज्यपाल के रूप में नवलकिशोर पहली बार जयपुर आए तो उनके सम्मान में प्रदेश के अनेक स्थानों से समर्थकों की भीड़ उमड़ पड़ी। नवलकिशोर ने कहा, 'घर छोड़ना बुरा तो लगता ही है। घर का माहौल जितना शुभदायक होता है, उतना दूसरी जगह थोड़े ही हो सकता है।' जयपुर में उनका भावभीना स्वागत किया गया। घर पर भी मिलने वालों का तांता लगा रहा। वहां पत्रकारों के जमावड़े के बीच चर्चा होती रही कि कैसे गुजरात में राजभवन के द्वार आम जनता के लिए खोल दिए गए हैं और जयपुर वालों के लिए 'सीधी एंट्री' है। दशकों तक सक्रिय राजनीति में रहने के बाद संवैधानिक मर्यादाओं के दायरे में आने के अनुभव के बारे में पूछे जाने पर नवलकिशोर का कहना था, 'बंदिशें और मर्यादाएं तो हैं, लेकिन मैं उनमें एक तय सीमा तक आजादी ले सकता हूं; उतनी लेने की कोशिश करता हूं।'[32] अपने निवास पर आने वालों से नवलकिशोर भाव भरे पुराने अंदाज से ही मिलते। वे कहते, 'गुजरात में तो प्रोटोकॉल पूरा निभाना होता है। लेकिन जयपुर तो घर है, यहां घर जैसा माहौल रखना ही ठीक है।'[33] जयपुर में भव्य समारोह में नवलकिशोर का अभिनंदन किया गया। इस स्नेह के लिए धन्यवाद प्रकट करते हुए उन्होंने कहा:

> नियति चाहती थी इसलिए मैं राज्यपाल बन गया। जीवन की संध्या में इसे स्वीकार करना मैंने भी ठीक समझा। वैसे तो राष्ट्रीय राजनीति मेरा कार्यक्षेत्र रहा है, लेकिन राजस्थान मेरा कार्यक्षेत्र रहा; दौसा और जयपुर मेरे घर हैं। घर को भुलाने की मेरी आदत नहीं। राजस्थानवासी जब भी कहेंगे, मैं उनके लिए हाजिर रहूंगा।[34] किसी को जब भी कोई जरूरत महसूस हो, गुजरात आ जाना; द्वार हमेशा खुले हुए हैं।[35]

तलवार की धार पर

गुजरात की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति बेहद जटिल थी और नवलकिशोर के लिए राज्यपाल का दायित्व संभालना तलवार की धार पर चलने जैसा था। 21वीं सदी की शुरुआत गुजरात के लिए शुभ नहीं रही थी। 26 जनवरी, 2001 को भयावह भूकंप आया, जिसने हजारों लोगों की जान ले ली और अरबों की संपत्ति का नुकसान किया। तत्कालीन सरकार की प्रशासनिक अक्षमता को लेकर उठ रही आवाजों के बीच राज्य की कमान नरेंद्र मोदी को सौंपी गई। मोदी ने 7 अक्टूबर, 2001 को मुख्यमंत्री का पद संभाला। उस समय शासक पक्ष के रूप में भाजपा की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगा हुआ था। दूसरी ओर, अनिश्चितता और अस्थिरता के कारण प्रशासन पर पड़े नकारात्मक प्रभावों से गुजरात को बाहर लाने की चुनौती सामने थी। यह समय था, जब 1999-2000 और 2001 के अकाल के संकटपूर्ण दिनों की मार से गुजरात का सामाजिक जीवन उबरा नहीं था। लगातार अकाल या अर्ध अकाल के कारण गुजरात की अर्थव्यवस्था की नींव हिलने लगी थी। राज्य के सर्वांगीण विकास की आधारशिला समृद्ध अर्थव्यवस्था ही बन सकती थी।[36]

गुजरात को भूकंप की दहशत से बाहर निकालना और विनाश को विकास के अवसर में बदलना मोदी की प्राथमिकता थी। जनता की नाराजगी के माहौल में राज्य को भूकंप के साए से बाहर निकालने के लिए मोदी ने कर्मयोगी की भूमिका निभाई। उन्होंने शिथिल प्रशासन में ऊर्जा का संचार किया और पुनर्निर्माण के कार्य का नेतृत्व खुद करने का निर्णय किया। मोदी ने बहुत तेजी से भूकंप राहत के काम काम शुरू किए। लोगों के हाथ में सरकारी धन देकर लोगों को पुनर्वास में भागीदार बनाया।[37]

मोदी के नेतृत्व में गुजरात भूकंप के सदमे से उबरने की कोशिश ही कर रहा था कि 27 फरवरी, 2002 को गोधरा में साबरमती एक्सप्रेस की बोगी में आग लगाकर अयोध्या से लौट रहे रामसेवकों को मार दिए जाने की जघन्य घटना, उसकी प्रतिक्रिया और प्रत्युत क्रिया से फूटी भीषण हिंसा ने भविष्य को अंधी गली की ओर मोड़ दिया*।

*गोधरा की नृशंस घटना के तुरंत बाद भाजपा सरकार हिंसा नहीं भड़कने देने के लिए युद्ध स्तर पर सावधान थी। अहमदाबाद, वडोदरा और राज्य के अन्य हिस्सों में पुलिस फायरिंग की दर्जनों घटनाओं में 250 से अधिक दंगाई मारे गए। पुलिस द्वारा लगभग 10 हजार राउंड गोलियां दागी गईं। प्रारंभिक दिनों में पुलिस ने लगभग 18 हजार हिंदुओं और 3,800 मुस्लिमों को एहतियातन बंदी बना लिया था। (लालकृष्ण आडवाणी: मेरा देश मेरा जीवन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 609) 27 फरवरी को गोधरा में नरसंहार के कुछ घंटों के भीतर गोधरा और अहमदाबाद में रेपिड एक्शन फोर्स की तैनाती करने के साथ-साथ रेड अलर्ट की घोषणा कर दी गई। उसी दिन एहतियातन गिरफ्तारियां की गईं; 132 हिंदू और 80 मुसलमान। (ऐंडी मरीनो: नरेंद्र मोदी-एक राजनीतिक यात्रा, मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल, 2014, पृष्ठ 122) साथ ही, पड़ोसी राज्यों से अनुरोध किया गया कि वे अपने सशस्त्र पुलिस बल गुजरात में भेजें। यह आग्रह खासतौर पर गुजरात के तीन पड़ोसी राज्यों के मुख्यमंत्रियों राजस्थान में अशोक गहलोत, महाराष्ट्र में विलासराव देशमुख और मध्यप्रदेश में दिग्विजय सिंह से किए गए। 28 फरवरी को ये पत्र फैक्स किए गए और 1 मार्च को कुरियर द्वारा भेज दिए। इन तीनों राज्यों में कांग्रेस का शासन था। महाराष्ट्र ने अंततः मदद करने के लिए बहुत सीमित संख्या में बल भेजा, लेकिन बाकी दोनों ने साफ इनकार कर दिया। (वही, पृष्ठ 136)

गुजरात दंगों की जांच के लिए गठित एसआईटी इस नतीजे पर पहुंची कि 27 फरवरी से राज्य सरकार सेना की मदद हासिल करने के लिए केंद्र सरकार के सतत संपर्क में थी। मोदी ने 28 फरवरी को केंद्रीय गृह मंत्री से बातचीत की थी। केंद्रीय रक्षा सचिव को राज्य के गृह सचिव ने सेना भेजने के लिए एक लिखित आग्रह भेजा था। संसद पर हुए हमले की वजह से सेना मोर्चे पर थी। 28 फरवरी को रक्षा मंत्री जॉर्ज फर्नांडिस और मोदी की सेना की तैनाती को लेकर अहमदाबाद में विस्तार से चर्चा हुई। सेना के जवानों को वायु मार्ग से अहमदाबाद लाने के लिए 40 विमानों का इस्तेमाल किया गया। पहला विमान अहमदाबाद हवाई अड्डे पर 28

राज्यपाल बनने के बाद नवलकिशोर के सामने गोधरा नरसंहार, व्यापक दंगे और उन पर मोदी सरकार की कार्रवाई के तथ्य मौजूद थे। गुजरात दंगों को लेकर सारे देश में मोदी को निशाने पर लिया हुआ था। उस समय उन्होंने गुजरात विधानसभा के मध्यावधि चुनाव करवाने का दुस्साहस किया। आश्चर्यजनक रूप से मोदी के नेतृत्व में भाजपा को दो तिहाई बहुमत मिला। उसे 49.85 प्रतिशत वोट मिले; ये कांग्रेस को मिले वोटों से 10 प्रतिशत से भी ज्यादा थे। कुल 182 सीटों में से भाजपा को 127 सीटें प्राप्त हुईं। 1998 में केशुभाई पटेल के नेतृत्व में भाजपा को मिले वोटों और सीटों से मोदी के नेतृत्व में मिली सफलता ज्यादा बड़ी थी। 2002 के विधानसभा चुनावों ने मोदी विरोधियों के मुंह पर एकबारगी ताला लगा दिया। दूसरी ओर, विपक्ष द्वारा मोदी की आलोचनाएं कम नहीं हुईं, लेकिन मोदी के समर्थन में गुजरात की जनता का बड़ा वर्ग लोकतांत्रिक ढंग से खड़ा हो गया। 22 दिसम्बर, 2002 को मोदी ने दूसरे कार्यकाल के लिए मुख्यमंत्री पद की शपथ ली।[38]

नवनिर्वाचित मुख्यमंत्री के रूप में मोदी के सामने दोहरी चुनौती थी; उन्हें न केवल ध्वस्त हो चुके आर्थिक ढांचे को सुदृढ़ बनाना था, बल्कि राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गुजरात की छवि में सुधार भी लाना था। यह चुनौती इस कारण से और विकट थी कि विधानसभा के चुनाव में अपूर्व जनसमर्थन पाने के बावजूद मोदी को अपनी ही पार्टी में व्यापक विरोध का सामना करना पड़ रहा था। ऐसे हालात में उन्होंने गुजरात को सुदृढ़ बनाने की दिशा में काम शुरू किया। उन्होंने नई औद्योगिक नीति लागू की और राज्य में निवेश को बढ़ावा देने के प्रयास तेज किए। आर्थिक कायाकल्प की प्रक्रिया भी 2002 में रिसर्जेंट गुजरात एक्सपोजिशन में शुरू हो गई। भले ही कदम छोटा था, लेकिन यह उसी वर्ष सितम्बर में निर्धारित वाइब्रेंट गुजरात के साथ जारी रहने वाली थी।[39]

एक तरफ प्रशासन को पूरे देश और दुनिया में मॉडल बनाने के प्रयास; दूसरी तरफ, प्रशासन को उसकी सीमाओं से बाहर लाने की बड़ी जिम्मेदारी भी थी। इसीलिए प्रशासनिक सुधारों के प्रयासों की प्रक्रिया में निरंतरता बनाए रखी जा रही थी। मई, 2003 में इसके लिए

फरवरी की रात 11 बजे उतरा और आखिरी विमान अहमदाबाद हवाई अड्डे पर 1 मार्च की रात 11 बजे उतरा। (वही, पृष्ठ 257) उस दिन साबरमती एक्सप्रेस के यात्रियों के अलावा गुजरात में कहीं भी किसी अन्य मृत्यु की खबर नहीं थी। पहली मौत की पुष्टि अगले दिन 28 फरवरी की दोपहर तक नहीं हुई। इस दौरान अहमदाबाद के 600 नियमित पुलिसकर्मियों का बल पहले ही तैनात किया जा चुका था। इसके अलावा, गुजरात में रिजर्व पुलिस फोर्स (एसआरपीएफ) की 58 कंपनियां और सीआरपीएफ की चार कंपनियां भी तैनात की गईं। आरएएफ, जिसकी दो में से एक महिला बटालियन स्थाई तौर पर गांधीनगर में तैनात थी, तुरंत अहमदाबाद भेजी गई। (वही, पृष्ठ 123)

भारत में दंगों का इतिहास भयावह है। विभाजन के बाद जाति और धर्म दो प्रमुख बिंदु रहे हैं, जिनके नाम पर सामाजिक हिंसा भड़काने का काम किया गया। सत्ता में लंबे समय तक रहने के बावजूद कांग्रेस ने उन्हें शांत करने के लिए बहुत कम काम किया। 2002 से पहले गुजरात में पिछले छह बड़े सांप्रदायिक दंगों में कांग्रेस पांच दंगों के समय सत्तासीन थी। गुजरात एक औद्योगिक और व्यापारी राज्य है। यह ऐतिहासिक दृष्टि से सांप्रदायिक हिंसा के प्रति सबसे ज्यादा झुकाव वाले राज्यों में से एक रहा है। गुजरात में 1970 के बाद 400 से अधिक दंगे हुए थे और स्वतंत्रता के बाद से देश भर में 30 हजार दंगे हुए, जिनमें से कई 2002 के गुजरात दंगों से ज्यादा बुरे रहे हैं और 2002 में गुजरात की उत्तेजक घटना से भी छोटी घटनाओं के कारण हुए हैं। (वही, पृष्ठ 131) लेकिन गुजरात के दंगों के लिए पूरी तरह मोदी को जिम्मेदार ठहरा दिया गया। मीडिया में उनके खिलाफ व्यापक दुष्प्रचार का अभियान चला। भीड़ को उत्तेजित करने के लिए हिंदुओं के शवों की अहमदाबाद की सड़कों पर नुमाइश किए जाने के झूठे किस्से को इतनी बार दोहराया गया कि यह एक तरह से असंदिग्ध ऐतिहासिक तथ्य बन गया। (वही, पृष्ठ 125)

विश्व के कुछ देशों के प्रशासनों को समझने की कोशिश हुई। ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, मलेशिया, सिंगापुर, कनाडा आदि देशों के प्रशासन को समझने के लिए प्रेजेंटेशन का आयोजन किया गया। इस प्रेजेंटेशन में प्रशासन के दैनिक घिसे-पिटे कामकाज की मानसिकता बदलने के लिए पांच सूत्री सुधार और वित्तीय पहल के पथप्रदर्शकों की समीक्षा की गई। इसमें गुणवत्ता, उत्पादकता, नई पहल, अनुशासन, प्रतिबद्धता, जवाबदेही, जनोन्मुखता, व्यावसायिक निपुणता और वित्तीय प्रबंधन में कार्यवाहक एजेंसियां, नागरिक अधिकारिता चार्टर, गुणवत्ता प्रबंधन, वरिष्ठ सेवाएं, नियमन, प्रबंधन और सूचना जैसी उल्लेखनीय बातों को लेकर विस्तृत रूपरेखा समझी गई। सार्वजनिक सेवाओं को अधिक कार्यक्षम बनाने के लिए एजेंसियों की स्वायत्तता का नफा-नुकसान, भ्रष्टाचार उन्मूलन के उपाय, वेतनों की स्पर्धात्मकता, चयनित नियुक्ति और पद्धति, कंप्यूटरीकरण, सेवा क्षेत्र की इकाइयां और गुणवत्ता वगैरह पर विस्तार से विमर्श हुआ। इसके बाद मोदी ने सामाजिक सेवाओं के ढांचागत विकास और विकास के पथदर्शक दिशासूचक के संबंध में प्रबंधन सूचना प्रणाली विकसित करने के निर्देश दिए। संबंधित विभागों से काम लेने से पहले मोदी ने तमाम विभागों को समझने की कोशिश की और इस कोशिश के कारण अधिकांश विभाग अनूठी गतिशीलता के साथ अनेक उपलब्धियां हासिल करने लगे।[40]

2003 में ताजा पानी अहमदाबाद से होते हुए साबरमती नदी में बह रहा था, जिससे शहर की संभावनाओं का कायाकल्प हुआ और गुजरात के परिदृश्य के व्यापक कायाकल्प का संकेत मिल रहा था। इसके बाद ग्रामीण क्षेत्रों को प्रोत्साहन दिए जाने की बारी थी। नर्मदा पर बांध बनने से हजारों हेक्टेयर सूखी कृषि भूमि सिंचित हो गई। मुख्यत: कृषि आधारित गुजरात के लगभग 40 लाख किसानों को बिजली की जरूरत भी थी। इसके लिए मोदी ने ज्योतिग्राम योजना सितम्बर, 2003 में शुरू की ताकि राज्य के 18 हजार गांवों में से प्रत्येक में विश्वसनीय और सतत बिजली पहुंचाई जा सके।[41] उसी वर्ष से कन्या शिक्षा रथयात्रा और शाला प्रवेशोत्सव का अनूठा अभियान शुरू किया गया। मोदी एक मुख्यमंत्री के रूप में नहीं, बल्कि भिक्षुक बनकर इस अभियान को सफल बनाने के लिए गांव-गांव जा रहे थे। जहां जाते, वहां शिक्षा की अलख जगाते थे।[42]

गुजरात की अर्थव्यवस्था को मजबूती देने के लिए मोदी ने तीन दिवसीय 'वाइब्रेंट गुजरात' कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की। यह अंतरराष्ट्रीय व्यवसायियों और निवेशकों का सम्मेलन होने जा रहा था। इसके आयोजन के लिए नवरात्रि का अवसर चुना गया, जिसका गुजरात की सांस्कृतिक परंपरा में विशेष महत्व है। वाइब्रेंट गुजरात के बारे में लोगों को अवगत करवाने के लिए मोदी ने अगस्त, 2003 में इंग्लैंड और स्विट्जरलैंड के दौरे किए। वहां अपने संबोधनों में उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि उन्हें मिल रहे निवेश प्रस्तावों और अच्छी वर्षा के परिणामस्वरूप गुजरात की आर्थिक विकास दर जल्द ही दोहरे अंकों में आ जाएगी। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चर्चा का विषय बन चुके वाइब्रेंट गुजरात में भविष्य की आशा भरी तस्वीर सामने आई। एक हजार व्यवसायी प्रतिनिधि, 200 प्रवासी भारतीय, 125 विदेशी

नागरिक और 200 विशेष आमंत्रित उद्योगपति इस सम्मेलन में शामिल हुए। वहां कुल 55 हजार करोड़ रुपए के निवेश प्रस्ताव पंजीकृत किए गए। तत्कालीन केंद्रीय विनिवेश मंत्री अरुण शौरी ने गुजरात सरकार के विगत प्रदर्शनों की सराहना करते हुए भविष्य को लेकर आशा प्रकट की। उन्होंने कहा, 'गुजरात वास्तव में भारत के विकास की कुंजी है।'[43]

मोदी गुजरात को देश के सामने विकास के मॉडल के रूप में रखना चाहते थे और इसके लिए सतत प्रयासरत भी थे। यह भी हकीकत थी कि गुजरात दंगों के बाद के वर्षों में मोदी के मुख्यमंत्रित्व काल के दौरान गुजरात में न तो एक भी सांप्रदायिक दंगा हुआ, न ही आतंकवाद की एक भी घटना हुई और न ही इन वर्षों में कहीं पर भी एक घंटे के लिए भी कर्फ्यू लगाना पड़ा। इस दौरान गुजरात में विभिन्न आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति हुई, जिसके कारण देश-विदेश से भारी मात्रा में निवेश किया गया। गुजरात देश के सर्वाधिक विकसित राज्य के रूप में जाना जा रहा था। मोदी ने राजनीतिक और नौकरशाही तंत्र में फैले भ्रष्टाचार पर काबू पाने में सफलता प्राप्त की, जिससे उनके आलोचक भी उनकी प्रशंसा किए बिना नहीं रहे।[44]

दूसरी तरफ, उनकी सरकार को अस्थिर करने की कोशिशें जारी रहीं। 2004 के लोकसभा चुनाव से महज आठ दिन पहले सुप्रीम कोर्ट की बेंच ने वडोदरा की बेस्ट बेकरी में हुई हिंसा के मामले की सुनवाई की। न्यायमूर्ति दुरुईस्वामी राजू और न्यायमूर्ति अरिजीत पासायत ने गुजरात न्यायपालिका को फटकार लगाते हुए मामले की दुबारा जांच करवाने और नए सरकारी वकील द्वारा पुनः मुकदमा चलवाने का फैसला सुनाया। यह भी कहा कि मुकदमा महाराष्ट्र में चलेगा और इसमें होने वाले खर्च का वहन गुजरात सरकार करेगी।[45]

चुनाव से ठीक पहले आने के कारण इस फैसले का प्रासंगिक महत्व था। 'इंडिया शाइनिंग' का नारा दे रही भाजपा के सुनहरे सपनों पर पानी फिर गया और कांग्रेस ने जैसे नया जीवन पा लिया। भाजपा को 138 सीटें मिलीं, जो पिछली बार की तुलना में 44 कम थीं। कांग्रेस 31 सीटों की बढ़त के साथ 145 सीट पाने में सफल रही। भाजपा को अन्य दलों से सहयोग मिलने की संभावना भी कम दिख रही थी। कांग्रेस ने सपा, बसपा और वामपंथी दलों को साथ लेकर संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) बनाया और सरकार का गठन किया। भाजपा की हार के लिए मोदी की नकारात्मक छवि को निर्णायक माना जाने लगा। रही-सही कसर अटलबिहारी वाजपेयी ने यह बयान देकर पूरी कर दी कि भाजपा के लचर प्रदर्शन के पीछे गुजरात दंगों की भी भूमिका रही। हालांकि वाजपेयी की टिप्पणी एकपक्षीय नहीं थी। उन्होंने यह भी जोड़ा, 'गुजरात के दंगों के दौरान विपक्ष ने जनभावना का लाभ उठाया। लेकिन मैं उन्हें दोष नहीं देता। यही राजनीति है और ऐसा ही होता है।'[46]

मोदी से असंतुष्ट चल रहे गुजरात के नेताओं ने वाजपेयी के बयान की अनुकूल व्याख्या करते हुए अपनी मुहिम तेज कर दी। इस मुहिम का नेतृत्व पूर्व मुख्यमंत्री केशुभाई पटेल कर रहे थे। गुजरात भाजपा में मोदी को मुख्यमंत्री पद से हटाने की मांग जोर पकड़ने लगी। पार्टी का केंद्रीय नेतृत्व असमंजस की स्थिति में था। लालकृष्ण आडवाणी मीडिया के सामने सहज

भाव से कह रहे थे कि गुजरात भाजपा में पैदा हुए संकटों का समाधान करने के प्रयास जारी हैं, लेकिन हालात उनके बयानों में दिख रही गंभीरता से कहीं अधिक जटिल थे। भाजपा के शीर्ष नेतृत्व की मानसिकता यह थी कि मोदी के प्रति पल रहे विरोध को उजागर नहीं होने दिया जाए। राष्ट्रीय अध्यक्ष वेंकैया नायडू दावा कर रहे थे कि मोदी का विकल्प तलाशने जैसी कोई स्थिति नहीं है, लेकिन यह भी सूचना आ रही थी कि असंतुष्ट विधायकों को शांत रखने की कोशिशें की जा रही थीं।[47]

ये सभी बातें गुजरात को गुटबाजी और राजनीतिक दांवपेंच में उलझे राज्य की छवि में स्थापित कर रही थीं और विरोधियों द्वारा मोदी खलनायक की तरह चित्रित किए जा रहे थे। लेकिन नवलकिशोर ने राज्यपाल का पद संभालते ही यह स्पष्ट कर दिया कि वे मीडिया के निष्कर्ष को वेदवाक्य नहीं मान सकते। उन्होंने अपने अनुभवों की रोशनी में सच्चाई को परखने का प्रयास किया और मोदी तथा गुजरात का एक अलग ही स्वरूप महसूस किया। राज्यपाल के रूप में वे गुजरात पहुंचे तो कृषि क्षेत्र की समृद्धि के लिए योजनाबद्ध प्रयास हो रहे थे। ध्येय रखा गया था कि गुजरात एग्रो विजन से टिकाऊ खेती के विकास का ध्यान रखते हुए ग्रामीण जनता को रोजगार के विशाल अवसर देकर किसानों की आय और जीवन स्तर में सुधार लाया जाए। जनता की सुख-सुविधा के लिए स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग के लिए भी उद्देश्य तय किए गए थे। इनमें बाल मृत्यु दर घटाना, माता के स्वास्थ्य का स्तर ऊपर लाना, जनसंख्या नियमन प्रयोगशालाओं का आधुनिकीकरण, जिला कार्यालयों के साथ जी-स्वैन कनेक्टिविटी, आयुर्वेदिक फार्मेसी का आधुनिकीकरण, आयुर्वेदिक वनस्पति उद्यान का विकास, आयुर्वेदिक अस्पतालों का विकास, होम्योपैथी के नए दवाखाने शुरू करना आदि शामिल थे।[48] 2003 से गुजरात के अनेक जिलों में सिंचाई के लिए नर्मदा का जल उपलब्ध था। 18 मई, 2003 का दिन कच्ची मांडुओं (कच्छ की जनता) के लिए ऐतिहासिक और अविस्मरणीय था। उस दिन कच्छ की सूखी धरती पर नर्मदा का जलावतरण हुआ। एक साथ अनेक गांवों और चार जिलों में पाइप लाइनों के जरिए नर्मदा का जल पहुंचा। नवलकिशोर के जाने के बाद अक्टूबर, 2004 से सरदार सरोवर में 110.64 मीटर तक नर्मदा का पानी बांध से भरा जाने लगा था। सरदार सरोवर योजना के इतिहास में पहली बार बिजली उत्पादन शुरू हुआ।[49]

नवलकिशोर ने महसूस किया कि गुजरात की परिस्थितियां इतनी एकपक्षीय नहीं हैं, जैसी धारणा लोगों के मन में बनाई जा रही है। उनका कहना था, 'गुजरात के लोग भले हैं, सेवाभावी हैं और सद्‌भावी हैं। समाज के सभी वर्गों के पीड़ित मानव की सेवा में जुटे रहने की उनकी भावना नि:संदेह प्रेरणादायी है। अल्पसंख्यक समुदाय में शैक्षणिक गतिविधियों के प्रति लगाव भी अनुकरणीय है। वहां की कई बातें सीखने की हैं।'[50] वे कहते कि गुजरात में रचनात्मक कार्यों की प्रवृत्ति अधिक है और वह उनके स्वभाव के अनुकूल है, इसलिए उनका मन वहां लग गया है। वहां आने वाले लोगों की समस्याएं सुनने और उन्हें सुलझाने में उन्हें काफी संतोष का आभास होता है। यही माहौल उन्हें अकेलापन महसूस नहीं होने देता।

एक बार मैंने गांधीनगर में नवलकिशोर से मुलाकात की। उन्होंने अपने अनुभव बताते हुए

कहा कि गुजरात के लोग अच्छे हैं और पैसा होने के बावजूद सरल भाव से रहते हैं; उनमें कोई घमंड-गर्व नहीं है। वे लोग सार्वजनिक कार्यों में खूब पैसा लगाते हैं। निजी क्षेत्र और सार्वजनिक संस्थाओं के कई ख्यातनाम अस्पताल हैं, जहां गरीबों की नि:स्वार्थ भाव से सेवा की जाती है। बड़े अस्पताल में कैंसर सोसायटी के अस्पताल का नाम उल्लेखनीय है। उसका चेयरमैन राज्यपाल होता है। वहां के डॉक्टर भी सेवाभावी हैं। वहां के एक डॉक्टर ने अपना जन्मदिन अस्पताल के लिए चंदा एकत्र करके मनाया और 72वें जन्मदिन पर 72 लाख रुपए इकट्ठे कर लिए। चिकित्सा ही नहीं, शिक्षा के क्षेत्र में भी सार्वजनिक संस्थाएं अपनी अहम भूमिका निभाती हैं। अल्पसंख्यक समुदाय भी इसमें बराबरी की भूमिका निभाता है। वहां के अल्पसंख्यक अपनी लड़कियों को पढ़ाना पहला कर्तव्य मानते हैं। लड़कों की अपेक्षा लड़कियां शैक्षणिक गतिविधियों में काफी आगे हैं। नवलकिशोर का कहना था कि सहकारिता के क्षेत्र में गुजरात अग्रणी है। महात्मा गांधी का प्रदेश होने से खादी ग्रामोद्योग का भी अच्छा प्रभाव है। गुजरात के कार्यों की पृष्ठभूमि रचनात्मक रही है। राजस्थान के 40-50 प्रमुख लोग वहां हैं और रचनात्मक कार्यों में जुटे रहते हैं, उनसे मिलना-जुलना भी होता है और सहयोग मिलता है। कुल मिलाकर गुजरात के लोग अच्छे हैं, उनकी भावनाएं अच्छी हैं। यह दुर्भाग्य की बात है कि वहां सांप्रदायिक दंगे हुए, लेकिन अब सब ठीक है।[51]

इसके बावजूद गुजरात में एक दुविधाजनक स्थिति थी। नवलकिशोर की गिनती कांग्रेस विगत के वरिष्ठ नेताओं में थी। इसके कारण कांग्रेस के लोग राज्यपाल की सीधी आलोचना करने की स्थिति में नहीं थे। दूसरी ओर, मोदी को पार्टी में गुटबाजी का सामना करना पड़ रहा था। राजनीतिक दृष्टि से देखने पर सत्ता पक्ष का समर्थन भी मिलने की उम्मीद नहीं थी। इन हालात में नवलकिशोर को एक अलग तरह के इम्तिहान से गुजरना पड़ा, जिसका उन्हें पूर्व में अनुभव नहीं था। लेकिन स्पष्टतापूर्ण आचरण उनकी बेबाक सोच से मेल खा रहा था। उन्होंने यथार्थ के आधार पर तटस्थतापूर्ण व्यवहार करने का फैसला किया। यह संविधान की भावना के अनुरूप राज्यपाल के कर्तव्यों को पूरा करने वाली और राष्ट्र प्रथम की उस भावना से संबंध रखती थी, जिसने नवलकिशोर को तरुणाई में स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ा था।

नवलकिशोर-मोदी के बीच आदर्श संवैधानिक संबंध विकसित हुए। नवलकिशोर ने जहां पद की गरिमा का ध्यान रखते हुए जनता से जुड़े राज्यपाल की कार्यशैली का सूत्रपात किया; वहीं, मोदी ने भी दलीय पूर्वाग्रहों को दरकिनार करते हुए राज्यपाल के पद के प्रति निष्ठा दिखाई। मोदी ने एक नई व्यवस्था कायम की, जिसके तहत उनका प्रत्येक मंत्री अपने विभाग से संबंधित कार्यों की जानकारियां राज्यपाल को देने लगा। मोदी ने सभी मंत्रियों को आदेश जारी कर दिया कि वे अपने विभाग की गतिविधियों और योजनाओं से नियमित रूप से राज्यपाल को अवगत कराएं। इस आदेश पर तुरंत अमल शुरू हुआ। मंत्री और उनके विभागों के प्रमुख अधिकारी अपने पूरे दल के साथ समय लेकर राज्यपाल से मिलने लगे। राजनीतिक क्षेत्रों में मोदी के इस कदम को आश्चर्य से देखा गया। उस समय तक यही परंपरा देखी जाती रही थी कि मुख्यमंत्री खुद एक-डेढ़ माह में राज्यपाल से मुलाकात करके अपनी सरकार के

कार्य संचालन की ब्रीफिंग देते रहते। राज्यपाल की इच्छा होने पर मंत्री और मुख्य सचिव सहित अन्य अधिकारी भी ब्रीफिंग देने जाते थे, लेकिन मोदी ने नई परंपरा की शुरुआत की।[52]

नवलकिशोर ने अपनी कार्यशैली से साफ कर दिया कि वे एक आदर्श राज्यपाल की भूमिका का सूत्रपात करने जा रहे हैं। उन्हें न तो सत्तारूढ़ दल की धड़ेबंदी से कोई सरोकार था और न ही उनके कांग्रेस विगत के कारण उम्मीद लगाए बैठे विपक्षी नेताओं की उन्हें परवाह थी। 17 सितम्बर, 2004 को नवलकिशोर को एक कार्यक्रम में शामिल होने द्वारका* जाना था। 16 तारीख को उन्हें पता चला कि 17 को मोदी का जन्मदिन भी है। उन्होंने तुरंत मोदी को फोन करवाकर कहलवाया कि वे जन्मदिन की बधाई देने मुख्यमंत्री निवास पर आएंगे। मोदी ने जवाब दिया कि वे स्वयं ही कल सुबह आशीर्वाद लेने आ जाएंगे। नवलकिशोर को सुबह ही द्वारका के लिए निकलना था। उन्होंने मोदी को गुलदस्ता देकर शुभकामना प्रकट की, 'आयुष्मान रहें, यशस्वी और कीर्तिवान हों'; और फिर मुंह मीठा कराया। उसके बाद ही कार्यक्रम के लिए रवाना हुए।[53]

26 जनवरी, 2005 को नवलकिशोर राज्यपाल के रूप में पहले गणतंत्र दिवस समारोह में शामिल हुए तो अपने भाषण में उन्होंने गुजरात सरकार की खुलकर प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि प्रगति के उच्च लक्ष्यांक हासिल करते हुए गुजरात ने शक्तिशाली भारत की विकास यात्रा में योगदान किया है। आज गुजरात पूरे देश की आर्थिक प्रगति में आगे है। इतना ही नहीं, सारे राज्यों की तुलना में गुजरात का अर्थतंत्र अधिक सुदृढ़ बना है। संतुलित वित्तीय व्यवस्थापन की सराहना करते हुए उन्होंने कहा कि इससे गुजरात ने अपनी आर्थिक प्रतिष्ठा को बढ़ाया है। गुजरात सरकार द्वारा जलशक्ति, ऊर्जा शक्ति, ज्ञान शक्ति, जन शक्ति और रक्षा शक्ति के समन्वय से पंचामृत प्रकल्प को एक दीर्घलक्ष्यी कार्यक्रम के रूप में कार्यान्वित किया है। साथ ही, जनोन्मुखी प्रशासन और जनसाझेदारी की संस्कृति स्थापित की जा रही है। नवलकिशोर ने माना कि राष्ट्र में दूसरी हरित क्रांति की अगुवाई करने के लिए गुजरात पूरी तरह सक्षम बन चुका है। ऊर्जा शक्ति के गुणात्मक सुधार के विकास कार्य में अग्रणी रहते हुए गुजरात ने अच्छी प्रगति की है। प्राकृतिक गैस और पेट्रोलियम के नए-नए भंडार खोजने में सफलता मिली है। बीज उत्पादन हेतु लिग्नाइट खनिज का उपयोग करने की नीति निर्धारित की गई है। निजी क्षेत्र की साझेदारी में गैस पाइपलाइन का कार्य हाथ में लिया गया है। सी.एन.जी. को लेकर गुजरात ने पर्यावरणलक्ष्यी परिवहन की दिशा में पहला कदम आगे बढ़ाया है। शहरों की भांति गांवों में भी चौबीस घंटे बिजली देने वाली ज्योतिग्राम योजना क्रियान्वित होने से गुजरात के गांवों की आर्थिक चेतना और जीवन स्तर में नया बदलाव आ रहा है। ज्ञान युग की इस शताब्दी का नेतृत्व भारत कर रहा है, तब गुजरात द्वारा विशाल आई.टी.जी. स्वान नेटवर्क को विकसित किया गया है।[54]

उस दौरान गुजरात के राजनीतिक हालात ये थे कि 23 फरवरी, 2005 को राज्यपाल के अभिभाषण पर बहस के दौरान सरकार पर विपक्ष आक्रामक था तो ज्यादातर भाजपा

*गांधीनगर से लगभग 500 किमी की दूरी पर स्थित द्वारका भारत के चार धामों में से एक है। यह अवतार माने जाने वाले भगवान कृष्ण के राज्य के रूप में प्रसिद्ध है।

विधायकों ने चुप्पी साध रखी थी।[55] विपक्ष के नेता अर्जुन मोढ़वाडिया का कहना था कि राज्यपाल के 80 मिनट के भाषण ने उन्हें निराश किया क्योंकि वह सरकार की प्रशस्तियों से भरा हुआ था। मोढ़वाडिया ने इसे अपेक्षा के विपरीत बताते हुए कहा कि देश के अनेक वरिष्ठ पदों पर रहे वरिष्ठ राजनीतिज्ञ नवलकिशोर से विद्वतापूर्ण भाषण की उम्मीद थी। सदन में चुप्पी रखने के ठीक तीन महीने बाद भाजपा के दो मंत्रियों अशोक भट्ट और भूपेंद्र सिंह चूडास्मा ने मोढ़वाडिया को सार्वजनिक रूप से जवाब दिया तो भी नवलकिशोर की आड़ ली गई। उन्होंने आरोप लगाया, 'दांडी यात्रा के दौरान आयोजित सार्वजनिक समारोह में नवलकिशोर को पिछली पंक्ति में बैठाया गया। शर्मा जैसे गांधीवादी राज्यपाल के साथ कांग्रेस ने अपमानजनक व्यवहार किया और इससे पूरे गुजरात का अपमान हुआ।'[56] इस तरह, नवलकिशोर को दोधारी तलवार पर चलना पड़ रहा था।

दुर्भावनाग्रस्त नेताओं द्वारा की जा रही बयानबाजी नवलकिशोर के लिए महत्वपूर्ण नहीं थी। वे किसी के कह देने भर से राय नहीं बनाते थे और अपने अनुभव के आधार पर ही विश्लेषण करते थे। कर्म को सर्वोपरि मानने वाले नवलकिशोर किसी व्यक्ति विशेष से प्रभावित नहीं होते थे। ईमानदार, सच्चा और सत्कर्म करने वाला व्यक्ति उन्हें बहुत प्रिय होता था। व्यक्ति चाहे गरीब हो या धनवान, शिक्षित हो या अशिक्षित, नवलकिशोर उसका मूल्यांकन केवल चरित्र के आधार पर करते थे। अच्छे काम करने वालों को प्रोत्साहित करना वे अपना धर्म समझते थे। अगर उनका कोई विरोधी भी अच्छा काम करता तो वे खुलकर उसकी तारीफ करते। मोदी को तो उन्होंने विरोधी माना भी नहीं था। इसलिए पार्टी की असहजता के बावजूद उनकी टिप्पणी मोदी के प्रयासों के लिए सकारात्मक ही रहती। अहमदाबाद में ओएनजीसी द्वारा रोक दिया गया पेट्रोलियम पदार्थों की खोज का कार्य जब मोदी के प्रयासों से पुनः शुरू हुआ और सफलता मिली तो नवलकिशोर इसके लिए मोदी को बधाई देना नहीं भूले।[57]

सोनिया से सीधा सवाल

नवलकिशोर के राज्यपाल रहने के दौरान मेरा कुछेक बार गुजरात राजभवन आना-जाना हुआ। मेरी स्मृतियों में है कि किस तरह गुजरात के कांग्रेसी नेता नवलकिशोर से लगातार मिलकर मांग करते रहते कि उन्हें मोदी सरकार के खिलाफ कार्रवाई करनी चाहिए। नवलकिशोर बिना लाग-लपेट के साफ-साफ कह देते कि वे राजनीति करने नहीं आए हैं; वे राज्यपाल हैं और उसी रूप में काम करेंगे। नवलकिशोर से तब मुझे यह भी पता चला कि कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी से उनकी इस संदर्भ में गांधीनगर राजभवन में बातचीत हुई और उनसे भी नवलकिशोर ने साफ-साफ पूछ लिया, 'मुझे यहां पर राज्यपाल बनाकर क्यों भेजा गया है; राज्यपाल के रूप में नियमानुसार काम करने के लिए या यहां की सरकार गिराने के लिए?' सोनिया के इस प्रत्युत्तर ने नवलकिशोर को काफी राहत दी कि वे राज्यपाल के रूप में भलीभांति काम करें। उस घटना के बाद नवलकिशोर ने राजनीतिक आग्रह करने वाले नेताओं को डांट-डपटकर अपनी भूमिका समझा दी और

उन्होंने भी नवलकिशोर से राजनीतिक आग्रह करना बंद कर दिया।[58]

गरिमामय आचरण और विनम्र व्यवहार से नवलकिशोर ने शीघ्र ही गुजरात की जनता का दिल जीत लिया। गुजरात के प्रमुख दैनिक समाचार पत्र 'संदेश' के साप्ताहिक कॉलम 'विचारोना वृंदावन मा' में प्रसिद्ध विचारक-लेखक गुणवंत शाह ने 'देश के सभी राज्यपालों में सबसे गरिमायुक्त राज्यपाल कौन?' के जवाब में लिखा, 'गुजरात के राज्यपाल नवलकिशोर शर्मा। गुजरात बहुत-सी बातों में प्रथम क्रमांक पर है, उनमें इस एक बात की वृद्धि करनी चाहिए।'[59]

15 अक्टूबर, 2006 को राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम 75वें जन्मदिन पर अहमदाबाद आए तो उन्हें जन्मदिन की बधाई देने वाले पहले व्यक्ति राज्यपाल नवलकिशोर ही थे। उस दिन नवलकिशोर ने 'वाइब्रेंट गुजरात' में पर्यटन को अंतरराष्ट्रीय फलक पर ले जाने के लिए गुजरात सरकार की ओर से थीम पैवेलियनों के उद्घाटन समारोह में राज्य सरकार की काफी प्रशंसा की। उन्होंने कहा, 'पिछले दो वर्षों से गुजरात ने जो प्रगति की है, वह देश के लिए मॉडल राज्य बनने की दिशा में अच्छा कदम है। गुजरात में पर्यटन विकास की असीम संभावना है, इस दिशा में राज्य सरकार की ओर से किए जा रहे प्रयास सराहनीय हैं।'[60] गुजरात और गुजरात सरकार की प्रशंसा से भरे ऐसे ही उद्गार नवलकिशोर ने ठीक दो वर्ष पहले 15 अक्टूबर, 2004 को उपराष्ट्रपति भैरोंसिंह शेखावत की मौजूदगी में व्यक्त किए थे। उस दिन अहमदाबाद के कांकरिया फुटबॉल ग्राउंड में लगभग 25 हजार लोग उपस्थित थे।[61]

विश्वविद्यालय अध्यादेश पर आपत्ति

नवलकिशोर का मानना था कि पक्ष-विपक्ष का भेद किए बिना सरकार के अच्छे काम की सराहना करना और राह भटकने पर उसे चेतावनी देना राज्यपाल का कर्तव्य है। वे कर भी यही रहे थे, लेकिन उनसे अपेक्षा की जा रही थी कि वे मोदी सरकार की केवल आलोचना करें। उन पर सरकार की प्रशस्ति का आरोप लगा, लेकिन विभिन्न अवसरों पर उन्होंने अपने आचरण से सिद्ध किया कि वे केवल संविधान के पक्षधर हैं। राज्य के विश्वविद्यालयों के चांसलर होने के नाते नवलकिशोर ने 'गुजरात राज्य विश्वविद्यालय अध्यादेश' को लेकर कड़ी आपत्ति जताई। यह अध्यादेश सितम्बर, 2004 में लाया गया था। इसकी पृष्ठभूमि नवलकिशोर के राज्यपाल बनने से कई वर्ष पूर्व शुरू हुई थी। विश्वविद्यालयों के लिए समान संविधान तैयार करने के उद्देश्य से 1997 में उच्च शिक्षा आयुक्त राम भद्रन की अध्यक्षता में एक आठ सदस्यीय कमेटी सीएफसीयू (कमेटी फोर फॉर्मुलेशन ऑफ कॉमन यूनिवर्सिटी) का गठन किया गया था। उस समय राज्य में भाजपा के विघटन से बनी राष्ट्रीय जनता पार्टी की सरकार थी। 2001 में भाजपा सरकार में सीएफसीयू के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 12 की गई थी।[62]

माना जा रहा था कि सीएफसीयू की सिफारिशों के आधार पर ही 2004 के अध्यादेश का मसविदा तैयार किया गया था, हालांकि मोदी सरकार ने ऐसा दावा नहीं किया था। इस

मसविदे के पीछे भावना बताई गई कि विश्वविद्यालयों के लिए एक समान नियम बनाकर उच्च शिक्षा के लिए बेहतर प्रशासन, उपलब्ध सुविधाओं का अधिकतम उपयोग, प्रभावी वित्तीय नियंत्रण और शिक्षा तथा अनुसंधान के कार्य को बेहतर तरीके से आयोजित किया जा सकता है। चयन, नियुक्ति और वाइस चांसलर को बदलने के संबंध में नए नियम प्रस्तावित किए गए। महाराज सयाजीराव यूनिवर्सिटी (एम.एस.यू.) में बड़ौदा (वडोदरा) राजपरिवार का व्यक्ति ही चांसलर हुआ करता था। अध्यादेश के जरिए इसको बदलकर राज्यपाल को चांसलर बनाने का प्रस्ताव रखा गया।[63]

राज्य के अनेक शैक्षिक संगठनों और विपक्षी दलों ने इस अध्यादेश पर तीखी प्रतिक्रिया की। उन्होंने आरोप लगाया कि यह विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता छीनने और सरकार का नियंत्रण बढ़ाने की दिशा में उठाया गया कदम है। कुलपति को नियुक्त करने और हटाने से संबंधित प्रावधानों को प्रमुख मुद्दा बनाया गया। अध्यादेश के तीसरे अध्याय 'विश्वविद्यालय के पदाधिकारी' में स्पष्ट उल्लेख था, 'राज्य सरकार कुलपति की नियुक्ति के लिए तीन योग्य व्यक्तियों का नाम सुझाने के लिए तीन सदस्यीय सर्च कमेटी का गठन करेगी। राज्य सरकार पैनल के तीन सदस्यों में से किसी एक को कुलपति नियुक्त करने के लिए चांसलर को सुझाव देगी।'[64] इसका विरोध इसलिए हुआ कि मौजूदा नियमों के तहत एम.एस.यू. को छोड़कर राज्य के सभी विश्वविद्यालयों में सर्च कमेटी के एक सदस्य को राज्यपाल द्वारा और दो अन्य सदस्यों को सिंडिकेट तथा कुलपतियों के संयुक्त बोर्ड द्वारा मनोनीत किया जाता था। इतना ही नहीं, जिन राज्यों में कॉमन यूनिवर्सिटी एक्ट लागू किया जा चुका था, वहां की सरकारें भी सर्च कमेटी के सभी सदस्यों को नियुक्त नहीं करती थीं। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र में पांच सदस्यीय सर्च कमेटी होती थी, जिनमें से केवल एक को मनोनीत करने का अधिकार सरकार के पास था।[65]

तत्कालीन नियमों के तहत आपात परिस्थितियों में कोई भी कार्रवाई करने का अधिकार कुलपति को था, जिसकी रिपोर्ट उसे सिंडीकेट की कार्यकारी परिषद को देनी होती थी। इसके बजाए अध्यादेश में प्रस्ताव किया गया कि कुलपति को राज्य सरकार को रिपोर्ट देनी होगी। सीनेट के सदस्यों की नियुक्ति में भी राज्यपाल के अधिकारों में कटौती प्रस्तावित की गई थी। अध्यादेश में आगे प्रावधान किया गया था कि राज्य सरकार सर्च कमेटी के किसी भी सदस्य को अध्यक्ष बना सकती है, जबकि यह अधिकार उस समय तक कुलाधिपति के रूप में राज्यपाल के पास होता था। सर्च कमेटी को लेकर सबसे विवादास्पद हिस्सा वह था, जिसमें कहा गया था कि राज्य सरकार के पास यह अधिकार होगा कि वह कमेटी की सिफारिशों को स्वीकार नहीं करे या उसी कमेटी से नई सिफारिशें भेजने की मांग करे या कमेटी के सदस्यों में बदलाव करे या कमेटी को पुन: गठित करे। इस प्रावधान पर यह सवाल उठाया जा रहा था कि अगर सर्च कमेटी का गठन और नियंत्रण पूरी तरह सरकार के हाथों में रहना है तो कमेटी बनाने का तुक ही क्या रह जाता है। कुलपति को हटाए जाने के विषय में भी अंतिम निर्णय का अधिकार सरकार के पास होना प्रस्तावित किया गया था, जो आमतौर पर

कुलाधिपति का अधिकार होता है। यहां तक कि रजिस्ट्रार, लाइब्रेरियन, परीक्षा नियंत्रक, वित्त विभाग और लेखा विभाग के अधिकारियों की नियुक्ति भी सरकार द्वारा गठित सेलेक्शन कमेटी की ओर से किए जाने का प्रावधान था।[66]

अध्यादेश का व्यापक विरोध शुरू हुआ। अनेक क्षेत्रों के प्रतिनिधि मंडलों ने नवलकिशोर से मुलाकात की और अध्यादेश को मंजूरी नहीं देने का अनुरोध किया। महाविद्यालय और विश्वविद्यालय शिक्षक संगठन के गुजरात राज्य संघ ने प्रदेशव्यापी आंदोलन चलाने की चेतावनी दी।[67] सीएफसीयू की सिफारिशों के मुद्दे पर भी विरोध दर्ज किया गया। सीएफसीयू के एक सदस्य ने दावा किया कि इस कमेटी ने कभी राज्य सरकार को अपनी सिफारिशें औपचारिक रूप से सुपुर्द ही नहीं की। उनका कहना था कि सीएफसीयू के किसी भी सदस्य ने इस दस्तावेज पर हस्ताक्षर नहीं किया था। उन्होंने मांग की कि सरकार ने अध्यादेश लाने के लिए जिस दस्तावेज को आधार बनाया, उसकी जानकारी दी जाए।[68]

वह अध्यादेश लगभग एक महीने से नवलकिशोर के पास रखा हुआ था, जिस पर हस्ताक्षर करके सरकार को लौटाया जाना था। अध्यादेश के प्रति विरोध को देखते हुए नवलकिशोर ने तुरंत हस्ताक्षर नहीं किए और विवादास्पद बिंदुओं पर सरकार से स्पष्टीकरण मांगा। उन्होंने एकाधिक बार अध्यादेश के प्रावधानों के संबंध में प्रश्न किए, लेकिन सरकार से कोई जवाब नहीं मिला। नवलकिशोर का कहना था कि अगर उन्हें उचित कारण बता दिया जाए तो उन्हें अध्यादेश पर हस्ताक्षर करने में कोई आपत्ति नहीं है। सरकार की अनुमति का इंतजार किए बिना नए कोर्स शुरू करने के अधिकार और औद्योगिक घरानों द्वारा कोर्स को स्पॉन्सर करने की अनुमति जैसे प्रावधानों को उन्होंने सकारात्मक माना, लेकिन उनका सवाल यह था कि नया सत्र चालू होने में काफी समय बचा होने के बावजूद सरकार इस अध्यादेश को पारित करने में जल्दबाजी क्यों कर रही है। हालांकि उन्हें अनौपचारिक रूप से यह कारण बताया जा रहा था कि गुजरात विश्वविद्यालय को छोड़कर सभी विश्वविद्यालयों के दीक्षांत समारोह हो चुके हैं और गुजरात विश्वविद्यालय नए प्रावधानों के अनुसार दीक्षांत समारोह आयोजित करना चाहता है। इस दौरान विभिन्न प्रतिनिधिमंडल नवलकिशोर से मिलकर सरकार पर अध्यादेश को वापस लेने के लिए दबाव बनाने का अनुरोध कर रहे थे। शैक्षिक संगठनों द्वारा निरंतर आंदोलन की चेतावनी दी जा रही थी। इन हालात में सरकार से स्पष्ट जवाब नहीं मिलने के कारण नवलकिशोर ने सीधे मोदी से संपर्क करने का फैसला किया। उन्होंने मोदी को एक पन्ने का पत्र लिखा। इसमें उन्होंने सवाल किया कि यह अध्यादेश विधानसभा के अगले सत्र तक क्यों नहीं रोका जा सकता है और राज्य सरकार विश्वविद्यालयों को साझा कानून के अंतर्गत लाने की जल्दबाजी क्यों दिखा रही है ?[69]

नवलकिशोर इस अध्यादेश को स्वीकृति नहीं देने के फैसले पर अडिग रहे। दूसरी तरफ, भाजपा के अंदरखाने में यह बात चल रही थी कि राज्यपाल तो अध्यादेश से संतुष्ट है, लेकिन उनकी कांग्रेस पृष्ठभूमि आड़े आ रही है।[70] मोदी के लिए इस तरह के विवाद अनावश्यक

थे। उन्होंने राज्यपाल के पद का मान रखा। आखिरकार, राज्य सरकार ने नवम्बर, 2004 में अध्यादेश वापस ले लिया।[71]

धार्मिक स्वतंत्रता विधेयक लौटाया

विधानसभा में पारित 'गुजरात धार्मिक स्वतंत्रता (संशोधन) विधेयक, 2006' को नवलकिशोर ने संविधान के साथ असंगत मानते हुए बिना हस्ताक्षर किए सरकार को लौटा दिया। दरअसल, 2003 में धार्मिक स्वतंत्रता अधिनियम के तहत धर्मांतरण के पहले प्रशासन से अनुमति लेने को अनिवार्य बना दिया गया था। 2006 का विधेयक इस कानून में सुधार करने के लिए लाया गया था। विपक्ष के विरोध के बीच 19 सितम्बर, 2006 को गुजरात धार्मिक स्वतंत्रता (संशोधन) विधेयक विधानसभा में ध्वनि मत से पारित हो गया। इस विधेयक में एक ही धर्म के विभिन्न पंथों के बीच धर्मांतरण को कानूनी वैधता दी गई थी। इसके तहत हिंदू, बौद्ध और जैन को एक ही धर्म में सम्मिलित किया गया था और इनके बीच धर्मांतरण करने के लिए प्रशासन से अनुमति लेने की जरूरत को खत्म करने का प्रस्ताव रखा गया था। विधेयक में 'बलपूर्वक धर्मांतरण' की परिभाषा को स्पष्ट किया गया और यह भी बताया गया कि धर्मांतरण विरोधी कानून किन लोगों पर लागू होगा।

इस विधेयक में कहा गया, 'धर्मांतरण का अर्थ होता है एक धर्म को त्यागकर दूसरे को अपना लेना, लेकिन एक ही धर्म के एक संप्रदाय को छोड़कर दूसरे को अपनाना धर्मांतरण के दायरे में नहीं आता है।' इस कथन का अर्थ यह था कि किसी मुसलमान के शिया से सुन्नी बनने या किसी ईसाई के कैथोलिक से प्रोटेस्टेंट बनने पर सरकार हस्तक्षेप नहीं करती। इसी तरह हिन्दू, बौद्ध और जैन को एक ही धर्म के विभिन्न संप्रदायों के रूप में परिभाषित किया गया था। विपक्ष का विरोध इसी विषय को लेकर था। विपक्ष के नेता अर्जुन मोढ़वाडिया का कहना था कि संविधान के अनुच्छेद 25 के अनुसार जैन और बौद्ध धर्म को हिंदू धर्म के साथ शामिल नहीं किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि जैन और बौद्ध हिंदू धर्म की शाखाएं नहीं हैं और सरकार इस मुद्दे पर राजनीति करना चाह रही है।[72]

नवलकिशोर ने इस विधेयक को संविधान द्वारा नागरिकों को दी गई धर्म की मुक्त अभिव्यक्ति, आचरण, प्रचार और आजादी के अधिकार की गारंटी के विरुद्ध माना और इसकी पुनर्समीक्षा का सुझाव दिया। नवलकिशोर का कहना था कि विधेयक में एक संप्रदाय को त्यागकर उसी धर्म के दूसरे संप्रदाय को अपनाने को धर्म परिवर्तन नहीं माना गया है। इसे यह कहते हुए आपत्तिकारक माना गया कि इसमें जैन और बौद्ध को हिन्दू धर्म के संप्रदाय, शिया और सुन्नी को मुस्लिम धर्म के संप्रदाय तथा कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट को ईसाई धर्म के संप्रदायों के रूप में माना गया है। नवलकिशोर ने कहा कि इस विधेयक के खिलाफ राज्य की विभिन्न धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं की ओर से ज्ञापन दिए गए हैं तथा प्रदर्शन भी किए गए हैं। इन बातों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने सुधार के सुझाव के साथ विधेयक सरकार को लौटा दिया।[73]

10 मार्च, 2008 को गुजरात सरकार ने विधेयक वापस ले लिया। विधानसभा अध्यक्ष अशोक भट्ट ने नवलकिशोर का भेजा हुआ संदेश पढ़कर सुनाया, जिसमें उन्होंने कहा था कि यह विधेयक संविधान के अनुच्छेद 25(ए) का उल्लंघन करता है। गृह राज्य मंत्री अमित शाह ने विधेयक वापस लेने के लिए सदन की अनुमति मांगी। नेता प्रतिपक्ष शक्तिसिंह गोहिल ने आपत्ति जताई कि इस स्तर पर विधेयक वापस नहीं लिया जा सकता। अध्यक्ष ने उनकी दलील को खारिज करते हुए कहा कि गुजरात विधानसभा के नियम 148 के अनुसार कोई विधेयक किसी भी समय वापस लिया जा सकता है। इसके लिए मतदान हुआ और सर्वसम्मति से ध्वनिमत के जरिए विधेयक को वापस लेने का फैसला हो गया।[74]

गुजरात के डांग जिले के सुबीर गांव में शबरी कुंभ के सफल आयोजन में भूमिका ने भी नवलकिशोर को जनता का चहेता बना दिया। इस कुंभ को लेकर ईसाई समुदाय खास तौर से चिंतित था। यह अफवाह फैली हुई थी कि जो ईसाई लोग पहले हिन्दू थे, उन्हें शबरी कुंभ के दौरान वापस हिन्दू बनाया जाएगा। इस माहौल में ईसाई समुदाय के प्रतिनिधिमंडल ने राज्यपाल से मिलकर सुबीर गांव में मौजूद गिरजाघरों की विशेष सुरक्षा की मांग की। उस क्षेत्र के विधायक मधु भाई भोए कांग्रेस से थे और विधानसभा में उप नेता भी थे। भोए ने यह आशंका अपनी ओर से जताई कि डांग जिले में प्रवेश के 19 मार्ग हैं, जिनमें से चार-पांच मार्ग महाराष्ट्र सीमा से लगे हैं। जब तक महाराष्ट्र सीमा को सील नहीं किया जाएगा, तब तक आशंका को निर्मूल नहीं माना जा सकता। इस मामले में भी पहल की गई और सीमाओं को सील करने के कारगर कदम उठाए गए। इस घटनाक्रम में सार्वजनिक हुई जानकारी के अनुसार, नवलकिशोर ने हालात की गंभीरता को देखते हुए मोदी से बात की। मोदी अपने गृहराज्य मंत्री, प्रमुख निजी सचिव, गृह सचिव, डीजीपी (इंटेलीजेंस) और डीजीपी (कानून और व्यवस्था) के साथ राजभवन पहुंच गए। नवलकिशोर ने उन्हें कहा कि कुछ भी हुआ तो परिणाम खराब ही होंगे। केंद्र सरकार इस बात से पूरी तरह सावधान रही। राज्य प्रशासन हरकत में आया। केंद्र ने भी गृह मंत्रालय के सचिव स्तर के अधिकारी को खोज-खबर के लिए भेज दिया। नवलकिशोर ने भी संबंधित जिला कलेक्टर से न सिर्फ तथ्यात्मक रिपोर्ट मांगी, बल्कि उन्हें तलब भी कर लिया। सुरक्षा बंदोबस्तों को लेकर सरकार ने पूरा प्रेजेंटेशन कर राज्यपाल को संतुष्ट किया। आखिरकार, सब कुछ शांति से संपन्न हो गया। शबरी कुंभ में पांच लाख से ज्यादा लोग जुटे।[75]

सोमनाथ में संस्कृत का शंखनाद

संस्कृत के प्रति नवलकिशोर का लगाव जगजाहिर था। वे इस विचार के समर्थक थे कि संस्कृत को बढ़ावा दिए बिना भारतीय संस्कृति को संरक्षित नहीं किया जा सकता। उनकी जागरूकता और रुचि से गुजरात में पहले संस्कृत विश्वविद्यालय ने आकार लिया। सोमनाथ में संस्कृत विश्वविद्यालय के निर्माण का संकल्प नरेंद्र मोदी ने प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी

की उपस्थिति में लिया हुआ था*। नवलकिशोर ने इस विषय को उठाया और मोदी को उनके संकल्प की ओर ध्यान दिलाया। मोदी ने अगले दिन उन सभी विभागीय सचिवों को राजभवन भिजवा दिया, जो विश्वविद्यालय की स्थापना के विषयों से जुड़े हुए थे।[76] इन्हें निर्देश थे कि राज्यपाल के निर्देशन में संस्कृत विश्वविद्यालय के संकल्प को पूरा किया जाए। संस्कृत के प्रति नवलकिशोर का गहरा सम्मान और लगाव था और उन्होंने उसी उदात्त भावना से खुद को विश्वविद्यालय निर्माण में समर्पित कर दिया। गुजरात संस्कृत साहित्य अकादमी द्वारा वेद पंडितों के सम्मान में नवलकिशोर के मुख्य आतिथ्य में समारोह हुआ, जहां मोदी ने सोमनाथ में संस्कृत विश्वविद्यालय स्थापित करने की घोषणा की।[77] जैसा नवलकिशोर चाहते थे, वैसा किया गया। अत्यल्प समय में सोमनाथ संस्कृत विश्वविद्यालय बनकर तैयार हो गया।[78]

गुजरात की जनता की जीवटता और मोदी सरकार के सशक्त प्रयासों की सराहना नवलकिशोर सार्वजनिक मंचों से करते रहे। 23 फरवरी, 2006 को जब उन्होंने विधानसभा में अभिभाषण दिया तो गुजरात में हो रहे विकास कार्यों को रेखांकित करते हुए उनके स्वर में गौरव का बोध था। उन्हें खुशी थी कि महात्मा गांधी की धरती पर उनके दिए मंत्रों को मूर्त रूप देने के युद्धस्तरीय प्रयास किए जा रहे हैं। गुजरात की औसत विकास दर देश में सर्वाधिक होने, रिवर ग्रिड की कल्पना को मूर्त रूप देने वाला एकमात्र राज्य बनने, सुदूरवर्ती गांवों तक निर्बाध बिजली पहुंचाए जाने जैसी उपलब्धियों के लिए नवलकिशोर ने मोदी सरकार की मुक्त कंठ से सराहना की। नवलकिशोर ने कहा:

> गुजरात की और सरकार की पहचान गांधी की विचारधारा तथा देश की संस्कृति के साथ जुड़ी हुई है। सरकार की एक ऐसी पहचान बनी है कि उसका प्रत्येक कार्य लोक सहभागिता, नवीनता और वैविध्यपूर्ण जनकल्याण की भावना वाला तथा वंचितों के प्रति करुणा नहीं, बल्कि कर्तव्य की भावना वाला रहा है। गुजरात की समग्र जनता के सभी वर्गों को ऐसी प्रतीति हो रही है कि गुजरात के विकास के

---

*कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी इस संकल्प के प्रेरणास्रोत थे। मोदी सोमनाथ को संस्कृत का केंद्र बनाना चाहते थे, लेकिन गोधरा और गुजरात की घटनाओं के कारण इस बारे में प्रगति नहीं हो सकी। सोमनाथ में संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना का विशेष महत्व है। सोमनाथ संगम तीर्थ है। प्राचीन समय में इस क्षेत्र में हिरण्य, कपिला, नकयु और वृजनी नदियों का संगम सरस्वती के साथ होता था। साथ ही, सरस्वती का संगम समुद्र से होता था। प्रभास पाटण क्षेत्र के नाम से वह विख्यात रहा है। प्रभास का अर्थ है विशेष प्रकाशित। वहीं, भारत के बारह स्वयंभू ज्योतिर्लिंगों में आदि ज्योतिर्लिंग सोमनाथ विराजमान हैं। (अरुणा चौकसी: सरदार वल्लभभाई पटेल और संस्कृति तीर्थ सोमनाथ, सरदार वल्लभभाई स्मृति ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2009, पृष्ठ 2) सोमनाथ प्राचीनकाल में समृद्ध और व्यस्त बंदरगाह था। व्यापार का केंद्र होने से दुनिया भर के समुद्री जहाज और व्यापारी आते। सोमनाथ ज्योतिर्लिंग की कीर्ति चारों तरफ फैल रही थी। आतताइयों ने वहां बार-बार आक्रमण किया। उस रक्तरंजित दौर से छह बार गुजरने वाले इस मंदिर के पुनर्निर्माण का श्रेय सरदार पटेल को है, इसकी प्राण प्रतिष्ठा राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद के हाथों संपन्न हुई। सोमनाथ मंदिर का पुनर्निर्माण केवल तोड़े गए मंदिर का पुनर्निर्माण नहीं, बल्कि भारत के आत्मसम्मान का पुनर्निर्माण भी था। बाद के वर्षों में सोमनाथ मंदिर की भव्यता और उत्कृष्ट व्यवस्था से इसकी ख्याति देश भर में फैलती गई। 2001 में 31 अक्टूबर-1 नवंबर को सोमनाथ ज्योतिर्लिंग की प्राण-प्रतिष्ठा का स्वर्ण जयंती समारोह मनाया गया। इस अवसर पर प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी, गृहमंत्री लालकृष्ण आडवाणी और गुजरात के नवनिर्वाचित मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी की उपस्थिति ने सोमनाथ के इतिहास में नया अध्याय जोड़ दिया। मोदी ने कहा, 'सोमनाथ सांस्कृतिक विरासत का बहुत बड़ा प्रेरणास्थल है तो उस विरासत को प्रभावित करने वाली धारा संस्कृत है। इसी सोमनाथ की पवित्र भूमि में संस्कृत विश्वविद्यालय बनाने के गुजरात सरकार के संकल्प को मैं प्रकट करना चाहता हूं। यह संस्कृत विश्वविद्यालय देश में बड़ी प्रतिभा का केंद्र बनेगा।' (अरुणा चौकसी: सरदार वल्लभभाई पटेल और संस्कृति तीर्थ सोमनाथ, सरदार वल्लभभाई स्मृति ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2009, पृष्ठ 269)

उद्यान में, खुद ने जो पौधे लगाए हैं, उन पर सफलता के फूल आए हैं। गुजरात के प्रत्येक नागरिक को अनुभव हो रहा है कि इस सरकार के हम सहभागी हैं। गुजरात की पहचान उत्सव हैं और गुजरात की सांस्कृतिक परंपरा अपने प्रत्येक कार्य को उत्सव के साथ जोड़ती है। कल तक गुजरात का किसान अकाल से पीड़ित था। जल सिंचन और टपक सिंचाई पद्धति जैसी वैज्ञानिक कृषि पद्धतियां अपनाकर राज्य के किसानों की आमदनी 5 वर्ष में दुगुनी करने की कृषि आधारित अर्थनीति का आयोजन किया गया है। गुजरात राज्य की औसत विकास दर 11.1 प्रतिशत है, जो देश के प्रमुख राज्यों की तुलना में सबसे अधिक है। यह हम सबके लिए गौरव की बात है। अकाल के शिकार हो रहे गुजरात के अनेक क्षेत्रों में सरदार सरोवर नर्मदा परियोजना से नर्मदा का पानी पहुंचा है। सारे देश में नदियों के संयोजन की रिवर ग्रिड की कल्पना साकार करने वाला गुजरात एकमात्र राज्य बना है।

पंचायती राज संस्था को सुदृढ़ बनाकर स्थानीय स्वराज के क्षेत्र में गुजरात ने अपूर्व पहल दिखलाई है। स्थानीय जल आपूर्ति के लिए सुधार की प्रक्रिया शुरू करके गांवों के अंदर तथा घरों तक लोगों को जल आपूर्ति के लिए आधारभूत व्यवस्था सुविधा के जरिए योजना का कार्यान्वयन तथा अनुकरण करने के उद्देश्य से स्थानीय संस्थागत विकास के लिए अच्छा प्रयास किया गया है। गुजरात का जनजीवन ग्रामीण क्षेत्रों में धड़क रहा है। महात्मा गांधी का 'ग्राम राज्य से राम राज्य' का संकल्प मूर्तिमंत करने की दिशा में राज्य सरकार ने समन्वित ग्रामीण विकास का व्यूह सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया है। सरकार ने गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहे श्रमजीवी परिवारों के जीवन को सुधारने का समयबद्ध कार्यक्रम श्रमयोगी योजना के तहत हाथ में लिया है। 15300 गांवों में 24 घंटे थ्री फेज बिजली मिलने से गावों के सामाजिक और आर्थिक जीवन में गुणात्मक परिवर्तन की नई चेतना धड़कने लगी है, जिसने ग्रामीण विकास के लिए अनेक दिशाएं एक साथ खोल दी हैं।

गुजरात की सर्वांगीण विकास यात्रा सही दिशा में आगे बढ़ रही है। लोक सहभागिता से विकास की तेज गति को नया सशक्त परिमाण मिला है। आधुनिक गुजरात के निर्माण में टेक्नोलॉजी का महत्तम विनियोग हो रहा है। वैश्विक विकास के परिप्रेक्ष्य में और 21वीं सदी की वैश्विक चुनौतियों को देखते हुए गुजरात ने विकास और प्रशासन की नई दिशा अपनाई है। 'भारत के विकास के लिए गुजरात का विकास मंत्र' सार्थक करने के लिए समग्र समाज को जोड़कर जन विश्वास, जन समर्थन और जन सहभागिता से गुजरात विश्व स्तर के विकास के मानदंड मूर्तिमंत करने के लिए सम्यक तथा सर्वांगीण प्रगति की तरफ कूच कर रहा है। एक-एक गुजराती गौरव से गुजराती होने का स्वाभिमान ले सके और गुजरात एक गौरवपूर्ण राज्य के रूप में वैश्विक पहचान प्राप्त करे, ऐसी हम सबकी इच्छा है।

> सभी जनप्रतिनिधि लोकशाही शासन व्यवस्था को सार्थक बनाने और लोक आकांक्षा की पूर्ति सुनिश्चित करने के लिए राज्य के हितैषी बनकर जनता को सुशासन की अनुभूति कराने की उच्च संसदीय परंपरा की गरिमा बनाए रखकर अपना श्रेष्ठतम योगदान देंगे और चर्चाओं में गरिमापूर्ण भाग लेंगे, ऐसी आशा के साथ आप सबको शुभकामनाएं देता हूं।[79]

परंपरा और विज्ञान के मेल से चमत्कार

नवलकिशोर परंपरा और विज्ञान के मेल से नई संभावनाएं तलाशने के पक्षधर थे। 2006 के मानसून काल की बात है। नवलकिशोर के पास काशी से एक संत आए, जिन्होंने यज्ञ के माध्यम से बरसात करवाने के विषय में काफी काम किया था। नवलकिशोर ने विज्ञान के क्षेत्र से किसी विशेषज्ञ को साथ जोड़ना चाहा। मोदी ने इसके लिए आणंद कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. एम.सी. वार्ष्णेय से संपर्क किया और नवलकिशोर से मिलने को कहा। वार्ष्णेय दूसरे ही दिन गांधीनगर जाकर नवलकिशोर से मिले। वार्ष्णेय ने बताया कि ज्योतिष के आधार पर, विशेषकर वराहमिहिर संहिता के आधार पर किसी भी स्थान पर वर्षा का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। वार्ष्णेय ने इस आधार पर पूर्व में काम किया हुआ था। उनकी टीम ने महाराष्ट्र के सभी जिलों में वर्षा के पूर्वानुमान का कैलेंडर बनाकर किसानों को दिया था। उसके परिणाम बड़े उत्साहजनक आए थे। वार्ष्णेय ने सोमयाग विधि का भी वर्णन मिलने की बात बताई, जिसके आधार पर सोलापुर जिले के बार्शी स्थित आश्रम के काले गुरुजी ने यज्ञ के माध्यम से वर्षा करवाने के प्रयोग किए थे। बार्शी और पुणे में हुए यज्ञ में सहभागी होने की भी बात वार्ष्णेय ने बताई। ये सभी प्रयोग गुजरात में किए जाने को लेकर नवलकिशोर ने सहमति दे दी।

वार्ष्णेय ने आणंद विश्वविद्यालय में विशेषज्ञों का एक दल तैयार किया। ठाणे और पुणे से भी कुछ लोग जुड़े। काले गुरुजी का पूरा दल बार्शी से सहभागी हुआ। वार्ष्णेय के दल ने गुजरात के सभी जिला केंद्रों की बरसात का पूर्वानुमान निकाला और हर जिला केंद्र के तीस वर्षों से अधिक उपलब्ध बरसात के विवरण के औसत और संभावना निकाली। इसके बाद सबने मिलकर रंग संकेत (कलर कोड) का उपयोग करके वर्षा का कैलेंडर तैयार किया। कैलेंडर लेकर वार्ष्णेय गांधीनगर गए और उसे कृषि अपर मुख्य सचिव डॉ. अविनाश कुमार को दिखाया। फिर वे दोनों मोदी के पास गए। सारी चर्चा के बाद कैलेंडर को 'प्रायोगिक वर्षा विज्ञान पंचांग-2006' का नाम दिया गया। परिसंवाद के लिए गुजरात और देश के अन्य भागों से वैज्ञानिक बुलाए गए। कार्यक्रम अहमदाबाद मैनेजमेंट एसोसिएशन के विशाल कक्ष में आयोजित किया गया। बाहर मैदान में यज्ञ की व्यवस्था थी। चर्चा सत्र के उद्घाटन समारोह के लिए नवलकिशोर, मोदी और मंत्रिमंडल के सभी सदस्य उपस्थित थे। काले गुरुजी का पूरा दल उपस्थित था। उन्होंने मंत्रोच्चार के साथ कार्यक्रम की शुरुआत की। मंत्र ध्वनि के कारण एक अनोखा पवित्र वातावरण बन गया। राज्यपाल और मुख्यमंत्री के भाषण के बाद संशोधन पत्र पढ़े गए।

दूसरे दिन बाग में यज्ञ की वेदी बनाई गई और यज्ञ की सारी व्यवस्था की गई। एक दिन पहले के चर्चा सत्र के कारण वैज्ञानिक और मीडिया के लोग अधजगी-सी हालत में थे। धीमे-धीमे सभी लोग मंडप के पास एकत्रित हुए। बीच में काले गुरुजी ने वर्षा के देवता को प्रसन्न करने के लिए आहुति दी। उस आहुति की ज्वालाएं 30-32 फीट ऊंची उठने लगीं। सभी ओर से वैज्ञानिक, मीडियाकर्मी, दर्शक दौड़कर आए और इकट्ठे हो गए। मीडिया के लोगों ने काले गुरुजी से एक और आहुति देने की विशेष विनती की, जिससे उस आहुति की रिकॉर्डिंग की जा सके। काले गुरुजी ने दूसरी आहुति दी, जिसकी रिकॉर्डिंग की गई। वहां उपस्थित सभी लोगों ने इस दृश्य को विस्मय से देखा। दूसरे दिन सभी समाचारों में यज्ञ से वर्षा की चर्चा थी।[80]

राज्यपाल के रूप में नवलकिशोर के कार्यकाल को कला, साहित्य, संगीत के संरक्षण के लिए जाना जा रहा था। राज्यपाल रहते हुए उन्होंने हिन्दी के प्रयोग को भी बढ़ावा दिया। वे एक आदर्श कुलाधिपति रहे और कभी भी कुलपतियों की नियुक्ति में अपने प्रभाव का इस्तेमाल नहीं किया। गुजरात के सभी विश्वविद्यालयों में केवल मेरिट के आधार पर ही कुलपति नियुक्त किए गए। स्वयं मोदी ने इस बात का जिक्र तत्कालीन राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम के सामने किया।[81] कलाम जनवरी, 2005 में अहमदाबाद स्थित निरमा यूनिवर्सिटी में आयोजित 92वें भारतीय विज्ञान अधिवेशन में शामिल होने आए थे। 1914 से प्रतिवर्ष आयोजित किया जा रहा यह अधिवेशन पहली बार किसी विश्वविद्यालय में रखा गया था। प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने इसका उद्घाटन किया था।[82] इस अवसर पर विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में मोदी ने नवलकिशोर की कार्यशैली की प्रशंसा करते हुए कहा कि उन्हें सर्वश्रेष्ठ राज्यपाल कहा जाना चाहिए।[83] इस अवसर पर नवलकिशोर ने वैज्ञानिकों से आह्वान किया कि वे अधिवेशन को ज्ञानवर्धक चर्चा तक सीमित रखने के बजाए भारत को 2020 तक विकसित राष्ट्र बनाने के लिए ग्रामीण उद्योगों और अर्थतंत्र की समस्याओं को तकनीक के जरिए हल करने की प्रभावी योजना को आकार दें। उन्होंने वैज्ञानिकों, तकनीकविदों, नीति निर्धारकों और निर्णायकों को जनसंख्या विस्फोट, भयानक रोगों के प्रसार, शुद्ध पेयजल का अभाव, पर्यावरण प्रदूषण और प्राकृतिक आपदाओं के पूर्वानुमान की सीमित क्षमता जैसी गंभीर चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रतिबद्ध होने का अनुरोध किया।[84]

समाज निर्माण में कला-संगीत की भूमिका को नवलकिशोर महत्वपूर्ण मानते थे। वे अक्सर यह चर्चा करते थे कि शांति और सद्भावना बढ़ाने का काम संगीत कर सकता है। अहमदाबाद में प्रति वर्ष जनवरी के पहले सप्ताह में आयोजित होकर कई दिन तक चलने वाले शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम 'सप्तक' में वे गहरी रुचि लेते थे। यह कार्यक्रम जयपुर के प्रसिद्ध शास्त्रीय संगीतज्ञ विश्वमोहन भट्ट के रिश्तेदार नंदन मेहता की देखरेख में होता था। मेहता बनारस के प्रसिद्ध तबलाबादक पं. किशन महाराज के शिष्य थे और उन्होंने गुजरात में सप्तक स्कूल की स्थापना की थी। सप्तक कार्यक्रम की इतनी साख रही कि इसमें भाग लेने के लिए पं. रविशंकर, उनकी पुत्री अनुष्का और जाकिर हुसैन जैसे विदेश में रहने वाले कलाकार भी अहमदाबाद आते रहे हैं। राज्यपाल रहने के दौरान नवलकिशोर सप्तक कार्यक्रम

में आने वाले संगीतज्ञों को राजभवन में चाय पर आमंत्रित करके उनका सत्कार करते थे।[85]

इसी तरह, साहित्यिक आयोजनों में भी नवलकिशोर बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते थे। गुजरात हिन्दी समाज और अन्य संस्थाओं की ओर से आयोजित होने वाले कवि सम्मेलनों में अनेक ख्याति प्राप्त कवि आते रहते थे। अहमदाबाद के राजपथ क्लब, कर्णावती क्लब और सरदार पटेल क्रिकेट स्टेडियम में ये आयोजन होते थे। दोनों क्लबों में 10-12 हजार और स्टेडियम में श्रोताओं की संख्या 50 हजार तक होती थी। एक बार राजपथ क्लब में कवि सम्मेलन हुआ, जिसकी अध्यक्षता नवलकिशोर कर रहे थे। मुख्यमंत्री मोदी और केंद्रीय विधि मंत्री अरुण जेटली भी उपस्थित थे। संतोष आनंद, कुमार विश्वास, शैलेष लोढ़ा आदि कवियों को बुलाया गया था। संचालन जयपुर के कवि सुरेन्द्र दुबे कर रहे थे। बीच-बीच में कवियों का हास-परिहास भी चल रहा था। मोदी और जेटली को रात 1 बजे निकलना था। संचालन करते हुए दुबे ने कहा, 'मोदीजी, आप आज जाइएगा मत। अभी कई कवि बाकी हैं, जिनमें मैं संचालन के कारण अंत में सुनाऊंगा। मैं आपको कई साल से ढूंढ़ रहा हूं और आज जमकर सुनाऊंगा।' इस पर मोदी भी परिहास के मूड में आ गए। उठकर माइक लेकर बोले, 'आप मुझे ढूंढ़ रहे थे और मैं आपको। यह अच्छा है कि आप राजस्थान के ही रहने वाले राज्यपाल नवलकिशोर जी के सामने पकड़ में आए। राज्यपाल कला के पारखी हैं, वे आपको देर तक सुनेंगे। आपकी इच्छा है कि मोदी को जी भरकर सुनाऊं, मेरा कोटा राज्यपाल जी पूरा करेंगे।' नवलकिशोर भी कहां पीछे रहने वाले थे! उन्होंने कहा, 'दुबेजी जरा माइक देना, मैं बैठे-बैठे ही बोलूंगा।' दुबे ने तत्काल माइक पकड़ा दिया। नवलकिशोर बोले, 'दुबे मोदीजी को ढूंढ़ रहे थे और मोदीजी दुबे को। अच्छी बात है। अच्छे राजनेता को अच्छा कवि ढूंढ़ लेना चाहिए और अच्छे कवि को अच्छे राजनेता का साथ ढूंढ़ लेना चाहिए। लेकिन मैं तो गुजरात की हिन्दी भाषी जनता और अन्य श्रोताओं के हिन्दी प्रेम तथा कवि प्रेम को देखकर नतमस्तक हूं। वाकई गुजरात के लोग बहुत अच्छे हैं।' इसके बाद श्रोताओं ने देर तक तालियां बजाईं और राजस्थान के कुछ युवक 'नवलकिशोर शर्मा जिंदाबाद' के नारे लगाने लगे। मोदी फिर खड़े हुए। उन्होंने माइक लेकर कहा, 'आज मैं राज्यपाल नवलकिशोरजी की बात सुनकर अभिभूत हूं। उन्होंने हिन्दी प्रेमियों और पूरी गुजरात की जनता की जय बोली है। मैं उनका हार्दिक अभिनंदन करता हूं।' फिर वे अपने स्थान से उठे, नवलकिशोर का आदर से हाथ पकड़कर मंच पर ले आए और एक शॉल ओढ़ाकर उनका अभिनंदन किया। इसके बाद अपने चिर-परिचित अंदाज में बोले, 'भाइयो-बहनो, राज्यपाल श्री के साथ कवियों का ग्रुप फोटो हो जाए?' जनता ने तालियां बजाकर खुशी जताई। इसके बाद नवलकिशोर, मोदी और जेटली का कवियों के साथ ग्रुप फोटो हुआ।[86]

आत्मा में राजस्थान, कर्म में गुजरात

सामाजिक सम्मेलनों में राज्यपालों को बुलाने की परंपरा रही है और नवलकिशोर इस तरह के कार्यक्रमों को सामाजिक समरसता के लिए आवश्यक भी मानते थे। हालांकि कई बार यह कहकर उनकी आलोचना भी की जाती थी कि वे जाति विशेष द्वारा आयोजित

कार्यक्रमों में जाते हैं। राजस्थान के एक प्रमुख समाचार पत्र के संपादकीय में इसी आशय की एक टिप्पणी की गई। जयपुर में राजस्थान गौड़ ब्राह्मण महासभा के सम्मेलन में नवलकिशोर के शामिल होने के विषय पर इस संपादकीय में कहा गया कि उन्हें जातिगत राजनीति से ऊपर उठना चाहिए। इस प्रकार के जातिगत सम्मेलन में सम्मिलित होने से राज्यपाल एक जाति विशेष का होकर रह जाता है और जाति से जुड़ाव उपस्थित करें तो अन्य जातियों और समूहों से उनका दूर होना भी व्यक्त होता है। इस टिप्पणी को पढ़ने के बाद नवलकिशोर ने संपादक को पत्र में लिखा:

> मुझे इस संपादकीय को पढ़कर थोड़ा आश्चर्य हुआ। मुझे इस सम्मेलन में जाने का आज भी कोई खेद नहीं है। मेरी व्यक्तिगत राय में ऐसे सम्मेलनों में जाने से किसी भी राज्यपाल का किसी भी जाति से जुड़ाव नहीं होता है। विशेष तौर पर यदि वह राज्यपाल सभी जातियों एवं समूहों के सम्मेलन में, जब भी आमंत्रण मिले, उपस्थित होता रहा हो। लेकिन सावधानी इस बात की रखनी होगी कि उसे यह देखना चाहिए कि सम्मेलन का उद्देश्य क्या है, आयोजक अच्छे स्तर के लोग हैं या नहीं। देश और समाज जाति से ही बनता है। जातियां आज के भारतवर्ष की अनिवार्यता हैं। यदि देश मजबूत करना है, उसमें सुधार करना है तो समाज और जाति के सम्मेलन कभी-कभी आवश्यक होते हैं। समाजों में, जातियों में बहुत-सी बुराइयां, खामियां और कमियां हैं। ऐसे जातिगत सम्मलनों में चर्चा हो तो एक हद तक रचनात्मक कार्य होता है और समाज को नई दिशा मिलती है। आशा है, आप इस पर मनन करें तो मुझसे अवश्य सहमत होंगे। मैंने यह पत्र आपको किसी प्रतिक्रिया के लिए नहीं लिखा, इसलिए आप इसे अन्यथा नहीं लें।[87]

गुजरात में रहते हुए भी नवलकिशोर का मन राजस्थान में रहा। वे अपने सहयोगियों-कार्यकर्ताओं के संपर्क में बने रहे। जयपुरवासियों के प्रति उनकी गहरी आत्मीयता थी। उनसे जुड़े हर कार्यकर्ता को वे नाम से जानते थे और कार्यकर्ता के हर सुख-दुख में हमेशा साथ खड़े रहते थे। किसी का जन्मदिन हो या किसी के घर बच्चे ने जन्म लिया हो या किसी के घर में दुर्भाग्य से कोई विपदा आ पड़ी हो, नवलकिशोर चिट्ठी लिखकर संदेश देना नहीं भूलते।[88] राज्यपाल के रूप में नवलकिशोर का हमेशा यह प्रयास रहा कि उनके जरिए राजस्थान का मान-सम्मान बढ़ना चाहिए।

राजभवन में नियुक्त कुछ अधिकारी तो कई बार नवलकिशोर के साथ ही टेबल पर बैठकर भोजन करते थे। यह जानना भी कम आश्चर्यजनक नहीं था कि वे अपने सहकर्मियों से खाने के लिए बहुत मनुहार भी करते। यह उनका बड़प्पन था।[89] यह उनके लिए बहुत स्वाभाविक बात थी कि भोजन के दौरान कोई परिचित आ गया तो उसे भीतर बुलवाकर अपनी टेबल पर

एक थाली और लगवा देते तथा उसे भोजन करवाते। एक बार दौसा के 40-50 लोग अहमदाबाद होकर द्वारिका, काठियावाड़ आदि स्थानों की यात्रा पर गए। नवलकिशोर ने अतिव्यस्तता के बावजूद यात्रियों को राजभवन में खाने पर आमंत्रित किया। वे स्वयं भी वहां मौजूद रहे। मेहमानों की खातिरदारी करने में उन्हें प्रसन्नता होती थी।[90] नवलकिशोर अपने पास काम करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को महत्व देते थे। उनके आसपास कई ऐसे लोग थे, जिनके लिए सरकारी अस्पताल में इलाज करवाना काफी भारी था। नवलकिशोर कर्मचारियों को अपनी जिम्मेदारी समझकर सहयोग करते थे। जब भी वे जयपुर या दौसा आते तो अपने सरकारी विमान में लोगों को साथ ले जाकर राजभवन में मुफ्त इलाज करवाते थे।[91]

राजस्थानी मूल के गुजरात में रहने वाले व्यवसायियों से भी नवलकिशोर का अच्छा जुड़ाव रहा। उनकी समस्याओं को हल करने के लिए नवलकिशोर राष्ट्रीय नेतृत्व से चर्चा भी करते थे। मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली यूपीए सरकार के पहले कार्यकाल में कपड़े पर कर बढ़ा दिया गया था। कपड़ा मंत्री गुजरात के पूर्व मुख्यमंत्री शंकरसिंह वाघेला थे। इस निर्णय से अहमदाबाद और सूरत के कपड़ा उद्योग में निराशा छा गई। कई बड़े व्यवसायियों ने नवलकिशोर से मुलाकात की और कहा कि इससे कपड़ा बाजार की कमर टूट जाएगी; मिलें और उत्पादन इकाइयां बंद हो जाएंगी। व्यवसायियों की सारी बातें सुनने के बाद नवलकिशोर ने तत्काल वाघेला से संपर्क किया और सीधा विरोध दर्ज कराते कहा, 'केंद्र में सरकार किसकी है और गुजरात में राज्यपाल कौन है ? अगर मेरे होते हुए इन व्यवसायियों को आर्थिक तंगी से गुजरना पड़े तो मुझ पर लानत है। आप इस समस्या को ऐसे समझिए मानो मैं राज्यपाल नहीं, बल्कि कपड़ा व्यवसायी हूं। आप प्रधानमंत्री से बात करके कर हटवाइए, नहीं तो अनर्थ हो जाएगा और पाप का भागी मैं भी बनूंगा और आप भी बनेंगे।' वाघेला से इतनी कड़ी प्रतिक्रिया और विरोध दर्ज करवाने के बाद व्यवसायियों की जान में जान आई और वे नवलकिशोर के व्यवहार के कायल हो गए।[92]

यह भी एक तथ्य है कि राजस्थानवासियों से आत्मीयता बनाए रखना और उन्हें कोई राजनीतिक सहायता प्रदान करना नवलकिशोर के लिए बिल्कुल अलग विषय थे। संवैधानिक मर्यादाओं को वे कभी नहीं भूलते। अगर कोई व्यक्ति उनकी पहुंच का नाजायज इस्तेमाल करने के इरादे से भेंट करने आता तो नवलकिशोर खरा जवाब दे देते। एक बार जयपुर प्रवास के दौरान कोई बुजुर्ग उनके पास एक सिफारिशी नोट लिखवाने आए। नवलकिशोर ने कहा, 'देख भाई, पहले मैं नेता था, अब राज्यपाल हो गया हूं। अब मेरी अपनी विवशताएं और मर्यादाएं हैं। नेता तो किसी भी जायज और नाजायज कागज पर बिना पढ़े भी दस्तखत कर देता है, लेकिन राज्यपाल के सामने हर काम लिखित में आता है। वह लिखित में ही जवाब देता है, लेकिन कागज पर लिखा पढ़ने के बाद ही। इसलिए मैं अब कहता हूं कि नेता तो गवर्नर बन सकता है, लेकिन गवर्नर नेता नहीं बन सकता है।' इसी तरह, उनके कुछ परिचित नगर निगम चुनाव लड़ने के लिए टिकट की सिफारिश का आग्रह करने आ गए। नवलकिशोर का जवाब स्पष्ट था, 'भाया, अब मैं राजनीति से ऊपर उठ गयो हूं। थानै साफ-साफ बता द्यूं.. टिकट

से कोई चुनाव जीतै, या गलतफहमी दूर करल्यौ। जनता में जार वांको दिल टटोलौ। दिल की बात की थानै धड़कन सुनाई दे जावै, जद बड़ा नेतान कै पास जार टिकट की फरमाइश करौ। थां म्हारै पास आर रोंग नम्बर क्यूं डॉयल करौ छौ।' *(भाई, अब मैं राजनीति से ऊपर उठ गया हूं। आपको साफ-साफ कहता हूं, यह गलतफहमी दूर कर लीजिए कि टिकट मिलने से कोई चुनाव जीत जाता है। लोगों के बीच जाकर उनके दिल टटोलिए। जब दिल की धड़कन सुनाई दे जाए, तब बड़े नेताओं के पास जाकर टिकट की फरमाइश करिए। मेरे पास आकर रॉन्ग नंबर क्यों डायल कर रहे हैं?)*[93]

राजनीतिक शुचिता और सादगी

मध्यमवर्गीय परिवार से निकलकर संघर्ष और ईमानदारी के बूते आगे बढ़े नवलकिशोर ने अपनी सादगी नहीं छोड़ी। राज्यपाल होते हुए भी वे अपने लिए कोई विशेष इंतजाम नहीं करवाते थे। बढ़ती उम्र के बावजूद वे अपना काम यथासंभव खुद ही करने का प्रयास करते। फोन खुद उठाते थे और सबसे व्यक्तिगत तौर पर बात करते। वे बिचौलियों को पसंद नहीं करते थे। उनका कहना था कि जिसे जो बात करनी है, सीधे उनसे करे। दलाली व्यवस्था के वे खिलाफ थे।[94] उनकी यह खासियत लोगों का ध्यान खींचती थी, जो वीआईपी लोगों को चाक-चौबंद व्यवस्थाओं से घिरा देखने के आदी थे। पाकिस्तान के सिंधी भाषा के लेखक अमर जलील पर भी नवलकिशोर के इस स्वरूप का गहरा प्रभाव हुआ। वे मई, 2006 में अखिल भारतीय सिंधी समाज के एक कार्यक्रम के लिए अहमदाबाद आए थे। स्वदेश लौटने के बाद उन्होंने एक संस्मरण लिखा, जो 'डॉन' दैनिक में प्रकाशित हुआ। नवलकिशोर से मुलाकात का जिक्र करते हुए जलील ने लिखा:

> अहमदाबाद में लॉ गार्डन के पास ठाकुरभाई देसाई हॉल में आयोजित पुरस्कार समारोह शाम 7 बजे शुरू होने वाला था। आयोजक मुझे 6.30 बजे समारोह स्थल पर लेकर गए। देसाई हॉल अपनी क्षमता तक लगभग भरा हुआ था। 6.30 बजे के आसपास आयोजकों को मुख्य अतिथि गुजरात के राज्यपाल नवलकिशोर शर्मा का संदेश मिला कि जिस आधिकारिक कार्यक्रम में वे सुबह से व्यस्त हैं, उसमें और समय लगेगा, इसलिए वे 7.30 बजे पहुंचेंगे। उन्होंने आयोजकों से कहा कि वे दर्शकों के सब्र का इम्तिहान नहीं लें और कार्यक्रम जारी रखें। ठीक 7 बजे आध्यात्मिक पाठ, सूफी संगीत और भक्तिपूर्ण नृत्य के साथ कार्यक्रम की शुरुआत हुई। जब मुख्य अतिथि नवलकिशोर शर्मा पहुंचे, तब देसाई हॉल में अंधेरा था। उनके आने से पहले सुरक्षाकर्मियों और ब्लैक कमांडो ने उनके लिए आरक्षित कुर्सियों को उलट-पुलटकर यह जांच नहीं की कि कोई आपत्तिजनक चीज तो वहां नहीं रखी गई है। जब राज्यपाल महोदय हॉल में दाखिल हुए तो वे हृष्ट-पुष्ट अंगरक्षकों से घिरे हुए नहीं थे, जो आम

> लोगों को विशिष्ट लोगों से दूर रखने के लिए धक्का-मुक्की करने के आदी होते हैं। उनके आगमन को लेकर कोई दिखावटीपन, कोई तामझाम नहीं था। उनका आना उतना ही साधारण और विनम्रतापूर्ण था, जितने कि वे खुद दिखाई दे रहे थे। वे एक गरिमापूर्ण बुजुर्ग थे, साधारण भारतीय कपड़े और चप्पल पहने। कार्यक्रम में रुकावट नहीं आई। सब सहज था और आयोजक निश्चिंत थे। कार्यक्रम के अंत में मेरा उनसे परिचय करवाया गया। उन्होंने गर्मजोशी के साथ मुझसे हाथ मिलाया और बोले, 'घर लौटकर लोगों तक मेरी शुभकामनाएं पहुंचाइएगा।' मैंने आयोजक समिति के एक सदस्य से पूछा, 'क्या राज्यपाल के आने-जाने के लिए इस सड़क पर आवागमन रोका गया था?' चौंकते हुए उन्होंने कहा, 'नहीं!'[95]

जय-जय गरवी गुजरात

16-17 सितम्बर, 2008 को नई दिल्ली स्थित राष्ट्रपति भवन में देश भर के राज्यपालों का सम्मेलन आयोजित हुआ। राष्ट्रपति प्रतिभा पाटील की अध्यक्षता में आयोजित हुए इस सम्मेलन की चर्चा का मुख्य विषय आंतरिक सुरक्षा से जुड़ा था। अर्थव्यवस्था, पर्यावरण, सतत विकास जैसे विषयों पर भी चर्चा हुई। 28 राज्यों के राज्यपाल और तीन केंद्र शासित प्रदेशों के उपराज्यपाल (एलजी) इस सम्मेलन में शामिल हुए। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह, उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी सहित अनेक केंद्रीय मंत्री भी उपस्थित रहे।[96]

नवलकिशोर ने वहां गुजरात के समक्ष आसन्न सुरक्षा संकटों के बारे में विस्तार से चर्चा की और इस बात पर बल दिया कि इन चुनौतियों के बावजूद गुजरात ने अनेक क्षेत्रों में विकास के कीर्तिमान रचे हैं। उन्होंने कहा:

> आंतरिक सुरक्षा और बाहरी सुरक्षा दोनों ही दृष्टिकोण से गुजरात बहुत संवेदनशील है। पाकिस्तान से सटा हुआ होने के कारण यह बाहरी हमले का आसान लक्ष्य है। गुजरात की 512 किलोमीटर थलीय सीमा और 1640 किलोमीटर जलीय सीमा पाकिस्तान से लगती है। पाकिस्तान की आईएसआई अक्सर इन सीमाओं के जरिए अपने एजेंटों की घुसपैठ, हथियारों, विस्फोटकों, नशीले पदार्थों, जाली भारतीय मुद्रा और स्लीपर सेल की तस्करी में सहयोग करके गुजरात की अर्थव्यवस्था, सौहार्द और सुरक्षा को अस्थिर करने का प्रयास करती है। नक्सली गतिविधियों से गुजरात अब तक अछूता रहा है। हालांकि दक्षिणी गुजरात का आदिवासी क्षेत्र अधिक संवेदनशील है और उसे भाकपा (माओवादी) तथा भाकपा (माले) जैसी राजनीतिक पार्टियों द्वारा निशाना बनाया जाता है। वे आदिवासियों के लिए ही चलाए गए कल्याणकारी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन को लेकर उनके मामूली असंतोष का लाभ उठाते हैं और शांतिपूर्ण

स्थिति को भंग करने का प्रयास करते हैं। सूरत औद्योगिक रूप से विकसित शहर है और महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखंड तथा ओड़िशा के मजदूर बड़ी संख्या में यहां रोजगार की तलाश में आ रहे हैं। कम्युनिस्ट पार्टियों द्वारा मजदूर कल्याण संगठनों के नाम पर उनका शोषण किया जा रहा है। नक्सलवादी सूरत को अपने गढ़ की तरह इस्तेमाल करते हैं और गुजरात में घुसपैठ करके गतिविधियां बढ़ाने के एकमात्र उद्देश्य के साथ वहां से संचालन करते हैं। राज्य की सुरक्षा के मद्देनजर राज्य सरकार ने पुलिस बल के आधुनिकीकरण के लिए अनेक कदम उठाए हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा के विषयों को प्राथमिकता से उठाने के प्रति राज्य सरकार जागरूक है। सीमावर्ती क्षेत्रों में इंफ्रास्ट्रक्चर नेटवर्क को अपग्रेड किया जा रहा है ताकि संकट की घड़ियों में इन क्षेत्रों तक पहुंचना और भी सुलभ हो सके।

व्यवसाय सुलभ वातावरण, गुजराती लोगों के उद्यम कौशल की समृद्ध विरासत और उनकी उत्साहपूर्ण व्यावसायिक प्रवृत्ति के बल पर गुजरात एक इंडस्ट्रियल पावरहाउस और एक मैन्युफैक्चरिंग हब में परिवर्तित हो गया है। नई सदी में जिस समय भारत एक सुदृढ़ आर्थिक शक्ति के रूप में उभर रहा है और विश्व की बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के साथ एक ऊंची छलांग लगाने को तैयार है, गुजरात ने लोगों के चहुंमुखी विकास को बढ़ावा देने और जीवन के प्रत्येक आयाम में उत्कृष्टता के लिए उद्यत रहने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। दसवीं पंचवर्षीय योजना में 7.8 प्रतिशत के राष्ट्रीय औसत के मुकाबले गुजरात की अर्थव्यवस्था 10.4 प्रतिशत की दर से बढ़ी है। वर्तमान मूल्यों पर गुजरात की प्रति व्यक्ति आय 10.8 प्रतिशत के राष्ट्रीय औसत के मुकाबले 13.7 प्रतिशत वार्षिक की दर से बढ़ी है। देश की केवल 5 प्रतिशत आबादी और लगभग 6 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र के साथ गुजरात का देश में योगदान उत्पादन मूल्य की दृष्टि से 16.1 प्रतिशत, निर्यात में 16 प्रतिशत और स्टॉक मार्केट पूंजीकरण के लिहाज से 30 प्रतिशत है। निवेश को आकर्षित करने में गुजरात देश में अग्रणी है। केमिकल, पेट्रोकेमिकल, दवाइयां, डेयरी, टेक्सटाइल, आभूषण जैसे औद्योगिक क्षेत्रों में गुजरात नेतृत्व कर रहा है। ये सभी सूचकांक दर्शाते हैं कि कोई भी अन्य राज्य आर्थिक स्वतंत्रता की नई भावना का प्रतिनिधित्व गुजरात की तरह नहीं कर रहा है।[97]

नवलकिशोर के कार्यकाल के दौरान तेज गति से महिलाओं की आर्थिक उन्नति और सशक्तीकरण के लिए नीतियां निर्धारित करने में राज्यपालों की भूमिका तय की गई। राज्यपालों की एक समिति बनाई गई, जिसका काम रणनीतियों का अध्ययन करना और सुझाव देना था। 21 नवम्बर, 2008 को नवलकिशोर ने इस समिति को अपने सुझाव भेजे। इसमें उन्होंने महिला

सशक्तीकरण के लिए गुजरात सरकार द्वारा उठाए गए कदमों और उनके सकारात्मक प्रभावों को विशेष रूप से रेखांकित किया। उन्होंने लिखा:

> राज्य सरकार ने सामाजिक विषयों में कार्रवाई करने और लैंगिक असमानता को समाप्त करने के लिए अपने कार्यक्रमों की दिशा में बदलाव की जरूरत महसूस की। इसे ध्यान में रखते हुए 'नारी गौरव नीति, 2006' बनाई गई। इस नीति का बुनियादी चिंतन यह है कि स्त्री और पुरुष के लिए समान अधिकार, समान अवसर और समाज के हित के लिए समान कर्तव्य होने चाहिए। राज्य सरकार ने महिलाओं के लिए आठ बड़े क्षेत्रों आर्थिक प्रशासन और नीति निर्धारण, शिक्षा, स्वास्थ्य, जीवन गुणवत्ता, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, नारी के प्रति हिंसा, वैधानिक वातावरण और क्षमता निर्माण को चिह्नित करके प्रत्येक क्षेत्र के लिए विशेष समयबद्ध एक्शन प्लान तैयार किए हैं। 2001 में राज्य स्तर पर महिला और बाल विकास का अलग विभाग गठित किया गया। लैंगिक समानता से जुड़े मुख्यधारा के विषयों में तकनीकी इनपुट देने के लिए 2003 में एक स्वतंत्र इकाई 'जेंडर रिसोर्स सेंटर' की स्थापना की गई। 2005 में राज्य महिला आयोग का गठन हुआ। राज्य के बजट का 50 प्रतिशत हिस्सा लाभकारी योजनाओं के लिए चिह्नित महिलाओं तक पहुंचाने की नीति निर्धारित की गई। लैंगिक बजट निर्धारण के लिए 10 प्राथमिक क्षेत्र विभागों की निशानदेही की गई है। महिला और बाल विकास विभाग तथा सामाजिक सुरक्षा विभाग के संयुक्त तत्वावधान में महिला अधिकारों की रक्षा के लिए विभिन्न कानून बनाए जा रहे हैं। महिलाओं के लिए 'सखी मंडल' के नाम से स्वयंसेवी समूह बनाए गए हैं। राज्य में 68 हजार से अधिक सखी मंडल हैं, जिनमें 9 लाख से अधिक महिलाएं सदस्य के रूप में जुड़ी हैं। उनकी कुल बचत 28 करोड़ रुपए है। हर सखी मंडल को राज्य सरकार की तरफ से 5 हजार रुपए की आर्थिक सहायता दी जाती है। साथ ही, सामूहिक गतिविधियों के उन्नयन और क्षमता विकास आदि के लिए प्रशिक्षण भी मुहैया करवाया जाता है। गुजरात में महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक विकास तथा सशक्तीकरण को बढ़ावा देने के लिए चलाई जा रही योजनाओं का संक्षिप्त विवरण देना अप्रासंगिक नहीं होगा। इनमें से कुछ योजनाएं वित्तीय सहायता और समर्थन उपलब्ध करवाकर किसी विशेष महिला संबंधी विषय में पहल करने का अति विशिष्ट उपक्रम हैं। कुछ योजनाएं अभिनव हैं और गुजरात के अनुभव से प्रेरणा लेकर उन्हें सफलतापूर्वक दोहराया जा सकता है।[98]

आखिरकार, एक आदर्श राज्यपाल की छवि में स्थापित हो चुके नवलकिशोर का कार्यकाल समाप्ति की ओर बढ़ रहा था। गुजरात कांग्रेस के नेतागण तब तक उनके जरिए मोदी सरकार को कमजोर करने की कोशिश में लगे हुए थे। नवलकिशोर की विदाई से कुछ महीने पहले

विपक्ष की गतिविधियां एक बार फिर तेज होने लगीं। मोदी सरकार को घेरने के लिए उच्च शिक्षा मंत्री माया कोडनानी को निशाने पर लिया गया। गुजरात दंगों की जांच के लिए गठित एसआईटी ने 2008 में कोडनानी को नरोदा पाटिया और नरोदा गाम में हुए नरसंहार के मामले में अभियुक्त बनाया था।[99] अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा कोडनानी को जमानत दिए जाने के खिलाफ एसआईटी ने गुजरात उच्च न्यायालय में याचिका दायर करके जमानत रद्द करने की मांग की थी। उच्च न्यायालय ने कोडनानी को नोटिस जारी करके 2 मार्च, 2009 से पहले लिखित जवाब मांगा कि उनकी जमानत खारिज क्यों नहीं की जाए। 25 फरवरी को कांग्रेस विधायकों ने नवलकिशोर से मुलाकात करके कोडनानी को तुरंत बर्खास्त करने की मांग की। उन्होंने नवलकिशोर को एक ज्ञापन सौंपा, जिसमें कोडनानी को दागी बताते हुए कहा गया कि उन्हें मंत्री पद पर बनाए रखकर राज्य सरकार ने लोकतंत्र का उपहास और संवैधानिक सिद्धांतों की अवहेलना की है। विधायकों का कहना था कि अगर मोदी अपने कर्तव्य का निर्वाह करने से चूके हैं तो राज्यपाल को केंद्र सरकार से राज्य सरकार की बर्खास्तगी की सिफारिश करनी चाहिए। विधानसभा में नेता प्रतिपक्ष शक्तिसिंह गोहिल ने कहा कि या तो राज्य सरकार कोडनानी को बर्खास्त करे या फिर अपनी बर्खास्तगी के लिए तैयार हो जाए।[100]

नवलकिशोर ने अदालत को अपना काम करने दिया। लगभग एक महीने बाद गुजरात उच्च न्यायालय ने कोडनानी को अग्रिम जमानत देने से इनकार कर दिया। यह फैसला आने के बाद कोडनानी ने मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया। मोदी ने उनका इस्तीफा स्वीकार करके नवलकिशोर के पास भेज दिया।[101]

पांच वर्षों के कार्यकाल के दौरान नवलकिशोर अपने सिद्धांतों पर चले। वे दिल्ली के जासूस बनकर या विरोधी दल की सरकार की निगरानी करने वाले राज्यपाल की भूमिका में नहीं रहे। उन्होंने जनसरोकार के विषयों से सीधा जुड़ाव रखा और गुजरात के संवैधानिक अभिभावक बनकर राजधर्म के अनुरूप आचरण किया। विभिन्न अवसरों पर वे राज्य सरकार को भी राजधर्म से नहीं डिगने की हिदायत देते नजर आए। 2006 में राज्य सरकार गुजरात शिक्षण संस्थान सेवा ट्रिब्यूनल विधेयक लेकर आई। ट्रिब्यूनल शिक्षकों के निलंबन, पुनर्नियुक्ति और वेतन से जुड़े फैसले करने के लिए सरकार पर आश्रित नहीं था। इस विधेयक में ट्रिब्यूनल के अधिकारों को सीमित करने की चेष्टा थी। नवलकिशोर ने इस पर हस्ताक्षर नहीं किया। एम.एस. यूनिवर्सिटी में फैकल्टी डीन डॉ. शिवजी पणिक्कर को कुलपति ने धार्मिक भावनाएं आहत करने के आरोप में निलंबित कर दिया तो नवलकिशोर ने जेएनयू के पूर्व कुलपति वाई.के. अलग की अध्यक्षता में एक कमेटी का गठन करके मामले की जांच का जिम्मा सौंपा। 2008 में पाटन गैंगरेप की खबर मिलने पर उन्होंने सरकार को दस दिनों के भीतर चार्जशीट दाखिल करने की हिदायत दी और इस मामले की फास्टट्रैक कोर्ट में सुनवाई के लिए निर्देश दिए। मई, 2009 में गुजरात सरकार द्वारा साबरमती आश्रम के आसपास के क्षेत्र में सौंदर्यीकरण के लिए 231 करोड़ रुपए की राशि स्वीकृत करवाने में उन्होंने विशेष रुचि दिखाई।[102] इस योजना से जुड़े मंत्रियों–अधिकारियों से उच्चस्तरीय बैठक

करके उन्होंने साबरमती आश्रम परिसर और सन्निकट क्षेत्रों का एकीकृत विकास सुनिश्चित करने के निर्देश दिए।[103]

संविधान के प्रति आस्था, चरित्र की निर्मलता और वंचितों के लिए सहृदयता नवलकिशोर को एक सर्वप्रिय व्यक्तित्व बनाती थी। जब उनके कार्यकाल की समाप्ति की घोषणा हुई तो पूरे गुजरात की ओर से भावनात्मक प्रतिक्रिया महसूस की गई। गांधीनगर से भावनगर, सूरत से भरूच, पालनपुर से दांतीवाड़ा तक के हर समुदाय के लोग उनसे मिलने पहुंचने लगे। आने वाले गणमान्य नागरिकों द्वारा उनका भावभीना स्वागत किया गया। रेडक्रॉस सोसायटी, कैंसर सोसायटी, टेक्सटाइल एसोसिएशन आदि संगठनों ने उनके सम्मान में आयोजन किए। लोग भावुक होकर कहते कि पंडितजी ने राज्यपाल के पद पर वास्तव में एक राज्य के संरक्षक की तरह काम को अंजाम दिया है। नवलकिशोर भी सभी से मिलने का समय निकालते। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं होने के बावजूद दोपहर 12 बजे से रात्रि 9 बजे तक यह क्रम चलता रहता। वे मिलने वालों से अक्सर एक बात कहते कि मनुष्य के जीवन में तीन भाव होते हैं– अभाव, अतिभाव और इसी से बनता है स्वभाव। अभाव में तो मनुष्य अपनी रोजी-रोटी कमाने के अतिरिक्त कुछ कर नहीं सकता क्योंकि बेचारा आटे-दाल के चक्कर में ही पड़ा रहता है। अतिभाव में धनवान आदमी चिंता और भय से ग्रसित होकर तनाव में आ जाता है क्योंकि उसे इस बात की चिंता सताने लगती है कि मेरे द्वारा अर्जित धन को कोई चुरा नहीं ले। इसी से उसको भय भी सताने लगता है। चिंता और भय दोनों मिलकर तनाव पैदा करते हैं, लेकिन इन दोनों से स्वभाव भी निर्मित होता है। अगर आदमी गरीब अथवा अमीर होकर भी जमीन से जुड़ा रहे तो उसका स्वभाव निर्मित होता है। स्वस्थ स्वभाव से न तो गरीब व्यक्ति को अभाव सताता है और न ही अमीर को घमंड होता है। आदमी को 'न सावन सूखा, न भादो हरा' की प्रकृति रखनी चाहिए। इससे मनुष्य स्वयं भी सुखी और चिंतामुक्त रहता है; साथ ही, सबको खुश देखना चाहता है।[104]

उस दौरान नवलकिशोर का कार्यकाल पांच वर्षों के लिए बढ़ाए जाने की चर्चा भी होने लगी थी, लेकिन वे अतिरिक्त कार्यकाल के लिए अनिच्छुक थे। उन्होंने इसके बारे में स्पष्ट संकेत दे दिए*।[105]

ऐतिहासिक अभिनंदन समारोह

22 जुलाई, 2009.. गांधीनगर का वही टाउन हॉल, जिसमें नवलकिशोर ने शपथ ली थी। इस बार कार्यक्रम उनकी विदाई का था। आदर्शों से समझौता किए बिना अपना कार्यकाल पूरा करने की संतुष्टि का भाव उनकी आंखों में था, लेकिन इन वर्षों में घर-आंगन की तरह हो चुके गुजरात से दूर जाने की टीस भी रही होगी। उम्र 84 पार हो चुकी थी, लेकिन थकान उन

*देवेंद्रनाथ द्विवेदी को गुजरात का अगला राज्यपाल नियुक्त किया गया, लेकिन पद संभालने से पहले उनकी मृत्यु हो गई। इसके बाद केंद्र सरकार ने अर्जुन सिंह को नियुक्त करने पर विचार किया, जो दो दशक पहले पंजाब के राज्यपाल रह चुके थे। (पी.टी.आई. न्यूज, 16 अक्टूबर, 2009) लेकिन अंततः राजस्थान-हरियाणा की जरूरत देखते हुए कमला को राज्यपाल बनाया गया।

पर हावी नहीं हो पाई थी। उनकी मौजूदगी से वहां के वातावरण में एक स्फूर्तिदायक ऊर्जा का संचार हो रहा था। प्रत्येक मिलने वाले से वे गर्मजोशी से हाथ मिलाते, स्नेह और विनम्रता के साथ दो–चार बातें करते। इस दौरान चेहरे पर एक निष्कपट मुस्कान निरंतर बनी रहती। मामूली औपचारिकताओं के बाद सभी लोग कुर्सियों पर बैठे और मंच पर माइक के सामने खड़े हुए 'गुजरात मॉडल' के प्रणेता के रूप में राष्ट्रीय नेताओं की अग्रिम पंक्ति में शामिल हो चुके नरेन्द्र मोदी। उनके चेहरे की मुद्रा गंभीर थी और आंखें किसी गहरे विचार में होने का संकेत दे रही थीं। उन्होंने बोलना शुरू किया:

> देखते–ही–देखते पांच साल बीत गए। मुख्यमंत्री के रूप में महामहिम की विदाई सरकारी औपचारिकता का विषय हो सकता है, परंपराओं को निभाने का काम हो सकता है, लेकिन आज का यह समारोह उससे कुछ अधिक विशेष और व्यक्तिगत रूप से मेरे मन को छूने वाला है। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में उच्च आदर्श क्या हो सकते हैं? संविधान की गरिमा बनाए रखते हुए व्यवस्थाओं को सुचारु रूप से चलाने के लिए किस प्रकार की कार्यशैली हो सकती है? मैं 30 साल पहले का तो नहीं कह सकता..तब इतना ज्ञान भी नहीं था, समझ भी नहीं थी। लेकिन गत 30 साल में देश में जितने भी राज्यपाल हुए होंगे, उन सबकी कार्यशैली और श्रद्धेय पंडित नवलकिशोर शर्मा जी की कार्यशैली को देखें; संविधान का शब्दश: पालन करते हुए, उसे प्राणवान रखते हुए निरंतर पांच साल तक उसे निभाना..यह व्यक्तित्व में बहुत ऊंचाई होने पर ही संभव होता है। मैंने इस ऊंचाई का अनुभव किया है। जिस दल का मुख्यमंत्री हो, उसी दल के कुल–गोत्र से आए हुए गवर्नर हों, ऐसी स्थिति में भी हमारे देश में विवादों की कमी नहीं रही है। अनेक राज्यों में ऐसी अनेक घटनाएं रही हैं। मैं गर्व के साथ कह सकता हूं कि यहां दल–गोत्र कभी संविधान के बीच नहीं आया। लोकतंत्र और संवैधानिक व्यवस्थाओं की ऊंचाइयों को बरकरार रखते हुए किस प्रकार उदाहरण स्वरूप संबंधों को विकसित किया जा सकता है, राज्य और केंद्र के बीच कैसे सेतु बनाया जा सकता है, संविधान की मर्यादाओं को किस प्रकार लागू किया जा सकता है, इसके उत्तम उदाहरण इन पांच वर्षों में मैंने अनुभव किए हैं। मैं व्यक्तिगत रूप से अपने मन की कुछ बातें करना चाहता हूं। मुख्यमंत्री के रूप में मैं सरकारी दायरे में काफी कुछ बता सकता हूं..जीवन में मुझे जो संस्कार मिले हैं, जो सीखने को मिला है।
>
> मुझे आपातकाल के दौर की याद आती है। लोग जेलों में थे, मेरे नाम का भी वारंट निकला था और मैं अंडरग्राउंड था। लोकतंत्र की रक्षा के लिए आंदोलन चल रहा था और मैं भी उसका एक सिपाही था। मैं आरएसएस में पला–बढ़ा हुआ था, लेकिन आपातकाल में मुझे जिंदगी में पहली बार अनेक विचारधाराओं के लोगों के साथ कार्य करने का अवसर मिला। मेरी उम्र कम थी, दुनिया को

समझने का आरंभ था। उस समय मुझे गांधीवादी विचारों से जुड़े, सर्वोदयी परंपरा से जुड़े, जे.पी. की विचारधारा से जुड़े अनेक लोगों के साथ निकट से काम करने का सौभाग्य मिला। यही वह कालखंड था, जिसने मुझे अपनी सोच का दायरा बढ़ाने और नए दृष्टिकोण से चीजों को देखने का अवसर दिया। मैं कह सकता हूं कि इन पांच वर्षों में पंडितजी के पास रहते हुए मुझे वो सौभाग्य दुबारा मिला, जिसने मेरे व्यक्तिगत विकास में बहुत बड़ा योगदान किया है। सार्वजनिक जीवन में अनेक लोग हैं। सार्वजनिक जीवन में अनेक कारण हैं, लेकिन कुछ बातें ऐसी हैं जिनके कारण हमारा ध्यान आकर्षित होता है। हम जानते हैं कि आज सार्वजनिक जीवन में या तो जनांदोलनों से आना होता है या सत्ता, ताकत, ग्लैमर जैसी चीजों की प्रेरणा से आना होता है। लेकिन सार्वजनिक जीवन में आने का मार्ग इन दो मार्गों से अलग होने पर क्या अंतर होता है, यह मैं सदैव पंडितजी में अनुभव करता हूं। देशभक्ति की लगन और भारत को आजाद देखने की तमन्ना के कारण उन्होंने पारिवारिक दायरा छोड़कर सार्वजनिक जीवन स्वीकार किया। उनके लिए प्रेरणा थी देश की आजादी..और आजादी मिलने के बाद सामाजिक संवेदना प्रेरणा बनी। आजादी की प्रेरणा ने साहस दिया, जीवन को झोंक देने के लिए तैयार किया और सामाजिक संवेदना ने समाज के लिए कुछ कर गुजरने की तमन्ना को जाग्रत किया। आजादी की ललक से विद्यार्थी काल में महात्मा गांधी की उंगली पकड़कर जीवन को खपा दिया और आजादी के बाद सामाजिक संवेदना की प्रेरणा से दुखियारों के आंसू पोंछने की तमन्ना से सार्वजनिक जीवन में लगे रहे।

मैं जब भी पंडितजी की तरफ देखता हूं, तो यह अनुभव करता हूं कि उनका व्यक्तित्व संघर्ष और सृजनात्मकता के मेल से बना है। आज की राजनीति और मीडिया का नाता इतना सघन है कि सार्वजनिक जीवन का व्यक्ति मीडिया के बिना जी नहीं पा रहा है। वह चाहता है कि कोई पल ऐसा नहीं बीते, जब लोग उसे देख-सुन नहीं रहे हों। मैं पंडितजी को नमन करता हूं और चाहता हूं कि मैं भी कुछ ऐसा सीखूं। इतने लंबे सार्वजनिक जीवन के बाद मीडिया से प्रसिद्धि पाने के लिए पांच साल में कहीं कोशिश नहीं की। मैं मानता हूं कि यह तभी संभव है, जब व्यक्ति में बहुत संयम हो। आज इन ऊंचाइयों को एक बेंचमार्क की तरह रखकर पंडितजी हमारे यहां से जाएंगे, जो गुजरात के सार्वजनिक जीवन के हर छोटे-बड़े व्यक्ति के लिए हमेशा एक मिसाल के रूप में रहेगा। लोकतंत्र की परिभाषाओं और राजनीतिक पंडितों द्वारा इसकी व्याख्याओं से हम परिचित हैं, लेकिन कभी-कभी हमें किसी चीज की सुंदरता की अनुभूति सहज रूप में नहीं होती। उसके शब्द प्रभावित कर सकते हैं, उसके भाव आंदोलित कर सकते हैं, उसके विचार प्रेरित कर सकते हैं, लेकिन उसके सौंदर्य की अनुभूति बहुत दुर्लभ

होती है। लोकतंत्र को जानने और बुद्धि से समझने के बावजूद लोकतंत्र के सौंदर्य का अनुभव मुझे पंडितजी और मेरे संबंध ने करवाया है। लोकतंत्र की सुंदरता क्या होती है, लोकतंत्र की गरिमा क्या होती है, यह मैंने उनके पास सीखा है और अनुभव किया है। राज्य की धुरी चलाने में एक पिता की तरह उन्होंने मेरा मार्गदर्शन किया है। बहुत कम सौभाग्यशाली मुख्यमंत्री होंगे, जिनको ऐसे राज्यपाल मिले हों। यह मेरे खोखले शब्द नहीं हैं, मेरी अनुभूति है। पंडितजी पदभार से मुक्त होंगे, संविधान के बंधनों से परे जाएंगे, संविधान की सीमा के बाहर निकलेंगे, लेकिन गुजरात के प्रेम-बंधन से मुक्त नहीं हो सकते। गुजरात के साथ उनका नाता और अधिक गहरा होगा। आज गुजरात में हम श्री सोमनाथ संस्कृत यूनिवर्सिटी का गर्व कर रहे हैं। अगर इस बात के लिए मुझे किसी एक व्यक्ति को नमन करना है, तो वे पंडित नवलकिशोर हैं। यह उन्हीं की प्रेरणा, उत्साह और निरंतर मार्गदर्शन है, जिसके कारण मुझे इस काम को करने का आनंद आया है। ऐसी अनेक बातें हैं। कभी-कभी लगता है, जब हम पर कोई संकट आता है या कोई शारीरिक क्षति होती है तो ईश्वर हमें अतिरिक्त शक्ति देता है। अगर आपके पास आंख नहीं है, पैर नहीं है तो ईश्वर दूसरी शक्ति देता है। आपके ऊपर कोई आपत्ति आती है तो ईश्वर कहीं से मदद करता है। मैं कभी-कभी सोचता हूं कि मैं हमेशा संकटों से घिरा रहता हूं, ईश्वर ने मेरी क्या मदद की! मुझे लगता है कि पंडितजी ने मेरी मदद की। वे ईश्वर का प्रसाद थे, यह अनुभूति मैंने की है और इस अनुभूति को आज प्रकट करने का मुझे अवसर मिला है। मैंने व्यक्तिगत रूप से जीवन में उनसे जो सीखा है, एक पुत्र के रूप में सीखा है, एक शिष्य के भाव से सीखा है। मुझे विश्वास है कि वे ऐसी शख्सियत हैं कि उनका सिखाया हुआ कभी बेकार नहीं जाएगा।

हम सब शुभकामनाएं देते हैं, पूरा गुजरात उन्हें शुभकामनाएं देता है। वे आगे भी इस देश का मार्गदर्शन करते रहें, हम सब का मार्गदर्शन करते रहें। हर समय अपनी उंगली पकड़कर चलाते रहें। कभी-कभी लगता है, क्या हम भी 85 वर्ष की उम्र में इतना शारीरिक श्रम कर पाएंगे? पंडितजी ने पांच साल में एक भी कार्यक्रम रद्द नहीं किया। यह छोटी चीज नहीं होती। जब भी देखें, वे हमेशा हंसते हुए मिलेंगे। आज जिस गर्मजोशी के साथ वे हाथ मिला रहे थे और आप सब तालियां बजा रहे थे, मैं मानता हूं कि यह भीतर की ऊर्जा है। यह एक सात्विक जीवन की लहर है, जो प्रकट होती है। जो इसे स्पर्श करता है, उसे ज्यादा अनुभव होती है। जब देखने वाले को इतना अनुभव होता है, तो स्पर्श करने वाले को कितना होता होगा। यह मेरे जीवन का सबसे यादगार अवसर रहेगा। मैं पंडितजी का व्यक्तिगत रूप से बहुत आभारी हूं । गुजरात की जनता की ओर से मैं उनका अभिवादन करता हूं। स्वार्थ की बात भी कहना चाहता हूं कि वे जहां भी रहें, व्यक्तिगत रूप से पिता के नाते मुझे प्रेम करते रहें।[106]

मोदी का उद्‌बोधन पूरा होते ही सभागार तालियों से गूंज उठा। मोदी ने जो कहा, वह गुजरात की समस्त जनता के नवलकिशोर के प्रति मनोभावों की अभिव्यक्ति थी। मोदी मंच से उतरे। उन्होंने शॉल ओढ़ाकर नवलकिशोर को सम्मानित किया और स्मृति चिह्न भेंट किए। इसके बाद नवलकिशोर से आग्रह किया गया कि वे कोई संदेश दें। नवलकिशोर सधे हुए कदमों से मंच की ओर बढ़े। उन्होंने चारों तरफ नजर घुमाई। फिर संयत स्वर में बोलना शुरू किया। उनके संक्षिप्त भाषण में अनेक प्रसंगों का उल्लेख था, जो उनके पांच वर्षों के गुजरात प्रवास की यादें समेटे थे। उन्होंने मंचासीन लोगों को संबोधित करना शुरू किया तो मुख्यमंत्री का उल्लेख करते ही तुरंत संशोधन किया, 'ऊर्जावान मुख्यमंत्री'। यह कहकर उन्होंने मोदी की ओर नजर की। उनकी आंखों में करुणा थी और चेहरे पर गर्वपूर्ण मुस्कान। वे बोलते गए:

> मोदीजी ने मेरे लिए जो शब्द कहे, वह भाव विभोर होकर कहे। जब किसी की विदाई पर मन से अनुभूति होती है तो व्यक्ति भावनाओं के अतिरेक में आ जाता है। मोदीजी मेरे मुकाबले बहुत जवान हैं; ऊर्जावान भी, योग्य भी। उनमें यह भावों की उत्पत्ति स्वाभाविक है। यह अच्छी बात भी है और प्रेरणादायी भी। जब मैं राज्यपाल का पद लेकर गुजरात आया था तो मीडिया में मेरे बारे में अनगिनत कहानियां छपी थीं..मुझे भेजे जाने के पीछे क्या मंतव्य है, क्या नीयत है, मैं क्या करूंगा आदि। मोदीजी की मौजूदगी में ही मीडिया के मित्रों ने मुझसे पूछा, 'मुख्यमंत्री के साथ आपका कैसा संबंध रहेगा?' मैंने कहा, 'जैसा एक राज्यपाल और एक मुख्यमंत्री का होता है।' जो कुछ मैंने कहा था, उसका अक्षरश: पालन किया। इसीलिए मेरे और उनके बीच मनभेद तो दूर की बात, कोई मतभेद भी नहीं हुआ।
>
> राज्यपाल का दायरा संविधान की चारदीवारी से बंधा हुआ है, लेकिन मेरी मान्यता कुछ अलग है। हो सकता है कि कई लोग मुझसे सहमत नहीं हों। मैं यह मानता हूं कि राज्यपाल संविधान में दी गई व्याख्या से कहीं बढ़कर है। वह उस राज्य की जनता का संरक्षक होता है, जहां उसे नियुक्त किया गया है। इसी तरह, मैं गुजरात की जनता का संरक्षक हूं और मैंने पिछले पांच वर्षों में मन-कर्म-वचन से कोशिश की है कि गुजरात की जनता के हित में जो भी संभव हो वह किया जाए। जब सरदार सरोवर बांध की ऊंचाई को लेकर विवाद चल रहा था तो मैंने पहली बार मीडिया को राजभवन में प्रवेश की अनुमति दी। मीडिया के बंधुगण मुझे क्षमा करें। मैंने पांच वर्ष में उनके साथ अन्याय तो किया है। न उन्हें राजभवन में आने का मौका दिया, न कभी चाय पर बुलाया और न ही कोई व्यक्तिगत इंटरव्यू दिया। सरदार सरोवर के विषय में मीडिया को राजभवन में आने का मौका दिया क्योंकि यह गुजरात के छह करोड़ लोगों की भलाई का प्रश्न था। इस बारे में मैंने प्रधानमंत्री और जल संसाधन मंत्री को भी पत्र लिखा। आप लोगों को जानकर खुशी होगी कि सबकी तरफ से मुझे सकारात्मक जवाब मिला। मैं मुख्यमंत्रीजी को साधुवाद देता हूं कि उन्होंने संस्कृत

विश्वविद्यालय की बात को सार्वजनिक कर दिया। सोमनाथ में संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना हो, यह मेरे मन की बहुत बड़ी अभिलाषा थी। मैं मानता था कि सोमनाथ जैसे पवित्र स्थान पर भारतीय संस्कृत के प्रचार-प्रसार के लिए और उसकी गूढ़ता को समझने के लिए लोगों को संस्कृत की जानकारी होना नितांत आवश्यक हैं। तत्कालीन शिक्षा मंत्री आनंदीबेन पटेल ने मुझे एक कार्यक्रम में संस्कृत विद्वानों के मध्य आमंत्रित किया था। मैंने इनसे निवेदन किया कि आप आज स्वयं ही घोषणा कर दें, वरना मुझे सार्वजनिक मंच से इसकी मांग उठानी पड़ेगी। मुझे प्रसन्नता है कि इन्होंने मेरी बात को गंभीरता से लिया और खुद ही जाकर उसकी घोषणा की। आपातकालीन परिस्थितियों की बात और है, लेकिन विश्वविद्यालय की स्थापना का निर्णय एक ही वर्ष में क्रियान्वित हो जाए, यह शायद पहली बार गुजरात में हुआ है।

मुझे गुजरात के लोगों से बहुत प्यार मिला है। गुजरात के लोग साहसी, उद्यमी और दानवीर हैं। गुजरात की धरती महान है। महात्मा गांधी और सरदार वल्लभभाई पटेल जैसे लोग यहां पैदा हुए हैं। अमेरिका में भारतीय संस्कृति का झंडा बुलंद करने वाले स्वामी विवेकानंद ने यहां कुछ समय तक प्रेरणा ली। गुजरात की भूमि साधारण नहीं है। सामाजिक-राजनीतिक व्यवधान आते रहते हैं, दुर्घटनाएं घटती रहती हैं। जैसे व्यक्तिगत जीवन में दुर्घटनाएं घटती हैं, वैसा ही सार्वजनिक जीवन में भी होता है। लेकिन दुर्घटनाएं होना एक बात है और उन दुर्घटनाओं को भूलकर सामान्य व्यवहार नहीं करना, यह सबसे बड़ी समस्या है। आज गुजरात में शांति है, अमन है। जो जगन्नाथ यात्रा अमन के साथ निकला ही नहीं करती थी, वह पिछले पांच वर्षों में अमन के साथ निकली है।

23 तारीख से मेरा कार्यकाल समाप्त हो रहा है और 24 को नए राज्यपाल को आना है। सेवानिवृत्त हो रहे राज्यपाल अमूमन नए राज्यपाल के आने से पहले ही चले जाते हैं, लेकिन यहां लोग निरंतर मुझसे मिलने आ रहे हैं। अनेक संस्थाओं की तरफ से और कई लोग व्यक्तिगत स्तर पर भी मिलने आ रहे हैं और शुभेच्छा प्रकट कर रहे हैं। मैं इससे अभिभूत हूं और सार्वजनिक मंच से कहना चाहता हूं कि गुजरात की जनता ने मुझे प्यार और सम्मान दिया है। मोदीजी ने कहा कि मैं 85 वर्ष की उम्र में भी मुस्कुराता रहता हूं। इसका एकमात्र कारण यह है कि गुजरात में मुझे तनावरहित जीवन जीने का मौका मिला है, अन्यथा राज्यपालों को अक्सर बहुत ही तनाव में रहना पड़ता है।

इस सार्वजनिक अभिनंदन के लिए भी मैं आप सभी लोगों का, माननीय मुख्यमंत्रीजी का आभारी हूं। ऐसे अवसर जीवन में बहुत कम मिलते हैं। मुझे यह अवसर मिला, इसका मुझे गर्व है।[107]

आजीवन कांग्रेसी ही रहूंगा

कार्यकाल समाप्ति के बाद जयपुर पहुंचने पर नवलकिशोर का भव्य स्वागत किया गया। 31 जुलाई को दोपहर डेढ़ बजे वे एयरपोर्ट पर पहुंचने वाले थे, इससे पहले ही वहां सैकड़ों कांग्रेस कार्यकर्ता जमा हो गए। नवलकिशोर को एयरपोर्ट से निकलने में तीन बज गए। बाहर उनके पुत्र परिवहन मंत्री बृजकिशोर शर्मा के नेतृत्व में जयपुर शहर कांग्रेस के पदाधिकारियों और कार्यकर्ताओं ने उन्हें मालाओं से लाद दिया। जिला कांग्रेस के अध्यक्ष सलीम कागजी, महामंत्री भगवत कोचर समेत कई नेता वहां मौजूद थे। बाद में सिंधी समाज के प्रतिनिधियों ने भी उनका अभिनंदन किया। नवलकिशोर अपने आवास पहुंचने के बाद देर रात तक कार्यकर्ताओं से मिलते रहे।[108]

11 अगस्त, 2009 को नवलकिशोर पुनः कांग्रेस में शामिल हो गए। शहर कांग्रेस के पदाधिकारियों की उपस्थिति में उन्होंने पार्टी की प्राथमिक सदस्यता ग्रहण की। इस अवसर पर साफा बांधकर और तलवार भेंट करके उनका अभिनंदन किया गया।[109] नवलकिशोर भावुक थे। अपनी सुदीर्घ राजनीतिक यात्रा के तमाम उतार-चढ़ाव के दौरान वे पूरी निष्ठा से कांग्रेस के साथ जुड़े रहे थे; एक आदर्श राज्यपाल के रूप में संवैधानिक दायित्व से मुक्त होने पर वे फिर उसी पार्टी से जुड़ने में सार्थकता देखते थे। उन्होंने अपने संक्षिप्त संबोधन में कहा:

> 'मैं जीवन भर कांग्रेस का सदस्य बने रहना चाहता हूं। पिछले पांच वर्ष तक गुजरात के राज्यपाल के रूप में संवैधानिक पद पर बना हुआ था; अब पदमुक्त हो चुका हूं। मैं किसी पद के लिए सदस्यता ग्रहण नहीं कर रहा, बल्कि कांग्रेस का सच्चा सिपाही बनकर पार्टी की सेवा करते रहना चाहता हूं।'[110]

संदर्भ सूची

1. राजस्थान पत्रिका, 6 जुलाई, 2004
2. दैनिक नवज्योति, 6 जुलाई, 2004
3. वही
4. गोपाल शर्मा : जयपुर, महानगर टाइम्स, 26 जुलाई, 2004
5. द ट्रिब्यून, 27 जून, 2004
6. राष्ट्रदूत, 6 जुलाई, 2004
7. लक्ष्मी अय्यर: इंडिया टुडे, 13 दिसम्बर, 2004
8. वही
9. वही
10. माखनलाल फोतेदार: द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015, पृष्ठ 310
11. लालकृष्ण आडवाणी: मेरा देश मेरा जीवन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 484
12. दैनिक नवज्योति, 6 जुलाई, 2004
13. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम: टर्निंग प्वाइंट्स, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ 86
14. वही, पृष्ठ 88
15. राष्ट्रदूत, 6 जुलाई, 2004
16. दैनिक भास्कर, 7 जुलाई, 2004
17. जयपुर महानगर टाइम्स, 21 जुलाई, 2004
18. राजस्थान पत्रिका, 23 जुलाई, 2004
19. दैनिक भास्कर, 24 जुलाई, 2004
20. वही, 24 जुलाई, 2004
21. योगेश भावरा: नवलकिशोर शर्मा के संस्मरण, 1 अक्टूबर, 2021
22. गोपाल शर्मा: जयपुर महानगर टाइम्स, 26 जुलाई, 2004
23. राजस्थान पत्रिका, 7 जुलाई, 2004
24. योगेश भावरा: नवलकिशोर शर्मा के संस्मरण, 1 अक्टूबर, 2021
25. राष्ट्रदूत, 25 जुलाई, 2004
26. योगेश भावरा: नवलकिशोर शर्मा के संस्मरण, 1 अक्टूबर, 2021
27. राजस्थान पत्रिका, 26 जुलाई, 2004

28. दैनिक नवज्योति, 6 सितम्बर, 2004
29. मिलापचंद डंडिया: चेहरों का सच, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2021, पृष्ठ 291
30. टाइम्स ऑफ इंडिया वेब, 26 जुलाई, 2004
31. दैनिक नवज्योति, 1 सितम्बर, 2004
32. राजस्थान पत्रिका, 24 अगस्त, 2004
33. महका भारत, 23 अगस्त, 2004
34. नवज्योति, 28 अगस्त, 2004
35. राष्ट्रदूत, 28 अगस्त, 2004
36. किशोर मकवाणा: कॉमनमैन नरेंद्र मोदी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 20
37. वही, पृष्ठ 130
38. वही, पृष्ठ 328
39. ऐंडी मरीनो: नरेंद्र मोदी-एक राजनीतिक यात्रा, मंजुल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 205
40. किशोर मकवाणा: कॉमनमैन नरेंद्र मोदी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 171
41. ऐंडी मरीनो: नरेंद्र मोदी-एक राजनीतिक यात्रा, मंजुल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 205
42. किशोर मकवाणा: कॉमनमैन नरेंद्र मोदी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 183
43. उदय माहुरकर: इंडिया टुडे, 13 अक्टूबर, 2003
44. लालकृष्ण आडवाणी: मेरा देश मेरा जीवन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 614
45. लक्ष्मी अय्यर: इंडिया टुडे, 26 अप्रेल, 2004
46. पीटीआई, 12 जून, 2004
47. द ट्रिब्यून, 29 मई, 2004
48. किशोर मकवाणा: कॉमनमैन नरेंद्र मोदी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 175
49. वही, पृष्ठ 178
50. जयपुर महानगर टाइम्स, 7 अक्टूबर, 2004
51. वही
52. दैनिक नवज्योति, 8 अगस्त, 2004
53. बाबूलाल निर्झर, राज्यपाल के विशेष कार्याधिकारी के लिखित संस्मरण
54. दैनिक नवज्योति, 28 जनवरी, 2005
55. इंडियन एक्सप्रेस, 23 फरवरी, 2005
56. राजस्थान पत्रिका, 24 मई, 2005

57. बाबूलाल निर्झर, राज्यपाल के विशेष कार्याधिकारी के लिखित संस्मरण
58. गोपाल शर्मा: जयपुर महानगर टाइम्स, 5 जुलाई, 2014
59. संदेश, 11 दिसम्बर, 2005
60. राजस्थान पत्रिका, 16 अक्टूबर, 2006
61. टाइम्स ऑफ इंडिया, 15 अक्टूबर, 2004
62. वही, 20 सितम्बर, 2004
63. दैनिक नवज्योति, 8 नवम्बर, 2004
64. टाइम्स ऑफ इंडिया, 6 अक्टूबर, 2004
65. वही
66. वही
67. गुजरात एज, 2 अक्टूबर, 2004
68. टाइम्स ऑफ इंडिया, 20 सितम्बर, 2004
69. टाइम्स ऑफ इंडिया वेब, 2 अक्टूबर, 2004
70. वही
71. दैनिक नवज्योति, 8 नवम्बर, 2004
72. आउटलुक, 19 सितम्बर, 2006
73. राष्ट्रदूत, 1 अगस्त, 2007
74. इंडिया टुडे, 10 मार्च, 2008
75. दैनिक नवज्योति, 12 मार्च, 2006
76. गोपाल शर्मा: जयपुर महानगर टाइम्स, 5 जुलाई, 2014
77. राष्ट्रदूत, 23 जनवरी, 2005
78. गोपाल शर्मा: जयपुर महानगर टाइम्स, 5 जुलाई, 2014
79. नवलकिशोर शर्मा: गुजरात विधानसभा में अभिभाषण, 23 फरवरी, 2006
80. डॉ. म.च. वार्ष्णेय: अमृत कलश, आणंद कृषि विश्वविद्यालय, आणंद, गुजरात, 2020, पृष्ठ 22–23
81. योगेश भावरा: नवलकिशोर शर्मा के संस्मरण, 1 अक्टूबर, 2021
82. स्पर्श पत्रिका, खंड 4, सं. 3, निरमा यूनिवर्सिटी, पृष्ठ 2
83. योगेश भावरा: नवलकिशोर शर्मा के संस्मरण, 1 अक्टूबर, 2021
84. दैनिक नवज्योति, 5 जनवरी, 2005
85. योगेश भावरा: नवलकिशोर शर्मा के संस्मरण, 1 अक्टूबर, 2021

86. योगेश भावरा: नवलकिशोर शर्मा के संस्मरण, 1 अक्टूबर, 2021
87. नवलकिशोर शर्मा का गुलाब कोठारी को पत्र
88. दैनिक भास्कर, 9 अक्टूबर, 2012
89. जयपुर महानगर टाइम्स, 14 मार्च, 2015
90. बाबूलाल निर्झर, राज्यपाल के विशेष कार्याधिकारी के लिखित संस्मरण
91. महेश शर्मा, नवलकिशोर शर्मा के पूर्व पीए के संस्मरण
92. योगेश भावरा: नवलकिशोर शर्मा के संस्मरण, 1 अक्टूबर, 2021
93. दैनिक नवज्योति, 1 सितम्बर, 2004
94. विनोदबिहारी शर्मा, नवलकिशोर शर्मा के भतीजे के संस्मरण
95. राज्यपाल के विशेष कार्याधिकारी बाबूलाल निर्झर के लिखित संस्मरण
96. प्रेस विज्ञप्ति, राष्ट्रपति सचिवालय, 16 सितम्बर, 2008
97. नवलकिशोर शर्मा का उद्‌बोधन: राज्यपालों का सम्मेलन, 16–17 सितम्बर, 2008, राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली
98. राज्यपालों की समिति को नवलकिशोर शर्मा का नोट, 21 नवम्बर, 2008
99. हिन्दुस्तान टाइम्स वेब, 21 अप्रेल, 2018
100. इंडियन एक्सप्रेस वेब, 26 फरवरी, 2009
101. बिजनेस स्टैंडर्ड वेब, 28 मार्च, 2009
102. सैयद खालिक अहमद: इंडियन एक्सप्रेस, 26 जून, 2009
103. इंडियन एक्सप्रेस, 10 जून, 2009
104. बाबूलाल निर्झर, राज्यपाल के विशेष कार्याधिकारी के लिखित संस्मरण
105. सैयद खालिक अहमद: इंडियन एक्सप्रेस, 26 जून, 2009
106. नरेन्द्र मोदी: मूल भाषण वीडियो, राज्यपाल का विदाई समारोह, 22 जुलाई, 2004
107. नवलकिशोर शर्मा: मूल भाषण वीडियो, राज्यपाल का विदाई समारोह, 22 जुलाई, 2004
108. राजस्थान पत्रिका, 1 अगस्त, 2009
109. दैनिक भास्कर, 12 अगस्त, 2009
110. राजस्थान पत्रिका, 12 अगस्त, 2009

मेरा जीवन, मेरी प्रेरणा

हम जो देखते हैं वह सत्य है, लेकिन दार्शनिक दृष्टि से चिंतन करने पर इसका खोखलापन नजर आता है। यह एक शाश्वत नियम रहा है कि कई बार हमारा भौतिक दर्शन भी उसी बिंदु पर पहुंच जाता है कि जो कुछ हम देखते हैं, वह सत्य नहीं है।

– पं. नवलकिशोर शर्मा

महात्मा गांधी का मार्ग

युगपुरुष महात्मा गांधी की आने वाले युगों तक ख्याति रहेगी। गांधीजी का जीवन दर्शन भारत ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया की धरोहर है। युवाओं को जरूरत है कि वे गांधीजी को पढ़ें, समझें और उनके द्वारा बनाए गए सिद्धांतों पर चलें। गांधीजी आज की जरूरत हैं। वे दूरद्रष्टा थे। जिस समय दुनिया में साम्यवाद और पूंजीवाद हावी था, तब महात्मा गांधी ने विश्व को सर्वोदय का विचार दिया, जो विश्व के लिए कल्याणकारी साबित हुआ। आज सारा विश्व पर्यावरण को लेकर चिंतित है, लेकिन गांधीजी के बताए हुए मार्ग पर चलकर पर्यावरण को शुद्ध किया जा सकता है। गांधीजी ने कहा था कि कुदरत ने इंसान के लिए बहुत कुछ किया है, लेकिन आज अपने स्वार्थवश व्यक्ति प्रकृति का शोषण धन उपार्जन के लिए कर रहा है। उन्होंने ग्राम सेवा और ग्राम स्वराज की बात कही थी क्योंकि ग्रामीण भारत में ही हिंदुस्तान की आत्मा बसती है। आज मूल्यविहीन राजनीति और शुद्ध अवसरवादिता का बोलबाला हो गया है, इसलिए गांधीजी के बताए मार्ग को अपनाया जाना जरूरी है।[1]

गांधीजी के सर्वोदय सिद्धांत को अपनाकर ही वर्तमान में विश्व शांति संभव है। आज सभी देश एडम स्मिथ के सिद्धांत के अनुसार अधिकतम उत्पादन की ओर बढ़ रहे हैं, जिसमें अधिक से अधिक प्राप्ति की प्रवृत्ति है। लेकिन वैश्विक और मानसिक शांति गांधी के सर्वोदय सिद्धांत को अपनाकर ही पाई जा सकती है। वैश्विक शांति से पहले व्यक्ति को स्वयं परिवार एवं समाज की शांति के बारे में सोचना होगा। इसके लिए हमें अपनी कथनी और करनी में एकरूपता लानी होगी। अत्याचार और शोषण को रोके बिना विश्व शांति की कल्पना निरर्थक है।[2]

आधारभूत ढांचे के जनक नेहरू

पं. जवाहरलाल नेहरू व्यक्ति ही नहीं बल्कि एक संस्थान थे, जिन्होंने शासन की बागडोर संभालकर देश की आधारशिला रखी। उनकी नीतियों का परिणाम है कि देश ने आर्थिक प्रगति की और हम सभी क्षेत्रों में आगे हैं। हमारे देश का नौजवान आज हर क्षेत्र में योग्यता के आधार पर चुनौती देने के लिए तैयार है तो इसका श्रेय पं. नेहरू को जाता है। अगर उन्होंने देश का आधारभूत ढांचा नहीं बनाया होता तो आज देश भारी संकट में होता।[3]

डॉ. अंबेडकर का योगदान

संविधान निर्माता डॉ. भीमराव अंबेडकर महान विधि विशेषज्ञ और अर्थशास्त्री थे। उन्होंने वंचितों के उत्थान के लिए जीवन भर संघर्ष किया और सामाजिक समानता पर जोर दिया। डॉ. अंबेडकर ने वंचितों के उत्थान के लिए संविधान में समता, समानता और धर्मनिरपेक्षता के मूलभूत सिद्धांतों को प्राथमिकता दी; इससे पिछड़े समाज को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से उभरने का अवसर मिला। कुछ लोग राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और डॉ. अंबेडकर के बीच मतभेद होने की बात करते हैं, जबकि संविधान के निर्माण के समय गांधीजी ने सुझाव दिया था कि डॉ. अंबेडकर को संविधान की प्रारूप कमेटी का चेयरमैन बनाया जाए। गांधीजी जानते थे कि डॉ. अंबेडकर देश में दलित, महिलाओं और पिछड़े वर्ग के हालात से भलीभांति परिचित हैं और वे ही सच्चे प्रतिनिधि के रूप में इनकी वकालत कर सकते हैं।[4]

राष्ट्रीय कसौटी पर कांग्रेस खरी

स्वतंत्रता सेनानियों के एक लंबे संघर्ष के बाद देश को आजादी मिली। जिन लोगों ने बलिदान दिया, कारागृहों में यातना सही, फांसी पर लटके, घर बर्बाद हुए; उनकी बदौलत आज देश आजाद है और विकास कर रहा है। भारत में धर्म, जाति-संप्रदाय, भाषा, खान-पान, पहनावा अलग-अलग होने के बावजूद कांग्रेस ने सभी लोगों को एक साथ जोड़ा है। हम उस पार्टी के सदस्य हैं, जिसका अपना एक सिद्धांत है... एक इतिहास और एक पृष्ठभूमि है। कांग्रेस के नेताओं के आदर्श आज भी हमारे लिए प्रेरणास्रोत हैं। कांग्रेस भाषा, धर्म, जाति और प्रांतीयता के आधार पर राजनीति नहीं करती है। कांग्रेस एक गतिमान पार्टी रही है। समाजवाद का दामन थामकर भी हमने उसे नया रूप दिया और सार्वजनिक क्षेत्रों का निर्माण किया। एक आदर्श राजनीतिक दल वह होता है, जो देश को आगे बढ़ाने का रास्ता दिखाए। इस कसौटी पर कांग्रेस खरी उतरी है। कांग्रेस को चुनौती देने के लिए अनेक राजनीतिक दल सामने आए, लेकिन सब कांग्रेस नेताओं के आदर्शों के सामने बौने साबित हुए हैं।[5]

खादी से आत्मनिर्भर भारत

निष्ठा, ईमानदारी और समर्पण भाव से ही संस्था चलती है, दौसा खादी समिति इसका

प्रमाण है। इसे मैंने बड़ी मेहनत से सींचा है और आज यह समिति भारत में प्रथम स्थान पर है। पूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने भी इस संस्था को सम्मानित किया था।[6] देश के समक्ष मौजूदा सबसे बड़ी समस्या बेरोजगारी है और खादी को बढ़ावा देकर इसका समाधान किया जा सकता है। वैश्वीकरण के इस दौर में भारतीय प्रतिभा का लोहा दुनिया भर ने माना है, अत: बड़ी संख्या में मौजूद बेरोजगार युवाओं की तकनीकी क्षमता में वृद्धि कर इन्हें विशाल वैश्विक बाजार के लायक बनाकर भारत पूर्ण विकास का लक्ष्य हासिल कर सकता है।[7]

शिक्षित युवाओं को रोजगार नहीं मिलने से वे अपराध की ओर अग्रसर हो रहे हैं। ऐसे में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के ग्राम स्वरोजगार योजना से लोगों को रोजगार देकर भारत को आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। साथ ही, सरकारी कार्यालयों द्वारा खादी की उपेक्षा बंद होनी चाहिए।[8] खादी और ग्रामोद्योग ही बेरोजगारी को मिटा सकता है। ग्रामोद्योग को बढ़ावा देने से जहां शहरों पर दबाव कम होगा; वहीं, खादी के उत्पादन से पर्यावरण दूषित नहीं होगा। खादी ग्रामोद्योग को बढ़ावा देने के लिए अभी तक सरकारों ने आधे अधूरे प्रयास किए हैं। आज समय की जरूरत है कि कॉटेज इंडस्ट्री को बढ़ावा दें। मल्टीनेशनल कंपनियों के माल से घबराने की जरूरत नहीं है क्योंकि साधारण आदमी उनके माल को खरीदने की स्थिति में नहीं है।[9] ध्यान रहे खादी कमीशन दान की संस्था नहीं है, वह निर्माण की संस्था है। ग्रामीण लोगों को रोजगार प्रदान करने वाली संस्था है, जो महात्मा गांधी के सपने को साकार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। संसार में मंदी का दौर चल रहा है, लेकिन भारत में इसका बहुत ही कम असर देखने को मिला है। सरकार ने मनरेगा योजना में सौ दिन का रोजगार दिया, लेकिन खादी ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिदिन का रोजगार प्रदान करती है।[10]

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में खादी में बदलाव की आवश्यकता है। लोगों का रुझान खादी की ओर बढ़ने लगा है, लेकिन इसकी गुणवत्ता पर ध्यान दिए जाने की जरूरत है। भारत में पश्चिमी सभ्यता के बढ़ते प्रभाव और चमक-दमक के बीच खादी ने अपना स्थान बनाया है, जिसमें क्षेत्रीय खादी ग्रामोद्योग के कातिन और बुनकरों द्वारा बनाई गई खादी की गुणवत्ता सराहनीय है। आज बाजार में गुणवत्ता के आधार पर ही टिका जा सकता है। इसके लिए खादी की गुणवत्ता पर ध्यान देना होगा। वहीं, विश्वस्तरीय डिजाइनों के साथ बाजार में अपने हुनर को प्रदर्शित भी करना होगा। खादी में विश्व स्तर की डिजाइन और क्वालिटी मिलेगी तो इसे पहनने वालों की संख्या में भी बढ़ोत्तरी होगी। विश्व आज 21वीं सदी की ओर दौड़ रहा है और हमारी युवा पीढ़ी सरकारी नौकरियों के पीछे भाग रही है। खादी समिति के पास रोजगार की विपुल संभावनाएं हैं। भारतीय दुनिया में किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं हैं, लेकिन जरूरत है अपने आप को तैयार करने की।[11]

आजादी के बावजूद भी हम देश की समस्याओं का समाधान नहीं कर पाए। देश में सबसे बड़ी समस्या रोजगार की है। विशेषतया ग्रामीण क्षेत्रों में यह समस्या मुंह बाए खड़ी है। पहले गांव की संरचना ही इस आधार पर की जाती थी कि गांव स्वावलंबी हो यानी गांव में चमड़े, लोहे, बर्तन आदि का काम करने वाला व्यक्ति होता था तथा इनकी रोजमर्रा की खाद्य सामग्री

उपलब्ध कराने को एक महाजन होता था। बच्चों को शिक्षा की व्यवस्था गांव के मंदिर का पुजारी करता था। लेकिन समय के साथ-साथ और वैश्वीकरण की चकाचौंध में लोग शहरों की ओर भागने लगे। भागते भी क्यों नहीं! इन गरीब आदमियों को सरकार की ओर से आधुनिक औजार खरीदने के लिए कोई मदद नहीं की जा सकी। इसीलिए गांवों में अधिक संख्या में बेरोजगारों की भीड़ हो गई। अगर अब भी सरकार यदि सच्चे मन से बेरोजगारी कम करने का विचार करती है तो खादी और ग्रामोद्योग द्वारा ही इस समस्या को कम किया जा सकता है।

खादी आंदोलन या विचारधारा ही नहीं है, बल्कि यह एक दर्शन है। विदेशों में भी आज खादी की मांग बढ़ गई है और उसके पीछे एक ही कारण है कि पोली वस्त्र से चर्म रोग हो जाते हैं जबकि खादी चर्म रोगों से रक्षा करती है। अगर इस देश का हर नागरिक एक वस्त्र खादी का पहनने की प्रतिज्ञा कर ले तो इससे खादी का उत्पादन इतना हो जाएगा कि इससे कतिनों, बुनकरों, टेलर मास्टरों को भारी तादात में रोजगार मिलेगा। लेकिन इसके लिए सरकारों को भी ध्यान देना होगा कि इनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करें, खादी को सब्सिडी दें। खादी संस्थाओं को खादी के उत्पादन के लिए ऋण उपलब्ध कराएं आदि अनेक कार्य सरकारी स्तर पर हों, तब इस बेरोजगारी की समस्या से निजात पाने में एक कदम आगे बढ़ेंगे।[12]

सबसे बड़ी चुनौती जातिवाद

राजस्थान सहित देश के समक्ष आज सबसे बड़ी चुनौती जातिवाद की है। जाति आज वोट का आधार बनती जा रही है, जो खतरनाक है। अत: जातिवाद मिटाने के लिए नाम से जातिसूचक शब्द हटाना बेहद जरूरी है। कांग्रेस कार्यकर्ताओं के समक्ष आज सबसे बड़ी चुनौती जातिवाद, क्षेत्रवाद पर काबू पाने के साथ-साथ क्षेत्रीय पार्टियों को नहीं पनपने देना है। देश और समाज के उत्थान तथा विकास के लिए जातिगत सम्मेलनों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, जिससे समाज के लोग एक जाजम पर बैठकर विचार-विमर्श कर सकें। दुनिया में हिंदुस्तान सबसे अजीब देश है। यहां सभी धर्म, संप्रदाय, जाति के लोग निवास करते हैं। अन्य देशों में एक या दो धर्म के लोग निवास करते हैं। हिंदू धर्मावलंबी हिंदुस्तान, नेपाल में रहते हैं और कुछ अपना पेट पालने के लिए मॉरीशस में रह रहे हैं। हिंदू धर्म का मूल मंत्र ही हिंदुस्तान है। आजादी के बाद देश में काफी बदलाव आए हैं, समाज के लोगों को इस बदलाव को स्वीकार करना होगा। इस युग में लोग दिखावे के लिए लाखों रुपए फिजूल खर्च कर देते हैं, इसलिए समाज में सामूहिक विवाह सम्मेलन को भी बढ़ावा दिया जाना चाहिए। सभी लोगों को एक मंच पर आकर शक्ति दिखानी होगी।[13]

स्वतंत्रता सेनानियों का बलिदान

युवाओं को देश को आजाद कराने वाले स्वाधीनता सेनानियों के जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए, जिससे राष्ट्र को अधिक मजबूत बनाया जा सके। आजादी के इन दीवानों से हमें प्रेरणा

लेनी होगी और स्वतंत्रता के संघर्षमय आंदोलन को समझना होगा तभी युवा पीढ़ी आजादी की कीमत पहचान सकेगी और इसे बनाए रखने का जज्बा ला पाएगी। आज के परिप्रेक्ष्य में सार्वजनिक जीवन में ईमानदारी एवं सेवा भावना के साथ त्याग की भावना को सर्वाधिक महत्व दिए जाने की आवश्यकता है। स्वतंत्रता आंदोलन और स्वतंत्रता सेनानियों के जीवन संघर्ष पर लिखी पुस्तकें विद्यालय स्तर तक के वाचनालयों में नि:शुल्क उपलब्ध कराई जानी चाहिए ताकि युवा पीढ़ी इन्हें पढ़ें और समझ सके ताकि उनमें भी जाति और धर्म से ऊपर उठकर उस समय जैसी राष्ट्रीयता की भावना विकसित हो सके।[14] परिवार और समाज की परवाह न करने वाले और देश के लिए बलिदान देने वाले लोगों की शहादत को कभी भुलाया नहीं जा सकता है। परिवार की तरक्की और खुशहाली के लिए हर व्यक्ति संघर्ष करता है, लेकिन देश तथा समाज के लिए लड़ने वाले अलग ही होते हैं। इन जांबाज सैनिकों को आदर व सम्मान देना चाहिए और शहीदों को हमें कभी नहीं भूलना चाहिए। सरकार का भी कर्तव्य है कि वह शहीद के परिवारों पर आने वाली परेशानियों को दूर करे।[15]

देश को आजादी दिलाने में युवाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कुर्बानी व बलिदान की लंबी शृंखला के बाद ही देश को आजादी मिल पाई है। देश की आजादी का इतिहास काफी लंबा रहा है। विश्व में तीन प्रकार की शासन प्रणाली राजशाही, अधिनायकवाद और प्रजातंत्र है। भारत में प्रजातंत्र शासन प्रणाली को अपनाया गया है। सभी को समानता का अधिकार है और हम वोट के माध्यम से अपनी सरकार चुन सकते हैं। देश में 18 वर्ष के युवा को मताधिकार का अधिकार है, जो अपने आप में एक मिसाल है।[16] समय के साथ-साथ आए बदलाव में आज राजनीति में भ्रष्टाचार आ गया है। आज वोट के लिए जातिवाद, प्रलोभन व धन का सहारा लिया जाने लगा है। यह दोष शासन प्रणाली का नहीं, बल्कि व्यक्ति का है। देश को आज ऐसे युवाओं की आवश्यकता है, जो जाति, धर्म से हटकर देश और आदर्श मूल्यों के लिए संघर्षरत रहें।[17]

भारतीय संस्कृति

किसी भी देश की पहचान उसकी संस्कृति से होती है। दुनिया में रोम, यूनान और भारत की संस्कृति की बड़ी पहचान थी, लेकिन रोम और यूनान की संस्कृतियां समाप्त हो गई हैं जबकि भारतीय संस्कृति की पहचान आज भी अटल है। दुनिया के किसी भी मुल्क में धर्म में मानव सेवा को वह स्थान प्राप्त नहीं है, जो भारतीय संस्कृति में दिया गया है। परोपकार हमारी संस्कृति का मुख्य अंग रहा है और संत-महात्मा भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं। यही वजह है कि हजारों वर्षों बाद हमारी संस्कृति न केवल अपना वजूद बनाए हुए है, बल्कि यह दुनिया के अन्य देशों के लिए एक शोध का विषय भी है। पुण्य की जड़ सदा हरी होती है क्योंकि पुण्य करने वाले की आमदनी कभी घटती नहीं है।[18]

भारतीय संस्कृति विश्व में सर्वोत्तम है और इसी कारण भारत को विश्व गुरु की उपमा दी गई है। पाश्चात्य सभ्यता के लोग भी आज भारतीय संस्कृति में विश्वास करने लगे हैं। यह

भारतीय संस्कृति ही है, जिसमें वृद्ध परिवारजनों और विद्वानों को सुरक्षा मिलती है। विधवा अपने पति के नाम पर पूरी उम्र गुजार देती है। पश्चिमी देशों में ऐसा कहीं देखने और सुनने को नहीं मिलेगा। दैनिक पूजा पाठ, मंदिरों के दर्शनार्थ लाखों लोगों का जाना, तीर्थ यात्राओं, श्राद्ध आदि को भारतीय संस्कृति ही मान्यता देती है; यह सब किसी अन्य संस्कृति में नहीं है। भारत एक ऐसा महान देश है, जहां समय-समय पर साधु-संत, ऋषि- मुनियों और अवतारी महापुरुषों ने जन्म लेकर देश का मार्गदर्शन किया है और समाज को विकृति के रास्ते पर भटकने से बचा लिया। भगवान राम और और कृष्ण इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। जब-जब पृथ्वी पर अधर्म और पाप बढ़ा, तब परम पिता परमात्मा ने मानवता की रक्षा के लिए स्वयं अवतार लिया। राम और कृष्ण के बाद भी इस धरती पर कई महान आत्माओं ने जन्म लेकर समाज का मार्ग प्रशस्त किया। मीरा और तुलसी जैसे संतों ने भटकते हुए समाज को एक नई दिशा प्रदान की। आज भी इस पवित्र भूमि पर साधु-महात्मा हमारा मार्गदर्शन कर रहे हैं। भारत में चार दिशा में चार धाम हैं, जिन्होंने संपूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांध रखा है।[19]

देश की आत्मा

संस्कृत भारतीय संस्कृति का उत्सव है। यह हमारे देश की आत्मा है और हम इससे प्राण वायु ग्रहण करते हैं। भारत देश की विशालता, गहराई, विद्वता को पहचानना है और देश को समझना है तो संस्कृत पढ़ना और समझना बहुत जरूरी है। मेरा संस्कृत के प्रति बहुत अधिक लगाव है और संस्कृत अनेक प्रांतीय भाषाओं की जननी है। लेकिन इतनी विशाल भाषा के होते हुए भी मुश्किल यह है कि संस्कृत के विद्वान तो बहुत हैं, लेकिन उनकी पहचान नहीं हो पाई है और उन्हें सम्मानित भी नहीं किया जाता है।[20] संस्कृत राष्ट्र की धरोहर है, यह सभी भाषाओं की जननी है। इसलिए उसे समृद्ध करना जरूरी हो गया है। युवा इस भाषा से जुड़ रहे हैं तो यह देश और समाज के लिए एक अच्छा लक्षण साबित होगा। जब तक समाज में संस्कृत प्रेमी आगे नहीं आएंगे तब तक संस्कृत को बढ़ावा नहीं मिलेगा। संस्कृत के बिना संस्कृति को भी खतरा है, संस्कृत के कारण ही विश्व में हमारी अच्छी पहचान है।[21] संस्कृत के बिना संस्कृति का उत्थान संभव नहीं है। संस्कृत की रक्षा कथ्य से नहीं संरक्षण से होगी। पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में हम भारतीय देव भाषा से किनारा करने लगे, जिसकी परिणति इतनी भयानक हुई कि संस्कृत हमसे दूर हो गई।[22]

इसी तरह आयुर्वेद सबसे प्राचीन और दोष विहीन चिकित्सा पद्धति है, जबकि दूसरी चिकित्सा पद्धतियों के उपचार में रिएक्शन के खतरे हैं। आज के समय में इस पद्धति में अनुसंधान व जड़ी-बूटियों के प्रमाणीकरण की जरूरत है। इस क्षेत्र के लोगों को चाहिए कि नई-नई आयुर्वेदिक औषधियों की खोज कर देश के विकास में सहायक बनें। अब संस्कृत, संस्कृति और आयुर्वेद के पुनर्जागरण का समय आ गया है और इस बारे में सरकारें भी सोचने लगी हैं। आयुर्वेद एवं संस्कृत में जीवन के हर क्षेत्र का ज्ञान भरा है और आज पूरी दुनिया इस तथ्य को स्वीकार कर रही है। जरूरत इसके पुनः अनुसंधान करने तथा इसे जन-जन के उपयोग

लायक बनाने की है। संस्कृत और आयुर्वेद का भविष्य उज्ज्वल है और यहां के लोगों को इसके विश्वव्यापी फैलाव के लिए अपने आपको तैयार करना चाहिए।[23] हमारी संस्कृति में चार वेद हैं। पांचवां वेद आयुर्वेद है जो बहुत महान है। आयुर्वेद की दवाइयां बहुत कारगर होती हैं। आयुर्वेद का कोई मुकाबला नहीं है और इसके प्रचार-प्रसार से निश्चित ही देश बीमारी से मुक्त हो जाएगा।[24] आज के समय में इस पद्धति में अनुसंधान व जड़ी-बूटियों के प्रमाणीकरण की जरूरत है। इस क्षेत्र के लोगों को चाहिए कि नई-नई आयुर्वेदिक औषधियों की खोज कर देश के विकास में सहायक बनें।[25]

यज्ञ हमारी संस्कृति का द्योतक हैं, जो प्राचीन काल से चले आ रहे हैं। यज्ञ करने से मनोकामना पूर्ण होती है या नहीं, यह तो मैं भी नहीं जानता; लेकिन मार्ग प्रशस्त जरूर होता है। हर व्यक्ति खाली हाथ आता है तथा खाली हाथ ही चला जाता है। व्यक्ति को बाह्य आडंबरों से दूर रहकर पुण्य कार्य करने चाहिए। आज के दौर में पैसा प्रमुख वस्तु हो गई है, उसके बावजूद भी मनुष्य को ईश्वर नाम के लिए कुछ घंटे तो जरूर निकालने ही चाहिए।[26] यज्ञ में आहुति देने का अर्थ केवल पूजा करना ही नहीं, बल्कि इसका अर्थ है अपने गलत विचारों, कुसंस्कारों एवं गलत कार्यों की आहुति देना।[27] यज्ञ हमारी संस्कृति का प्रतीक है। यज्ञ से ब्रह्मांड शुद्ध होता है। समाज को आध्यात्मिकता से जोड़कर विचारों की शुद्धि यज्ञ के द्वारा ही संभव है।[28]

मानव धर्म की महत्ता

देश के चिंतकों और मनीषियों ने हिंदू धर्म को गतिमान बताया है। यही कारण है कि आज भी यह धर्म जिंदा है। हमारे धर्म की मान्यताओं का अब तो विश्व भी लोहा मान रहा है। आज लोगों में दिखावा ज्यादा हो रहा है और राष्ट्रवाद कम हो रहा है। मूल्यों में गिरावट आ रही है। राजनीति के बारे में भी ऐसी ही बात की जाती है। राष्ट्रवाद में जब कमी आ जाती है, तब धर्म का वैमनस्य, जातिवाद और आतंकवाद पैदा हो जाते हैं। हमारे देश में इतने धर्म, जातियां, भाषा, वेशभूषा आदि मिलेंगे, जो किसी अन्य देश में नहीं हैं। इतनी भिन्नता होने पर भी हमारे देश में लोग भाईचारे से रहते हैं, एक-दूसरे के त्यौहारों में प्रेमपूर्वक आते-जाते रहते हैं। शादी-विवाह में भी शिरकत करते हैं।[29]

जगत के सारे धर्म मानवता का संदेश देते हैं। सर्वधर्म समभाव से ही राष्ट्र में शांति और प्रगति होगी। मानव मात्र के प्रति दया, एकात्म भाव रखना ही सच्चा धर्म पालन है। दुनिया में प्रत्येक मानव की फितरत में काम, क्रोध, मद और लोभ भरे हैं। इन चारों पर अंकुश प्राप्त करने से ही झगड़े-फसाद का मूल नष्ट होगा। अणुव्रत आंदोलन मात्र जैन धर्म तक सीमित नहीं, यह समग्र मानव जाति का आंदोलन है। अणुव्रत आंदोलन से समाज एवं राज्य में शांति का प्रसार होगा। आज प्रत्येक जाति में मतभेद हैं। हर समाज की तरक्की के लिए रास्ता तलाशने की जरूरत है। खान-पान और आचरण की विकृतियां दूर कर शुद्धि लाकर ही पुराना गौरव पुन: प्राप्त किया जा सकता है। आपसी दूरियां कम करने के लिए संगठन और आपस में संपर्क बढ़ाकर मेल-मिलाप करना जरूरी है।

सबसे बड़ा धर्म है मानव धर्म। लेकिन देश और समाज में पाप बढ़ रहा है, अपराध बढ़ रहे हैं, कदाचार, अनाचार, दुराचार बढ़ रहे हैं, जबकि सदाचार घट रहा है। मैं ईश्वर में पूरी आस्था रखता हूं, लेकिन दिखाने और आडंबर के सख्त खिलाफ हूं कि 'राम-राम जपना-पराया माल अपना'। ईश्वर ने सभी को इंसान के रूप में बनाया है, न कि हिंदू और मुसलमान को बनाया है। धर्म तो बहुत विशाल है। इसमें संकीर्णता का कोई स्थान नहीं है। लेकिन आज का इंसान संकीर्ण हो गया है। आज राजधर्म की परिभाषा बदल गई हैं। राजधर्म न रहकर स्वार्थी तत्वों ने इसे अपनी मर्जी की परिभाषा दे दी है। समाज को बांट दिया, धर्म को बांट दिया। धर्म का अर्थ मंदिर-मस्जिद जाना नहीं; धर्म का अर्थ है अपने कर्तव्य का पालन करना। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे में जाना धर्म का पालन नहीं है, बल्कि मनुष्य वहां शांति की खोज में जाता है। इंसान ने शांति को अपने कुकृत्यों से नष्ट कर दिया है। साधू-संतों, मुल्ले-मौलवियों का यह कर्तव्य बनता है कि लोगों को उनका कर्तव्य बोध कराएं न कि धर्म के आडंबर में फंसाकर भाई से भाई को लड़ाएं। जिस दिन यह हो जाएगा, देश ही नहीं बल्कि पूरा विश्व धर्ममय हो जाएगा।

'दीवार में दरार पड़ती है तो ढह जाती है,
परंतु दिल में दरार पड़ जाने से दीवार खड़ी हो जाती है'

भाई को भाई से, इंसानियत को इंसानियत से, धर्म से धर्म को लड़ाकर दीवार खड़ी करने के बजाए प्रेम भावना का प्रसार करना चाहिए ताकि देश में अमन और चैन कायम रह सके। जहां अमन और चैन है, वही देश तरक्की करता है। फिजूल के कार्यों में समय लगाने के बजाए बुजुर्गों और धार्मिक लोगों को समाज सेवा के काम करना चाहिए। बालिका भ्रूण हत्या, जातिवाद, संप्रदायवाद को जड़ से मिटाने के लिए धार्मिक लोगों को आगे आना चाहिए। समाज में व्याप्त दहेज जैसी ज्वलंत कुरीति के निराकरण के लिए काम करना चाहिए। तब जाकर हम समाज व धर्म को सही दिशा की ओर ले जा सकते हैं।[30]

गौरवशाली इतिहास

देश के गौरवमयी इतिहास को पढ़ने के साथ-साथ उससे प्रेरणा भी लेनी चाहिए। आजादी मिलने के बाद हमने सुख-सुविधाएं जुटाने में तो खूब तरक्की की, लेकिन नैतिक एवं चारित्रिक निर्माण की ओर ध्यान नहीं दिया। इस कारण आज वातावरण दूषित हो गया है।[31]

कालजयी साहित्य

साहित्य अमर और कालजयी होता है। यह समाज को रचनात्मक दिशा देता है। साहित्यकार युग का प्रतिनिधि होता है। जो साहित्यकार रचनात्मक दृष्टिकोण रखते हैं, उनका साहित्य अमर होता है। वह उस युग के वातावरण से प्रभावित होता है, जिसमें वह जी रहा है। साहित्यकार के मन की भावना समय, परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है।[32] सृजनात्मक साहित्य परंपरा को जीवंत रखने वाला होता है। लोक कथाएं बच्चों के चरित्र निर्माण में सहायक होती हैं। आज

के स्पर्धा एवं लालसापूर्ण माहौल में मानव जीवन तनावपूर्ण हो गया है। माता-पिता के पास बच्चों के लिए समय नहीं है। ऐसे में साहित्य उनके भविष्य निर्माण में सहायक हो सकता है।[33]

शिक्षा के मूल आधार

शिक्षा का मूल आधार ज्ञान और बुद्धि का विकास करने के साथ स्वरोजगार के लिए तैयार होना चाहिए, सरकारी नौकरी के लिए नहीं। जमाना तेज गति से बदल रहा है। अब दुनिया के साथ चलने के लिए हमें नई तकनीकों के साथ गुणात्मक शिक्षा पर भी ध्यान देना होगा। भारत में शिक्षा के क्षेत्र में लड़कियां लड़कों से अव्वल होती जा रही हैं। महिला शिक्षा के क्षेत्र में होने वाला विकास समाज के लिए भी शुभ संकेत है। जब माताएं शिक्षित होंगी तो बच्चे में ज्यादा अच्छे संस्कार होंगे। छात्रावास में सभी वर्गों के छात्रों का होना भी खुशी की बात है; इससे छात्रावासों में आपसी भाईचारा भी बढ़ेगा और शिक्षा का व्यापक प्रसार भी होगा। देश में शिक्षा का व्यावसायिकरण रोकना गलत है। गरीब और जरूरतमंद के लिए शिक्षा की व्यवस्था हो, उसे साधन मुहैया करा दिए जाएं, इसकी जरूरत है। विभिन्न समाज छात्रावास बनाते हैं, यह अच्छा काम है; लेकिन यदि इन छात्रावासों में उन्हीं जाति के लड़के-लड़कियों को रखा जाता है तो यह अच्छा नहीं है क्योंकि इससे जातिवाद को बढ़ावा मिलता है।[34]

आधुनिक शिक्षा रोजगारोन्मुखी नहीं है, इसे रोजगारोन्मुखी के साथ-साथ अनुशासनात्मक बनाने पर विचार करना चाहिए। शिक्षा का स्तर काफी नीचे चला गया है, जिसके कारण विद्यार्थियों का भविष्य भी नहीं बन पा रहा है, शिक्षा में गुणवत्ता तथा पाठ्यक्रमों में आवश्यक सुधार आज के परिप्रेक्ष्य में किए जाने चाहिए। पाठ्यक्रम के प्रति छात्र और अध्यापक दोनों ही गंभीर हों, इसके लिए विश्वविद्यालयों में उचित वातावरण बनाना अति आवश्यक है। इसके सुधार के बिना आधुनिक वातावरण और पाठ्यक्रमों से कोई वांछित परिणाम नहीं मिलने वाले हैं। उच्च शिक्षा क्षेत्र में आज की आवश्यकता अनुरूप अधिक अनुशासन और विश्वविद्यालयों में रोजगारोन्मुखी शिक्षा की योजना बनाई जानी चाहिए। यही छात्रों, अध्यापकों और देश के अच्छे भविष्य के लिए आवश्यक है। शिक्षा से ही कोई देश, धर्म, समाज महान बनता है। देश को हुनरमंद लोग ही आगे बढ़ा सकते हैं। एक जमाना था, जब दुनिया के कोने-कोने से से लोग हमारे यहां शिक्षा लेने आते थे। समय और युग के अनुसार शिक्षा विस्तार करने से देश का भविष्य उज्ज्वल बनता है। इन्हीं शिक्षित लोगों में से डॉ. अब्दुल कलाम जैसे वैज्ञानिक और मनमोहन सिंह जैसे अर्थशास्त्री पैदा होंगे। यह सब शिक्षा से ही संभव है।[35]

राजनीति में गिरावट चिंताजनक

आज राजनीति मूल्यविहीन हो गई है, उसका अपराधीकरण हो रहा है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, पूर्व प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि हमारे नेता समाज को जोड़ने की जगह बांटने का काम करेंगे।[36] देश के नेता कुर्सी के लिए दल-बदल कर रहे

हैं। वर्तमान में लोगों को पद के अलावा और कुछ नहीं सूझता। राजनीति में चरित्र नाम की चीज नहीं रह गई है। सामाजिक मूल्यों के प्रति कोई भी अपनी जिम्मेदारी नहीं समझता।[37] राजनीतिक मूल्यों में लगातार आ रही गिरावट से प्रजातंत्र को खतरा पैदा हो गया है। समय के साथ राजनीतिक मूल्यों का जबरदस्त ह्रास हुआ है। नेताओं को पद के अलावा कुछ नहीं सूझता। यहां तक कि सामाजिक कार्यों के प्रति भी चेतना नहीं रही। कुर्सी के लिए सिद्धांतों को छोड़ना और दल-बदल करना प्रजातंत्र की भावनाओं के खिलाफ है। इस प्रवृत्ति को रोका जाना चाहिए। लोकतंत्र में बहुत ताकत है। आज का मंत्री कल संतरी बन जाए, कुछ नहीं कहा जा सकता। इसलिए नेताओं को जनता की समस्याओं को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए।[38]

आदमी को कुर्सी के चिपके नहीं रहना चाहिए। भाग्य में कुछ सहारा होता है अपने आप स्थान मिलता रहता है। आज राजनीतिक माहौल खराब हो रहा है। इसके पीछे कारण है कि उपदेश देने वाले तो बहुत हैं, लेकिन अमल में कोई नहीं लाता। कुर्सी से चिपकने के लिए राजनीति नहीं करनी चाहिए। प्रजातांत्रिक तरीके में विरोधी पक्ष के बिना प्रजातंत्र निरंकुश हो जाता है, लेकिन विरोध भी रचनात्मक होना चाहिए। देश में मूल्यवान और सैद्धांतिक राजनीति की जरूरत है। युवाओं को मूल्य आधारित राजनीति एवं देश की संस्कृति की रक्षा के लिए आगे आना चाहिए।[39] राजनीति की राह कांटों से भरी है, लेकिन यहां भी अंततः कर्मठता की पूजा होती है। यदि व्यक्ति कर्मठता और योग्यता से परिश्रम करें तो तरक्की अवश्य ही उसके कदम चूमती है।[40]

कृषि और सहकारिता

कृषि स्नातकों से ही किसानों की आर्थिक स्थिति अच्छी होगी और स्वतः ही देश की माली हालत सुदृढ़ हो जाएगी। ऐसे में कृषि स्नातकों को किसानों को मार्गदर्शन देकर उनकी सेवा करनी चाहिए और नए-नए वैज्ञानिक तरीकों से खेती करवा कर उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। आज देश के किसानों की आर्थिक स्थिति बहुत खराब है। ऐसी स्थिति में कृषि वैज्ञानिकों का फर्ज बनता है कि वे किसानों को ऐसी खेती करने की सलाह दें, जो उनकी जमीन की भौगोलिक स्थिति के अनुसार उन्नत खेती हो सके और किसानों को बाजार में अच्छी कीमत मिल सके। देश में अन्य क्षेत्रों के मुकाबले सहकारिता क्षेत्र की भूमिका संतोषजनक नहीं रही है। इस क्षेत्र में वांछित विकास के लिए कुछ ठोस कदम उठाए जाने चाहिए। किसानों और गरीब लोगों की मदद के लिए सहकारिता क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। देश के आर्थिक विकास में सहकारिता क्षेत्र ने अपना महत्व साबित किया है, इसलिए उसकी भूमिका को कोई नकार नहीं सकता। आजादी के बाद जब भी विभिन्न क्षेत्रों के बारे में योजना बनाई गई, उस दौरान निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के साथ-साथ सहकारिता क्षेत्र की योजनाएं भी बनीं। लेकिन यह सच है कि जितना दूसरे क्षेत्रों में विकास हुआ, उतना सहकारिता के क्षेत्र में नहीं हुआ। इस क्षेत्र ने कृषि और दुग्ध क्षेत्रों में हरित और श्वेत दोनों क्रांतियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उम्मीद है कि अब ऊर्जा क्षेत्र में भी सहकारिता क्षेत्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।[41]

सहकारिता विकास को एक जन आंदोलन के रूप में लिया जाना चाहिए और इसमें बाजार के अनुरूप सुधार लाने चाहिए। जिस सहकारिता की परिकल्पना की गई थी, उस कल्पना को जिंदा रखना आज भी अप्रासंगिक नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार सहकारिता क्षेत्र का विकल्प नहीं बन सकते हैं। सहकारिता क्षेत्र से दुनिया के 90 राष्ट्रों के सात अरब से अधिक सदस्य हैं। विश्व स्तर पर सहकारिता क्षेत्र का इतिहास 200 वर्ष पुराना है। सहकारिता को जिंदा रखना है और लोगों को इसके प्रति विश्वास बनाए रखना है तो एक निर्धारित समयावधि में इसके चुनाव कराते रहना चाहिए। जिससे आंतरिक लोकतंत्र कायम रह सके। लोगों में इसके प्रति विश्वास बना रहे।[42]

प्रोफेशनल मीडिया और वर्तमान

देश को आजादी दिलाने का बहुत बड़ा श्रेय पत्रकारिता को जाता है, तब कम अखबार निकलते थे, लेकिन वे देशवासियों में राष्ट्रभक्ति की भावना जगाते थे। आज कितने समाचार पत्र राष्ट्रभक्ति की भावना जगाते हैं। देश पर संकट आता है, तब भी देश के सम्मान के खिलाफ बिना सोचे-समझे सनसनीखेज खबरें छापी जाती हैं, जिनसे दुनिया में हमारी हंसी होती है और वे खबरें बाद में सच्ची भी साबित नहीं होती हैं।

आधुनिक समय में देश में अंग्रेजी समाचार पत्रों के मुकाबले हिन्दी समाचार पत्रों के प्रसार में तेजी आई है। छोटे अखबार खत्म हो गए हैं। प्रिंट मीडिया भी अपने राज्य में क्षेत्रीय हो गया है। एक जगह की खबरें दूसरे शहर में पढ़ने को नहीं मिलतीं, ऐसी स्थिति में पाठक क्या करे? अखबार केवल वाणिज्यिक बन गए हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की तरह प्रिंट मीडिया भी इसका अनुसरण कर रहा है। पत्रकारिता में मिशन का जमाना लद गया, अब यह प्रोफेशन बन कर रह गया है, लेकिन इसकी पवित्रता को बनाए रखने की जरूरत है। पत्रकार जगत के लोग खुद अपनी आचार संहिता बनाएं और उसे लागू करें। नेता और अन्य लोग खुद ये चाहते हैं कि अखबार में उनकी खबर और फोटो प्रमुखता से छपे।[43]

सुख-दर्द में सहभागिता

विकलांगता एक अभिशाप बन गई है। इसका कारण अब तक यह रहा कि देश के लोग रूढ़िवादी हैं। अगर किसी परिवार में कोई विकलांग पैदा हो गया तो परिजन इसे ईश्वर की देन मानकर उसे झेलते रहेंगे। लेकिन उसके लिए कोशिश नहीं करेंगे। सरकारी तंत्र अकेला इससे लड़कर सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है। इसके लिए स्वयंसेवी संस्थाओं को आगे आना ही होगा। विकलांगता एक अभिशाप है जो कई प्रकार की होती है। समाज में निशक्तता की स्थिति को दैवीय आपदा माना जाता है। जबकि विकलांगता के अनेकानेक कारण हैं। यह किसी बीमारी अथवा कुपोषण के कारण भी आ सकती है जो असाध्य नहीं है। भारत को विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में लाने की दृष्टि से देश के दो करोड़ से अधिक विकलांग व्यक्तियों तथा 26

करोड़ से अधिक गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले परिवारों को सामाजिक एवं आर्थिक संबल प्रदान कर विकास की मुख्यधारा में लाना समाज के प्रत्येक नागरिक, सामाजिक संस्थाओं तथा लोक कल्याणकारी शासन का अहम दायित्व है। जिन इलाकों में विकलांगता का प्रभाव ज्यादा है। उनमें सामाजिक संस्थाओं को विशेष ध्यान देना चाहिए। राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों को समाज के इस अपेक्षित वर्ग के दुख और दर्द में सहभागी रहना चाहिए।[44]

जनसंख्या नियंत्रण

देश की बढ़ती आबादी को रोकना है तो प्रत्येक व्यक्ति को परिवार नियोजन के कार्यक्रम को अपनाना होगा। तेज गति से बढ़ती आबादी ने विकास कार्य पर रोक लगा दी है। गांव के लोगों को बढ़ती आबादी को रोकने में अहम भूमिका निभानी होगी।[45]

सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन जरूरी

केवल कानून बनाने से विभिन्न समाजों में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों एवं बुराइयां दूर नहीं होंगी, इसके लिए समाज को संगठित होकर साझा प्रयास करने होंगे। कानून बनने के बाद भी बाल विवाह, दहेज प्रथा और कन्या भ्रूण हत्या जैसे गंभीर अपराधों पर अंकुश नहीं लग पाया है। व्यक्ति और समाज का विकास होगा तो देश स्वत: ही आगे बढ़ जाएगा। पूरा मानव समाज ब्राह्मण को देवतुल्य मानता आया है। इसी भावना के अनुरूप वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समाज को पुन: समाज सुधार व मानव विकास के लिए काम करना होगा।[46] ब्राह्मण समाज संगठित होकर राष्ट्र निर्माण के लिए कार्य करे। जो समाज बंट जाता है, उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है। आज ब्राह्मण समाज को संगठित होने की आवश्यकता है। संगठन में ही शक्ति होती है। ब्राह्मण समाज जब तक व्याप्त बुराइयों एवं कुरीतियों को नहीं त्यागेगा, तब तक उसका खोया सम्मान वापस नहीं लौटेगा।[47]

संदर्भ सूची

1. राष्ट्रदूत, 3 अक्टूबर, 2010
2. राष्ट्रदूत, 7 जनवरी, 2007
3. राष्ट्रदूत, 28 मई, 2010
4. महका भारत, 15 अप्रेल, 2010
5. राष्ट्रदूत, 29 दिसम्बर, 2009
6. वही, 5 जुलाई, 2005
7. समाचार जगत, 21 मार्च, 2010
8. राष्ट्रदूत, 15 फरवरी, 2008
9. वही, 18 जनवरी, 2006
10. महका भारत, 23 फरवरी, 2009
11. समाचार जगत, 19 जनवरी, 2009
12. गुजरात संदेश, 27 नवम्बर, 2005
13. दैनिक नवज्योति, 27 नवम्बर, 2006
14. राष्ट्रदूत, 7 सितम्बर, 2008
15. समाचार जगत, 28 सितम्बर, 2005
16. वही, 29 मई, 2006
17. राष्ट्रदूत, 29 अप्रेल, 2006
18. वही, 8 जुलाई, 2005
19. समाचार जगत, 30 अप्रेल, 2007
20. राष्ट्रदूत, 11 जुलाई, 2008
21. दैनिक नवज्योति, 5 मार्च, 2009
22. वही, 30 अगस्त, 2006
23. राष्ट्रदूत, 12 नवम्बर, 2005
24. समाचार जगत, 30 अप्रेल, 2007
25. झांसी, 21 फरवरी, 2005
26. समाचार जगत, 18 जून, 2005
27. दैनिक नवज्योति, 9 फरवरी, 2007
28. महका भारत, 9 अप्रेल, 2008

29. राजस्थान पत्रिका, 28 अगस्त, 2006
30. दैनिक नवज्योति, 23 नवम्बर, 2004
31. दैनिक भास्कर, 11 जून, 2006
32. राजस्थान पत्रिका, 25 अक्टूबर, 2006
33. दैनिक नवज्योति, 18 जून, 2005
34. राष्ट्रदूत, 14 सितम्बर, 2006
35. वही, 13 नवम्बर, 2006
36. दैनिक भास्कर, 18 फरवरी, 2008
37. वही, 18 मार्च, 2008
38. डेली न्यूज, 10 मार्च, 2008
39. राष्ट्रदूत, 25 मार्च, 2005
40. वही, 28 अगस्त, 2004
41. गुजरात, 16 मई, 2006
42. दैनिक नवज्योति, 6 अक्टूबर, 2004
43. महका भारत, 29 अगस्त, 2004
44. दैनिक नवज्योति, 3 जुलाई, 2006
45. महका भारत, 27 अगस्त, 2004
46. वही, 11 दिसम्बर, 2006
47. दैनिक नवज्योति, 12 जून, 2005

भाग: छह

महारथी का महामौन

अनंत की ओर

पं. नवलकिशोर शर्मा बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। जिस पद पर भी वे रहे, वहां उन्होंने अपनी छाप छोड़ी। वे नई पीढ़ी के प्रेरणा स्रोत बने रहे। उन्होंने हमेशा नौजवानों को सार्थक संदेश देने का प्रयास किया। मुझे भी अपने जीवन में उनसे बहुत कुछ सीखने को मिला। उन्होंने दौसा के नाम को पूरे देश में पहचान दिलवाई। पूरा जीवन उन्होंने एक समर्पित व्यक्ति की तरह जिया। मैंने हमेशा पाया कि वे एक ऐसे व्यक्तित्व थे, जो दूरदृष्टि रखते थे।

–अशोक गहलोत

85 वर्ष की दीर्घ आयु अनेक तरह की बीमारियों को साथ लेकर आई। लगभग सात दशकों के जागरूक सामाजिक जीवन में निरंतर कर्म और साधना ने मस्तिष्क को चैतन्य रखा, लेकिन शरीर को जर्जर बनाना शुरू कर दिया। वे अस्वस्थ रहने लगे। इसके बाद भी निरंतर चिंतन में लगे रहते। स्वास्थ्य का हाल-चाल लेने वालों को लेटे हुए नवलकिशोर शर्मा हंसते-मुस्कुराते ही पाते।

नवलकिशोर के अस्वस्थ होने का पता चलने पर 15 अक्टूबर, 2011 को गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी ने नवलकिशोर के घर जाकर उनकी कुशलक्षेम पूछी। मोदी एयरपोर्ट से सीधे नवलकिशोर से मिलने मानसरोवर में कावेरी पथ स्थित उनके निवास पर पहुंचे। वहां नवलकिशोर के ज्येष्ठ पुत्र बृजकिशोर ने मोदी का स्वागत किया। इसके बाद मोदी नवलकिशोर के कक्ष में पहुंचे। बिस्तर पर स्वास्थ्य लाभ ले रहे नवलकिशोर की नजर मोदी पर पड़ी तो उन्होंने पूछा, 'कैसे हैं?' मोदी ने कहा, 'ठीक हूं, आपके दर्शन के लिए आया हूं।' मोदी जब बिस्तर के नजदीक पहुंचे तो नवलकिशोर ने पूछा कि उनका स्वास्थ्य कमजोर-सा दिख रहा है। मोदी ने बताया कि नवरात्रि व्रत के कारण ऐसा हो सकता है। काफी देर तक नवलकिशोर से बातचीत करने के बाद मोदी ने चलने की अनुमति चाही। वे कमरे से बाहर निकले तो एक बच्ची ने उनसे ऑटोग्राफ मांग लिया। मोदी ने 'वंदेमातरम' लिखकर अपने हस्ताक्षर कर दिए।[1]

नवलकिशोर का स्वास्थ्य और भी नरम रहने लगा। करीब साल भर बाद परेशानी बढ़ने पर उन्हें जयपुर के फोर्टिस हॉस्पिटल में भर्ती कराया गया। दूर-दूर से हर तरह के लोग उनसे

मिलने के लिए इच्छुक दिखाई दिए। डॉक्टरों ने लोगों का मिलना सीमित कर दिया। लंबे समय से अस्वस्थ नवलकिशोर फेफड़ों में संक्रमण के कारण करीब 25 दिन अस्पताल में भर्ती रहे। करीब 10 दिन तक जीवन रक्षक उपकरणों पर रहे।[2] हालत स्थिर होने का पता चलने पर 7 अक्टूबर, 2012 को कई नेता नवलकिशोर की कुशलक्षेम जानने अस्पताल पहुंचे। वरिष्ठ कांग्रेस नेता परसराम मदेरणा, केंद्रीय वित्त राज्य मंत्री नमोनारायण मीणा, कांग्रेस सांसद गिरिजा व्यास ने अस्पताल जाकर उनकी कुशलक्षेम पूछी।[3] 8 अक्टूबर को राज्यपाल मार्गरेट अल्वा भी अस्पताल पहुंचीं और नवलकिशोर के हालचाल जाने।[4] जैसे बाती धीरे-धीरे बुझ रही थी, अंत समय नजदीक आता जा रहा था। रात्रि में ही वे अनंत की ओर बढ़ चले। 8 अक्टूबर, 2012 की रात 11:40 बजे नवलकिशोर ने 87 वर्ष की उम्र में फोर्टिस हॉस्पिटल में अंतिम सांस ली। सूचना मिलते ही मुख्यमंत्री अशोक गहलोत और नगरीय विकास मंत्री शांति धारीवाल हॉस्पिटल पहुंचे। यह खबर आग की तरह फैल गई। पूरे राजस्थान में शोक की लहर छा गई।

राजस्थान सरकार ने नवलकिशोर के सम्मान में राज्य में एक दिन का राजकीय अवकाश और राजकीय शोक घोषित कर दिया। राष्ट्रीय ध्वज आधा झुका दिया गया। गहलोत ने संवेदना व्यक्त की, 'नवलकिशोर बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे, उन्होंने राजस्थान की राजनीति को लंबे समय तक प्रभावित किया। उनके निधन से कांग्रेस ही नहीं, बल्कि पूरे राजस्थानवासियों को आघात लगा है। नवलकिशोर नई पीढ़ी को प्रोत्साहन देने के लिए जाने जाते थे। राजनीति के अलावा वे सामाजिक कार्यों को बढ़ावा देने का भी कार्य करते रहे थे। वे एक ऐसे व्यक्तित्व के धनी थे, जिनका पूरा जीवन कांग्रेस के लिए समर्पित रहा। केंद्रीय मंत्री, प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष तथा राज्यपाल और खादी आयोग के अध्यक्ष के रूप में उनके द्वारा दी गई सेवाओं को सदैव याद रखा जाएगा।'[5] पूर्व मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे ने कहा, 'नवलकिशोर ने दलगत राजनीति से ऊपर काम किया। यकीन नहीं होता कि वे अब हमारे बीच नहीं हैं। उनके निधन से कांग्रेस को ही नहीं, पूरे प्रदेश को क्षति हुई है। प्रदेश ने एक अच्छा राजनेता खो दिया है।' केंद्रीय सड़क परिवहन एवं रेल मंत्री सी.पी. जोशी ने श्रद्धांजलि दी, 'नवलकिशोर राजस्थान की राजनीति के पुरोधा थे। वे स्पष्टवादिता के लिए जाने जाते थे। उन्होंने हमेशा नौजवानों को राजनीति में आगे बढ़ाने का काम किया। इसलिए कांग्रेस में सशक्त नई पीढ़ी तैयार हुई।' जयपुर सांसद महेश जोशी ने कहा, 'नवलकिशोर का निधन प्रदेश ही नहीं, बल्कि पूरे देश के लिए अपूरणीय क्षति है। उन्हें राजनीति के चाणक्य के रूप में याद किया जाएगा। नवलकिशोर अपनी बात को स्पष्ट रूप से कहने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते थे। अपनी शर्तों पर राजनीति की और जीवन जीया।' उपनेता प्रतिपक्ष घनश्याम तिवाड़ी ने कहा, 'पूर्व उपराष्ट्रपति भैरोंसिंह शेखावत जब बीमार थे तो नवलकिशोर गुजरात के राज्यपाल होने के बावजूद नियमित उनसे मिलने आते थे। वे ऐसे व्यक्तित्व के धनी थे कि जहां जिस पद पर काम किया, उनकी प्रतिष्ठा में बढ़ोत्तरी हुई। उनमें किसी प्रकार के राजनीतिक विद्वेष की भावना नहीं थी।'[6]

9 अक्टूबर की सुबह नवलकिशोर की पार्थिव देह उनके जनता कॉलोनी स्थित आवास पर लाई गई। सुबह 7.30 बजे पार्थिव देह अंतिम दर्शनों के लिए रखी गई। अंतिम विदाई देने के लिए खास से लेकर आम आदमी तक उमड़ पड़े। उस समय वहां मौजूद लोगों की आंखें नम हो गईं और पार्थिव देह के अंतिम दर्शन किए। राज्य मंत्रिमंडल के सदस्यों और बड़ी संख्या में लोगों ने श्रद्धांजलि अर्पित की। सोनिया गांधी की ओर से केंद्रीय सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्री मुकुल वासनिक, हरियाणा के राज्यपाल जगन्नाथ पहाड़िया और गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी की ओर से गुजरात सरकार के मंत्री ने तथा गहलोत सहित मंत्रिपरिषद के सदस्यों ने पार्थिव देह पर पुष्पचक्र अर्पित कर श्रद्धांजलि दी।[7]

सोनिया ने शोक संदेश में कहा, 'यह हम सबके और पूरी पार्टी के लिए बहुत बड़ी क्षति है। नवलकिशोर पिछली पीढ़ी के उन थोड़े से लोगों में थे, जिनकी राजनीतिक दृष्टि, सूझबूझ और विवेक नई पीढ़ी के लिए अनुकरणीय हैं।'[8] मोदी ने कहा, 'नवलकिशोर का व्यवहार हमेशा शुचिता और सादगी भरा रहा। गुजरात में राज्यपाल के रूप में कार्य करते हुए उन्होंने राज्य के विश्वविद्यालयों में राजनीति को कभी प्रश्रय नहीं दिया और उच्च शिक्षा के विकास में अथक प्रयास किए।'[9] राजस्थान विधानसभा के अध्यक्ष दीपेंद्रसिंह शेखावत ने श्रद्धांजलि व्यक्त की, 'राजनीति की पाठशाला का एक अध्याय समाप्त हो गया है। आजादी के संघर्ष में प्रजामंडल के कार्यकर्ता और स्वतंत्रता सेनानियों से उनके गहरे संबंध थे। खादी के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने जीवन पर्यंत कार्य किया और आदिवासियों का उत्थान तथा ग्रामोत्थान उनके जीवन का लक्ष्य रहा।'[10] धारीवाल ने कहा, 'पं. नवलकिशोर ने युवाओं को हमेशा प्रोत्साहन देकर आगे बढ़ाया। उनमें राजनेता के साथ-साथ पिता के भी गुण थे। तभी वे कार्यकर्ताओं से पिता की तरह स्नेह रखते थे।'[11] प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष डॉ. चंद्रभान ने नवलकिशोर के निधन को कांग्रेस पार्टी व प्रदेशवासियों के लिए अपूरणीय क्षति बताया।[12] मार्गरेट अल्वा, नटवर सिंह, भुवनेश चतुर्वेदी सहित बड़ी संख्या में जनप्रतिनिधि, विभिन्न बोर्डों एवं आयोगों के अध्यक्ष, प्रशासनिक एवं पुलिस अधिकारी, मीडियाकर्मी तथा प्रदेश के विभिन्न जिलों से आए लोगों ने पुष्पांजलि अर्पित कर दिवंगत आत्मा को अश्रुपूरित अंतिम विदाई दी।[13]

इसके बाद अंतिम यात्रा रवाना हुई। गहलोत ने अर्थी को कंधा दिया और करीब दो किलोमीटर यात्रा में साथ चले। लोग 'जब तक सूरज-चांद रहेगा, नवलजी का नाम रहेगा' जैसे नारे लगाते रहे। आदर्श नगर स्थित मोक्षधाम पहुंचने पर आरएसी की गारद ने मातमी धुन बजाकर तिरंगे में लिपटी पार्थिव देह को सलामी दी। अपराह्न 3:30 बजे उनकी राजकीय सम्मान से अंत्येष्टि की गई। बृजकिशोर ने मुखाग्नि दी।[14] इस दौरान वहां मौजूद हर किसी की आंखें नम थीं। नवलकिशोर के कर्मक्षेत्र जयपुर, दौसा, अलवर से आए लोग फूट-फूटकर रो पड़े।[15]

प्रदेश कांग्रेस मुख्यालय में पारित शोक प्रस्ताव में नवलकिशोर को कुशल राजनेता, गांधीवादी विचारक और कांग्रेस पार्टी का मजबूत स्तंभ बताते हुए कहा, 'नवलकिशोर का

व्यक्तित्व एवं कृतित्व कांग्रेस के महान आदर्शों और विचारधारा का जीवंत प्रतीक था।'[16]

भाजपा ने अपने पूर्व निर्धारित सभी कार्यक्रम स्थगित कर दिए। विधानसभा में बुलाई गई भाजपा विधायक दल की बैठक नवलकिशोर को श्रद्धांजलि अर्पित करने के बाद स्थगित कर दी गई। इसी तरह बिड़ला ऑडिटोरियम में आयोजित भाजपा का वक्ता प्रशिक्षण कार्यक्रम दो मिनट का मौन रखकर श्रद्धांजलि देने के बाद स्थगित कर दिया गया।[17]

10 अक्टूबर को नवलकिशोर की तीये की शोक बैठक हुई। इसमें कई हजार शोक संतप्त लोग शामिल हुए। गहलोत, वसुंधरा, मदेरणा और सचिन पायलट सहित प्रदेश के कई बड़े नेता आए और नवलकिशोर के परिजनों को सांत्वना दी। नरेंद्र मोदी भाजपा के पूर्व प्रदेश अध्यक्ष ओमप्रकाश माथुर के साथ अहमदाबाद से जयपुर पहुंचे। वे हवाई अड्डे से सीधे तीये की बैठक में गए। शोकसभा में किसी भी तरह का व्यवधान नहीं आए, इसलिए मोदी सबसे पीछे वाली पंक्ति में बैठ गए। बाद में बृजकिशोर के आग्रह पर उन्हें आगे बुलाया गया।[18] मोदी ने बृजकिशोर को गले लगाकर अपनी संवेदनाएं व्यक्त कीं और नवलकिशोर के चित्र पर पुष्प अर्पित कर श्रद्धांजलि दी। इसके बाद मोदी ने बृजकिशोर से कहा, 'अभी जाना है, फिर दुबारा आएंगे। आप जब चाहें, फोन कर सकते हैं।'[19]

पवित्र पुष्कर सरोवर में नवलकिशोर की अस्थियां 13 अक्टूबर को प्रवाहित की गईं। उनकी पुत्रवधू संतोष और पौत्र अभिषेक ने गऊघाट पर विधि-विधान से अस्थियां विसर्जन कर आत्मा की शांति की कामना की। कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने नवलकिशोर की अस्थियों पर पुष्पमाला अर्पित कर श्रद्धांजलि दी।[20] पगड़ी रस्म 19 अक्टूबर को हुई। कांग्रेस के कोषाध्यक्ष मोतीलाल वोरा और राष्ट्रीय महासचिव जनार्दन द्विवेदी ने दिल्ली से जयपुर आकर परिजनों को सांत्वना दी और पगड़ी रस्म में शामिल हुए।[21]

नवलकिशोर की जयंती के अवसर पर 5 जुलाई, 2013 को मुख्यमंत्री गहलोत ने दौसा में नवलकिशोर शर्मा स्मृति फाउंडेशन की ओर से सामुदायिक भवन एवं स्मृति स्थल का शिलान्यास किया। उन्होंने कहा, 'पं. नवलकिशोर ने मेहनत, निष्ठा और ईमानदारी से आमजन की सेवा की और जनता के हृदय में बस गए। उनकी चिरस्थाई स्मृति के रूप में यह भवन उभरेगा। अपने अंतिम क्षणों तक खादी संगठन को मजबूत बनाने में उनके द्वारा किया गया अपूर्व योगदान हमेशा याद रखा जाएगा। ईमानदारी, कर्मठता, गरीबों के काम को महत्व देने वाले नवलकिशोर ने सदैव बुजुर्गों और युवा पीढ़ी को प्रभावित किया। ऐसे व्यक्तित्व वाले विरले ही होते हैं। उनकी यादें चिरस्थाई रखने के लिए राजकीय महाविद्यालय का नाम नवलकिशोर शर्मा के नाम पर किया जाएगा।'[22]

कांग्रेस के राष्ट्रीय महासचिव सी.पी. जोशी, प्रदेश अध्यक्ष डॉ. चंद्रभान, नगरीय विकास मंत्री शांति धारीवाल ने भी श्रद्धांजलि अर्पित की। इसी दिन जयपुर के बिड़ला सभागार में नवलकिशोर की जयंती मनाई गई। गहलोत इस कार्यक्रम में भी मौजूद रहे। 20 सितम्बर, 2013 को जयपुर नगर निगम की ओर से नवलकिशोर को समर्पित रोटरी सर्किल का

लोकार्पण किया गया। 8 अक्टूबर, 2013 को नवलकिशोर की प्रथम पुण्यतिथि पर दौसा के खादी बाग में कार्यक्रम आयोजित हुआ।[23]

19 फरवरी, 2014 को क्षेत्रीय खादी ग्रामोद्योग समिति के तत्वावधान में दौसा के खादी बाग में नवलकिशोर की मूर्ति का अनावरण कार्यक्रम हुआ। राज्यपाल मार्गरेट अल्वा ने मूर्ति का अनावरण किया। उन्होंने कहा, 'नवलकिशोर ने लंबे राजनीतिक जीवन में गांधीवादी आदर्शों का पालन किया। वे सहकारी आंदोलन से जुड़े रहे। स्वतंत्रता आंदोलन में भी उनका सक्रिय योगदान रहा। उनके कार्यों को आगे बढ़ाकर ही हम उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि दे सकते हैं। वे स्पष्टवादी, ईमानदार और जमीन से जुड़े राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने दौसा में क्षेत्रीय खादी ग्रामोद्योग समिति की स्थापना की, जिससे आज लगभग दो हजार बुनकर और कतिन जुड़े हुए हैं। उन्होंने महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज का सपना पूरा करके दिखाया है।'[24] मुख्यमंत्री गहलोत ने कहा कि देश-प्रदेश में दौसा का नाम ऊंचा उठाने और दौसा की पहचान बनाने वाले नवलकिशोर की मूर्ति का अनावरण होने से आने वाली नौजवान पीढ़ी उनके कृतित्व और व्यक्तित्व से प्रेरणा लेगी तथा देश और प्रदेश की मजबूती में अपना योगदान देगी।[25]

14 मार्च, 2015 को दौसा के गुप्तेश्वर मंदिर के समीप नवलकिशोर की मूर्ति का अनावरण और सामुदायिक भवन का लोकार्पण कार्यक्रम हुआ। लोकार्पण के लिए पूर्व प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह दौसा आए। कार्यक्रम में पूर्व मुख्यमंत्री अशोक गहलोत, कांग्रेस के कोषाध्यक्ष मोतीलाल वोरा, अखिल भारतीय कांग्रेस महासचिव (संगठन) जनार्दन द्विवेदी, अखिल भारतीय कांग्रेस महासचिव डॉ. सी.पी. जोशी और मोहन प्रकाश, राजस्थान विधानसभा में नेता प्रतिपक्ष रामेश्वर डूडी तथा कांग्रेस प्रदेश अध्यक्ष सचिन पायलट उपस्थित थे।

संदर्भ सूची

1. दैनिक भास्कर, 16 अक्टूबर, 2011
2. राजस्थान पत्रिका, 9 अक्टूबर, 2012
3. दैनिक भास्कर, 8 अक्टूबर, 2012
4. राजस्थान पत्रिका, 9 अक्टूबर, 2012
5. सांध्य ज्योति दर्पण, 10 अक्टूबर, 2012
6. राजस्थान पत्रिका, 9 अक्टूबर, 2012
7. सांध्य ज्योति दर्पण, 9 अक्टूबर, 2012
8. दैनिक भास्कर, 10 अक्टूबर, 2012
9. मरु राजस्थान साप्ताहिक, 10 अक्टूबर, 2012
10. राष्ट्रदूत, 10 अक्टूबर, 2012
11. दैनिक भास्कर, 10 अक्टूबर, 2012
12. सांध्य ज्योति दर्पण, 10 अक्टूबर, 2012
13. डेली न्यूज, 10 अक्टूबर, 2012
14. डेली न्यूज, 10 अक्टूबर, 2012
15. मॉर्निंग न्यूज, 9 अक्टूबर, 2012
16. सांध्य ज्योति दर्पण, 10 अक्टूबर, 2012
17. डेली न्यूज, 10 अक्टूबर, 2012
18. दैनिक भास्कर, 11 अक्टूबर, 2012
19. पंजाब केसरी, 11 अक्टूबर, 2012
20. राष्ट्रदूत, 14 अक्टूबर, 2012
21. दैनिक भास्कर, 20 अक्टूबर, 2012
22. राष्ट्रदूत, 6 जुलाई, 2013
23. नेशनल दुनिया, 9 अक्टूबर, 2013
24. सुनहरा राजस्थान, 20 फरवरी, 2014
25. नवज्योति, 20 फरवरी, 2014

वे स्मृतियां

राजनीतिज्ञ लोगों में बुद्धिमान और पेशेवर रूप से समर्पित व्यक्ति बहुत कम मिलते हैं.. पं. नवलकिशोर शर्मा उनमें से एक हैं।

–ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

भारत–राजस्थान के महान सपूत

डॉ. मनमोहन सिंह

पूर्व प्रधानमंत्री

पं. नवलकिशोर शर्मा का जीवन और काम हम सबको प्रेरणा देते रहेंगे। उन्होंने अपनी जिंदगी में बहुत ऊंचे आदर्शों और मूल्यों का पालन किया। आज हमारे देश में इस बात की जरूरत है कि हम सभी उन्हीं आदर्शों को अपनाकर अपने राष्ट्र के निर्माण में योगदान करें। पंडितजी का लंबा सार्वजनिक जीवन भारत और राजस्थान की जनता की भलाई के लिए काम करने में बीता। वे 14 साल की छोटी–सी उम्र में ही आजादी की लड़ाई में जुट गए और कुछ समय बाद उन्होंने भारत छोड़ो आंदोलन में हिस्सा लिया। देशभक्ति का जो सिलसिला 1939 में शुरू हुआ, वह सात दशक से भी ज्यादा समय तक जारी रहा। पंचायत से लेकर संसद और केंद्रीय मंत्रिमंडल तक शासन के हर स्तर पर उन्होंने योगदान किया और अपनी अनोखी छाप छोड़ी। दौसा पंचायत समिति के प्रधान रहते हुए उन्होंने किसानों की भलाई और खुशहाली के लिए जो कोशिश की, वह आज भी याद की जाती है। पंडितजी की लोकप्रियता का ही सबूत है कि वे पांच बार लोकसभा के सदस्य चुने गए। राजस्थान विधानसभा और केंद्रीय मंत्रिमंडल के सदस्य तथा गुजरात के राज्यपाल भी रहे। हर सार्वजनिक पद पर पंडितजी ने गरीबों और किसानों के हितों पर खास ध्यान दिया। वे पक्के गांधीवादी थे और खादी से उनका विशेष लगाव था। दौसा की खादी संस्थाओं को आत्मनिर्भर और सफल बनाने के लिए उन्होंने लगातार प्रयास किए। अनुसूचित जातियों और जनजातियों के भाइयों–बहनों की खास जरूरतों

पर भी पंडितजी ने हमेशा ध्यान दिया। मुझे इस बात का गर्व है कि मैं कांग्रेस पार्टी में पंडितजी का सहयोगी रहा। वे कांग्रेस के प्रति पूरी तरह समर्पित थे। वे कांग्रेस के जिस पद पर भी रहे, उन्होंने पार्टी के साधारण कार्यकर्ता की बात सुनने की कोशिश की। उन्होंने आम आदमी की समस्याओं को कांग्रेस की सोच और नीतियों में महत्व दिलवाया। आज हमारी पार्टी को मजबूत करने के लिए हमें पंडितजी जैसे लोगों की जरूरत है। पंडितजी आज हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनकी स्मृतियां हमारा मार्गदर्शन कर रही हैं। पंडितजी भारत और राजस्थान के एक महान सपूत हैं। अगर हम उनके द्वारा बताए गए रास्ते पर चलते हैं, तो बेशक हमारा समाज और देश तेजी से तरक्की करेगा और यही पंडितजी को सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

समर्पित व्यक्तित्व, विशिष्ट कर्तृत्व

अशोक गहलोत

मुख्यमंत्री, राजस्थान

पं. नवलकिशोर शर्मा बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महामंत्री, सांसद, केंद्रीय मंत्री, खादी कमीशन के चेयरमैन, दौसा नगरपालिका के अध्यक्ष या दौसा के प्रधान; जिस पद पर भी वे रहे, वहां उन्होंने अपनी छाप छोड़ी। वे नई पीढ़ी के प्रेरणा स्रोत बने रहे। ऐसे बहुत कम व्यक्तित्व होते हैं, जो बुजुर्ग होने के बावजूद नौजवानों के चहेते बने रहें। उन्होंने हमेशा नौजवानों को सार्थक संदेश देने का प्रयास किया, उनको प्रेरणा दी। मुझे भी अपने जीवन में उनसे बहुत कुछ सीखने को मिला। जब मैं एनएसयूआई अध्यक्ष था, तब से उनके संपर्क में था। पंडितजी के सुपुत्र आनंद शर्मा दुनिया में नहीं रहे। जब वे जीवित थे, तब मैं पहली बार दौसा आया था। वह दिन..और उसके बाद लगातार लंबा सफर तय किया। हम लोग संसद में भी साथ रहे, केंद्रीय मंत्री भी रहे, विभिन्न पदों पर रहे..उनका सान्निध्य हमेशा मिलता रहा। वे एक ऐसे व्यक्तित्व थे, जिन्होंने दौसा के नाम को पूरे देश में पहचान दिलवाई। पंडितजी ने राजनीति में एक अलग पहचान बनाई थी। पूरा जीवन उन्होंने एक समर्पित व्यक्ति होकर जिया है और हम सब उसके गवाह हैं। मुझे उनके करीब रहने का बहुत अवसर मिला। मैंने हमेशा पाया कि वे एक ऐसे व्यक्तित्व थे, जो दूरदृष्टि रखते थे। जिंदगी जीनी कैसे चाहिए, यह भी उनसे सीख सकते हैं और मृत्यु को वरण कैसे करें, यह भी उनसे सीख सकते हैं। जब वे बीमार थे तो दो-तीन बार उन्हें दिल्ली या जयपुर के अस्पताल में भर्ती करना पड़ा। हम जब उनसे अस्पताल में मिलने जाते थे, तब उन्हें पता था कि उनकी अंतिम घड़ी आने वाली है। उन दिनों भी उनके चेहरे पर मुस्कान होती थी। वे कहते थे, 'आप लोग क्यों परेशान होते हो? मुझे पता है मेरा क्या हश्र होने वाला है।' ऐसे व्यक्ति जिन्हें मालूम है कि वे लंबे समय से बीमार हैं, उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है, उन्हें बार-बार अस्पताल लाया जा रहा है, वे इस दुनिया से विदा होने वाले हैं; फिर भी उनके चेहरे पर मुस्कान रहती थी। इस प्रकार वे एक अलग विशिष्ट व्यक्तित्व के रूप में हमारे बीच रहे।

कभी समझौता नहीं किया

मोतीलाल वोरा

पूर्व कोषाध्यक्ष, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी

पं. नवलकिशोर शर्मा प्रेरणादायी व्यक्तित्व के धनी थे.. कुशल वक्ता, प्रखर विचारक और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ। छात्र जीवन में देश की आजादी की लड़ाई से जुड़कर उन्होंने अमूल्य योगदान किया। राजनीति में आने के बाद भी उन्होंने राष्ट्रहित को सर्वोपरि रखा। उनके पास अनुभवों का विशाल भंडार था। उनसे मिलने वाला हर व्यक्ति कुछ न कुछ सीख लेकर ही लौटता था। जब उनसे राजनीतिक विषयों पर चर्चा होती तो वे समकालीन राजनीति से अधिक भावी राजनीति के स्वरूपों पर अपने विचार प्रकट किया करते थे। उनके अंदर भविष्य का सटीक आकलन करने की क्षमता थी। स्वाभिमान के जिस रास्ते पर वह चले, वह बहुत कठिन था लेकिन उन्होंने कभी समझौता नहीं किया। मंजिल पर पहुंचे, पीछे नहीं हटे। उन्होंने एक सफल जीवन जिया। मेरा सौभाग्य है कि मुझे उन्हें नजदीक से देखने और उनके साथ काम करने का अवसर मिला। मुझे विश्वास है कि उनके संपर्क में आए हर व्यक्ति के मनोभाव यही होंगे।

नई पीढ़ी के लिए प्रेरक

जनार्दन द्विवेदी

पूर्व महासचिव, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी

मैं मानता हूं कि किसी भी व्यक्ति की महानता का एक ही पैमाना है; जिस क्षेत्र में वह कार्यरत रहा, उससे कितना पाया और बदले में कितना लौटाया। पं. नवलकिशोर शर्मा उन लोगों में से थे, जिन्होंने अपने कर्मक्षेत्र से जितना लिया, उससे कहीं अधिक वापस दिया। मेरा उनसे दीर्घकालिक संपर्क रहा। अनगिनत बार हमारे बीच घंटों लंबी चर्चाएं हुईं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता उनकी विनम्रता और दूसरों को सम्मान देने की प्रवृत्ति थी। कोई नई पीढ़ी का व्यक्ति उनके साथ समय बिताता तो अपने साथ एक नया दृष्टिकोण लेकर लौटता। वे किसी भी परिस्थिति में विवेक और शांत चित्त से सभी पक्षों पर विचार करके एक सुनिश्चित राय बनाते और उस पर दृढ़ रहते। उनके जीवन में कितने ही उतार-चढ़ाव आए, लेकिन हर समय उन्होंने अपना संयम बनाए रखा।

खादी-ग्रामोद्योग संस्था संघ के संस्थापक

रामदास शर्मा

पूर्व अध्यक्ष, राजस्थान खादी-ग्रामोद्योग संस्था संघ

पं. नवलकिशोर शर्मा से मेरा संपर्क 1967 के चुनाव के दौरान हुआ था। उन दिनों मैं खादी-ग्रामोद्योग से जुड़ा हुआ था। चुनाव के दौरान ही खादी के प्रति उनके दृष्टिकोण को

समझने का अवसर मिला। उसके बाद कई बार उनसे खादी के संबंध में चर्चा हुई। उनका सपना था कि खादी के मामले में दौसा का पूरे देश में नाम हो, स्थानीय लोगों को खादी से जुड़ा काम मिले और वे अपने पैरों पर खड़े हों। उनके सपने को साकार करने में मैं भी सहभागी बना। राष्ट्रीय खादी-ग्रामोद्योग आयोग के अध्यक्ष रहते हुए नवलजी ने राजस्थान की सभी खादी-ग्रामोद्योग की इकाइयों को एक छत के नीचे लाते हुए खादी-ग्रामोद्योग संस्था संघ की स्थापना की। हमने नवलजी से संस्था संघ का अध्यक्ष बनने का आग्रह किया तो उन्होंने स्पष्ट मना कर दिया। वे बोले, 'मैं राजनीतिक व्यक्ति हूं और किसी भी राजनीतिक व्यक्ति को खादी संस्था संघ का पदाधिकारी नहीं रहना चाहिए।' उन्होंने पूरे प्रदेश में खादी को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक कार्य किए। आज इस संघ से 140 संस्थाएं जुड़ी हुई हैं। दौसा की खादी प्रदेश में पहले और देश में दूसरे नंबर पर है। खादी के क्षेत्र में दौसा को पांच बार राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

महात्मा गांधी-कांग्रेस के सच्चे अनुयायी

बृजकिशोर शर्मा

ज्येष्ठ पुत्र, अध्यक्ष, राजस्थान खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड

बाबूजी पर महात्मा गांधी की शिक्षाओं का व्यापक प्रभाव पड़ा। गांधीजी की दृष्टि उनकी रग-रग में समाई हुई थी और इसे उन्होंने जीवन का मंत्र बना लिया। यह कहना सही होगा कि गांधीजी उनके दिल में बसे रहे और कर्म का माध्यम उन्होंने कांग्रेस को बना लिया। इंदिरा गांधी, राजीव गांधी और सोनिया गांधी को उन्होंने सदैव नेतृत्वकर्ता के रूप में आदर्श के साथ देखा और दिल से भरपूर सम्मान किया। यही प्रेरणा हमारे पूरे परिवार के लिए धरोहर बन गई। सोनिया जी के आशीर्वाद से ही मैं राजस्थान कैबिनेट मंत्री के दर्जे के साथ राजस्थान खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड का अध्यक्ष बना हुआ हूं। अगर बाबूजी कांग्रेस से नहीं जुड़ते तो यह सब संभव नहीं था।

बाबूजी बच्चों को स्वरोजगार के लिए प्रेरित करते थे। मैंने उदयपुर से पॉलीटेक्निक डिप्लोमा करने के बाद नौकरी की तलाश शुरू की तो वे बोले, 'नौकरी में क्या रखा है! खुद का व्यवसाय करो।' इसके बाद मैं व्यवसाय के क्षेत्र में आ गया। बाबूजी ने मुझे मेरे जीवन का सबसे बड़ा मंत्र दिया, 'भले ही फटा पहनो और सूखा खाओ, लेकिन समाज में नाम और बाजार में हिसाब हमेशा साफ रखना।'

परिवार उनके लिए सबसे बढ़कर था। उन्होंने मुझे भी यही सिखाया कि पहले परिवार है, उसके बाद ही दूसरे काम हैं। जब भी वे दिल्ली से आते तो मेरे साथ बैठकर बच्चों की शिक्षा, व्यापार आदि के बारे में पूछा करते थे। उन्होंने कभी मुझसे पैसों का हिसाब-किताब नहीं मांगा। यह उनका मुझ पर विश्वास था। दौसा के लोग मुझे श्रवण की उपाधि देते थे क्योंकि मेरे लिए बाबूजी का आदेश भगवान के आदेश के बराबर था। मैंने कभी उन्हें पलटकर

जवाब नहीं दिया। उनकी कही हुई हर बात मेरे लिए एक शिक्षा और प्रेरणा है। वे अपनी बात के पक्के थे। वकालत हो या राजनीति, अगर किसी काम के लिए 'हां' कह दिया तो उसे हर हाल में पूरा करते और 'नहीं' कह दिया तो दुबारा देखते ही नहीं थे। उनका कहना था कि जो भी काम करो, मेहनत और ईमानदारी से करो। वकालत के दिनों में जब वे कोई केस लेते तो रात को 2 बजे तक किताबें और फाइलें पढ़ा करते थे।

मैं काफी समय तक व्यवसाय के क्षेत्र से जुड़ा रहा और राजनीति में आने के बारे में अधिक सोचा नहीं था। बाबूजी ने 1998 में विधानसभा चुनाव लड़ने के बाद मुझे सामाजिक कार्यक्रमों में भेजना शुरू कर दिया। हालांकि उस दौरान उन्होंने कभी नहीं कहा कि वे मुझे राजनीति में लाना चाहते हैं। 2003 में सोनिया गांधी जयपुर आईं तो अमरूदों के बाग में कार्यकर्ताओं की बैठक बुलाई गई थी। उस दौरान बाबूजी ने चुनाव लड़ने से मना कर दिया। तब सभी लोगों ने उन्हें सुझाव दिया कि आप भाई साहब (बृजकिशोर) को चुनाव लड़वाइए। बाबूजी के आदेश और सोनिया जी के मार्गदर्शन के साथ मैंने अपना पहला नॉमिनेशन फॉर्म भरा। उस समय जयपुर में विधानसभा की पांच सीटें थीं, जिनमें से कांग्रेस को केवल एक पर जीत मिली.. वह मेरी जयपुर ग्रामीण सीट थी। अगले चुनाव में मुझे हवामहल से टिकट मिला और हमारी पार्टी की सरकार बनी। मुझे कैबिनेट में ट्रांसपोर्ट, देवस्थान और संस्कृत भाषा विभाग मिला। बाद में मुझे शिक्षा मंत्री बनाया गया। राजनीतिक जीवन में आज तक कोई भी व्यक्ति मुझ पर अंगुली नहीं उठा सका क्योंकि मेरे साथ बाबूजी के संस्कार थे। जब मैं चुनाव हार गया तो नोटिस आने से पहले ही रातों-रात सरकारी आवास खाली करके अपने मकान में आ गया क्योंकि बाबूजी कहते थे कि सरकारी पैसों का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

बाबूजी पर पुस्तक लिखा जाना मेरे और मेरे परिवार के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक बाबूजी के सादगी, समर्पण और सिद्धांत पूर्ण जीवन के बारे में समाज को सकारात्मक संदेश देगी।

हमारे बाबूजी

विनोदबिहारी शर्मा

भतीजे, पूर्व सदस्य, राजस्थान लोक सेवा आयोग

पं. नवलकिशोर शर्मा मेरे चाचा थे, लेकिन मैं शुरू से ही उन्हें 'बाबूजी' कहकर संबोधित करता था। वे मेरे पिता यानी अपने मंझले भाई राधावल्लभ शर्मा के बेहद नजदीक थे। दादाजी के देहांत के बाद पिताजी ने ही घर की सारी जिम्मेदारी निभाई और परिवार का पालन-पोषण किया। पिताजी ने बाबूजी को पढ़ाने में भी पूरा सहयोग किया। बाबूजी के मन में मेरे पिताजी के प्रति इतना सम्मान था कि अगर पिताजी कुछ कह दिया करते थे तो बाबूजी उस बात को जरूर मानते थे। बाबूजी के शुरुआती राजनीतिक फैसले भी पिताजी ही लिया करते थे। बाबूजी ने संयुक्त परिवार के सभी बच्चों की शिक्षा पर काफी जोर दिया। अनुशासन भी उनके लिए

बहुत महत्वपूर्ण था। वे हमेशा कहते थे, 'अच्छा खाओ और अच्छा पहनो, लेकिन अनुशासित रहो।' उन्होंने अपने जीवन में बहुत संघर्ष किया। जब वे पहली बार सांसद बने तो तनख्वाह इतनी कम थी कि दिल्ली जैसे शहर में गुजारा ही मुश्किल था। वे घर से ही राशन का सामान लेकर दिल्ली जाते थे। जब भी दिल्ली से दौसा आते तो अधिकतर राजनीतिक दौरे पैदल या साइकिल से करते।

बाबूजी ने वकालत को ही अपना प्राथमिक व्यवसाय माना। उन्हीं के सान्निध्य में मैंने भी वकालत शुरू की। मैं 18 वर्ष की उम्र में लॉ की परीक्षा में बैठा, उसी समय से बाबूजी ने मुझे कोर्ट ले जाना शुरू कर दिया। वे सुबह उठते ही मुझे फाइल पढ़ने में लगा देते। उनका कहना था कि वकील को घोड़े की तरह मेहनत करनी चाहिए। उनकी लोकप्रियता और नेतृत्व स्थापित होने का मुख्य कारण भी वकालत है। उन्होंने 21 साल तक वकालत की और अपने जमाने के प्रतिष्ठित वकील रहे। उनका कहना था:

> राजनीति मेरा शौक है और यह शौक ऐसा ही है, जैसा खाना खाने के बाद पापड़ का होता है। पहले अपनी रोजी-रोटी की व्यवस्था कीजिए, फिर राजनीति में उतरिए। अगर आपके पास आमदनी का जरिया नहीं रहेगा तो आप राजनीति में चोरी करेंगे, जिससे आपके चरित्र में गिरावट आएगी। ऐसे में आप चरित्रवान नेता कैसे बनेंगे!'

वे हमेशा सही और सच्चे व्यक्ति के साथ खड़े रहे। उनके दौसा नगरपालिका के चेयरमैन रहने के दौरान स्थानीय बाजार में किसी ने रातोंरात अवैध दुकान का निर्माण करवा लिया। बाबूजी को जानकारी मिली तो उन्होंने दुकान को तोड़ने का आदेश दे दिया। उस वक्त कई ताकतवर लोगों ने दबाव बनाने की कोशिश की, लेकिन बाबूजी अपनी सच्चाई पर अड़े रहे। वे हमेशा गरीबों की उन्नति के बारे में सोचते थे। गांवों और किसानों की प्रगति उनके चिंतन की मुख्य धुरी थी। इसके लिए उन्होंने खादी का सबसे बड़ा माध्यम माना। उन्हें आजीवन यह विश्वास रहा कि ग्रामीण विकास और गरीबों को रोजगार दिलवाने के लिए खादी से बड़ा साधन कोई और नहीं हो सकता। खादी उनका जीवन मंत्र था, उन्होंने हमेशा खादी के ही कपड़े पहने।

रिश्तों और भावनाओं को बाबूजी बहुत अहमियत देते थे। आगरा में वकालत की पढ़ाई के दौरान जब कभी वे दौसा आते तो परिजनों और दोस्तों के लिए दालमोठ और आगरे का पेठा लाना नहीं भूलते। वकील बन जाने के बाद जब कभी फुर्सत मिलती तो मित्रों के साथ समय बिताते। आगे चलकर राष्ट्रीय नेता के रूप में स्थापित हो जाने के बाद भी दौसा से उनका गहरा लगाव रहा। वे कहते थे, 'जीना यहां-मरना यहां, इसके सिवा जाना कहां! बाकी लोग तो आते-जाते रहते हैं, लेकिन अगर मैं बीमार हुआ तो दौसा वाले ही पूछेंगे और मर गया तो भी यही लोग अंतिम संस्कार में आएंगे।'

बहू-बेटी में फर्क नहीं

संतोष देवी

पुत्रवधू, बृजकिशोर शर्मा की पत्नी

काकाजी (नवलकिशोर) घर के सभी सदस्यों की पसंद-नापसंद का ख्याल रखते थे। जिस तरह उन्होंने लड़का-लड़की में अंतर नहीं किया, उसी तरह उनके लिए बहू और बेटी में फर्क नहीं था। मैं बेंगलोर (अब बंगलुरु) से थी। शादी के बाद दौसा आई तो यहां पर्दा प्रथा देखी। काकाजी ने मुझे शुरुआत में ही कह दिया कि पर्दा करने की जरूरत नहीं है, लेकिन मैंने परिवार के नजरिए से इन रिवाजों को माना। वे हमेशा इसका ध्यान रखते थे कि मैं बड़े शहर से आई हूं तो गांव में कैद महसूस नहीं करूं। आसपास के माहौल में रूढ़िवादी सोच थी, लेकिन काकाजी हमें कहते कि जयपुर जाओ घूम आओ.. फिल्म देख आओ। कई बार दिल्ली घुमाने के लिए ले जाया करते थे। जब हम वहां से कुछ खरीदकर लाते तो और खुश होते थे। दिल्ली के संसद भवन में वे मेरी पसंद का ही खाना मंगवाते। उन्हें पता था कि मुझे साउथ इंडियन खाना अच्छा लगता है और मैं चावल खाना पसंद करती हूं। जब भी वे घर में होते तो जानकारी लेते कि मेरे लिए चावल बना है या नहीं। घर में बच्चों की शिक्षा पर वे काफी जोर देते थे। इस बात का हमेशा ख्याल रखते थे कि राजनीति के कारण बच्चों की शिक्षा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

पोतियों के अभिभावक

इंदिरा शर्मा

पुत्रवधू, आनंद शर्मा की पत्नी

मेरी शादी आनंदजी (नवलकिशोर के कनिष्ठ पुत्र) से 18 जून, 1978 को हुई और शादी के बाद मैं दौसा रहने गई। आनंदजी राजनीति में सक्रिय होने के कारण जयपुर रहते थे। उस दौरान घर का रहन-सहन साधारण था और संयुक्त परिवार हुआ करता था। अपने चचेरे भाइयों की देखादेखी आनंदजी अपने पिता को काकाजी ही कहने लगे थे और वही उनकी आदत रही। इसलिए मैंने भी उन्हें काकाजी ही कहा। काकाजी आनंदजी के काफी निकट थे। यह कहना गलत नहीं होगा कि आनंदजी में ही वे अपना राजनीतिक वारिस देखते थे। आनंदजी भी उनका बहुत सम्मान करते थे। अगर काकाजी ने किसी बात के लिए मना कर दिया तो वे फिर उस बात को दोहराया नहीं करते थे। आनंदजी शुरू से ही राजनीति में काफी सक्रिय थे। वकालत की पढ़ाई पूरी होते ही वे राजनीति के क्षेत्र में आ गए। वे काफी ऊर्जावान और सकारात्मक थे। साथ ही, काकाजी की तरह ही व्यावहारिक भी थे। उनके जाने के बाद काकाजी अक्सर उन्हें याद करते हुए कहते थे कि अगर आनंद आज होते तो राजनीति में उच्च पद पर होते।

काकाजी ने आजीवन मुझे बेटी की तरह माना। वे मुझे 'इंदिरा बेटा' कहकर बुलाया करते थे। हर मुश्किल वक्त में उन्होंने मुझे पिता के रूप में मुझे संभाला। जब आनंदजी का देहांत

हुआ, उस समय मेरी दोनों बेटियां छोटी थीं। आकस्मिक दुर्घटना में जवान बेटे को खोना काकाजी के लिए भी बेहद दु:खद था, लेकिन उन्होंने घर के बड़े सदस्य होने के नाते स्वयं को भावनात्मक रूप से मजबूत बनाया। उन्होंने मेरी बेटियों के लिए अभिभावक की भूमिका निभाई और मुझे आर्थिक रूप से सक्षम होने के लिए भी प्रेरित किया। उन्होंने मुझे एक गैस एजेंसी खुलवाकर दी, जिसका नाम आनंद गैस एजेंसी रखा। काकाजी अंतिम समय में जब फोर्टिस हॉस्पिटल में भर्ती थे, तब भी उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखते हुए मुझसे पूछा कि बेटा तुझे कोई तकलीफ तो नहीं है? काकाजी मेरे लिए भगवान का रूप थे। शायद आनंदजी भी प्रिया और तृप्ति को इतना प्यार नहीं दे पाते, जितना काकाजी ने दिया।

महिलाओं की राय को महत्व

रिंकू शर्मा

पौत्री, बृजकिशोर शर्मा की पुत्री

काकाजी बेटे और बेटियों में कभी अंतर नहीं करते थे। उन्होंने मुझे और मेरी चचेरी बहन को पढ़ने के लिए वनस्थली विद्यापीठ भेजा। वे हमेशा कहते थे कि खूब पढ़ो, लिखो..जिससे अपने पैरों पर खड़ी हो सको। वे बच्चों के साथ बच्चे हो जाते थे। पोते-पोती, पौत्र और पौत्रियों को हमेशा अच्छी-अच्छी बातें बताते। वे घर के कार्यों में हमेशा महिलाओं की राय अवश्य लेते थे।

काकाजी महात्मा गांधी के विचारों से काफी प्रभावित थे और अपने जीवनकाल में सदा ही खादी को महत्व दिया। वे बहुत ही साधारण जीवनशैली जीने वाले व्यक्ति थे। दिखावा करने वाले लोगों से वे सदा दूर ही रहते थे। व्यस्त दिनचर्या के बावजूद वे परिवार के लिए समय निकालते थे और अपने जीवन के अनुभवों को साझा करते। अपने खाली समय में वे दोस्तों के साथ ताश खेलते या फिर किताबें पढ़ा करते थे। उन्होंने वकालत कर रखी थी, ऐसे में कानूनी किताबें वे बड़े चाव से पढ़ते थे। गुजरात के राज्यपाल के दौरान जब वे जयपुर आते थे तो रोजाना प्रत्येक कर्मचारी की कुशलक्षेम अवश्य पूछते थे। और मैं उनके सादा जीवन उच्च विचार वाले गुणों से सर्वाधिक प्रभावित हूं।

एलईडी बल्ब और केसर के आम

प्रिया गौड़

पौत्री, आनंद शर्मा की ज्येष्ठ पुत्री

काकाजी (नवलकिशोर) मेरे लिए आदर्श रहे हैं और उनकी हर सीख आज भी मेरे लिए बहुत अमूल्य है। जब भी काकाजी दिल्ली से जयपुर आते तो घर में खुशी का माहौल रहता था। हम बच्चों को अगर किसी चीज के लिए अनुमति लेनी होती थी तो हम काकाजी का इंतजार करते रहते थे। अगर काकाजी ने एक बार हां बोल दिया तो फिर कोई भी मना नहीं

कर सकता था। वे हमें बहुत प्यार देते थे। उन दिनों हवाई जहाज में टॉफियां मिलती थीं। काकाजी सारी टॉफियां घर लेकर आते थे और सभी बच्चों में बांट दिया करते थे।

मैं आर्ट्स स्टूडेंट रही हूं। जब भी मैं कोई पेंटिंग या स्केच बनाती तो काकाजी मुझे बहुत प्रोत्साहित करते थे। कॉलेज में पढ़ने के दौरान मुझे शहर के एक होटल में काम करने का प्रस्ताव मिला, जहां राजस्थान की कला और संस्कृति के बारे में पर्यटकों को जानकारी देनी थी। मैं सोचने लगी कि इस काम के लिए इजाजत मिलेगी या नहीं। कुछ दिनों बाद मैंने एक ट्रेन यात्रा के दौरान काकाजी को इस बारे में बताया। वे बहुत खुश हुए। उन्होंने मुझे शाबासी दी और बोले, 'बेटा, तुम यह काम जरूर करो। कोई भी काम छोटा या बड़ा नहीं होता है। जो काम आपको दूसरों से छिपाना पड़े, वह गलत है।' काकाजी की यह बात सुनकर मुझे बहुत ग्लानि हुई क्योंकि मैंने सोच लिया था कि काकाजी मुझे नौकरी करने से मना कर देंगे। मैंने 7-8 महीने उस होटल में नौकरी की और काकाजी ने मेरे काम की बहुत सराहना की।

काकाजी के लिए परिवार की बहुत अहमियत थी। घर के किसी भी सदस्य को कोई परेशानी हो तो वे चेहरे से ही पढ़ लेते थे। उनकी व्यस्तता इतनी थी कि अक्सर घर से दूर रहना पड़ता था, लेकिन वे हमेशा मानकर चलते थे कि परिवार साथ है तो दुनिया साथ है। उनकी सबसे बड़ी खासियत थी उनकी सादगी। कोई भी व्यक्ति उनसे मिलते हुए असहज महसूस नहीं करता था। वे आम लोगों में घुल-मिल जाते थे। उनका कभी यह आग्रह नहीं रहा कि उन्हें विशिष्ट दर्जा दिया जाए। पंगत में जमीन पर बैठकर भोजन करना, ग्रामीण लोगों से स्थानीय भाषा में बात करना.. उन्हें देखकर पता ही नहीं चलता कि वे इतने बड़े नेता हैं। राज्यपाल के रूप में उन्हें अधिकार था कि वे राजभवन के इंटीरियर में बदलाव करवा सकते थे, लेकिन उन्होंने राजभवन के परदे तक नहीं बदलने दिए।

सरकारी पैसे का दुरुपयोग करना काकाजी को बिल्कुल पसंद नहीं था। राजभवन में बड़े बल्ब लगे हुए थे। शाम होते ही नियम से राजभवन में रोशनी कर दी जाती थी। एक दिन काकाजी ने कहा, 'कोई दिवाली है जो इतने बल्ब जला रखे हैं! अभी बंद करो सब। जहां जरूरत है, वहीं जलाओ। गांवों में लोगों के पास बिजली नहीं है। बिजली की बर्बादी से देश का नुकसान होता है।' इसके बाद सारे बल्ब हटवाकर एलईडी बल्ब लगवाए गए। काकाजी ने स्टाफ को हिदायत दी कि खास मौकों पर ही सभी बल्ब जलाए जाएं। इसी तरह, राजभवन परिसर में एक केसर आम का पेड़ था। गर्मियों में केसर आम की पैदावार अच्छी होती थी। एक बार हम काकाजी से मिलने गांधीनगर गए थे। जब वापस आने लगे तो राजभवन के माली ने कुछ आम तुड़वाकर पेटियों में पैक करवाकर रखवा दिए। इसका पता चलने पर काकाजी ने माली से कहा, 'किससे इजाजत लेकर आम की पेटियां पैक की हैं? पहले जाओ और बाजार में केसर आम के दाम पता करो।' उस समय के बाजार भाव के अनुसार काकाजी ने आम तुलवाकर पूरे पैसे माली को दिए। उन्होंने मुझे प्यार से समझाया, 'यह माली सरकार का है और पेड़ भी

सरकारी जमीन पर लगा है। हम सरकार की चीजों का इस्तेमाल अपने निजी उपयोग के लिए नहीं कर सकते।'

जीवन का धर्म

तृप्ति शर्मा

पौत्री, आनंद शर्मा की कनिष्ठ पुत्री

जब पिताजी (नवलकिशोर के पुत्र आनंद) का देहांत हुआ तो मैं आठ महीने की थी। घर में सबसे छोटी होने के कारण मैं काकाजी (नवलकिशोर) के सबसे नजदीक थी। काकाजी मेरे लिए 'विशिंग सैंटा' रहे। जैसे क्रिसमस पर सैंटा आकर बच्चों की विश पूरी करते हैं, उसी तरह काकाजी दिल्ली से दो-तीन महीनों में आकर मेरी विश पूरी करते थे। वे हमेशा इस बात का ख्याल रखते थे कि मेरे पास सब जरूरत की चीजें हैं या नहीं। वे खास तौर पर आशुतोष भैया को बोलते थे कि तृप्ति को साथ लेकर जाओ और अच्छे कपड़े दिलवाकर लाओ। मुझे हमेशा पता होता था कि अगर मैंने उनसे कुछ भी मांगा तो वे कभी मना नहीं करेंगे। मेरी स्कूल डायरी में एंट्री करनी हो, फॉर्म भरना हो या फिर कोई स्पीच लिखनी हो, सारे काम काकाजी मेरे लिए किया करते थे। मुझसे हमेशा कहते, 'मैं पिंकी (तृप्ति की बड़ी बहन) और तुम्हें देखता हूं तो आनंद को जीता हूं। तुम दोनों मेरे लिए उसी का प्रतिरूप हो।'

एक बार स्कूल की तरफ से पिकनिक पर दक्षिण भारत घूमने के लिए जाना था, जिसके लिए 6 हजार रुपए चाहिए थे। उस समय यह बहुत बड़ी रकम थी और घर से इतनी दूर जाने की बात थी, इसलिए काकीजी (नवलकिशोर की पत्नी) ने साफ मना कर दिया। संयोग से उसी हफ्ते काकाजी जयपुर आ गए। जब उन्हें इस बात की खबर मिली तो उन्होंने मुझे और काकीजी को बुलाया। मुझसे बोले, 'पैसों की चिंता मत करो, तुम घूमने जाओ। बच्चे अपने साथियों और दोस्तों के साथ घूमकर जितना सीखते हैं, उतना दुनिया की कोई किताब नहीं सिखा सकती है।' इसके साथ ही, काकाजी ने यह भी पूछा कि मेरे पास कैमरा है या नहीं, घड़ी है या नहीं। उनका कहना था कि घूमने जा रही हो तो ये सब चीजें पास में होनी चाहिए।

मुझे काकाजी की जो बात सबसे ज्यादा प्रभावित करती थी, वह था उनका लोगों के प्रति व्यवहार। वे घर में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति का आदर-सत्कार करते थे, भले वह व्यक्ति उनसे उम्र और पद में छोटा हो। उनके रुटीन चेकअप के लिए एक डॉक्टर आते थे, काकाजी ने उन्हें कभी भी इंतजार नहीं करवाया। वे खुद डॉक्टर साहब का इंतजार करते और उनके आने के बाद ही नाश्ता करने बैठते थे। वे अनुशासन के बहुत पक्के थे, लेकिन इसके लिए घर में किसी को परेशान नहीं करते थे। उनकी आंख सुबह पांच बजे खुल जाती थी, लेकिन वे औरों की नींद का ध्यान रखते हुए बिस्तर पर लेटे-लेटे ही व्यायाम करने लगते। चुनाव प्रचार के दौरान उनके पैरों में सूजन आ जाती थी, लेकिन किसी से सेवा नहीं करवाते.. केवल गर्म पानी की बाल्टी में पैर डालकर सिकाई कर लेते।

काकाजी मोबाइल फोन का ज्यादा इस्तेमाल करना पसंद नहीं करते थे। वे हमेशा कहा करते थे कि अगर कोई व्यक्ति फुर्सत में है तो वह आपका फोन लैंडलाइन पर भी उठा लेगा। अगर आप उसके पर्सनल नंबर पर कॉल कर रहे हैं तो आप उनकी निजी जिंदगी को डिस्टर्ब कर रहे हैं। उन्हें अखबार पढ़ने का शौक था। हर सुबह कई घंटे वे इस काम में लगाते। मुख्य रूप से राजनीतिक खबरें और संपादकीय पढ़ा करते थे। उन्हें टी.वी. रिपोर्टर पसंद नहीं आते थे, वे टी.वी. इंटरव्यू देने के पक्ष में नहीं रहते थे।

मैंने काकाजी से सीखा कि हर कार्य मर्यादा की सीमा में रह कर करना चाहिए। वे कहते थे कि हम दूसरों को जो उपदेश देते हैं, उसकी पालना पहले खुद करनी चाहिए। वास्तव में काकाजी जैसा बोलते थे, वैसा ही करते थे। यह खासियत उनके व्यक्तित्व को और विराट बनाती थी। काकाजी का कहना था, 'पूजा का मतलब यह नहीं है कि आप घंटों मंदिर में भगवान की प्रतिमा के सामने बैठे रहें। आपको उम्र के हर पड़ाव पर एक नया दायित्व मिलता है, अगर आपने उसे अपनी उस उम्र में पूरा कर लिया तो वही आपके जीवन का धर्म है और वही आपकी पूजा है। अगर आप एक मां हैं तो अपने बच्चों की परवरिश आपकी पूजा है। अगर आपकी उम्र 50 वर्ष की हो गई है तो आपको जो समाज से मिला है, उसे वापस कीजिए; ऐसे काम करिए, जो समाज सुधार में सहयोगी हों। यही आपकी पूजा है।' उनकी दी हुई इस शिक्षा का मैं आज भी अनुसरण करती हूं।

काकाजी शिक्षा और आत्मनिर्भरता पर काफी जोर दिया करते थे। जब मैं ग्रेजुएशन कर रही थी, तब मेरी शादी के लिए रिश्ते भी आ रहे थे। काकाजी ने साफ कहा, 'क्या मैं इसकी शादी यह सोचकर कर दूं कि इसकी पढ़ाई पूरी हो गई है और यह मेरी जिम्मेदारी है? हरगिज नहीं! जब तक तृप्ति अपने पैरों पर खड़ी नहीं होगी, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं होगी, तब तक मैं इसकी शादी नहीं करूंगा।' उन्होंने शादी के मामले में अपनी पसंद नहीं थोपी। मैं परिवार की पहली सदस्य थी, जिसने इंटरकास्ट शादी की। काकाजी ने मुझे मंजूरी दे दी।

काकाजी त्योहारों को बहुत ही हर्षोल्लास से मनाया करते थे। मकर संक्रांति पर अपने लिए खासतौर पर बड़ी पतंग मंगवाते। सुबह काफी देर तक पतंगबाजी करते, उसके बाद दिन में दो घंटे की नींद लेते थे। उस मौसम में उन्हें भुट्टे, कच्ची मटर और मूंगफली खाना बेहद पसंद था। संक्रांति के दिन तय था कि खाने में दाल-बाटी और चूरमा बनेगा। वे परिवार को साथ लेकर चलने वाले व्यक्ति थे और रिश्तों को संभालकर रखते थे। हम जब छोटे थे तो हर साल दीपावली मनाने दौसा जाया करते थे। मैं काकाजी से पूछती थी कि हम जयपुर में दीपावली क्यों नहीं मनाते? वे मुझे समझाते, 'बेटा, जो रिश्ते होते हैं, इन्हें तुम हमेशा अपने आस-पास पाओगी। जब तुम अकेली पड़ोगी या तकलीफ में रहोगी तो ये रिश्ते ही सबसे पहले आते हैं।' तमाम व्यस्तताओं के बावजूद वे परिवार के लिए समय निकाल लेते थे। गुजरात के राज्यपाल रहने के दौरान वे हर रोज सुबह 8 बजे और रात 8 बजे फोन किया करते थे। दौसा में उन्होंने गर्ल्स स्कूल भी इसीलिए खोला क्योंकि पिताजी की इच्छा थी। उस

जमाने में कई अभिभावक लड़कियों को को-एड स्कूल नहीं भेजना चाहते थे, इसलिए पिताजी का मन था कि लड़कियों के लिए अलग स्कूल बनाया जाए।

खादी के प्रति काकाजी समर्पित थे। वे अंतः वस्त्र भी खादी के पहनते थे। जब ऑर्गेनिक खादी का आविष्कार हुआ तो उनके चेहरे पर एक अलग ही चमक देखने को मिली। उन्हें बहुत खुशी हुई कि उनके प्रयास रंग ला रहे थे। इस बात की ज्यादा खुशी थी कि खादी में एक ऐसी चीज हुई है, जिससे युवा भी खादी से जुड़ पाएंगे। खादी के विचारों से और गांधीजी के विचारों से वे बहुत प्रभावित थे। जब भी वे टी.वी. पर 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' सुनते तो अपने पैरों पर हथेली से थाप देते हुए उसे गुनगुनाया भी करते थे। वे अक्सर गांधी दर्शन से जुड़ी हुई बातें किया करते थे।

काकाजी हमेशा कहा करते थे कि इंसान को अपनी जड़ें कभी नहीं भूलनी चाहिए। राज्यपाल को सरकार की ओर से एक खानसामा मिला होता है, लेकिन काकाजी कभी भी अपने साथ खानसामा नहीं रखते थे। जब वे गांधीनगर से जयपुर आते तो प्रोटोकॉल के तहत एक स्थानीय सुरक्षाकर्मी उनके साथ नियुक्त किया जाता था। लेकिन काकाजी उसे रात 10 बजे छुट्टी दे देते और सुबह आने के लिए कहते। अपने अंतिम समय में वे काफी संतुष्ट थे। वे कहते, 'मैंने समय पर सभी जिम्मेदारियां पूरी कर ली हैं, अब तो बोनस की जिंदगी जी रहा हूं।'

शिक्षा को सर्वाधिक महत्व

आशुतोष शर्मा

पौत्र, बृजकिशोर शर्मा के ज्येष्ठ पुत्र

काकाजी (नवलकिशोर) बहुत ही अनुशासनप्रिय थे और बच्चों में भी अनुशासन देखना पसंद करते थे। वे हमें समाज के प्रति हमारे दायित्व को समझाते रहते थे। एक बार वे किसी काम से कश्मीर जा रहे थे तो मुझे भी साथ ले गए। मेरी उम्र तब 15 साल थी। ट्रेन की यात्रा के दौरान मैंने चाय पीने के बाद खाली कप ऐसे ही कहीं रख दिया। काकाजी ने तुरंत टोका और उस कप को डस्टबिन में डालने के लिए कहा। उनकी ऐसी छोटी-छोटी सीखों से मैंने बहुत प्रेरणा ली है। शिक्षा पर उनका काफी जोर रहता था। एक बार उन्होंने मेरा दाखिला अजमेर के मेयो स्कूल में करवाने के लिए वहां के सांसद विष्णु मोदी जी से बात की। उन्होंने काकाजी को फिर से सोचने के लिए कहा क्योंकि वह स्कूल महंगा था। काकाजी ने तुरंत जवाब दिया, 'मैं अपनी दाल-रोटी में कटौती कर सकता हूं, लेकिन बच्चों की शिक्षा जरूरी है।'

उन्हें अखबार पढ़ने का बहुत शौक था। वे रोज सुबह कम-से-कम दो घंटे का समय अखबार पढ़ने में बिताते थे। मुख्य रूप से राजनीति से जुडी खबरें और संपादकीय कॉलम पढ़ा करते थे। रेडियो पर पुराने गाने सुनना भी उन्हें पसंद था। वे भगवान में आस्था रखते थे और ज्योतिष शास्त्र को भी मानते थे, लेकिन अंधभक्त नहीं थे। वे भारतीय संस्कृति और धर्म

को बढ़ाने के पक्षधर थे। काकाजी का व्यवहार सार्वजनिक था। किसी भी व्यक्ति को उनसे मिलने के लिए अपॉइंटमेंट लेना नहीं पड़ता था। यहां तक कि वे अपना फोन भी खुद ही उठाते थे। लोगों से मिलना-जुलना उन्हें अच्छा लगता था। जब भी वे जयपुर आते, घर पर लोगों का जमावड़ा लग जाता। काकाजी एक-एक व्यक्ति से मिलते, उनकी तकलीफें सुनते और समाधान करने की कोशिश करते।

सक्रिय राजनीति की तमाम व्यवस्तताओं के बावजूद काकाजी परिवार और रिश्तेदारों के लिए समय जरूर निकालते थे। वे परिवार के सभी सदस्यों की जरूरतों से परिचित थे। जब भी उन्हें फुर्सत मिलती तो अपना पूरा समय परिवार के लोगों के साथ बिताते थे। घर के बच्चों के साथ भी बैठते और छोटी-छोटी चीजों के लिए प्रोत्साहित करते। वे परिवार में सभी को सीख देते कि जरूरत से ज्यादा पैसा ऐब लाता है, इसलिए लालच कभी नहीं करना चाहिए। वे शुरू से ही खादी की चप्पल पहना करते थे। उनका रहन-सहन बहुत साधारण था और फिजूलखर्ची उन्हें बिल्कुल पसंद नहीं थी। एक बार पूनम (आशुतोष की पत्नी) उनके लिए नामी कंपनी की चप्पल लेकर आई। काकाजी ने सबसे पहले उसकी कीमत पूछी और कहा कि अगर ये चप्पल 500 रुपए से ज्यादा की हुई तो मैं नहीं पहनूंगा। राजनीति के जरिए पैसा कमाने को काकाजी गलत मानते थे। राजनीति उनके लिए जनसेवा का माध्यम थी। अगर वे चाहते तो राजस्थान के सत्ताधारी बन सकते थे, लेकिन उन्होंने कभी भी यह इच्छा जाहिर नहीं की। उन्होंने राज्य सरकार में कैबिनेट मंत्री बनने का प्रस्ताव भी ठुकरा दिया। वे हमेशा कहते थे, 'मैं बिना पद के भी राजनीति में काम कर सकता हूं।'

मुख्यमंत्री और कुर्ता

पूनम शर्मा

पौत्रवधू, आशुतोष शर्मा की पत्नी

काकाजी (नवलकिशोर) के नैतिक मूल्यों और जीवनशैली का मुझ पर गहरा प्रभाव रहा। वे सामाजिक कुरीतियों का पुरजोर विरोध करते थे और अन्याय के खिलाफ खड़े होने का उनमें साहस था। दहेज प्रथा उन्हें हमारे समाज की सबसे बड़ी बुराई लगती थी। बदलाव की शुरुआत उन्होंने अपने परिवार से की; न तो अपने बेटों की शादी में दहेज लिया और न ही पोतों की शादी में। महिला शिक्षा के लिए भी उनका विशेष आग्रह रहता था। वे कहते थे कि एक महिला के शिक्षित होने से दो परिवारों का विकास होगा। उन्होंने घर की बेटियों-बहुओं को पढ़ाई और नौकरी के लिए पूरी छूट दी तथा आर्थिक रूप से सक्षम बनाया। जब उन्हें पता चला कि मैं नौकरी करना चाहती हूं तो उन्होंने मुझे पूरा समर्थन दिया। साथ ही, पीएचडी करने की भी सलाह दी और एक गुरु की भांति मार्गदर्शन किया। उस दौरान वे गुजरात के राज्यपाल थे। वहां अगर उन्हें मेरी पीएचडी में काम आने लायक कोई पुस्तक या लेख मिलता तो उसे संभालकर रख लेते और जयपुर आते समय याद से साथ लेकर आते थे। एक बार मैं उन्हें अपना एक लेख दिखाने गई, जो 4-5 पन्नों का

था। उस समय वे खाना खा रहे थे, लेकिन उन्होंने बीच में खाना छोड़कर पूरा लेख पढ़ा और मेरी तारीफ की।

वे मुझे हमेशा परिवार को जोड़कर रखने की सीख देते थे। उनका कहना था, 'खून पानी से अधिक गाढ़ा होता है, इसलिए खून के रिश्तों को हमेशा अहमियत देनी चाहिए।' वे मुझसे आनंद चाचाजी के बारे में अक्सर बात करते थे। जब चाचाजी का देहांत हुआ तो इंदिरा चाची की उम्र कम थी और उनकी दोनों बच्चियां भी बहुत छोटी थीं। उनको संभालना काकाजी की जिम्मेदारी थी। काकाजी अंदर से भावुक प्रवृत्ति के थे, लेकिन अगर उस दौरान भावनात्मक रूप से कमजोर पड़ जाते तो परिवार को कौन संभालता! उन्हें शिवकिशोर चाचाजी की भी बहुत चिंता रहती थी। वे जब भी घर से बाहर जा रहे होते तो शिवकिशोर चाचाजी से मिलकर जरूर जाते थे। जब उनके राज्यपाल बनने की सूचना आई तो काकीजी (नवलकिशोर की पत्नी) अपनी आखिरी सांसें गिन रही थीं और कुछ समय बाद ही उनकी मृत्यु हो गई। वह समय काकाजी के लिए बहुत कठिन था, लेकिन उन्होंने अपनी भावनाओं पर काबू किया; परिवार को भी संभाला और सरकार द्वारा दी गई जिम्मेदारी का भी निर्वाह किया। परिवार से उनका गहरा लगाव रहा, विशेषकर घर के बच्चों के प्रति। उनकी बातों से हम सबको संबल मिलता था। वे परिवार के सभी लोगों से कहते थे, 'किसी चीज की चिंता मत करो, भगवान का दिया अपने पास बहुत है। हमेशा सच्चाई के रास्ते पर चलना चाहिए और सद्कर्म करते रहना चाहिए।'

काकाजी के व्यवहार और विचारों का प्रभाव इतना था कि सभी पार्टियों के नेतागण उनका हालचाल पूछने आते थे। वे सभी से मुस्कुराकर मिलते और दोस्ती के अंदाज में बात किया करते। राजनीति में बड़े-बड़े पदों पर रहने के बावजूद काकाजी बहुत ही सादा जीवन जीने वाले व्यक्ति थे। एक बार मुख्यमंत्री अशोक गहलोत उनसे मिलने आ रहे थे। मैंने देखा कि काकाजी के कुर्ते पर दाग लगा हुआ है। मैंने उन्हें बताया और कहा कि कुर्ता बदल लीजिए। काकाजी का जवाब था, 'मुख्यमंत्री कुर्ते से मिलने आ रहे हैं या मुझसे? व्यक्तित्व का पता कपड़ों से नहीं, आदमी के विचारों से पता चलता है।'

अपने अंतिम समय में काकाजी ने दौसा में सामाजिक उत्थान और लड़कियों की शादी के लिए सामुदायिक केंद्र तथा इंग्लिश मीडियम स्कूल बनवाने की इच्छा जाहिर की, जो पूरी भी हुई है। उन्हें सबकी भावनाओं का खयाल रहता था, चाहे सामने वाला छोटा हो या बड़ा। वे अपने ड्राइवर को भी परिवार का सदस्य मानते थे और उसकी आर्थिक रूप से मदद भी करते थे। एक बार मैंने देखा कि खाते समय काकाजी की आंखों से आंसू आने लग गए। मैंने उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने बात को टाल दिया। वे बोले, 'कुछ नहीं बेटा, ये आंसू तो ऐसे ही आ रहे हैं।' बाद में जब मैंने खाना खाया तो पता चला कि सब्जी में मिर्च बहुत ज्यादा हो गई थी। लेकिन काकाजी ने नाराजगी जताना तो दूर, इस बात का जिक्र ही नहीं किया। यह उनका बड़प्पन था।

घर के लिए नहीं सरकारी कार

अभिषेक शर्मा

पौत्र, बृजकिशोर शर्मा के कनिष्ठ पुत्र

मुझे 1997-98 में काकाजी (नवलकिशोर) के साथ रहने का मौका मिला। उनके साथ रहकर मैं दिल्ली में एमबीए की तैयारी कर रहा था। मां की तरह वे मेरा ध्यान रखते थे। काकाजी के साथ ही वे मेरे शिक्षक भी थे। मेरी अंग्रेजी भाषा पर पकड़ कम थी। इसलिए वे मुझसे डेढ़ घंटे तक अंग्रेजी के तीन समाचार-पत्र पढ़वाते थे। कठिन शब्दों को खुद समझाते थे। इसी दौरान मुझे राजनीति और समाज का ज्ञान भी मिल जाता था। एमबीए करने के बाद 2001 में मेरी नौकरी लग गई। पहले वेतन से काकाजी को भगवान गणेश का पेंडेंट उपहारस्वरूप दिया। बाद में उन्हें एक घड़ी और पैन भी दिया। जीवन के आखिरी दिन तक उन्होंने वही घड़ी पहन रखी थी। पैन को वे सदा कुर्ते की जेब में लगाकर रखते थे। एक बार वे मुझसे मिलने आ रहे थे। रास्ते में ध्यान आया कि मेरा दिया हुआ पैन घर ही रह गया है, तो उसे लेने फिर घर आए। अच्छा कार्य करने पर वे परिवार के हर सदस्य को प्रोत्साहित करते थे। उस समय मेरी उम्र 14 वर्ष थी। हम जनता कॉलोनी में रहते थे और मैं पहली बार सुबह-सुबह दौड़ने निकला। एक घंटे बाद मैं जब घर आया तो वे बालकनी में बैठकर दाढ़ी बना रहे थे। मेरे दौड़ लगाने से वे बहुत खुश हुए और अपने गले से निकालकर सोने की चेन मेरे गले में पहना दी, जो अभी तक मेरे पास है। वे किसी को भी झूठा आश्वासन नहीं देते थे। देश-दुनिया की खबर के लिए वे घंटों अखबार पढ़ते थे। समाचार चैनलों में वे डीडी न्यूज देखना पसंद करते थे। पहले चुनाव में वे जीत गए, लेकिन दूसरे चुनाव में टेलीविजन पर आ रहे रुझान उनके पक्ष में नहीं थे। सभी लोग चिंतित थे। ऐसे में उन्होंने घर का माहौली खुशनुमा बनाने के लिए जोर से हंसते हुए कहा, 'वी लॉस्ट द इलेक्शन।' यानी चुनावी हार भी उन पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाई।

वे मितव्ययी स्वभाव के व्यक्ति थे। उन्हें कतई पसंद नहीं था कि कोई सरकारी पैसे का दुरुपयोग करे। एक बार मैं अपने काम के लिए लाल बत्ती वाली सरकारी कार लेकर चला गया तो उन्होंने मुझे बहुत डांटा। बाद में प्यार से समझाया, 'बेटा, यह सरकारी कार्य के लिए मिली हुई गाड़ी है। इसे हम अपने व्यक्तिगत कार्य के लिए नहीं उपयोग कर सकते।' राज्यपाल रहने के दौरान उन्हें जो बजट मिलता था, उसे भी उन्होंने कार्यकाल की समाप्ति के बाद लौटा दिया। उनका मानना था कि वे इसके ट्रस्टी हैं, न कि स्वामी। इसलिए इन पैसों का उपयोग सरकारी कार्यों में ही करना चाहिए। काकाजी के इन आदर्शों ने मुझे काफी प्रभावित किया। उनसे बहुत कुछ सीखने का मिला। आज मैं जिस भी मुकाम पर हूं, सब उन्हीं की देन है। उनके मार्गदर्शन से मैंने अपनी जिंदगी में काफी बदलाव पाया है। मेरे चाचाजी आनंद शर्मा की 1982 में सड़क हादसे में मृत्यु हो गई थी। काकाजी ने उनकी स्मृति में दौसा में आनंद पब्लिक स्कूल का निर्माण करवाया और उसे सरकार को सौंप दिया। वर्तमान में वहां 12वीं

तक का विद्यालय संचालित है। प्रतिवर्ष 6 अगस्त को विद्यालय का वार्षिकोत्सव मनाया जाता है, जिसमें पूरा परिवार साथ जाता है।

पैसा ही सब कुछ नहीं

समृद्धि शर्मा

पौत्रवधू, अभिषेक शर्मा की पत्नी

विवाह से पूर्व मैंने काकाजी (नवलकिशोर) की सादगी और उच्च विचारों के बारे में जैसा सुना था, उन्हें वैसा ही पाया। मैं शादी के बाद जनता कॉलोनी वाले घर में आई। उस समय पहली मंजिल पर एक छोटा और एक बड़ा कमरा था। काकाजी ने मुझे बड़ा कमरा दिया, जिससे कोई परेशानी नहीं हो। काकाजी के पास बैठने मात्र से ही आशीर्वाद का अहसास होता था। ससुराल में मेरी पहली दीपावली के दिन काकाजी ने अहमदाबाद से फोन कर परिवार के प्रति मेरी सोच की सराहना की। परिवार और रिश्तेदारों में उन्होंने कभी भेदभाव नहीं किया। उनकी अनुमति से मैं एक बार टीवी चैनल पर बहस में गई। मेरे घर आने पर उन्होंने मेरे विचारों की जमकर प्रशंसा की और मुझे एक हजार रुपए पुरस्कारस्वरूप दिए। गुजरात राज्यपाल रहने के दौरान उनसे मिलने तत्कालीन मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी सहित कांग्रेस के बड़े-बड़े नेता आते थे। मेरी उत्सुकता को जानकर वे मुझे सारी बात बताया करते थे। मैं काकाजी से स्वयं के व्यापार शुरू करने की जब भी कहती, वे मुझसे कहते, 'ज्यादा मनी माइंड मत बनो। पैसा उतना ही कमाओ, जिससे अच्छा खा सको और अच्छे कपड़े पहन सको।' एक बार उन्होंने कहा, 'बेटा मैं शाम होने से पहले रुपयों से कमरा भर सकता हूं, लेकिन मैं जाते समय एक भी दाग लेकर नहीं जाना चाहता हूं।' तुम्हें सात जन्म तक नवलकिशोर शर्मा के बच्चे होने का गर्व होगा। उनके प्रेरक शब्द आज भी प्रोत्साहित करते हैं। वे जन्मदिन पर सभी को समान रूप से उपहार राशि देते थे। उनमें प्रत्येक व्यक्ति को जोड़कर रखने की कला थी। वे हमेशा परिवार को बंधा हुआ देखना चाहते थे। वे चाहे राजनीति में कितने भी व्यस्त हों, लेकिन परिवार के लिए समय निकाल ही लिया करते थे। वे बच्चों की छोटी से छोटी सफलता के लिए भी उन्हें बहुत प्रोत्साहित करते थे। वे परिवार के सभी सदस्यों को ईमानदारी से जीवन जीने की सलाह दिया करते थे।

राष्ट्रपति ने की तारीफ

बाबूलाल निर्झर

राजभवन में विशेष कार्याधिकारी

पं. नवलकिशोर शर्मा का ओजस्वी व्यक्तित्व कितने ही लोगों के लिए प्रेरणास्रोत रहा। वे किसी व्यक्ति विशेष से प्रभावित नहीं होते थे। अच्छे काम करने वाला, ईमानदार और सच्चा व्यक्ति उन्हें प्रिय होता था। उन्होंने हमेशा चरित्र को प्राथमिकता दी और गरीब-अमीर, शिक्षित-अशिक्षित में भेदभाव नहीं किया। समर्पित कार्यशैली और सद्‌व्यवहार के कारण

उनके अनगिनत शुभचिंतक-समर्थक बने। उनके स्वभाव में किंचित मात्र भी अभिमान का स्थान नहीं रहा। बड़े-बड़े पदों पर रहते हुए भी अपना जीवनस्तर और व्यवहार नहीं बदला। वे हजारों कार्यकर्ताओं को व्यक्तिगत रूप से पहचानते थे और नाम से संबोधन देते रहे। जब उनके किसी कार्यक्रम में जाने के दौरान ट्रैफिक रोक दिया जाता तो उन्हें अच्छा नहीं लगता था। वे कहते, 'मेरे अकेले के निकलने से बहुत आदमियों को कष्ट होता है। लेकिन मजबूरी है, यह सब प्रोटोकॉल में आता है। बेचारे अधिकारी भी क्या करें!'

अगर कहा जाए कि पंडितजी कोई साधारण शिक्षण संस्था नहीं बल्कि एक विश्वविद्यालय थे जिसमें सब तरह के ज्ञान का समावेश था तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। उनके व्यक्तित्व ने बड़े-बड़े लोगों पर गहरी छाप छोड़ी। एक बार बेंगलुरू में छात्रों द्वारा गरीब और असहाय व्यक्तियों के लिए किए गए कार्यों से जुड़े समारोह में राष्ट्रपति पहुंचे हुए थे। पंडितजी के बड़े बेटे बृजकिशोर शर्मा का ससुराल भी वहीं है और उस परिवार के एक सदस्य समारोह में उपस्थित थे। उन्होंने पंडितजी से संबंध का उल्लेख करते हुए राष्ट्रपति को अपना परिचय दिया। राष्ट्रपति ने उनका अभिवादन करते हुए कहा, 'राजनीतिज्ञ लोगों में बुद्धिमान और पेशेवर रूप से समर्पित व्यक्ति बहुत कम मिलते हैं.. पं. नवलकिशोर शर्मा उनमें से एक हैं।'

सादगी-सच्चाई की प्रतिमूर्ति

बनवारीलाल गुप्ता

जयपुर के राजनीतिक सहयोगी

नवलजी कार्यकर्ताओं की भावनाओं की बड़ी कद्र करते थे। कार्यकर्ता के घर किसी समारोह में जाते तो खुद पहल करके कुछ खाने को मंगाते, जबकि होटल या अन्य बड़े आयोजनों से बिना कुछ खाए आ जाते थे। एक बार वे राजस्थान विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में अतिथि थे। सामने नाश्ते की प्लेट लगी हुई थी। उन्होंने सब प्लेट यह कहते हुए हटवा दी कि वे घर से खाना खाकर आए हैं। उसी दिन मेरे विद्यालय में आयोजित कार्यक्रम में भी वे आमंत्रित थे। मैं जानता था कि उन्हें गजक, तिलपट्टी, मूंगफली बहुत पसंद है। मैंने सारी व्यवस्था पहले से ही कर रखी थी। कार्यक्रम के तुरंत बाद उन्होंने चाव से गजक और तिलपट्टी खाई। चूंकि विश्वविद्यालय के कार्यक्रम में मैं साथ था तो उन्होंने मेरे मनोभाव भांपते हुए कहा, 'वहां औपचारिकता थी। यह मेरे घर जैसा है, घर में कैसी औपचारिकता!'

उन्हें सही कार्यकर्ता की परख थी। कौन कार्यकर्ता पार्टी के लिए अच्छा है, इसकी जानकारी वे तुरंत कर लेते थे। हुल्लड़ मचाने वाले कार्यकर्ता उनको पसंद नहीं थे। जिसको वे पसंद करते, उसके लिए सब कुछ करने को तत्पर रहते। मुझे उन्होंने हवामहल विधानसभा सीट से चुनाव लड़वाया था, जबकि मैंने उनसे कभी टिकट की मांग ही नहीं की थी। मुझे लंबे समय तक उनके साथ रहने का सौभाग्य मिला। उनके जीवन में सादगी और सच्चाई भरी

हुई थी। गुजरात के राज्यपाल पद से सेवानिवृत्त होने के बाद तक वे छोटे-से कमरे में साधारण चारपाई पर सोते थे। उनका घर भी उनके जीवनकाल तक बहुत साधारण ही था।

चुनाव हारना मंजूर लेकिन

घनश्याम अग्रवाल

नवलकिशोर शर्मा के चुनाव प्रभारी

जयपुर-आगरा रोड पर मेरा पेट्रोल पंप है। जब बाबूजी (नवलकिशोर) अपना पहला चुनाव लड़ रहे थे तो उनकी गाड़ियों में मेरे पंप से ही पेट्रोल डलता था। चुनाव जीतने के बाद उन्होंने स्वयं पेट्रोल पंप पर आकर चुनाव में सहयोग के लिए आभार प्रकट किया। बाद में हम दोनों में प्रगाढ़ संबंध बन गए और मैं उनका चुनावी प्रबंधन संभालने लगा। उनकी जीवनशैली बहुत सामान्य थी। उन्हें शहर में कुछ काम होता तो अक्सर छोटे बेटे आनंद के साथ स्कूटर पर पीछे बैठकर जाते थे। अगर आनंद व्यस्त रहते तो वे ऑटो रिक्शा से सफर करने में भी संकोच नहीं करते थे। मैंने कई बार उन्हें ऑटो में आते-जाते देखकर अपने स्कूटर पर घर छोड़ने का आग्रह किया तो वे टाल देते। वे खाने-खिलाने के शौकीन थे। वे जयपुर की किरण कुल्फी बड़े चाव से खाते थे। राजीव गांधी जब राजनीति में सक्रिय हुए तो बाबूजी ने उन्हें यहां की कुल्फी खिलाई। प्रधानमंत्री बनने के बाद तक राजीव ने कई बार उनसे कुल्फी मंगवाई। बाबूजी जयपुर से बर्फ के बीच रखकर कुल्फी दिल्ली ले जाते थे। राजीव के स्वास्थ्यकर्मी बिना जांच किए कुल्फी खाने से उन्हें मना करते, लेकिन वे हंसते हुए कुल्फी चट कर जाते।

बाबूजी ने कभी अपने आदर्शों से समझौता नहीं किया। जब वे अलवर से चुनाव लड़ रहे थे तो कार्यकर्ताओं ने कहा कि शराब बांटनी पड़ेगी, अन्यथा चुनाव हार जाएंगे। बाबूजी से साफ कहा कि वे भले ही चुनाव हार जाएं, लेकिन वोट पाने के लिए शराब नहीं बंटवाएंगे।

कभी कर्मचारी नहीं समझा

ओमप्रकाश

नवलकिशोर शर्मा के वाहन चालक

बाबूजी (नवलकिशोर) के आखिरी समय तक मैंने उनकी गाड़ी चलाई। वे अपने प्रत्येक कर्मचारी को घर का सदस्य मानते थे। हमारी किसी भी मुसीबत में वे हमेशा साथ खड़े रहते थे, लेकिन पद का दुरुपयोग न खुद करते और न ही किसी और को करने देते। एक बार घर के एक नौकर ने एसएमएस अस्पताल में फोन करके कहा कि मैं नवलकिशोर शर्मा का पीए बोल रहा हूं, मेरी बहन अस्पताल में भर्ती है, उनका अच्छे से इलाज होना चाहिए। बाद में इसकी पुष्टि के लिए अस्पताल से फोन आया। फोन बाबूजी ने खुद उठाया। उस समय उन्होंने नौकर के पीए बनकर बात करने को टालते हुए यही कहा कि इलाज ठीक हो जाए यह देख लेना। बाद में उन्होंने नौकर को बुलाकर डांट लगाई। मुझे किसी से काम

होता तो यही कहता कि मैं नवलकिशोर शर्मा का ड्राइवर बोल रहा हूं, मेरा यह काम है। बाबूजी भी कई बार अधिकारियों को कह देते थे, 'ये ओम मेरा ड्राइवर है, यह कुछ काम बताए तो कर दिया करो।'

वटवृक्ष थे वे

कुलदीप शर्मा

पत्रकार

मैंने लगभग दो दशक तक राजनीतिक-सामाजिक जीवन में पं. नवलकिशोर शर्मा को कभी पास और कभी दूर से देखा। उनके व्यक्तित्व के विविध पहलू थे। वे बौद्धिक मंचों पर 'नवलजी' थे तो आमजन के बीच विनोदी 'बाबूजी'। उन्होंने अपनी वरिष्ठता का रौब अपने उन प्रशंसकों पर कभी नहीं झाड़ा, जो उन्हें पान खिलाकर और पांव छूकर प्रसन्न थे या फिर दूर से ही उनका दर्शन करके खुद को धन्य समझ लेते थे। वे राजनीतिक रंगमंच के सशक्त अदाकार थे। जो मिला या जो नहीं मिला, उसे 'करमचंद्या का खेल' कहकर वे बात को खत्म कर देते थे; यह उनके दार्शनिक व्यक्तित्व का एक पहलू था।

नवलजी से हुआ एक लिखित संवाद मेरे जीवन की सबसे यादगार घटनाओं में से है, इसके बाद से मेरे मन में उनके प्रति सम्मान बढ़ता ही गया। जून, 2000 में पूर्व केंद्रीय मंत्री और दौसा के सांसद राजेश पायलट का सड़क दुर्घटना में निधन हो गया। मैं उन लोगों में था, जिन्होंने आधी रात को सांगानेर एयरपोर्ट पर उनके पार्थिव शरीर को विशेष विमान तक जाकर अंतिम विदाई दी थी। वह स्मृति मेरे मन में बस गई थी। जुलाई के महीने में तोतूका भवन में उनकी स्मृति में एक गैर-राजनीतिक कार्यक्रम हुआ। इसमें नवलजी प्रमुख वक्ता थे। अगले दिन मैंने राजस्थान पत्रिका में दो कॉलम की खबर पढ़ी, 'नवलकिशोर शर्मा ने कहा कि पायलट युवा और मेहनती थे। वे ठकुरसुहाती नेता नहीं थे। दौसा से कई बार चुनाव जीते और केंद्रीय मंत्री भी बने।'

यह खबर पढ़कर मुझसे रहा नहीं गया। मैंने कागज-पेन उठाया और नवलजी को तीन पेज का पत्र लिख दिया। मैंने लिखा, 'मुझे लगता है कि राजेश पायलट के लिए आपके द्वारा कुछ और भी कहा जाना चाहिए था। वे देश की एक नई उम्मीद और प्रतिभा थे। उन्होंने बहुत कम समय में राष्ट्रीय राजनीति में अपने को एक लोकप्रिय किसान नेता के रूप में स्थापित किया।' इसके आगे भी मैंने कई बातें लिखीं; कांग्रेस की परंपरा और मूल्यों का जिक्र किया, यह भी लिखा कि लोग आप में कमलापति त्रिपाठी की छवि देखते हैं और आप राजस्थान के मुख्यमंत्री बनते तो समाज के सभी वर्गों को खुशी होती। पता नहीं किस भावावेश में मैंने यह पत्र लिखा और उसी दिन डाक से भेज भी दिया। दो सप्ताह बाद मुझे नवलजी का सवा दो पृष्ठ लंबा जवाब प्राप्त हुआ। उन्होंने लिखा:

'आपका भावस्पर्शी पत्र मिला। आपकी भावनाओं को मैंने पढ़ा और उसी भावना से आपको उत्तर दे रहा हूं। मैंने राजेश पायलट के लिए अपने भाषण में क्या कहा, यह आपने

सिर्फ अखबार में पढ़ा। अखबार में क्या छपा और किस तरह छपा, इसके लिए मुझे उत्तरदायी ठहराना अनुचित है। राजेश पायलट मुझे प्रिय थे। वे बहुत प्रतिभाशाली युवा राजनेता थे। कम समय में उन्होंने अपनी बड़ी पहचान बनाई और कभी ठकुरसुहाती पसंद नहीं की। मैंने भी अपने जीवन में कभी ठकुरसुहाती को पसंद नहीं किया। मैंने अपने मूल्यों पर अडिग रहकर लंबा सार्वजनिक जीवन जिया है। राजेश पायलट के निधन से मुझे गहरा आघात लगा है। एक युवा का असमय चले जाना कितना बड़ा दुख होता है! यह दुख मैंने अपने जीवन में सहा है। आपने पं. कमलापति त्रिपाठी जैसे नेताओं के साथ मेरी तुलना की है। वे बहुत बड़े नेता थे, उनके मुकाबले मैं कांग्रेस का एक साधारण कार्यकर्ता हूं। कांग्रेस पार्टी ने मुझे जो भी दायित्व सौंपा, मैंने उसे मन-वचन-कर्म से निभाने की कोशिश की है। आपने मेरे मुख्यमंत्री नहीं बनने की बात लिखी। मैंने अपने जीवन में कभी कोई अभिलाषा प्रकट नहीं की। मैं कभी किसी दौड़ में शामिल नहीं हुआ। मैं वर्तमान में विधायक हूं और पूरी निष्ठा से अपने क्षेत्र के लोगों के लिए काम कर रहा हूं और जब तक शरीर में सामर्थ्य है, काम करता रहूंगा। लेकिन वर्तमान युग युवाओं का है। आयु और शरीर की अपनी मर्यादा भी होती है। मैं अपने जीवन के 75 वर्ष पूरे कर चुका हूं। इस अवस्था में भी सक्रिय रहकर यथासंभव काम करता हूं। मैं अतिश्योक्तिपूर्ण बात नहीं कहता; मेरा पूरा जीवन इसका साक्षी है कि मैंने अपने जीवन में सिद्धांतों से कभी समझौता नहीं किया। पूरी निष्ठा से अपना दायित्व निभाया है। आप कभी समय निकाल कर मुझसे मिलें। मैं अपने निवास पर सबसे मिलता हूं।'

उस पत्र को पढ़कर मैं भावुक हो गया। नवलजी मुझे व्यक्तिगत रूप से नहीं जानते थे, फिर भी उन्होंने मेरे पत्र का इतनी गहराई से जवाब दिया। उसी दिन से मेरे हृदय में उनके प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न हो गई। लेकिन मेरे भीतर साहस नहीं हुआ कि मैं उनसे जाकर मिलूं। संयोगवश कुछ समय बाद उनसे साक्षात्कार का अवसर मिला। मैंने जयपुर बार एसोसिएशन की स्मारिका 'धरोहर' का लेखन किया, जो जयपुर के वकीलों को समर्पित थी। इसके लिए मैंने नवलजी का इंटरव्यू लिया। उन्होंने मुझे बहुत स्नेहपूर्वक अपने सोफे पर बगल में बैठाकर स्मारिका के बारे में पूछा। मैंने विस्तार से इसके बारे में बताया और वे शांत मन से मेरी बात सुनते रहे। उन्होंने स्मारिका की परिकल्पना की प्रशंसा की और अपनी वकालत की शुरुआती यात्रा के बारे में बताने लगे। उन्होंने कहा, 'मेरे लिए सबसे बड़ी चुनौती यह थी कि मैं अपने पांवों पर खड़ा हो जाऊं। इसलिए मैं दौसा की अदालत में जी-तोड़ मेहनत करता था। वहां से जो परिश्रम करना सीखा, वह जीवन में आगे काम आया।' हमारी लंबी बातचीत हुई, लेकिन मैंने संकोच के कारण पत्र लिखने वाली बात का जिक्र नहीं किया।

2009 में नवलजी गुजरात के राज्यपाल के पद से मुक्त होने के बाद पुन: कांग्रेस से जुड़े। इसी दौरान एक कार्यक्रम में उन्हें सुनने का अवसर मिला। वे जयपुर नगर निगम के लिए कांग्रेस की मेयर प्रत्याशी के मुख्य चुनाव कार्यालय का उद्घाटन करने आए थे। वहां उन्होंने बहुत प्रभावशाली उद्बोधन दिया। मैंने उन्हें पत्र लिखकर बताया कि उनका उद्बोधन मुझे प्रेरणादायी लगा। मेरे इस पत्र के जवाब में नवलजी ने लिखा, 'आयु से शरीर कमजोर होता

है। मन में अगर दृढ़ता हो और विचारधारा ठीक हो तो जो कुछ मैंने कहा, वह सभी कह सकते हैं। स्वार्थ से ऊपर उठने पर विचार में दृढ़ता आती है।'

नवलजी आज भौतिक रूप से हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनकी स्मृति और प्रेरणा सदैव सजीव रहेगी। वे वटवृक्ष थे।

आंखों में करुणा का सागर

गोपाल शर्मा

1993-1994 की बात है। मैं राजस्थान पत्रिका में वरिष्ठ संवाददाता के रूप में राज्य सरकार, विधानसभा, भाजपा वगैरह से संबंधित खबरें देता और देखता था। पत्रकारिता के प्रति समर्पण और सक्रियता के कारण आम तौर पर सुविज्ञ था। उसी दौरान पत्रिका संपादक वृंद ने निर्णय किया कि मुझे भाजपा-संघ परिवार की जगह कांग्रेस की खबरें देनी चाहिए। लगभग एक वर्ष से यह विषय मैं टाल रहा था; अंततोगत्वा वार्षिक बैठक में इसकी घोषणा हो गई। चूंकि कांग्रेस के नेताओं से बहुत अधिक संबंध नहीं थे, इसलिए तुरंत गहराई में जाने की चुनौती थी। मैंने उसी दिन कांग्रेस के तीन नेताओं से मुलाकात की। वे पं. नवलकिशोर शर्मा, शिवचरण माथुर और अशोक गहलोत थे; एक पार्टी में होते हुए भी तीनों की अलग धाराएं और अपनी तरह के विशिष्ट व्यक्तित्व।

हालांकि अयोध्या आंदोलन के दौरान दिसम्बर, 1992 के पहले सप्ताह में पंडितजी से मैं फैजाबाद में मिल चुका था। उस समय शीला दीक्षित सहित कुछ नेताओं को उनके नेतृत्व में विरोध प्रदर्शन के लिए भेजा गया था। वहां सिर्फ पंडितजी ही अपनी बात कह पाए थे, बाकी कांग्रेसी नेता तो पुलिस घेरे से बाहर ही नहीं निकल सके। वहां उनसे मुलाकात हुई तो गहमागहमी और उत्तेजनापूर्ण माहौल के बावजूद उन्होंने अपनत्व प्रकट करने में कोई कमी नहीं की। लेकिन पंडितजी से मेरी पहली औपचारिक मुलाकात एक-डेढ़ साल बाद मुझे कांग्रेस की बीट मिलने पर ही हुई। मैं जनता कॉलोनी स्थित उनके आवास पर गया। उनका मध्यमवर्गीय जैसा मकान देखकर लोगों को नए और पुराने नेताओं का अंतर समझ में आ सकता था। उस साधारण मकान को देखकर लगता ही नहीं था कि यह कांग्रेस के एक बड़े नेता का है। साज-सज्जा जैसी कोई चीज तो वहां दिखाई ही नहीं देती थी। पारंपरिक संस्कारवश बुजुर्गियत का ध्यान रखते हुए मिलते ही मैंने उनके चरण स्पर्श किए। वे नाम और काम से मुझे जानते थे, इसलिए लगा नहीं कि मैं नवपरिचित हूं। उनकी आंखों से प्रवाहित हो रही करुणा ने मुझे अंदर तक भिगो दिया। दिल के साफ, बेबाक और आत्मीयता से भरे.. पहली ही मुलाकात में मैं जैसे उनका हो गया। वे एक अभिभावक-से नजर आए।

यदा-कदा उनसे मुलाकातें होती रहीं। उनके राजनीतिक आकलन का पहला बड़ा प्रभाव पड़ा, जब एच. डी. देवेगौड़ा के प्रधानमंत्रित्व काल में एक बार उन्होंने कहा कि देवेगौड़ा सरकार अब गिर जाएगी। मैंने कारण जानने चाहे तो बोले कि कोई भी कारण हो सकता है। राजनीति के अपने तौर-तरीके होते हैं; कई बार कारण पैदा कर दिए जाते हैं। उनका मानना

था कि देवेगौड़ा सरकार का लंबा चलना कांग्रेस के राजनीतिक हित में नहीं है। मैंने इसके आधार पर और राजनीतिक तथ्य मालूम किए। इसके बाद पत्रिका में वह खबर छपी। देश में उस समय उस तरह की वह पहली खबर थी। कुछ समय बाद देवेगौड़ा प्रधानमंत्री नहीं रहे।

हमारे बीच राजनेता और पत्रकार के रिश्ते ही रहे, लेकिन उनकी ईमानदारी, कर्मठता और मुखर व्यक्तित्व का मैं हमेशा कायल रहा। मुझे याद है कि सोनिया गांधी के कांग्रेस में सक्रिय होने के साथ ही अशोक गहलोत ने उन्हें जयपुर के लक्ष्मीविलास होटल में बुलवाया था। पंडितजी भी उस भोज वार्ता में उपस्थित थे, लेकिन वे सबसे पीछे एक किनारे ही बैठे रहे। उनके स्वाभिमान ने उन्हें चाटुकारों की तरह मंडराने से रोके रखा। मैं वहां गया था; पंडितजी के पास रुकने को हुआ तो वे बोले, 'सोनियाजी से मिल लीजिए।'

वाजपेयी सरकार के दौरान एक बार अफवाह उड़ी कि कांग्रेस के अनेक नेता पार्टी छोड़कर राजग से चुनाव लड़ेंगे। उन प्रमुख नेताओं में पंडितजी का नाम भी था। मैंने पंडितजी से इस बारे में पूछा तो उनका साफ कहना था कि नेता को अधीर नहीं होना चाहिए, धैर्य ही उसकी परीक्षा है। निष्ठा के बिना व्यक्ति का कोई वजूद नहीं है।

कुछ लोग सोच सकते हैं कि वे राजस्थान के मुख्यमंत्री पद की महत्वाकांक्षा रखते थे, लेकिन यह सोचना उनके साथ अन्याय होगा। जब वे विधायक का चुनाव जीते और मुख्यमंत्री पद के लिए अशोक गहलोत, परसराम मदेरणा तथा नटवर सिंह जैसे नाम चले तो पंडितजी के पास अपने नजदीकी विधायकों के टेलीफोन नंबर तक नहीं थे और न वे किन्हीं विधायकों के संपर्क में थे। उस आधी रात को मेरी उनसे टेलीफोन पर बात हुई। वे मुख्यमंत्री के होने वाले फैसले को लेकर कत्तई व्यग्र नहीं थे। उस समय वे मुख्यमंत्री के रूप में अशोक गहलोत को पसंद नहीं करते थे, लेकिन वे यह भी कहते थे कि गहलोत का इस समय विकल्प नहीं है।

पंडितजी की धर्मपत्नी काफी बीमार थीं। वे एसएमएस अस्पताल के कॉटेज वार्ड में भर्ती थीं। मैं मिलने गया। पंडितजी बेड के पास कुर्सी लगाए चिंतातुर भाव से बैठे थे। थोड़ी देर बैठा रहा, कुछ विशेष बात का मौका भी नहीं था। उठने लगा तो उन्होंने हाथ पकड़कर वापस बैठा लिया। बोले, 'रुकिए, आपको बिरजू (बृजकिशोर शर्मा, ज्येष्ठ पुत्र) से मिलवाता हूं।' उन्होंने बृजकिशोरजी को बुलाकर मिलवाया। उस समय बृजकिशोरजी राजनीति में नहीं आए थे।

वे गुजरात के राज्यपाल मनोनीत किए जा चुके थे। उनकी धर्मपत्नी का निधन हो गया था। उस दौरान मैं जनता कॉलोनी स्थित आवास पर उनसे मिलने गया। औपचारिक अभिवादन के बाद उन्होंने वहां बैठे लोगों को हॉल में भेज दिया। वे काफी गंभीर थे और गुजरात जाने के बाद संभावित घटनाक्रमों को लेकर विचारमग्न दिखाई दिए। मैंने उन्हें मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी के विचार, परिवार, संगठन कौशल, ऊर्जा और सकारात्मकता के बारे में विस्तार से बताया। वे ध्यानपूर्वक सुनते रहे। उन्होंने बताया, 'राज्यपाल पद के लिए घोषित होने के बाद मोदीजी से दो-तीन बार बात हुई है। लोकतंत्र के प्रति उनकी आस्था को मैंने महसूस किया है।'

राज्यपाल पद की शपथ ग्रहण के दिन मैं भी गांधीनगर गया। सुबह जब पहली बार उन्होंने

देखा तो पूछा कि रहने-खाने में कोई दिक्कत तो नहीं आई? उन्होंने शपथ ग्रहण में शामिल होने वाले सभी लोगों के रहने के इंतजाम पर खुद ध्यान दिया था। शपथ ग्रहण के बाद पंडितजी और मोदीजी साथ में एक तरफ जाकर खड़े हो गए। वहां उपस्थित सैकड़ों लोगों ने पंडितजी के पास जाकर उनका चरण स्पर्श किया और मोदीजी का भी अभिवादन किया। उनमें ज्यादातर कांग्रेस के नेता या जयपुर-दौसा-अलवर सहित राजस्थान के विभिन्न हिस्सों से पहुंचे पंडितजी के प्रशंसक थे। शपथ ग्रहण के बाद मैं मुख्यमंत्री निवास चला गया। वहां मोदीजी के पास रामदासजी अग्रवाल (प्रदेश भाजपा प्रभारी) बैठे थे। मेरा पता चलने पर मुझे भी बुला लिया। मोदीजी का कहना था, 'नवलजी के प्रति लोगों की श्रद्धा आश्चर्यजनक है। एक नेता के प्रति सम्मान तो समझ में आता है, लेकिन हृदय से इतना लगाव दुर्लभ है।' शाम को पंडितजी से राजभवन में फिर मुलाकात हुई। उन्होंने अपने विशाल बेडरूम को सबके आने-जाने के लिए सुलभ बनाया हुआ था। कई कुर्सियां लगी थीं और मौजूद लोगों से पंडितजी हंसी-ठहाकों में हाल-चाल पूछ रहे थे।

2005 में मेरी पंडितजी से फोन पर बात हुई। मैंने बताया कि मोदीजी से मिलने के लिए आने का मन है। पंडितजी ने तपाक से कहा, 'लेकिन ठहरना राजभवन में है। एयरपोर्ट पर गाड़ी पहुंच जाएगी, वह आपको ले आएगी। मोदीजी से मिल लीजिएगा, फिर वापस आकर मेरे साथ भोजन करिएगा।' वैसा ही हुआ। आश्चर्यजनक यह देखना था कि उन्होंने अपने सहयोगी बाबूलाल निर्झर को भोजन की टेबल पर बुलवाया और आग्रहपूर्वक भोजन के लिए पूछताछ करते रहे। उस दिन सूरत से आम आए हुए थे। उन्होंने निर्झर को काफी जोर देकर कहा कि बहुत अच्छे आम हैं, और ले लीजिए। भोजन के बाद उन्होंने मुझसे पूछा, 'राजभवन गेस्ट हाउस के किस कमरे में ठहरे हैं? वहां एक सीलन वाला कमरा भी है। मैंने पहले कह दिया था कि उसमें किसी को ठहराना नहीं है।' ..मैं भावुक था, उनकी भावना समझ रहा था।

एक बार पंडितजी राज्यपाल रहने के दौरान जयपुर दौरे में उपराष्ट्रपति भैरोंसिंह शेखावत से मिलने सिविल लाइंस स्थित आवास पर पहुंचे। शेखावत साहब के पास मैं पहले से बैठा हुआ था। पंडितजी का पता चला तो शेखावत साहब उन्हें लेने बाहर गए। लौटते समय मैं बाहर से ही वापस निकलने लगा तो पंडितजी ने कहा, 'आइए आप भी बैठिए। कौन-सी हमारी गुप्त बात होनी है!' यह थी उनकी आत्मीयता। हालांकि दो-चार मिनट बाद मैं ही उठकर बाहर आ गया।

भाजपा के प्रदेश अध्यक्ष रहे पूर्व मंत्री ललितकिशोर चतुर्वेदी ने एक बार विराट भागवत कथा का आयोजन किया। उसमें कथावाचक के रूप में साध्वी ऋतंभरा (अयोध्या आंदोलन की प्रबल-प्रखर पक्षधर) आईं। मैं कथा समिति के उपाध्यक्ष के रूप में जुड़ा हुआ था। कथा में 50 हजार से अधिक श्रद्धालु नियमित रूप से उपस्थित रहे। मैंने पंडितजी से एक बार कथा सुनने को आने का आग्रह किया। वे उस समय गुजरात के राज्यपाल थे। आमंत्रित करते समय मैंने यह भी निवेदन किया कि संबंधित विषय जरूर सोच लीजिएगा। उन्होंने तत्काल कहा, 'भगवान की कथा सुनने में क्या सोचना!' वे कथा सुनने आए और पूरे समय श्रोताओं के

बीच उपस्थित रहे। उन्होंने भगवान कृष्ण के प्रति श्रद्धा और साध्वी ऋतंभरा के सम्मान में संक्षिप्त उद्‌बोधन भी दिया।

एक बार जयपुर के प्रसिद्ध शिक्षण संस्थान की रजत जयंती का अवसर था। पंडितजी संस्थान के प्रमुख से किन्हीं कारणों से खुश नहीं थे, इसलिए उनके आग्रह पर आने से अस्वीकार कर दिया। आयोजक जयपुर के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, उन्होंने मुझसे यह चर्चा की। मैंने पंडितजी से दुबारा आग्रह किया तो वे आने को राजी हो गए। बिड़ला ऑडिटोरियम में बड़ा कार्यक्रम था। पंडितजी ने शिक्षा पर बहुत अच्छा भाषण दिया। जब वे विदा होने लगे तो कार में बैठने से पहले सबको सुनाते हुए आयोजक से कहा, 'सब ठीक है, लेकिन मैं तुम्हारे कहने से यहां नहीं आया। इन्होंने आग्रह किया तो मैं टाल नहीं सका।' ऐसे बेबाक थे पंडितजी।

उनकी बीमारी के दौरान मानसरोवर स्थित मकान में उनसे मिलने जाता। वे उठकर बैठने में सक्षम नहीं थे, इसके बावजूद सहारा लगवाकर कुछ उठने की कोशिश करते। वे राजनीति के बारे में सोचते जरूर होंगे क्योंकि सार्वजनिक विषयों में जानने की जिज्ञासा रखते थे; लेकिन राजनीति के बारे में कोई टिप्पणी नहीं करते। उनके देहांत से एक महीने पहले मैं उनका आशीर्वाद लेने गया था। मैंने बताया कि सामाजिक समरसता की पहल करने के लिए जयपुर में विप्र महाकुंभ का आयोजन हो रहा है। उन्होंने न केवल विप्र महाकुंभ की सफलता के लिए आशीर्वाद दिया, बल्कि अपनी ओर से कुछ सुझाव भी दिए।

पंडितजी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ने लगा तो उन्हें जयपुर के फोर्टिस अस्पताल में भर्ती करवाया गया। इसका पता चलने पर मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ हॉस्पिटल की लिफ्ट पर चढ़ा.. 'हे प्रभु! पंडितजी को और अधिक लंबी आयु प्रदान कीजिए। वे जल्दी स्वस्थ होकर घर लौटें।' भीतर पहुंचा तो वे लेटे हुए थे; उनसे मिलकर हाथ जोड़े। वे बोल नहीं पा रहे थे। डॉक्टर ने उनसे पूछा कि क्या वे मुझे पहचान रहे हैं तो उन्होंने स्वीकारोक्ति में हल्की-सी गर्दन हिलाई और उनकी करुणामयी आंखों की चमक क्षणिक तेज होती दिखाई दी। शान से दहाड़ने वाले और किसी की परवाह नहीं करने वाले पंडितजी काफी कमजोर हो चले थे। लौटते समय मैं कुछ क्षण उनके चरण स्पर्श और दबाने की मुद्रा में रहा, फिर आने की अनुमति मांगी। उन्होंने दोनों हाथ ऊपर उठाए। मुझे उनका यह भाव अंतरतल तक भेद गया। जैसे वे कह रहे हों कि उन्होंने अब बहुत कर लिया, और आने-जाने वालों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर रहे हों.. सब समझ रहे हों। कुछ ही दिनों बाद वे अनंत की ओर बढ़ चले।

वे 'महानगर टाइम्स' के प्रति विशेष दृष्टि रखते थे। इस भाव को उन्होंने कभी छिपाया नहीं, यह जानते हुए कि मेरा प्रथम आदर सदैव भैरोंसिंह शेखावत के साथ रहा। एक बार मैंने उनसे पूछा भी कि मेरे प्रति उनके इस स्नेह का क्या कारण है। उनका कहना था कि एक सामान्य परिवार के व्यक्ति को संघर्ष करता देखकर उनके मन में यह विशेष भाव आता है। महानगर टाइम्स की एक वर्षगांठ पर उन्होंने शुभकामना स्वरूप पत्र टाइप करवाकर भेजा। दुर्योग से उसे मैं सुरक्षित नहीं रख पाया। लेकिन उस पत्र में उन्होंने जो भाव प्रकट किए, वह पढ़कर आंसू आ गए। कोई राजनेता एक पत्रकार को कितने स्नेह और आत्मीयता से देख

सकता है तथा उसे शब्दों में महसूस करवा सकता है, उसका वह पत्र अनुपम उदाहरण था। उनसे जब भी मिलता तो अखबार और परिवार के बारे में जरूर जानना चाहते और इस बात की चिंता करते दिखते कि महानगर टाइम्स को कैसे आगे बढ़ाया जा सकता है।

2003 में विधायक के रूप में कार्यकाल समाप्त होने के बाद विभिन्न विभागों में नो ड्यूज को लेकर उनके बारे में महानगर टाइम्स में एक खबर छपी। मैंने तो खबर देखी ही नहीं थी। एक बार गांधीनगर से उनका दो पन्नों का पत्र आया। उसमें उन्होंने पूरा स्पष्टीकरण दिया हुआ था और साथ में लिखा था, 'इस विषय में क्या करना है, यह आप खुद देखें।' मीडिया के प्रति यह उनका सम्मान भाव था।

जब पंडितजी पर पुस्तक लेखन का कार्य शुरू हुआ और उनके निकटवर्ती सहयोगियों से बातचीत की तो गांधीनगर में उनके साथ लंबे समय तक रहे सहयोगी की बात ने भावुक कर दिया, 'पंडितजी ने एक बार कहा था कि मेरे ऊपर दो लोग लिख सकते हैं, एक गोपाल शर्मा हैं।'

पंडितजी के सार्थक जीवन को शत-शत नमन!

परिशिष्ट

संदर्भ सूची

अर्जुन सिंह और अशोक चोपड़ा: अ ग्रेन ऑफ सैंड इन द आवरग्लास ऑफ टाइम, हे हाउस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2012
अशोक गहलोत को 10 नेताओं द्वारा लिखा गया पत्र, 30 नवम्बर, 1988
अटलबिहारी वाजपेयी: फोर डिकेड्स इन पार्लियामेंट, 2011, शिप्रा पब्लिकेशंस, दिल्ली, 1996
आउटलुक
आर. शशांकन: इंडिया टुडे, 15 जनवरी, 1976
आर. वेंकटरमन: जब मैं राष्ट्रपति था, वाणी पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2005
इलेक्शंस.इन
इंटरपार्लियामेंट्री यूनियन की रिपोर्ट, आर्काइव.ऑर्ग
इंडियावोट्स.कॉम
इंडियन एक्सप्रेस
इंडियन एक्सप्रेस वेब
इंडिया टुडे
इंदिरा गांधी: चुने हुए भाषण और लेख 1972–1977, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1990
इंदिरा गांधी: आकाशवाणी से प्रसारण, 27 जून, 1975
उपसचिव, राजस्थान सरकार का आदेश, 24 जनवरी, 1974
उत्तर प्रदेश कांग्रेस चुनाव सेल के इंचार्ज सालिगराम का पत्र, 13 फरवरी, 1974
एपी न्यूज
एवरीमैन्स साप्ताहिक
ए.पी.जे. अब्दुल कलाम: टर्निंग पॉइंट्स, राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली, 2016
एम.वी. कामत: गांधी'ज कुली–लाइफ एंड टाइम्स ऑफ रामकृष्ण बजाज, अलाइड पब्लिशर्स लिमिटेड, नई दिल्ली, 1995
एस. निजलिंगप्पा: माय लाइफ एंड पॉलिटिक्स, विजन बुक्स, नई दिल्ली, 2000
ऐंडी मरीनो: नरेंद्र मोदी–एक राजनीतिक यात्रा, मंजुल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2014
ओमप्रकाश थानवी: इतवारी पत्रिका
क्वेंटिन क्रू: द लास्ट महाराजा, माइकल जोसेफ, लंदन, 1985
कर्पूरचंद्र कुलिश: हस्ताक्षर, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, जयपुर 1996
कन्हैयालाल सेठिया: लोकनारायण जयनारायण व्यास, राजस्थानी ग्रंथागार, जयपुर, 2017
क्रिस्टॉफ जेफ्रेलॉट और प्रतिनव अनिल: इंडियन फर्स्ट डिक्टेटरशिप, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 2020
किशोर मकवाणा: कॉमनमैन नरेंद्र मोदी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
कुसुम देशपांडे: विनोबा–अंतिम पर्व, परमधाम प्रकाशन, पवनार, 2010
कुलदीप नैय्यर: एक जिंदगी काफी नहीं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020
कुलदीप नैयर: इमरजेंसी की इनसाइड स्टोरी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020
के. नटवर सिंह: वन लाइफ इज नॉट इनफ, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2014
कोरी समाज का उमाशंकर दीक्षित को ज्ञापन, 15 फरवरी, 1974
खादी–ग्रामोद्योग कार्यक्रम की मूल्यांकन रिपोर्ट, पीईओ स्टडी सं 181, योजना आयोग, भारत सरकार
गायत्री देवी: मेरी स्मृतियां, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1994
गुजरात एज
गोपाल शर्मा: आजादी के बाद, प्रज्ञा प्रकाशन, जयपुर, 1997
गोपाल शर्मा: गांधी जयपुर सत्याग्रह, महानगर प्रकाशन, जयपुर, 2019

गोपाल शर्मा: इतवारी पत्रिका
गोपाल शर्मा: कारसेवा से कारसेवा तक, राजस्थान पत्रिका प्रेस, जयपुर, 1993
गोपाल शर्मा: मानव संसाधन विकास मंत्री अर्जुन सिंह से साक्षात्कार, राजस्थान पत्रिका
गोपाल शर्मा: मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह से साक्षात्कार, राजस्थान पत्रिका
घनश्यामदास बिड़ला का मिर्जा इस्माइल को पत्र, 11 सितम्बर, 1942
चुनाव आयोग की रिपोर्ट
चौधरी कुंभाराम आर्य स्मृति ग्रंथ, चौधरी कुंभाराम आर्य मेमोरियल ट्रस्ट, जयपुर, 1999
चंदनमल बैद का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, 14 फरवरी, 1974
चंद्रशेखर: यंग इंडियन, 19 सितम्बर, 1989/ दलीय घेरे के बाहर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020
जनार्दन सिंह गहलोत: संघर्ष से शिखर तक
जनार्दनराय नागर: लोकनायक जयनारायण व्यास, राजस्थानी ग्रंथागार, जयपुर, 2017
जय सिंह: भारत–पाकिस्तान मरुस्थलीय युद्ध, योगीराज प्रेस, 1973
जयनारायण पुरोहित: जयनारायण व्यास–व्यक्तित्व और विचार, चिन्मय प्रकाशन, 1971
जसवंत सिंह: खतरे में भारत–सुरक्षा की नीतिगत भूलें व भ्रांतियां, राजपाल एंड संस, 2013
जयपुर महानगर टाइम्स
जय प्रजा, आगरा
जमनालाल बजाज की डायरी, खंड 5, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, 1978
जदुनाथ सरकार: अ हिस्ट्री ऑफ जयपुर, ओरिएंट ब्लैक स्वान, नई दिल्ली, 2009
जयपुर महकमा खास दस्तावेज 1937, बस्ता संख्या–1, क्रम संख्या–10, फाइल संख्या–313 गोपनीय
जॉयशेन जोसेफ: टाइम्स ऑफ इंडिया वेब, 20 नवम्बर, 2018
जॉन जुब्रिकी: द हाउस ऑफ जयपुर, जगरनॉट बुक्स, नई दिल्ली, 2020
जी.वी. रामकृष्ण: टू स्कोर एंड टेन, एकेडमिक फाउंडेशन, नई दिल्ली, 2004
जी न्यूज वेब
टाइम्स ऑफ इंडिया
टाइम्स ऑफ इंडिया वेब
टाइम्स नाउ न्यूज वेब
टीकाराम पालीवाल स्मृति ग्रंथ, पालीवाल जनहितकारी ट्रस्ट, जयपुर, 2001
टीकाराम पालीवाल: इतवारी पत्रिका
टीएफआई पोस्ट
डब्ल्यूडब्ल्यूडबल्यू.इलेक्शंस.इन
डॉ. सरस्वती माथुर: अमर पुरोधा–हरिदेव जोशी
डॉ. महेशचंद्र शर्मा: दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांगमय, खंड 13, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
डॉ. विष्णुचंद्र पाठक: राजस्थान की विभूति देवीशंकर तिवारी, एस.के. प्रिंटर्स, जयपुर
डॉ. तारादत्त निर्विरोध: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा पं. ताड़केश्वर शर्मा, राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति, जयपुर
डॉ. पट्टाभि सीतारामय्या: कांग्रेस का इतिहास, खंड–2, सस्ता साहित्य मंडल, 2009
डॉ. म.च. वार्ष्णेय: अमृत कलश, आणंद कृषि विश्वविद्यालय, आणंद, गुजरात, 2020
डी.पी. मिश्रा: द पोस्ट नेहरू एरा, हर आनंद पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1993
डी.सी. मिगलानी: पॉलिटिक्स एंड रूरल पॉवर स्ट्रगल, दीप एंड दीप पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1993
डेली न्यूज
डेक्कन हेराल्ड
डेली रिपोर्ट, फॉरैन ब्रॉडकास्ट, इंडिया–सीलोन–नेपाल, 30 दिसम्बर, 1966, सीआईए, यूनाइटेड स्टेट्स
डेटा इंडिया, 1977, प्रेस इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली
द ट्रिब्यून
द इकोनॉमिक टाइम्स वेब
दिनमान

दैनिक भास्कर
दैनिक नवज्योति
दिनकरलाल मेहता का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, जून, 2001
धौलपुर जिला कांग्रेस अध्यक्ष दुर्गादत्त शास्त्री को पत्र, 17 सितम्बर, 2000
नरेन्द्र मोदी: मूल भाषण वीडियो, राज्यपाल का विदाई समारोह, 22 जुलाई, 2004
नरेन्द्र मोदी: आपातकाल में गुजरात, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
नवलकिशोर शर्मा का इंदिरा गांधी को पत्र, 30 अगस्त, 1969
नवलकिशोर शर्मा का उद्‌बोधन: राज्यपालों का सम्मेलन, 16–17 सितम्बर, 2008, राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली
नवलकिशोर शर्मा का गुलाब कोठारी को पत्र
नवलकिशोर शर्मा का तारकप्रसाद व्यास को पत्र, 10 मार्च, 2000
नवलकिशोर शर्मा का नटवर सिंह को पत्र, 25 मार्च, 2003
नवलकिशोर शर्मा का मोहनलाल सुखाड़िया को पत्र, 10 अप्रेल, 1969
नवलकिशोर शर्मा का मोहनलाल सुखाड़िया को पत्र, 22 जुलाई, 1969
नवलकिशोर शर्मा का राजबहादुर को पत्र, 26 अक्टूबर, 1971
नवलकिशोर शर्मा का रामप्रसाद लड्ढा को पत्र, 3 अप्रेल, 1970
नवलकिशोर शर्मा का ललितनारायण मिश्र को पत्र
नवलकिशोर शर्मा का संक्षिप्त जीवन परिचय, क्षेत्रीय खादी–ग्रामोद्योग समिति, दौसा
नवलकिशोर शर्मा: विधानसभा परिचय ग्रंथ के लिए प्रेषित विवरण, 16 जुलाई, 1968
नवलकिशोर शर्मा: गुजरात विधानसभा में अभिभाषण, 23 फरवरी, 2006
नवलकिशोर शर्मा: अंतरराष्ट्रीय राजस्थानी सम्मेलन, 23–24 सितम्बर, 2000
नवलकिशोर शर्मा से तत्कालीन साक्षात्कार पर आधारित
नवलकिशोर के पीए महेश शर्मा के संस्मरण
नवलकिशोर शर्मा: मूल भाषण वीडियो, राज्यपाल का विदाई समारोह, 22 जुलाई, 2004
नेशनल दुनिया
पत्रिका.कॉम
पत्रकार सीताराम झालानी के संस्मरण, 9 दिसम्बर, 2021
पंजाब केसरी
पंकज पचौरी: इंडिया टुडे, 15 फरवरी, 1988
पामेला माउंटबेटन: इंडिया रिमेम्बर्ड, पवेलियन बुक्स, लंदन, 2007
पॉल आर. ब्रास: एन इंडियन पॉलिटिशियन लाइफ, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 204
पी.वी. नरसिंह राव: अंतर्गाथा, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, 2016
पी.सी.अलेक्जेंडर: माय ईयर्स विद इंदिरा गांधी, विजन बुक्स, नई दिल्ली, 1991
पी.एन. धर: इंदिरा गांधी–इमरजेंसी एंड इंडियन डेमोक्रेसी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2000,
पीटीआई
प्रवीणचंद्र छाबड़ा: मोहनलाल सुखाड़िया के संस्मरण, समाचार जगत, 31 जुलाई, 2000
प्रणब मुखर्जी: द ड्रैमैटिक डिकेड, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2015
प्रणब मुखर्जी: द टर्बुलेंट ईयर्स, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2016
प्रणब मुखर्जी: द कॉलिशन इयर्स, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 38
प्रपत्र सं. 55/1/1/84–कैब, क्र.सं. 49I, मंत्रिमंडल सचिवालय, भारत सरकार, 11 सितम्बर, 1984 और प्रपत्र सं. 55/1/1/84–कैब, क्र.सं. 80I,
प्रपत्र सं. 55/1/1/85–कैब, क्र.सं. 13, मंत्रिमंडल सचिवालय, भारत सरकार, 3 जनवरी, 1985
फर्डिनेंड माउंट: टियर्स ऑफ द राजाज, साइमन एंड शुस्टर, लंदन, 2015
प्रेस विज्ञप्ति, लघु कुटीर एवं मध्यम उपक्रम मंत्रालय, भारत सरकार, 10 अप्रेल, 2017
प्रेस विज्ञप्ति, राष्ट्रपति सचिवालय, 16 सितम्बर, 2008
फाइनेंशियल एक्सप्रेस वेब
फ्रंटलाइन

बजट भाषण का भाग 'अ', 1974
बिजनेस स्टैंडर्ड
बिजनेस स्टैंडर्ड वेब
बिशन टंडन: आपातकाल-एक डायरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
बिपिन चंद्र: लोकतंत्र, आपातकाल और जयप्रकाश नारायण, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2007
बी.जी. देशमुख: अ कैबिनेट सेक्रेटरी लुक्स बैक, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004
बी.एल. पानगड़िया और एन.सी. पहाड़िया: राजस्थान-पॉलिटी, इकानॉमी एंड सोसायटी, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, 1996,
बी.एल. पानगड़िया: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
बी.के. नेहरू: नाइस गाइज फिनिश सेकेंड, पेंगुइन रैंडम हाउस, गुड़गांव, 1997
भांडारेज मंडल कांग्रेस कमेटी के नानगराम का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, 26 नवम्बर, 1973
भीखा भाई का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, 7 अप्रेल, 2000
भूरेलाल बया: धुन के धनी, संपादक-सत्यदेव विद्यालंकार, मारवाड़ी प्रकाशन, नई दिल्ली
भोला चटर्जी: कॉन्फ्लिक्ट इन जे.पी. पॉलिटिक्स, अंकुर पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1984
महामहोपाध्याय कलानाथ शास्त्री: साक्षात्कार, 27 अक्टूबर, 2021
मनमोहन सिंह: बजट भाषण, भाग 'अ', 15 मार्च, 1995
मलीहा लोधी: पाकिस्तान हॉरिजॉन, खंड 30, सं. 2, पाकिस्तान इंस्टीट्यूट ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्स
महात्मा गांधी: मेरे समकालीन, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1951
मणिबेन पटेल: इनसाइड स्टोरी ऑफ सरदार पटेल, विजन बुक्स, नई दिल्ली, 2001
मरु राजस्थान साप्ताहिक
महका भारत
मंत्रिमंडल सचिवालय, भारत सरकार, 13 नवम्बर, 1984 का तुलनात्मक विश्लेषण
मॉर्निंग न्यूज
मार्गरेट अल्वा: करेज एंड कमिटमेंट, रूपा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2016
माखनलाल फोतेदार; द चिनार लीव्स, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा, 2015
माणिक्यलाल वर्मा की डायरी, 29 जुलाई, 1954
मिर्जा इस्माइल: माय पब्लिक लाइफ, जॉर्ज एलेन एंड अनविन, लंदन, 1954
मिलापचंद डंडिया: चेहरों का सच, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2021
मोरारजी देसाई: मेरा जीवन वृत्तांत, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1972
यंग इंडिया
रमा पायलट: राजेश पायलट-अ बायोग्राफी, रोली बुक्स, नई दिल्ली, 2017
राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी के निदेशक का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, 30 सितम्बर, 2003
राज्यपालों की समिति को नवलकिशोर शर्मा का नोट, 21 नवम्बर, 2008
राष्ट्रदूत
राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति की बैठक कार्यवाही
रानी सिंह: सोनिया गांधी-एन एक्स्ट्राऑर्डिनरी लाइफ, एन इंडियन डेस्टिनी, पालग्रेव मैकमिलन, न्यूयॉर्क, 2011
राजीव गांधी को भेजे गए इस्तीफे की प्रति, 30 अक्टूबर, 1985
रामबहादुर राय: मंजिल से ज्यादा सफर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
राजीव गांधी: भाषण का मूल पाठ, 16 मई 1987
रामदास अग्रवाल का राज्यपाल को पत्र, 20 नवम्बर, 1993
राजकुमार सिंह: समय के चेहरे, ग्रंथ सदन, नई दिल्ली, 2004
रामसिंह अवाना: प्रेशर पॉलिटिक्स इन कांग्रेस पार्टी, नॉर्दन बुक सेंटर, नई दिल्ली, 1988
रामेश्वर विद्यार्थी: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा गोकुलभाई भट्ट, राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति, जयपुर
राजेंद्र कुमार अजेय: हमारा वतन साप्ताहिक, 12 जुलाई, 2004
राजस्थान पत्रिका

राजस्थानी महोत्सव समारोह, 2007, अमरावती में संबोधन
रिचर्ड सिसन: द कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1972
रिपोर्ट ऑफ द जनरल सेक्रेटरीज जून 1970–सितम्बर 1971, ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी, नई दिल्ली 1971
रेडिफ कॉम
लक्ष्मीचंद गुप्त: आधुनिक राजस्थान के शिल्पी मोहनलाल सुखाड़िया, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2014
लालकृष्ण आडवाणी: मेरा देश मेरा जीवन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
लाला काशीराम गुप्त: धुन के धनी, संपादक–सत्यदेव विद्यालंकार, मारवाड़ी प्रकाशन, नई दिल्ली
लालसोट मंडल कांग्रेस कमेटी के पूर्व अध्यक्ष सद्दीक मोहम्मद का जयपुर जिला कांग्रेस कमेटी के पूर्व संयोजक बी.एन. जोशी को पत्र
लॉरेंस एल. श्रेडर: राजस्थान/स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968
लॉर्ड माउंटबेटन का विवरण
लिंक मैगजीन संग्रह, खंड 16, भाग 2, 1973
लोक अभियोजक की रिपोर्ट
लोकसभा डिबेट्स अंग्रेजी, खंड 17, सं 18–23, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, 1999
वसंत साठे: मेमॉयर्स ऑफ अ रैशनलिस्ट, ओम बुक्स इंटरनेशनल, नई दिल्ली, 2005
वाशिंगटन पोस्टविजय भंडारी: राजस्थान की राजनीति, सामंतवाद से जातिवाद के भंवर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
विनीता परिहार: द ईको ऑफ क्विट इंडिया मूवमेंट इन द स्टेट्स ऑफ जोधपुर एंड जयपुर, प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, खंड 62, 2001
विधानसभा परिचय ग्रंथ के लिए प्रेषित विवरण, 16 जुलाई, 1968
विजय भंडारी: नवलकिशोर शर्मा से साक्षात्कार, 30 दिसम्बर, 2000
विजय भंडारी: राजस्थान की राजनीति–सामंतवाद से जातिवाद के भंवर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
विनय सीतापति: आधा शेर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2018
विष्णु मोदी, साक्षात्कार
विशिष्ट शासन सचिव का आदेश, संख्या प. 113 मं.मं./99, मंत्रिमंडल सचिवालय, राजस्थान सरकार
वी. कृष्ण अनंत: इंडिया सिन्स इंडिपेंडेंस, पियर्सन एजुकेशन, नई दिल्ली, 2010
वी.पी. मेनन: द स्टोरी ऑफ द इंटीग्रेशन ऑफ द इंडियन स्टेट्स, ओरिएंट लॉन्गमैन, मुंबई, 1956
वी. शंकर: सरदार पटेल–चुना हुआ पत्र व्यवहार, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2000
वेरिंदर ग्रोवर संपादक: पॉलिटिकल पार्टीज एंड पार्टी सिस्टम, दीप एंड दीप पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1997
श्याम आचार्य: तेरा तुझको अर्पण, ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2015
शरद पवार: ऑन माय टर्म्स, स्पीकिंग टाइगर पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2016
शंकरसहाय सक्सेना: जो देश के लिए जिए, शिक्षा भारती प्रेस, बीकानेर
शिवचरण माथुर का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, 29 जुलाई, 1999
शीला दीक्षित: सिटिजंस दिल्ली–माय टाइम्स, माय लाइफ, ब्लूम्सबरी इंडिया, नई दिल्ली, 2018
स्पर्श पत्रिका, खंड 4, सं. 3, निरमा यूनिवर्सिटी
स्मृति कपूर और हरिंदर बवेजा: इंडिया टुडे, 20 जुलाई, 1998
सत्यनारायण सिंह का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, 3 जुलाई, 2000
सरदार पटेल का वक्तव्य, 5 जुलाई, 1947
सरदार पटेल्स करेस्पॉन्डेंस, 1945–50, खंड 9, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद 1974
सलाम आजाद: बांग्लादेश के स्वतंत्रता संग्राम में भारत का योगदान, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2009
समाचार जगत
संसदीय पत्रिका, खंड 18, अंक 1, जनवरी 1972, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली
संदेश
साप्ताहिक निर्माण मजदूर
साप्ताहिक गौरव गरिमा, नागपुर
सागरिका घोष: इंदिरा, जगरनॉट बुक्स, नई दिल्ली, 2017

सांध्य ज्योति दर्पण
सीताराम मिश्र: धुन के धनी, संपादक–सत्यदेव विद्यालंकार, मारवाड़ी प्रकाशन, नई दिल्ली
सीताराम झालानी: नवलकिशोर शर्मा के संस्मरण
सुनहरा राजस्थान
सुरेंद्रनाथ भार्गव का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, 8 जून, 2000
सुमनेश जोशी: राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, ग्रंथागार, जयपुर
सुमित वालिया: अनबैटल्ड फियर्स–रेकनिंग द नेशनल सिक्योरिटी, लांसर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2021
सोशलिस्ट इंडिया
हरिजन, 11 फरवरी, 1939
हस्तलिखित पत्र, मूल प्रति
हिन्दुस्तान टाइम्स
हिन्दुस्तान टाइम्स वेब
हिरण्मय कार्लेकर: द हार्वर्ड क्रिमसन, 11 मार्च, 1967
हिस्ट्री कांग्रेस, नई दिल्ली, 2013
हीरालाल शास्त्री का मिर्जा इस्माइल को पत्र
हीरालाल शास्त्री: प्रत्यक्षजीवनशास्त्र, खंड 1, अनुपम प्रकाशन मंदिर, जयपुर, 1970
हेमवतीनंदन बहुगुणा का नवलकिशोर शर्मा को पत्र, 13 सितम्बर, 1973
हेमंत शेष का जगमोहन माथुर को पत्र, 23 नवम्बर, 2000